भारतीय प्रेमाख्यान काव्य

[सं० १०००–१९१२]

●

डॉ. हरिकान्त श्रीवास्तव
बी. ए. (आनर्स), एम. ए., एल-एल. बी.,
पी-एच. डी. (हिन्दी)

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी–१

विषय-सूची

दो शब्द

डा० हरिकान्त द्वारा प्रस्तुत किए गए 'भारतीय प्रेमाख्यान काव्य' शीर्षक प्रबन्ध को आद्यंत पढ़ने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ और विषय की उपादेयता एवं मीमांसा से मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ। इसके दो कारण हैं; पहला कारण तो यह है कि इसमें श्रेष्ठ समीक्षकों द्वारा प्रतिपादित प्रेमाख्यानों की संकुचित भूमि का यथोचित विस्तार-प्रसार किया गया है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने जिन मुसलमान कृतिकारों और उनकी कृतियों का उल्लेख अपने इतिहास में किया वे एक प्रकार से सांप्रदायिक रचनाएँ हैं—वस्तुविन्यास की दृष्टि से भी और रचनाशैली के विचार से भी। अपनी विवेचना पद्धति की परिमिति के आधार पर उन्होंने ठीक ही स्वीकार किया कि 'सूफी आख्यान काव्यों की अखंडित परंपरा की यहीं (अठारहवीं शताब्दी) समाप्ति मानी जा सकती है। इस परंपरा में मुसलमान कवि ही हुए हैं। केवल एक हिन्दू मिला है।' इस प्रकार के निश्चयात्मक कथन का उद्देश्य केवल यही समझना चाहिए कि सूफी सम्प्रदाय और मसनवी पद्धतिवाले आन्यापदेशिकता में रँगे प्रेमाख्यानक काव्य इने-गिने थे और उनकी परंपरा अधिक दूर तक नहीं चली। पर अनुसंधानशील विवेचक की दृष्टि शुक्लजी से प्रेरणा प्राप्त कर आगे बढ़ी और सूफियों की आन्यापदेशिकता से पृथक् एवं भारतीय परंपरा से अनुबद्ध प्रेमाख्यानकों की स्वतंत्र सत्ता को पहचाना; उस धारा की दीर्घकालीन प्रवृत्तियों के आधार पर उसके विषय और शैली की परीक्षा की। प्रस्तुत प्रबन्ध इसी स्थिति का द्योतक है। यों तो इस विषय के प्रसार की आकांक्षा डा० रामकुमार वर्मा के 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' से भी प्रकट हो चुकी थी पर सम्पूर्ण पूर्वापर के विधिवत् आलोचन की आवश्यकता फिर भी बनी रही और इस रूप में उसकी पूर्ति देखने में आई। समीक्षा क्षेत्र की इस कमी को पूरी करके लेखक ने अच्छा काम किया है।

इन पंक्तियों के लेखक की प्रसन्नता का दूसरा कारण है—विवेचना की व्यवस्थित प्रणाली। भले ही कुछ लोग प्रबंधकार के उस व्यामोह को न पसंद करें जो उसने प्रकट किया है, मध्यकालीन प्रेमाख्यानों को ऋग्वेद के यमयमी संवाद से जोड़कर; पर आगे चलकर हिन्दी में प्राप्त होनेवाली विविध कृतियों की जैसी सर्वांगीण परीक्षा उसने उपस्थित की है उसमें स्वतंत्र चिंतन और विषय-स्थापन की प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। लेखक के श्रम और उत्साह का पता इस बात से लगाया जा सकता है कि सामान्यतः दृष्टिपथ में आनेवाले अथवा इतिहास ग्रन्थों में संकेतित रचनाओं तक ही वह बँधा नहीं रहा। स्वतंत्र रूप में और प्रयासपूर्वक उसने अनेक ऐसी कृतियों का भी परिचय दिया और विवरण उपस्थित किया है जिनका अभी तक कहीं उल्लेख नहीं हुआ था। ऐसी स्थिति में स्वीकार करना पड़ता है कि उसमें अनुशीलन का सच्चा प्रेम है और सम्यक् विषय-निरूपण की प्रतिभा है। मुझे विश्वास है कि डा० हरिकान्त जी आज की बवण्डरी समीक्षा विधि से अपने को बचाकर आगे भी साहित्यिक क्षेत्र में सूक्ष्मेक्षिकापूर्वक अपना कोई मार्ग निर्दिष्ट करेंगे और निर्भ्रान्त होकर अपने अनुशीलन के कार्य में प्रवृत्त रहेंगे।

हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दूविश्वविद्यालय

जगन्नाथप्रसाद शर्मा

—x—

प्रवेशिका

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों और विद्वानों ने प्रेमाख्यानक काव्यों की परम्परा को सूफी मुसलमानों से ही सम्बद्ध माना है। इस साहित्य के इतिहास में अन्य प्रेमाख्यानक कवियों का विशिष्ट स्थान और योग है, इस बात से हमारे साहित्यिक और विद्वान् प्रायः अनभिज्ञ हैं।

हमारा विचार है कि भारतीय प्रेमाख्यानों की सूफियों से इतर परम्परा सांस्कृतिक और साहित्यिक दोनों ही विचारों से महत्वपूर्ण हैं। यह वह धारा थी जो सूफियों से कुछ प्रभावित तो हुई किन्तु उससे सर्वथा स्वतन्त्र ही रही।

हिन्दुओं और मुसलमानों की कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि वास्तव में इस धारा को ही शुद्ध भारतीय प्रेमाख्यानक काव्यों की परम्परा कहना समीचीन है।

सूफियों के ग्रन्थ यद्यपि हिन्दी में लिखे गए, किन्तु उनके आन्तरिक विचार भारतीय नहीं हैं, वे फारसी काव्य की परम्पराओं से प्रभावित है, उन्होने हिन्दुओं के प्रेमाख्यानों की परम्पराओं को इसलिए अपनाया है कि वे जन-साधारण में प्रिय बन सकें।

वास्तव में भारतीय प्रेमाख्यानों की परम्परा का बीज ऋग्वेद में यमयमी के संवाद में प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य के बाद पौराणिक युग में तो प्रेमाख्यानों के द्वारा नीति और धर्म का प्रचार किया जाता था। संस्कृत साहित्य में पतञ्जलि ने 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' सूत्र की व्याख्या करते हुए 'भैमरथी', 'सुमनोत्तरा' और 'वासवदत्ता' नाम के प्रेमाख्यानो का उल्लेख किया है। इसमें सुबन्धु की 'वासवदत्ता' प्राप्य है, जो उदयन तथा वासवत्ता की प्रेमकहानी से भिन्न है। हमारे विचार से पतञ्जलि कथित वासवदत्ता वैसी ही रही होगी जैसी कि सुबन्धु की है। बाणभट्ट की कादम्बरी और कालिदास के ग्रन्थो से हमें संस्कृत में प्रेमाख्यानों की अखंड परम्परा प्राप्त होती है।

अपभ्रंश साहित्य में जैन मुनियों के चरित काव्य, प्रेमाख्यानक काव्यों के ही रूप हैं। इस भाषा में "जीव-मनः-करण-संलाप," "मयण पराजय" आदि

आन्यापदेशिक (Allegorical) काव्यों की परम्परा की ओर भी इंगित करते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमाख्यानक काव्यों की परम्परा भारत की प्राचीनतम साहित्यिक परम्परा है।

हिन्दी के कवियों को यह अपभ्रंश से 'थाती' के रूप में प्राप्त हुए, जिन्हें सूफी कवियों ने अपने मत के प्रचार के लिए ग्रहण किया, किन्तु इन कवियो से अलग जन-साधारण के लोक-गीतों और लोकवार्ताओं के रूप में शुद्ध प्रेमाख्यानों का निर्माण होता रहा। हिन्दी साहित्य में ढोला मारू रा दूहा को प्रथम प्रेम प्रबन्ध कहा जा सकता है। इसका रचना काल संवत् १०००-१६१२ तक है। संवत् १६०० के उपरान्त संवत् १६१२ तक हिन्दी में प्रेमाख्यानों की अखंड परम्परा मिलती है, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों ने समान रूप से योग दिया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में विशेष रूप से हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों का परिचयात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। यहाँ एक शब्द इस प्रबन्ध के शीर्षक के विषय में भी कह देना आवश्यक है।

हमारा ध्येय सूफियों से इतर प्रेम काव्यों की विवेचना करना था। प्रेमाख्यान शब्द हिन्दी साहित्य में कुछ इतना रूढ़ हो गया है कि इसके द्वारा कुतबन, मंझन और जायसी की परम्परा का ही बोध होता है, अन्य का नहीं। इसके अतिरिक्त सूफी काव्यों का स्वरूप लगभग एक-सा है, अस्तु हमें दोनों को अलग करने के लिए भारतीय प्रेमाख्यान कहना पड़ा है।

'आख्यान' शब्द का प्रयोग भी हमें विवश होकर करना पड़ा है। इसलिए, कि संस्कृत में कथा, आख्यायिका, आख्यान आदि शब्द मिलते हैं जो विशेष प्रकार के ग्रन्थों के लिये प्रयुक्त हुए हैं। 'कथा' का प्रयोग कल्पित प्रेमाख्यान के लिये होता था, जैसे कादम्बरी एक कथा है। आख्यायिका ऐतिहासिक प्रबन्धों के लिये प्रयोग किया जाता था, जैसे हर्ष-चरित। 'आख्यान' से तात्पर्य पौराणिक कथानकों से हुआ करता था, जिसमें इतिहास और कल्पना का मिला-जुला रूप पाया जाता था। हिन्दी के प्रेम-प्रबन्धों में उपर्युक्त तीनों प्रकार के कथानक पाये जाते हैं। अस्तु हमने सबसे व्यापक 'आख्यान' शब्द को ही चुना है।

किसी भी युग की रचनाओं के अध्ययन और उनके मूल्यांकन के लिए तत्कालीन साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक वातावरण का अध्ययन नितान्त आवश्यक है, इसलिए कि कवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है।

लेकिन किसी कवि की रचना विगत परम्पराओं से भिन्न नहीं हो सकती, वह अपने पूर्व के कवियों की भाषा, भाव और प्रक्रिया सम्बन्धी रूढ़ियों को अपनाता अवश्य है, इसलिये तत्कालीन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त अतीत की प्रवृत्तियों का अध्ययन भी आवश्यक होता है। हिन्दू कवियों की रचनाओं को प्रभावित करने वाली सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक परम्पराओं का अध्ययन भी इस निबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

अपभ्रंश की देन हिन्दी को पुष्कल है, अतएव उस युग की सामान्य विशेषताओं पर सविस्तर विचार किया गया है।

तदुपरान्त इन प्रेमाख्यानकों की प्रेम-व्यंजना-पद्धति, उनमें मिलनेवाले लोक-पक्ष, अध्यात्म-तत्त्व, काव्य-तत्व, प्रकृति-चित्रण, भाषा शैली पर विचार करने के बाद हमने हिन्दू और मुसलमान कवियों के तुलनात्मक अध्ययन में दोनों के काव्यों में प्राप्त समानताओं-विभिन्नताओं पर अपना निष्कर्ष दिया है और फिर योरोपीय साहित्य में मिलने वाले मध्ययुगीन प्रेम-प्रबन्धों के स्वरूप और प्रक्रिया का संक्षिप्त परिचय देते हुए हमने उसके बीच इन कवियों के स्थान को निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। इसके अनन्तर प्रस्तुत प्रेम-प्रबन्धों के साहित्यिक सौष्ठव के अतिरिक्त हमने उनके सांस्कृतिक महत्त्व और उनकी साहित्यिक और सामाजिक देन पर भी विचार किया है।

हिंदू कवियों के कतिपय प्रेमाख्यानकों के विशिष्ट अध्ययन के अन्तर्गत हमने इन काव्यों के रचना-काल, लिपि-काल एवं कवि के जीवन वृत्त को इतिहासों और आलोच्य ग्रन्थों में मिलने वाली सामग्री के आधार पर उपस्थित किया है। लगभग बीस काव्य ऐसे मिलते है जिनके रचयिता के विषय में इतिहास भी मौन है और वे अपनी रचनाओं में भी अपने विषय में चुप हैं, यही कारण है कि उनका परिचय नहीं दिया जा सका है, और न दिया ही जा सकता था।

प्रत्येक आख्यानक की कथावस्तु, प्रबन्ध-कल्पना, काव्य-सौंदर्य का आलोचनात्मक परिचय देते हुए हमने उनकी सामाजिक मान्यताओं के अनुसार विवेचना की है।

इस प्रबन्ध के आलोच्य ग्रन्थ साधारणतया अमुद्रित होने के कारण जन-साधारण को अलभ्य हैं, वे अधिकतर साहित्यिक सस्थाओं, उनके सग्रहालयों, राजकीय पुस्तकालयों और पुरातत्व विभागों में सुरक्षित है, अस्तु अपने कथनों के प्रमाण के लिये हमें प्रबन्ध के बीच और 'फुटनोट' में आवश्यकता से अधिक और लम्बे उद्धरण देने पड़े हैं जिसका उद्देश्य प्रबंध के आकार को बढ़ाना नहीं,

वरन् इन प्रतियों के अपेक्षित अंशों को यथासम्भव हिन्दी-प्रिय जनता तथा विद्वानो के सम्मुख रखना अनिवार्य था।

इन उद्धरणों को, प्राप्त प्रतियों से जैसा का तैसा उतारने का प्रयत्न किया गया है। 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' के प्रयत्न के कारण लिपिकारों की भूल का संशोधन नहीं हो पाया है। प्रस्तुत उद्धरणों में यति-भंग, के साथ-साथ कहीं-कहीं भाव भी बड़ा अस्पष्ट है, लेकिन इसके लिये हम विवश थे। प्राचीन हस्तलिखित ग्रथों की लिपि और लिपिकारो की भूलों ने हमारे कार्य में बडी बाधाएँ उपस्थित की। जब तक इन रचनाओं का सुसम्पादित मुद्रित सस्करण नही निकल जाता, तब तक हमे इतने से ही सतोष करना पड़ेगा।

प्रस्तुत ग्रथों के अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि मध्य-युग के साहित्य मे सगुण और निर्गुण भक्ति धारा के साथ शुद्ध प्रेमाख्यानको की तीसरी धारा समानान्तर बह रही थी। अस्तु मध्ययुग तथा वीरगाथा काल के कुछ ऐसे ग्रन्थ है जिन्हें उस युग मे स्थान न देकर इस तीसरी धारा के अन्तर्गत स्थान देना अधिक उपयुक्त होगा। 'बीसलदेव रासो' और 'रूपमजरी' ऐसे दो ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जिन्हें इतिहासकारों ने काल के विभाजन के अनुसार गलत स्थान पर रख दिया है। केवल 'रासो' शब्द से जिसका अर्थ वास्तव में काव्य है, कोई ग्रन्थ वीर रस प्रधान नहीं हो सकता। इस ग्रथ में एक प्रोषित-पतिका का वर्णन प्रधान है, जो हिन्दू कवियो की परम्परानुकूल है।' ऐसे ही रूपमजरी भी एक 'आन्यापदेशिक' काव्य है जिसे भूल से कृष्ण भक्ति धारा के अन्तर्गत स्थान दे दिया गया है। हमने इतिहास की इन दोनों भूलों को अपने मतानुसार ठीक कर उक्त पुस्तकों को भारतीय प्रेमाख्यानकों के अन्तर्गत स्थान दिया है।

ये प्रेमाख्यान साहित्यिक और सास्कृतिक दोनों दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इन्होंने लोक-गीतों' की परम्परा का अनुसरण कर अतीत की प्राय: लुप्तप्राय ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियों की पुनरावृत्ति की, अपने काल्पनिक आख्यानो मे संस्कृत के प्रबन्धों की परम्परा को बनाए रखा। मुसलमानों की तरह इन्होंने शामी (Semitic) कथाओं को (लैला मजनू की कथा, रमण शाह छबीली भठियारी का किस्सा) अपनाया है, लेकिन उनको भारतीयता के रंग में रंग कर इन्होंने सांस्कृतिक सामंजस्य की नींव डाली। सूफियों की साधना-पद्धति को अपनाते हुए इन कवियों ने उसमें सगुण भक्ति, अवतार-वाद, जन्मान्तरवाद और अद्वैतवाद आदि भारतीय दार्शनिक और धार्मिक विश्वासों का पुट देकर उसे भारतीयता का बाना पहिनाया, इस प्रकार इन कवियों की धार्मिक उदारता और विशाल हृदयता का पता चलता है। बौद्धों

की साधना-पद्धति ता तथांत्रिकों और बज्रयानियों के विश्वासों को इन कवियों ने प्रस्तुत आख्यानों के आश्चर्य तत्व में स्थान दिया है। कुछ काव्यों मे उपर्युक्त बातें इनमें मिलने वाली आन्यापदेशिक बातों का पोषण करती हैं।

यहाँ यह कहना अप्रासगिक न होगा कि भारतीय प्रेमाख्यानों में अलौकिक प्रेम के यदा-कदा संकेत मिलते हैं, कुछ काव्य आन्यापदेशिक भी हैं, किन्तु साधारणतः प्रस्तुत रचनाएँ लौकिक प्रेम से सम्बद्ध है, जिनमें प्रेम प्रारंभ से सम अंकित किया गया है। मुसलमानो की तरह विषम से सम की ओर जानेवाला प्रेम नहीं प्राप्त होता। अस्तु जायसी और तुलसी के प्रबन्धों का परम्परा से अलग शुद्ध प्रबन्ध काव्य की परम्परा हिन्दी साहित्य को इन कवियो की सबसे बडी देन है।

भाषा की दृष्टि से यह काव्य, राजस्थानी, डिंगल, अपभ्रंश, अवधी, ब्रज भाषा, ब्रज तथा खडी बोली के मिले-जुले रूप मे प्राप्त होते है। इनकी गद्य-वार्ताओं में हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक विकास का इतिहास प्राप्त होता है। यही कारण है कि यह काव्य हिन्दी भाषा के रूपात्मक विकास की दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं।

जहाँ तक इनकी प्रेमव्यंजना का सम्बन्ध है हमें इनमें जीवन के हास-उल्लास के साथ दाम्पत्य जीवन की स्वाभाविक काम प्रवृत्ति के उन्मुक्त, अनावृत्त, चित्रण मिलते हैं जो कहीं मर्यादा का उल्लंघन कर गए हैं. लेकिन रीतिकालीन प्रवृत्ति और मुगल साम्राज्य के भोग-विलासमय वातावरण के प्रभाव के कारण ऐसी प्रवृत्ति तत्कालीन साहित्य में कोई नवीन नहीं है। नवीनता इसमें है कि इन कवियों ने प्रेम को कुत्सित और बाजारू स्तर पर उतरने से बचाया है, सतीत्व और सती नारी तथा एक पत्नीव्रत नायक का गुण गान किया है। प्रेम के उद्दाम उफान और प्रचड वेग मे इनके नायक नायिका सामाजिक मान्यताओ का उल्लंघन नहीं करते, वरन् भारतीय गार्हस्थ्य जीवन की पवित्रता की वे सर्वत्र रक्षा करते हैं। विवाह के पवित्र बन्धन पर—दो एक को छोड़कर—इन्होंने आघात नहीं किया है। अधिकतर स्वकीया प्रेम की ही व्यंजना की गई है। अन्य देशों में प्रेम प्रबन्धों में एवं कृष्ण की माधुर्य भक्ति से अनुप्राणित भारतीय साहित्य में इसका उल्लंघन प्राप्त होता है। गार्हस्थ्य जीवन की पवित्रता को बनाए रखने और सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन न होने देने में इन कवियों ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की है।

हम संक्षेप में यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत ग्रंथ भारतीय संस्कृति और साहित्य के विकास की एक महत्त्वपूर्ण शृङ्खला है, जिन्होंने विक्रम की छठीं स

और उन्नीसवीं शताब्दी तक की धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को एकत्रितरूप में हमारे सामने ला रखा है। इस प्रकार उन्होंने भारतीयता को अक्षुण्ण बनाए रखने में बड़ी सहायता की है।

इस प्रबन्ध के लेखन में हमें अपने पूज्य गुरु डा० केशरी नारायण शुक्ल, एम० ए०, डी० लिट० से बड़ी सहायता मिली है। पदे-पदे यदि हमें उनकी सहायता और प्रोत्साहन न मिलता तो सम्भव था कि हम हिम्मत हार बैठते। इसके अतिरिक्त पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र रीडर हिन्दी विभाग हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी तथा डा० दीन दयालु गुप्त, एम० ए०, एल० एल० बी०, डी लिट०, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय ने हमारी पांडुलिपि देखने और उसे परिमार्जित करने की जो कृपा की है, वह उनकी सहृदयता और एक शिष्य के प्रति स्नेह की द्योतक है। उन्हें धन्यवाद देकर हम उस स्नेह के महत्त्व को कम नहीं करना चाहते। हमारा मस्तक उनके सामने सदैव कृतज्ञता और आदर से झुका रहा है और झुका रहेगा।

भारतीय प्रेमाख्यानों की परंपरा

प्रेम की अजस्रवाहिनी सरिता चिरकाल से भारतीय साहित्य की पावन भूमि को परिप्लावित करती रही है। मानव के चरम उत्कर्ष में, ऋषियों के उत्थान और पतन के इतिहास में, साधना एवं भक्ति के पुण्य क्षेत्र में, इसका कल-कल-निनाद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सुनाई पड़ता है।

वैदिक साहित्य, विशेषकर ऋग्वेद में प्रेम का विविध रूपान्तर इस बात का परिचायक है कि 'देववाणी' भी प्रेम की मनमोहिनी ध्वनि से शून्य न रह सकी। इसकी एक सौ एक ऋचा में यम-यमी का संवाद इस बात का साक्षी है कि मातृत्व की अभिलाषा अपने तोष के लिए किसी भी बन्धन को स्वीकार नहीं कर सकती, वह भ्रातृत्व की कठोर दीवार को भी तोड़-फोड़कर आगे बढ़ने में हिचकिचाहट का अनुभव नहीं करती।

स्वर्ग लोक की अप्सरा उर्वशी की प्रेम कहानी का बीज भी ऋग्वेद १०।९५ ऋचा में मिलता है। पुरूरवा और उर्वशी के प्रेमाख्यान संस्कृत के ललित साहित्य में इसी के आधार पर प्राप्त होते हैं।

ऋषि 'आर्चनान' के पुत्र 'श्यावाश्व' और राजा 'रथविति' की पुत्री 'मनोरमा' की प्रेम कहानी का आधार भी ऋग्वेद की ५।६१ ऋचा है। इसी प्रकार प्रमद्वरा और 'अग्नि' की प्रेम कथा का आधार ऋग्वेद ही है।

यह अवश्य है कि ऋग्वेद के सूत्रों में प्रेम का यह बीज उतना स्फुटित न था जितना कि वह आगे चलकर 'ब्राह्मण ग्रन्थों', 'भागवत', 'नीतिमंजरी', 'बृहद्देवता' तथा महाभारत आदि ग्रंथों में प्रस्फुटित हुआ।

वैदिक कहानियाँ देवता और मानवी, अप्सरा और मानव, ऋषि और राजकन्या के प्रेम से सम्बन्धित हैं। उदाहरण के लिए उर्वशी और पुरुरवा की प्रेम कहानी हरिवंश पुराण में इस प्रकार मिलती है—

उर्वशी ब्रह्मा के शाप से मनुष्य जन्म को प्राप्त हुई। वह पुरूरवा के अद्वितीय सौंदर्य पर मुग्ध हो गई थी। पुरूरवा के प्रेम याचना करने पर उसने उनका पत्नीत्व स्वीकार तो किया किन्तु यह कह दिया था कि जितने दिन

आप अकामा पत्नी से रत रहेंगे, जितने दिन आप 'संध्या' घृत मात्र भोजन करेंगे और जितने दिन हमारे प्रिय दो मेष शैय्या के समीप बँधे रहेंगे तथा जितने दिन आप मुझे नग्न न दिखाई पड़ेंगे उतने ही दिन आप के यहाँ हमारे दिन भार्या भाव से कटेंगे। इससे अन्यथा होने पर मै शाप से छूट जाऊँगी और पुनः स्वर्ग में पहुँच जाऊँगी। राजा ने उसकी सभी शर्तें स्वीकार कीं इस प्रकार पंचानबे वत्सर बीते।

उर्वशी के चले जाने के कारण गंधर्व उसके लिए चिन्तित रहते थे। एक दिन 'विश्वावसु' नामक गंधर्व प्रयाग में जाकर उर्वशी के मेष चुराकर भागा। अपने मेषों को जाते देख कर उर्वशी ने राजा से उसे छुडाने की प्रार्थना की, किन्तु उस समय वे नग्नावस्था मे लेटे थे। पहले तो वे हिचके पर उर्वशी के बार-बार कहने पर वे उसी प्रकार मेष को लाने के लिए दौड़े। उर्वशी की निगाह उन पर पड़ गई और वह शाप मुक्त होकर स्वर्ग चली गई।

लौटने पर उन्होंने उर्वशी को न पाया इसलिए वे बड़े दुखी हुए। अन्त में उन्होंने उर्वशी को पाने के लिए यज्ञ का आयोजन किया और उन्हीं के द्वारा त्रेधा अग्नि-गार्हपत्य (बार्हस्पत्य), दक्षिणाग्नि और आहवनीय उत्पन्न हुईं जिसके फलस्वरूप देवताओं ने प्रसन्न होकर उर्वशी दे दी।

इसी प्रकार ऋग्वेद में अग्नि कुमारियों का प्रेमी और स्त्रियों का पति कहा गया है किन्तु महाभारत में अग्नि और राजा नील की पुत्री की कथा इस प्रकार है—

"अग्नि एक दिन राजा नील की पुत्री पर आसक्त हो गए। नील राजा के महल में पवित्र अग्नि उसी समय प्रज्वलित होती थी जब स्वयं राजपुत्री की सुरभित साँसें उसे फूकतीं थीं। अन्त में राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अग्नि से कर दिया, जिसके फलस्वरूप अग्नि ने राजा को अजेयता और उस नगरी की बनिताओं को अबाध संयोग सुख का वरदान दिया।"

राजर्षि रथविति की पुत्री तथा ऋषिवर आर्चनान के पुत्र 'श्यावाश्व' की प्रेम गाथा का आधार भी ऋग्वेद ही है जो इस प्रकार है—

"राजर्षि रथविति ने एक दिन अपने यहाँ यज्ञ का आयोजन किया। मंडप में ऋषि आर्चनान अपने पुत्र श्यावाश्व के साथ पधारे। ऋषि कुमार का शरीर तपस्या और ब्रह्मचर्य के कारण देदीप्यमान हो रहा था। यज्ञ के समाप्त होने के समय ऋषि आर्चनान की दृष्टि राजकुमारी मनोरमा पर पड़ी और वे उसके सौंदर्य को देखकर गद्गद हो गए। उनके मन में उसे पुत्र बधू बनाने की अभिलाषा जाग्रत हुई और उन्होंने अपनी इस इच्छा को राजा से कहा। राजा इस

प्रस्ताव से हर्षित हुए किन्तु राजकुमारी की माता की मन्त्रणा के बिना वचन नहीं दिया।

कुमारी की माँ ने, जो बड़ी विदुषी थी इस प्रस्ताव के उत्तर में कहा कि ऋषि कुमार तपस्वी तो है किन्तु ऋषि नहीं, इसलिए कि ऋषि मन्त्रद्रष्टा होता है, जब तक वह ऋषि न हो जायगा मैं इस प्रस्ताव को न स्वीकार करूँगी। अस्तु राजकुमारी और ऋषि कुमार दोनों को इससे पीड़ा पहुँची और कुटी में पहुँचने के उपरान्त श्यावाश्व ने घोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। उनकी कठिन तपस्या से प्रसन्न होकर 'मारुतों' ने उन्हें दर्शन दिये तथा मन्त्रद्रष्टा का वरदान दिया।

अपनी तपस्या सफल होने पर कुमार ने 'रात्रि' द्वारा अपने मन्त्रद्रष्टा होने का वृत्तान्त राजा और राजमाता से कहलवा भेजा तथा स्वयं पिता से आज्ञा लेकर राजधानी म गया। राजर्षि रथविति और उनकी पत्नी ने उसका सत्कार किया तथा अपनी पुत्री मनोरमा का विवाह उसके साथ कर दिया।

उपर्युक्त तीन कहानियों मे देवों, मानवों और ऋषियों के प्रेमाख्यान मिलते हैं। यम-यमी के भाई-बहन के प्रेम के अतिरिक्त दूसरे प्रकार के प्रेम सम्बन्ध का पता भी वैदिक साहित्य में मिलता है।

आगे चलकर उपनिषद् काल मे कितनी ही छोटी बड़ी वर्णनात्मक कहानियाँ जैसे याज्ञवल्क्य और गार्गी, सत्यकाम और जाबालि, अहल्या और इन्द्र की मिलती हैं, फिर महाभारत तथा रामायण एवं बृहत् कथा साहित्य प्रेम कथाओं के साहित्य के अक्षय भण्डार बन गए। महाभारत के 'संभव' पर्व में अर्जुन और सुभद्रा, दुष्यन्त-शकुन्तला, रुरु और प्रमदवरा तथा हिडिम्बा और भीम के प्रेमाख्यान मिलते हैं।

वेद और उपनिषद् की कहानियों में जहाँ एक ओर प्रेम है वहीं दूसरी ओर एक आदर्श या सोख छिपी रहती है। जैसे उर्वशी के प्रेम के कारण ही पुरुरवा जन कल्याण के लिए त्रेधा अग्नि उत्पन्न कर सके, मनोरमा के प्रेम के कारण ही 'श्यावाश्व' को ऋषिपद प्राप्त हो सका, ऐसे ही महाभारत में वर्णित कहानियाँ भी उद्देश्य-शून्य नहीं हैं। हिडिम्बा के कारण ही घटोत्कच का जन्म हुआ और उसके फलस्वरूप अर्जुन की रक्षा कर्ण से सम्भव हो सकी।

पतञ्जलि ने 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' सूत्र की व्याख्या करते हुए, भैमरथी, सुमनोत्तरा और वासवदत्ता नाम के प्रेमाख्यानों का उल्लेख किया है। सुबन्धु की वासवदत्ता प्राप्य है जो उदयन और वासवदत्ता के प्रेमाख्यान से भिन्न है, अनुमानतः हम लोग कह सकते हैं कि पतञ्जलि कथित वासवदत्ता भी ऐसी ही

रही होगी। संस्कृत के ललित साहित्य में प्रेमाख्यानों की कमी नहीं। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' जन्म जन्मान्तर मे चलने वाले प्रेम की चमत्कार पूर्ण गाथा है। कालिदास का कुमारसंभव, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी प्रेमाख्यानों के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

संस्कृत के ललित साहित्य के अतिरिक्त पञ्चतन्त्र, बैताल-पञ्चविंशतकम् और बृहत्कथा भी आख्यानों के अक्षय भण्डार हैं, अन्तर केवल इतना है कि इनमे मानव के स्थान पर पशु-पक्षियों की कहानियों की बहुलता मिलती है या उनका योग मानव की उद्देश्य प्राप्ति में अधिक रहता है। कारण कि ऐसी कहानियों में आश्चर्य तत्वों के द्वारा मनुष्यों को शिक्षा देने की प्रवृत्ति विशेष लक्षित होती है[1]। इस प्रकार की कहानियों में पशु-पक्षियो और देवताओं तथा किन्नरों ने मनुष्य के साथ भाग लिया है, यही नहीं इन्हीं पराप्राकृतिक शक्तियों के कारण ही उद्देश्य की प्राप्ति संभव हो सकी है, क्योंकि मनुष्य दुर्बल-प्राणी है जो बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों के वशीभूत होकर क्रियाशील होता है। अस्तु, उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए इन असाधारण शक्तियों का योग आवश्यक है।

पूर्वी भारत में 'ब्राह्मण युग' के अन्त में दार्शनिक पक्ष की शून्यता ने कतिपय विद्वानों को आर्येतर संस्कृति को प्रभावित करने वाली धार्मिक भाव धारा की खोज करने के लिए प्रेरित किया। विविध विद्वानो ने इस सांस्कृतिक धारा को अनेक नामों से पुकारा है। 'जैकोबी' ने इसे 'पापुलर रेलिजन' कहा, ल्यूमन ने परिव्राजकों को इसका कर्ता बताया, 'गार्बे' ने इसे क्षत्रियों से संबंधित बतया, 'विन्टरनिट्ज' इसे सन्त काव्य (Ascetic Poetry) के नाम से पुकारता है और ए० एन० उपाध्ये ने इसे मागध संस्कृति (Maghda Type) कहा है।

---

1. "Man is an erring animal working in various ways under the tension of internal and external forces. He must be taught to understand rightly and behave properly. This could be achieved to a great extent by exemplary tales in which imaginary figures birds and beasts are introduced as characters, or in which even Gods and semi-historic persons are the actors."

—Sindhi Jain Grantha Mala.
Ed. Hirananda Shastri.
Vol. XVII. Pege 11.

मागधी धर्म का दृष्टिकोण जीवन के प्रति निराशामय है वह द्वैतवाद में विश्वास रखता है तथा आत्मा और परमात्मा के दो स्वरूप मानता है किन्तु वह प्राणिमात्र के प्रति दया और करुणा से ओतप्रोत है साथ ही कर्मवाद और जन्मान्तरवाद में इसकी आस्था है। यही कारण है कि इसका दृष्टिकोण व्यक्ति प्रधान है[1]।

मागधी धर्म के ये विश्वास पाली में बौद्ध जातकों और गाथाओं मे प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। इस बौद्धकालीन साहित्य में शुद्ध प्रेमाख्यान का वह रूप जो संस्कृत के ललित साहित्य में मिलता है नहीं प्राप्त होता, किन्तु वह सर्वथा प्रेमानुभूति से शून्य हो, ऐसी बात नहीं। हाँ उसमें धर्म प्रचार की भावना का समावेश अधिक होने के कारण प्रेम-तत्व गौण पड़ जाता है। अस्तु अपने धर्म-प्रचार के लिए बौद्धों ने भी कहानियों का ही अवलम्बन किया था।

'धम्मपद' के बाद बौद्ध धर्म में 'सुत्तनिपात' की महत्ता मानी जाती है। इन 'सुत्तो' में जहाँ एक ओर धार्मिक उपदेश मिलते हैं वहाँ दूसरी ओर ये काव्य की दृष्टि से भी बडी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इनमे गद्यमय उपदेश के बीच-बीच पद्यमय अंश मिलते हैं इनके अतिरिक्त कुछ रचनाएँ कथोपकथन की शैली में भी मिलती हैं जिनमे कथोपकथन के साथ वर्णनात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है।

पाँचवी शताब्दी में 'थेर' और 'थेरी' गाथाएँ निर्मित हुईं जो भिक्षुओं और भिक्षुणियों के पदों के संकलन हैं। इन्हें विन्टरनिट्ज ने 'सांग आव दि एल्डर' और 'सांग आव दि लेडी एल्डर' के नाम से पुकारा है। भिक्षुओं के गीतों में प्रकृति का चित्रण प्रधान है और भिक्षुणियों के गीतों में जीवन के चित्र निखरे हैं।

---

1 "Maghadan Religion, which was essentially pessimistic in its worldly outlook, metaphysically dualistic ifnot pluralistic animistic and ultra humane in its ethical tenets, temperamentally ascetism undoubtedly accepting the dogma of transmigration and Karma doctrine, owing no racial allegiance to Vedas and Vedic rites, subscribing to the belief of individual perfection and refusing unhesitatingly to accept a creator"

—Sindhi Jain Granth Mala—

Ed. Hiranand Shastri, Vol. XVII, Page 12.

जातकों में बुद्ध के व्यक्तित्व की महानता दर्शाते हुए जन्मान्तरवाद की पुष्टि की गई है। इनमें मनुष्य और पशु-पक्षियों से सम्बन्धित कहानियाँ मिलती हैं, जिनमें पशुवर्ग मानवों से अधिक बुद्धिशाली और योग्य ठहरता है। इनमें पशु पक्षियों के अतिरिक्त गंधर्व, किन्नर, सर्प आदि का भी योग उद्देश्य पूर्ति के लिये कराया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जातकों में आश्चर्य तत्त्व की बहुलता मिलती है।

'अवदान' कहानियाँ जातकों की तरह अतीत और वर्तमान जन्म से सम्बन्धित होती हैं। जातक और अवदान कहानियों में अन्तर केवल इतना ही है कि जातक बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित होते हैं और अवदान कहानियों में किसी 'अर्हत' के जीवन की एक गाथा निम्नांकित रूप में मिलती है—

'जब बुद्ध श्रावस्ती में वास कर रहे थे तब आनन्द नित्य नगर में भिक्षाटन के लिए जाते थे। एक दिन उन्हें प्यास लगी, कुएँ पर उन्होंने एक स्त्री को पानी भरते देखा और उससे जल पीने की इच्छा प्रकट की। उस स्त्री ने अपने को चांडालिनी बताया। छुआछूत का भेद किए बिना आनन्द ने उसके हाथ से जल ग्रहण कर लिया। यह चाडालिनी बाला 'आनद' पर आसक्त हो गई। उसने घर पहुँच कर अपनी माता से सारा हाल कहा और यह भी बताया कि वह उस भिक्षु को प्राप्त किए बिना जीवित नहीं रह सकती। चांडालिनी की माँ अपनी पुत्री की प्राणरक्षा के लिए 'आनन्द' को मंत्रबल से छल कर अपने घर ले आई। प्रकृति (चांडालिनी कन्या) ने बड़ी प्रसन्नता से शय्या तैयार की और 'आनन्द' को उस पर बिठाया किन्तु आत्मपतन के क्षणों के पूर्व ही वह रो पड़ा, इतने में बुद्ध वहाँ आ पहुँचे। बुद्ध के आगमन के साथ चांडालिनी का मंत्र बल क्षीण हो गया और आनन्द स्वस्थ होकर बुद्ध के साथ चल दिए। 'प्रकृति आनन्द के पीछे चलने लगी अन्त में बुद्ध ने प्रकृति को 'आनन्द' से विवाह करने की अनुमति इस शर्त पर दे दी कि वह भिक्षुणी होकर ब्रह्मचर्यमय जीवन व्यतीत करेगी।

जब श्रावस्ती के ब्राह्मणों और नागरिकों ने इसे सुना तब वे बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने बुद्ध से इस असाधारण व्यवहार का कारण पूछा। बुद्ध ने बताया कि एक समय चांडाल राज त्रिशंकु अपने पुत्र शार्दूलकर्ण का विवाह पुष्कर्ण ब्राह्मण की पुत्री से करना चाहता था किन्तु ब्राह्मण ने उसे अस्वीकार कर दिया। इस कारण त्रिशंकु और 'पुष्कर्ण' में जातिप्रथा पर गंभीर शास्त्रार्थ हुआ। अंत में पुष्कर्ण ने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया। पूर्व जन्म में प्रकृति पुष्कर्ण की पुत्री थी बुद्ध त्रिशंकु थे और शार्दूलकर्ण आनन्द था।

कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्ध के समय तक भारतीय साहित्य में गद्य तथा पद्यमय कितने ही वर्णनात्मक प्रेमाख्यान काव्य थे जो जीवन के प्रत्येक अंग से सम्बन्धित थे। बौद्धों ने इन आख्यानों को अपने धर्म-प्रचार की दृष्टि से रंग कर नए रूप में जनता के सामने रखा।

बौद्धों की साधारण अन्योक्तिगर्भित या प्रतीकात्मक कहानियाँ जैनियों के द्वारा सर्वाङ्ग रूपकों में प्रस्फुटित हुईं, जिनमें पदे-पदे नैतिक उपदेश मिलते हैं। इन रूपकों के अतिरिक्त जैनियों की 'धर्म' कथाओं में प्रेमाख्यानों का रूप बौद्धों की अवदान कहानियों से अधिक निखरा है। भविसयत्तकहा (भविष्यद्त्त कथा), 'जसहर चरिउ' आदि चरित-काव्य धर्मकथा होते हुए भी 'प्रेमाख्यानों' की कोटि मे आ जाते हैं।

इस प्रकार भाषा की दृष्टि से ये प्रेमाख्यान संस्कृत और अपभ्रंश में मिलते हैं जिनका मूल स्रोत ऋग्वेद में निहित है। ऋग्वेद की यह प्रेम परम्परा, उपनिषद्, पुराण, नीतिमंजरी, भागवत, वेदार्थ दीपिका, बृहद्देवता आदि संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों में प्रस्फुटित हुई और आगे चल कर संस्कृत के ललित साहित्य में मुखरित होते हुए कालिदास के द्वारा चरमोत्कर्ष पर पहुँची। काल के साथ साथ उपनिषदों का जन्मान्तरवाद, ऐहिक जीवन के प्रति उदासीनता की भावना बौद्ध जातको और अवदान कहानियों, एवं उनके अन्य आख्यानों में स्फुटित हुए। जीवन के प्रति नैराश्यपूर्ण दृष्टिकोण के कारण इस साहित्य में प्रेम का मुखरित रूप नहीं मिलता फिर भी वह कहीं-कहीं झाँकता अवश्य दिखाई पड़ता है, उदाहरणार्थ 'शार्दूलकर्ण, अवदान' कहानी में। इसके बाद जैन धर्मगाथाओं में प्रेम का पक्ष अधिक प्रबल है, किन्तु ऐन्द्रिय सुख की ओर बीतराग होने के कारण इन जैन मुनियों ने प्रेमतत्त्व को सत्य, अहिंसा, अस्तेय और ब्रह्मचर्य के आवरण में परिवेष्टित कर दिया है।

जैनियों के चरित काव्यों और पुराणों में साहित्यिक सौन्दर्य के साथ साथ ब्राह्मण और बौद्ध गाथाओं की कथाबन्ध-सम्बन्धी विशेषताएँ भी मिलती हैं।

शैली, अलंकार, छन्द योजना एवं सांस्कृतिक देन की दृष्टि से हिन्दी साहित्य अपभ्रंश का बडा ऋणी है। कारण कि, अपभ्रंश के उपरान्त ही भारत की अन्य भाषायें विकसित हुईं। अपभ्रंश का महत्त्व उससे विकसित होने वाली परवर्ती भाषाओं के रूपात्मक विकास तक ही सीमित नहीं है प्रत्युत हिन्दी आदि भाषाओं को उसकी भाव परम्परा भी उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त हुई और उसे अनुप्राणित करती रही। इसलिए यदि उत्तरकालीन अपभ्रंश युग को विशेषतया हिन्दी का सन्धिकाल कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी।

हिन्दी साहित्य के आख्यानक काव्यों का मूल स्रोत अपभ्रंश के चरित काव्यों की परम्परा में निहित है, अतः हिन्दी के आख्यानक काव्यों के स्वरूप को ठीक ठीक समझने के लिए अपभ्रंश साहित्य और तत्कालीन सांस्कृतिक स्थिति का सम्यक् ज्ञान आवश्यक है। अगले अध्याय में अपभ्रंश साहित्य का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय इसीलिए दिया जा रहा है।

हिन्दी साहित्य का संधिकाल

अपभ्रंश साहित्य

अपभ्रंश भाषा की रचनाएँ सातवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक मिलती हैं। किन्तु अपभ्रंश का वैभव काल दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक रहा। अपभ्रंश पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में गुजरात और सिंध तक तथा दक्षिण में मान्यखेट से लेकर उत्तर में कन्नौज तक लिखा और पढ़ा जाता था। इतने विस्तृत भू-भाग के साहित्य का विविध भाव युक्त होना स्वाभाविक ही था।

सबसे पहले अपभ्रंश का सिद्ध साहित्य मिलता है। महा महोपाध्याय डा० हरप्रसाद शास्त्री ने 'कण्ह' और 'सरह' की रचनाओं का 'दोहा कोष' प्रकाशित किया और फिर 'बौद्ध गान श्रो दोहा' निकला। डा० जी० वी० तगारे ने इन रचनाओं को पूर्वी अपभ्रंश के अन्तर्गत रखा है। इस संग्रह में कण्ह, कृष्णाचार्य, कनिफनाथ, 'कानूपा' या कण्हपा की रहस्यमयी अनुभूतियाँ बत्तीस दोहों में मिलती है।

इन काव्यों में अधिकांश उपदेशात्मक सूक्तियाँ हैं। गुरु माहात्म्य, रूढ़ि-खंडन, जाति भेद पर प्रहार, वेद-प्रमाण की असारता, स्वसंवेद्य ज्ञान का बखान, सहज रस का गुण-गान और शून्य संचरण का संकेत यही सब उनकी कविता में प्रायः वर्णित है। इनके यहाँ 'डाकिनी', 'डोमिन', 'ब्राह्मणी' आदि का प्रयोग गुह्य साधना के प्रतीक स्वरूप हुआ है।

सिद्ध युग में तन्त्र, मन्त्र, भैरवीचक्र, भूतप्रेत, जादू-मन्त्र, वाम-मार्ग का बड़ा ही प्राबल्य था। वाममार्गियों की पञ्च मकार की उपासना में मैथुन का विशेष स्थान है। निर्वाण-प्राप्ति के लिए साधक और शक्ति का समागम परमावश्यक है। शक्ति का प्रतीक है स्त्री और साधक का पुरुष, परोक्ष, शक्ति से संभूत वीर (साधक) या नायक अपने समुदाय की शक्ति से जो उसकी पत्नी नहीं है विशेष संस्कार के द्वारा अपनी पत्नी बनाकर संभोग कर सकता है, जिससे उसे परमसुख, महासुख, अथवा पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है।[1]

---

1. "It is true that a hero (Vira) i. e. he who has secret powers and is suited to be a Sadahk or sorcer is entitled to unite himself in the circle to a 'Sakti" who is not his

इस युग में प्रपंच-सार-तन्त्र की रचना हुई जिसके प्रणेता शंकर कहे जाते हैं। इसके अनुसार मानव शरीर, संसार का एक संक्षिप्त सस्करण है जिसमें सैकड़ों नदियाँ बहती हैं और उनमें एक अज्ञात शक्ति निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। इन्हीं (नदियों) नाड़ियों से छः चक्र सम्बन्धित हैं जो एक के ऊपर एक स्थित हैं। इन चक्रों में सिद्धि निहित है। इनमें सबसे नीचे वाले चक्र (मूलाधार) में ब्रह्म का स्थान है जो लिंग के रूप में अवस्थित है। इस लिंग के चारों ओर कुंडलिनी शक्ति लिपटी रहती है—यही कुंडलनी शक्ति साधक के द्वारा योग और साधना से जाग्रत करके ऊर्द्धतर कमल में पहुँचाई जाती है और साधक मोक्ष का भागी होता है।

इस साधना पद्धति में संभोग की महत्ता का वर्णन अध्याय नौ की तेइसवीं धारा में इस प्रकार मिलता है—साधक की साधना और मन्त्र से देवताओं, दानवों एवम् किन्नरों आदि की स्त्रियाँ उसके पास प्रेम से उन्मत्त, परिहृत वसना, आभूषण रहित बिखरी केश राशि में अपने शरीर को परिवेष्ठित किए, मदनाध, काम से पीड़ित प्रकंपित दौड़ी चली आती हैं। स्वेदकण उनकी जघाओं और 'उरोजों' पर मोती की आभा की तरह चमकते होते हैं। उनके अधरों पर वासना का नर्तन होता है अंग अंग काम समुद्र में डूबा होता है। अट्ठारहवें अध्याय में मन्त्र और ध्यान के द्वारा कामदेव की पूजा विधि बताई गई है और स्त्री पुरुष का संयोग अहंकार और बुद्धि के संयोग एवं यज्ञ का प्रतीक बताया गया है।

---

wife. He has only to make her his wife, by a ceremony prescribed especially for this purpose."

—Winternitz : History of Indian Literature :
Vol. I, page 595.

1. "... One of the more important texts of the Tantras is the Prapancasara—Tantra which is ascribed to the Philosopher Sankar. According to the general teaching of the Tantra is the human organism is a microcosm, a miniature copy of the universe and contains countless canals (Nadi) through which some secret power flows through, there are six great centres lying one above the other which are also furnished with occult powers. The lowest and the most important of these centres contains the 'Brahman' in the the form of a Linga and coiled round

तांत्रिकों के साहित्य में तंत्र और मंत्र को सिद्ध करने की क्रियाएँ बताई गई है। बौद्धों में प्रेम का देवता 'वज्रायन' माना गया है जो 'मंजुसूरि' का अवतार कहा जाता है। उनसठवीं और साठवीं 'साधनाओं' में स्त्री को वश करने की क्रिया का उल्लेख है। इन साधनाओं को हम जादू की पुस्तकें कह सकते हैं। इनको सिद्ध करने के लिए यौगिक क्रियाओं, प्रेम, दया आत्मनिवेदन और ध्यान की आवश्यकता पड़ती है। नागार्जुन इन साधनाओं का रचयिता माना गया है।

इस प्रकार वाम मार्गी साधना का प्रचार और प्रभाव इतना बढ़ा कि वह केवल धार्मिक रचनाओं में ही सीमित न रह कर साहित्यिक रचनाओं में भी परिलक्षित होने लगा। निर्गुन संतों की 'बानी' में अभिव्यजित गुण और रहस्यात्मक साधना में, परवर्ती कृष्णोपासक तथा रामोपासक महात्माओं की रागानुगा भक्ति में, प्रेममार्गी सूफी संतो की प्रेम की पीर में और हठयोगियों के रूपकों तथा क्षुद्र ऐहिक आख्यानों में मिलने वाले कामोत्तेजन पूर्ण अनावृत शृङ्गार वर्णन

---

this Linga, like a serpant liest the Sakti called Kundalini." This Kundalini is forced up into highest centre by Sadhna and Yoga and then salvation is attained .... The prominent part played in the whole of this cult by the erotic element is exemplified in Chapter IX 23 ff, where it is described how the wives of the God's demons, demigods compelled by "Mantra" come to the sorcerer, scattering their ornaments in the intoxication of love, letteing their drapperies slip down, enveloping their forms, in the net of their flying tressess, their very limb quivering with intolerable torments of love, the drops of sweat falling like pearls over their thighs bosom and armpits... torn by the arrow of love God, their bodies immersed in the ocean of the passion of love, their lips tossed by the tempest of their deep drawn breadth etc. Chapter XVIII teaches the Mantras and Dhyana for the worship of the love God and his Sakti's and the Union of man and woman is presented as a mystical union of the 'ego' with knowledge and as holyl act of sacrifice."

—History of Indian Literature :
By Winternitz,
Vol. I, Page 602.

में, इन सब में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूप में इसी साहित्य की गूँज मिलती है। यहाँ पर यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि हिन्दी के प्रेमाख्यानों की परंपरा ने अपने को केवल शृङ्गार के वर्णन तक ही सीमित नहीं रखा प्रत्युत हठयोग आदि के भारतीय और सूफियों की अन्योक्तिपरक परम्पराओं को भी अपनाकर विविधता और अनेकरूपता प्रदान की।

इन सिद्धों की रचनाओं के कुछ आगे पीछे पश्चिमी भारत में जैन मुनि भी कुछ इसी प्रकार का धार्मिक साहित्य प्रस्तुत कर रहे थे। इन रचनाओं में जोइन्द्र (योगीन्दु) का परमात्मप्रकाश तथा योगसार सबसे प्राचीन है। डा० उपाध्ये ने योगीन्दु को ईसा को छठीं शताब्दी का बतलाया है। परमात्म प्रकाश जैनमत के आध्यात्मिक तत्व ज्ञान का ग्रंथ है। इनमें दो अधिकार हैं एक में एक-सौ-तेईस और दूसरे में दो-सौ-चौबीस दूहे हैं। योगीन्दु परमात्मा की एक निश्चित रूप रेखा स्वीकार करते हैं, किन्तु उसे एक निश्चित नाम से पुकारने पर जोर नहीं देते। वे उसे जिन, ब्रह्म, शान्त, शिव, बुद्ध आदि नाम से पुकारते हैं। ऐसी रचनाओं से 'साव्यधम्य दोहा' और 'पाहुड़ दोहा' का नाम भी आता है। पाहुड दोहा के रचयिता मुनिराम सिंह कहे जाते हैं जो राजपूताना के रहने वाले थे। इसका रचनाकाल दशवीं शती माना जाता है। इसमें अनेक सुन्दर सूक्तियाँ मिलती हैं।

अपभ्रंश के इन सूक्तिबहुल धर्म प्रचारक नीरस काव्य ग्रंथों के बीच वीर और शृंगार की ललित रचनाएँ भी फुटकल रूप में मिलती है। ये रचनाएँ अधिकतर तत्कालीन लोक गीतों के अंश मालूम होती हैं जो सामान्य जन के ऐहिक जीवन के रस-सिक्त क्षणों को प्रतिबिम्बित करती हैं।

हेमचन्द्र के व्याकरण में लगभग सवा सौ पद्य इस प्रकार के हैं जो वीर, शृंगार तथा मार्मिक अन्योक्ति द्वारा ऐहिक जीवन की सरसता प्रकट करते हैं। हेमचन्द्र द्वारा प्रस्तुत उदाहरणों में जो मुंज और मृणालवती के सम्बन्ध में दूहे मिलते हैं वे किसी प्रचलित प्रेम कथा के अंश ही हैं।

इन मुक्तक पद्यों में तलवार की चमक, हाथियो से लड़ने का साहस और हँसते-हँसते मैदान में जूझ मरने की क्रीड़ा के साथ-साथ शृंगार-पूर्ण वीर-रस की अद्भुत सृष्टि मिलती है।

युद्ध के मैदान में शशिलेखा की भाँति चमकती हुई तलवार नायिका के हृदय में उल्लास उत्पन्न करती है, भय नहीं इसीलिए वे कन्याएँ ऐसे पति की याचना करती हैं जो इस जन्म और उस जन्म में भी निरंकुश मत्त गजों का हँसते हँसते पीछा करे। अपने पति की वीर गति पर नारी विलाप नहीं करती वरन्

उसका मस्तक गर्व से उन्नत हो जाता है, वह कह उठती है 'भला हुआ बहिन कि मेरे कांत युद्ध में मारे गए, यदि वे भाग कर घर आते तो मैं समवयस्काओं के सामने लजाती[१] ।

इनमें वर्णित संयोग सुख नितान्त निश्छल, सीधा सादा और भोलेभाले प्रेम का परिचायक है। प्रगाढ़ आलिंगन की कल्पना करती हुई नायिका कहती है कि यदि प्रिय को मैं किसी प्रकार पा सकूँ तो ऐसी अकृत क्रीडा करूँ जिससे नए 'सराव' (मिट्टी के बर्तन) में पानी की तरह उसके सर्वाङ्ग में प्रवेश कर जाऊँ[२] ।

ऐसे ही विरहणी पपीहे की रट पर झुँझला कर कहती है, 'निर्दय पापी बार बार बोलने से क्या लाभ ? विमल जल से सागर भर गया फिर भी एक बार तुझे प्राप्त न हो सकी[3] ।

कहने का तात्पय यह है कि इन दोहों में वीर एवं• शृंगार रस की गंगा-जमुनी देखने को मिलती है ।

इन्हीं मुक्तक दोहों में अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) का 'संदेश रासक' मिलता है[४] । इस रासक में एक वियोगिनि की दो सौ छन्दों में विरह गाथा मिलती है । विरह निवेदन के बीच कवि ने षट्ऋतु वर्णन, तथा अन्य ऋतुओं के बीच विरहिणी के भावों का उत्कर्ष दिखाया है यह काव्य अपभ्रंश में आख्यानक काव्य की परम्परा का द्योतक है । यद्यपि यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस रचना में कोई बड़ी कथा न होकर कथा का बीज रूप ही मिलता है । इस रासक का अन्त भी परम्परा की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है, कारण कि परवर्ती हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों में इसी परिपाटी का अनुसरण दिखाई पड़ता है । इस रासक में जब विरहिणी का सन्देश लेकर पथिक चल देता है तब उसी समय अचानक दक्षिण दिशा से आता हुआ उसका नायक दिखाई पड़ता है और वह हर्षातिरेक से खिल उठती है । इसी समय कवि ग्रन्थ समाप्त करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार उस बाला की आकांक्षा अचानक पूरी हुई उसी

---

१. भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि! महारा कन्तु ।
लज्जेजंतु वयसिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु ॥

२. जइ केवइ पावीसु, पिउ, अकिया कुड्ड करीसु ।
पाणीउ नवइ सराव जिंव सव्वंगे पइसीसु ॥

३. बप्पीहा कइ बोल्लिएण निग्घिण वारइवार ।
सायरि भरिअइ विमल जलहि न एवकइ धार ॥

४. इसका रचना काल सं० १००० कहा जाता है किन्तु अगरचन्द नाहटा ने इसका रचना काल सं० १४०० माना है ।

भाँति इस काव्य के पढ़ने वाले की भी हो और अनादि और अनन्त शक्ति की जय हो[1]। कहने का तात्पर्य यह है कि कथा के माहात्म्य वर्णन की प्रथा अप-भ्रंश कालीन साहित्य में मिलती है।

इस साहित्य की दूसरी शाखा खण्ड काव्यों की है जिनमें 'स्तुति-संलाप' छोटे छोटे आख्यान पाए जाते हैं। ऐसे कुछ सन्दर्भ सोमप्रभकृत कुमारपाल-प्रतिबोध (सम्वत् १२४१) में प्राप्त होते हैं।

कुमारपाल प्रतिबोध में पाँच प्रस्ताव हैं जिनमें पाप और पुण्य का उपदेश देने वाली कथाएँ मिलती है। जैसे 'नल कथा' में द्यूत क्रीडा के अवगुण दिखाए गए हैं, प्रद्योत कथा में व्यभिचार के प्रति शिक्षा दी गई है. 'तारा' और रुक्मिणी कथाओं में विश्वास पात्रता और सचाई के उदाहरण रखे गए हैं। यह ग्रन्थ गद्य-पद्य की चंपू शैली में मिलता है ।

'जीव मन: करणसंलाप कथा' एक छोटासा रूपक काव्य है जिसका कथानक इस प्रकार है। 'देह नामक नगर है जिसमें आयु कर्म का प्रकार खिंचा है। वहाँ सुख, दुख, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक आदि बहुत से लोग निवास करते हैं। आत्माराम इस नगर के राजा हैं, जिनकी पट्टरानी है बुद्धि देवी। उनका प्रधान मंत्री मन है जिसके नीचे पाँच प्रधान कर्मचारी (पाँच इन्द्रियाँ) काम करते हैं।

एक बार मन और आत्मा में अर्थात् मन्त्री और राजा में संवाद छिड़ जाता है। मन जीव की निष्फलता बताता है और कहता है कि इसी के कारण संसार में सारा अन्याय और बखेड़ा फैला है। वह पाँचों कर्माध्यक्षों की भी शिकायत करता है। राजा अपने विविध अनुभवों को सुनाकर उनमें समन्वय स्थापित करने का मन्त्र बताकर संवाद समाप्त कर देता है।

---

१. अह तुरिय इत्थंतरिय दिसि दक्खिण तिणि जाम दरसिय ।
आसन्न पहावरिउ सण्णहु तिणि झत्ति हरसिय।
जेम अचिंतिउ कज्जु तसु सिद्धु खणिद्ध महन्तु ।
तेम पढत सुणंत यह जयउ अणाइ अणंतु ।
—'संदेश रासक'

२. अपभ्रंश साहित्य—डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी
ज्ञान शिखा लखनऊ विश्वविद्यालय, अक्टूबर १९५१ पृ० ८१ ।

३. अपभ्रंश भाषा और साहित्य—प्रो० हीरालाल जैन
हिन्दी नागरी प्रचारिणी पत्रिका संवत् २००२ वर्ष ५०
अंक ३—४ पृ० ११० ।

इसी प्रकार हरिदेव कृत 'मयण-पराजय' भी दो संधियों का रूपक काव्य है जिसमें कामदेव राजा, मोह मंत्री और अहंकार अज्ञान आदि सेनापतियों सहित भावनगर में राज्य करते हैं। चरित्रपुर के राजा जिनराज इनके शत्रु हैं क्योंकि ये 'मुक्ति-अंगना' को ब्याहना चाहते हैं। काम ने राजद्वेष नामक दूत द्वारा जिनराज के पास यह सदेश भेजा कि या तो आप मुक्ति-अंगना से विवाह का विचार छोड़ दें और अपने तीन रत्न-दर्शन, ज्ञान और चरित्र, काम के सुपुर्द कर दें या युद्ध के लिए तैयार हो जायँ। जिनराज ने कामदेव से लोहा लेना ही स्वीकार किया और अन्त में उन्हें बुरी तरह परास्त कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति की[1]।

उपर्युक्त रचनाएँ अपभ्रंश गीत काव्य के थोड़े से सुन्दर उदाहरण हैं। इन रचनाओं की विशेषता यह है कि इन गीतों का विषय प्रायः शृंगार नहीं भक्ति है। प्रिया और प्रियतम का चिंतन नहीं महापुरुषों की कीर्ति का स्मरण है।

अपभ्रंश साहित्य के सबसे पुष्ट अंग हैं पुराण और चरित ग्रन्थ। पुराणों में एक महापुरुष की अपेक्षा अनेक महापुरुषों की जीवन गाथा को छंदो-बद्ध किया गया है। चरित काव्य प्रेमाख्यानक के ढंग के काव्य हैं। बहुत संभव तो यही प्रतीत होता है कि इस प्रकार की कहानियाँ प्रचलित थीं या प्रचलित कथाओं के ढंग पर रचयिताओं ने स्वयं कल्पित कीं। इन प्रेम की मधुर कथाओं को उपदेश और धर्मतत्वों से मिला कर इनके रचयिताओं ने इन्हें धर्म-कथा बना दिया है।

अपभ्रंश के ये प्रबन्ध निम्नलिखित हैं—

१—पउम चरिउ (पद्मनी चरित)
२—जसहर चरिउ (जसहर-यशोधर चरित)
३—णायकुमार चरिउ
४—करकण्डु चरिउ
५—सनत्कुमार चरिउ
६—सुपासणाह चरिउ
७—नैमिनाह चरिउ
८—कुमारपाल चरित
९—भविसयत्त कहा (भविष्यद्दत्त कथा)
१०—महापुराण

---

1. नागरी प्रचारणी पत्रिका सं० २००२ वर्ष ५० अंक ३-४ पृ० १२१।

जसहर चरिउ, भविसत कहा, सुदर्शन चरित्र, करकण्डु चरित, नागकुमार चरित, सबमें एक प्रेम कथा अवश्य है। इस प्रेम का प्रारम्भ प्रायः कुछ समान रूप से ही हुआ है जैसे गुण वर्णन सुनकर, चित्र देख कर या परस्पर दर्शन से ही इसका प्रारम्भ होता है। 'भविसयत्त कहा' और सुदर्शन चरित में परस्पर दर्शन से, करकण्डु चरित में चित्रदर्शन से प्रेम का प्रारम्भ होता है।

प्रेम के प्रारम्भ के बाद सभी काव्यों में नायक, नायिका का विवाह कर दिया जाता है। इस सम्बन्ध में थोड़ा बहुत प्रयत्न नायक को करना ही पड़ता है। पद्मावती तथा करकण्डु चरित के नायकों को सिंहल की यात्राएँ करनी पड़ी थीं।

इन सब काव्यों में प्रायः एक एक प्रतिनायक अवश्य मिलता है। भविष्यद्त्त कथा में भविष्यद्त्त की पत्नी को बन्धुदत्त लेकर चल देता है। धर्म की विजय दिखाने के लिये कवियों ने आश्चर्य तत्व की सहायता से काव्य न्याय का निर्वाह किया है। जैसे—जिन मन्दिर में पूर्वजन्म के सम्बन्धानुकूल एक देव प्रकट होकर भविष्यद्त्त को गजपुर पहुँचा देता है। इसी प्रकार करकण्डु चरिउ में दक्षिण पथ में उसकी रानी मदनवती हर ली जाती है परन्तु एक सुर द्वारा उसके पुन: प्राप्त होने का आश्वासन मिलता है।

इन आश्चर्य तत्वों में यक्ष, गन्धर्व, मुनि, स्वप्न आदि विशेषरूप से पाए जाते हैं। प्रेम को जन्मान्तर का सम्बन्ध सिद्ध करने का भी प्रयत्न लक्षित होता है। मधुमालती में मनोहर मधुमालती के प्रति अपने प्रेम को जन्मजन्मान्तर का बताता है और कथानक के अन्त में मुनि उत्पन्न होकर पात्रों को उनके पूर्व जन्म की कथा सुनाते हैं जिनके कारण उन्हें विराग उत्पन्न होता है और वे संन्यास ले लेते हैं।

✓जैनाचार्यों ने इन कथाओं के द्वारा अपने धार्मिक पक्ष की पुष्टि करनी चाही थी इसीलिए प्रत्येक चरित काव्य में धार्मिक उपदेश आदि मिलते हैं। अगर इन प्रसंगों को निकाल दिया जाए तो वे शुद्ध प्रेमाख्यान रह जाते हैं।

अपभ्रंश के चरित काव्यों में मंगलाचरण, देश-नगर तथा राजा-रानी के रनिवास के वर्णन बड़े सरस होते हैं। इन काव्यों मे 'अडिल्ल', रड्डा, पंभटिका छन्द विशेष प्रयुक्त हुए हैं। इन छन्दों की कुछ पंक्तियाँ रखकर एक घत्ता जोड़कर एक कड़वक पूरा होता है कभी कभी कड़वक के प्रारम्भ में हेला, दुवई, वस्तु आदि छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं, इनमें प्रायः चतुष्पदी वर्गों के छन्दों का प्रयोग किया गया है। ऐसे लगभग दस पन्द्रह कड़वकों का एक अध्याय होता है जिसे सन्धि कहते हैं। सन्धि के आदि में कहीं कहीं एक ध्रुवक छन्द रहता है, वर्ण्य-विषय और भाव के अनुसार बीच बीच में छन्दों में प्रचुर परिवर्तन भी

होते हैं। काव्य, गुण, अलङ्कार और रीति सम्बन्धी वे सभी लक्षण इनमें मिलते हैं जो संस्कृत महाकाव्यों में पाए जाते हैं।

इन छोटे काव्यों के अतिरिक्त पुराणों की रचना महाकाव्यों की तरह हुई है। स्वयंभू की रामायण नब्बे सन्धियों का विशाल महाकाव्य है जिसका विभाजन कवि ने पाँच काण्डों में किया है जैसे विद्याधर काण्ड, अयोध्या काण्ड, सुन्दर काण्ड, युद्ध काण्ड तथा उत्तर काण्ड।

इसकी रचना कवि ने आत्मसुख के लिए की थी। प्रारम्भ में कवि आत्म-निवेदन करता हुआ कहता है कि 'हे बन्धुजन स्वयंभू तुम्हारी विनय करता है कि मेरे समान कुकवि कोई नहीं है। न तो मैं व्याकरण जानता हूँ और न वृत्ति सूत्र आदि का व्याख्यान ही करता हूँ।'[1] फिर उन्होंने अपनी राम कथा को सरिता के रूप में समझाया है—उदाहरणार्थ,

'वर्द्धमान के मुख रूपी पर्वत से निकली हुई यह क्रमागत राम कथा नदी है। अक्षरों का समुदाय ही मनोहर जल समूह है। सुन्दर अलंकार और छन्द मत्स्यों के समूह हैं। दीर्घ समास ही वक्र प्रवाह है, संस्कृत तथा प्राकृत अलकृत पुलिन है। देशी भाषा दोनों उज्वल तट है, कवि के दुष्कर सघन शब्द ही शिलाएँ हैं। अर्थ बहुलता ही तरंगे हैं तथा आश्वासक (सर्ग) सरोवर हैं जिनमें प्रवेश करने के लिए तीर्थ (सीढ़ी) है यह राम कथा सरिता इस प्रकार शोभायमान है।

इसमें सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण तथा नगर और राजगृह का वर्णन बड़ा मनोहर मिलता है। राहुल जी के शब्दों में 'सुन्दरियों' के सामूहिक सौन्दर्य के चित्रण में स्वयंभू अपना सानी नहीं रखते। रनिवास के आमोद-प्रमोद का चित्रण बड़ा ही सजीव हुआ है। अयोध्या तथा रावण के रनिवास का विलासपूर्ण वर्णन किया गया है और जल क्रीड़ा के आमोद-प्रमोदमय जीवन को भी बारीक तूलिका से उतारा गया है।' इसके अतिरिक्त स्वयंभू ने विविध देशों की सुन्दरियों के देशगत वैशिष्ट, उनके रूप और स्वभाव का भी चित्रण किया है। एक ओर यदि युद्ध का भयंकर वर्णन है तो दूसरी ओर प्रेम की अनेक मनोदशाओं का भी उद्घाटन किया गया है, विशेषतः राम-सीता-सम्बन्ध

---

१. बहुयण सयभु वहं विराणवह। मइ सरिसउ अराण णहि कुकई॥
वायंरणु कयाइण जाणियउ। णउ वित्ति सुत वक्खनियउ॥

२, अपभ्रंश साहित्य का इतिहास—
—नामवर सिंह, पृष्ठ १७१।

को लेकर। करुण रस में तो वे वाल्मीकि के समकक्ष जा बैठते हैं[१]।

णायकुमार और जसहर चरिउ के रचयिता पुष्पदंत ने अपने महापुराण में काव्य-सम्बन्धी नवरस, नायक-नायिका भेद आदि का भी संयोजन किया है, जैसे श्रीमती श्रुता का सौन्दर्य वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उनकी कटि पयोधर के भार तथा चिन्ता से दबी जाती थी। कहीं टूट न जाए इस-लिए रोमावलि के व्याज उसे रोकने के लिए खंभा लगाया गया है[२]।

इसी प्रकार उरोजों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है नीले मुँह वाले उनके दोनों कुच कुम्भ बड़े ही शोभा दे रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कामरस से पूर्ण घड़े पर नीलम पत्थर की मुहर कर दी गई है[३]।

रूपकादि अलंकारों की शोभा भी देखने योग्य है। अध्यात्मशास्त्र का तत्व समझकर आनन्द पानेवालों की मनोदशा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जैसे शरत्काल में नदी के तट पर हंस-पत्नी परमानन्द का अनुभव करती है वैसे ही मुमुक्षुजन अध्यात्मशास्त्र का तत्व समझ कर आनन्द-समुद्र में गोते लगाते है[४]।

इस प्रकार अपभ्रंश भाषा की सबसे प्राचीन काव्य-रचना दूहा छन्द में हुई। दूहा छन्द में भी दो प्रकार की रचनाएँ पाई जाती है जिनमें एक का उद्देश्य ऐहिक और दूसरे का आमुष्मिक है।

ऐहिक दोहे शृंगार करुण तथा वीर रस से पूर्ण हैं। अब्दुर्रहमान का 'संदेश रासक' इसी कोटि के काव्य का विकसित रूप है।

---

१. जैन अपभ्रंश रामायण—
विश्वभारती पत्रिका खंड ५ अंक ४ पृष्ठ ५८६-६१
—अक्टूबर—दिसम्बर १६४६।

२. मध्यं स्तनभारा क्रांति चिंतये वत्तातानवम्।
रोमावलिच्छलेनास्या दधेत्वष्टम्भयविष्टकम्॥
—जैन सिद्धांत भास्कर।

३. आनीलचूचकौ तस्याः कुचौ विरेजतु।
पूर्णौ कामरसस्येव नीलरत्नाभिमुद्रितो॥
—जैन सिद्धांत भास्कर।

४. यथा शरदन्नदी तीर पुलिनं हंसकामिनी।
भव्यलिस्तथाध्यात्मशास्त्र प्रमोदते॥
इस पुराण का परिचय जैन सिद्धांत भास्कर भाग १ जुलाई-सितम्बर १६१२ पृ० १८।

आमुष्मिक दोहों में प्रायः अध्यात्मचिंतन, धार्मिक उपदेश की प्रधानता के साथ-साथ वाममार्गी प्रवृत्ति और उसकी साधना पद्धति का परिचय मिलता है।

खंड काव्यों में स्तुति, संलाप, छोटे-छोटे आख्यान एवं रूपक काव्य पाए जाते हैं जिनमें आध्यात्मिकता का बाहुल्य और लौकिकता का साधारणतः बहिष्कार परिलक्षित होता है।

पुराणों और चरित काव्यों में आदर्श चरित्रों का निर्माण प्रणेता का लक्ष्य होता था, इसलिए लौकिक गाथाओं में पारलौकिकता का संकेत इनमें विशेष रूप से संयोजित किया गया है। इस कोटिकी रचनाओं का महत्व छंद विधान, कथाबन्ध सम्बन्धी परम्परा और अलंकार की दृष्टि से बड़े महत्व का ठहरता है, क्योंकि परवर्ती हिन्दी आख्यान काव्यों में दोहा, चौपाई, अडिल्ला, पज्झटिका आदि छन्दो का प्रयोग इन्हीं चरित काव्यों की परम्परा के अनुसरण में किया गया है।

कथाबन्ध की दृष्टि से भी अपभ्रंश के चरित काव्यों में कतिपय रूढ़ियों का अनुसरण किया जाता था जैसे, प्रेम का प्रारम्भ प्रायः गुण-श्रवण, चित्रदर्शन अथवा परस्पर दर्शन से होता था। तदुपरान्त नायक को अपने प्रिय पात्र की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील अंकित किया गया है। इस प्रयत्न में प्रतिनायक अथवा परस्पर दर्शन स होता था। तदुपरान्त नायक को अपने प्रिय पात्र की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील अंकित किया गया है। इस प्रयत्न में प्रतिनायक अथवा किसी दैवी शक्ति के कारण कठिनाइयाँ पड़ती थीं किन्तु आधिदैवी शक्तियो—राक्षस, अप्सरा, विद्याधर आदि—के अवतार एवम् सहयोग से नायक की कठिनाइयों का शमन होता था और नायक को अपने प्रिय पात्र की प्राप्ति होती थी।

किन्हीं लौकिक कथाओं में आध्यात्मिकता का संकेत भी मिलता है कारण कि जैनियों ने इन कथाओं का निर्माण अपने धर्म प्रचार के लिए किया था और ये कथाएं जैसे 'सूर्य पंचमी' आदि व्रत के माहात्म्य के दृष्टान्त स्वरूप रची गई थीं। शुद्ध रूपक काव्यों के प्रकार भी इसी काल में प्राप्त होते हैं जो जैनियों द्वारा प्रणीत हैं।

कहने का तात्पर्य है कि अपभ्रंश कालीन तांत्रिक साहित्य और जैनियों के कथा साहित्य तथा रूपकों ने परवर्ती हिन्दी आख्यानों की रचना पद्धति और विषय परक रूढ़ियों की ऐसी पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी जिसे हिन्दुओं और मुसलमानों ने आगे चलकर लगभग समान रूप से अपनाया। अपभ्रंश काव्य की उपर्युक्त प्रवृत्तियों का हिन्दू प्रेमाख्यानकों पर जो व्यापक प्रभाव पड़ा है, उसका वर्णन आगे के अध्यायों में अधिक विस्तार से किया जायगा।

———

हिन्दी के प्रेमाख्यानकों का विकास

पिछले पृष्ठों में भारतीय कथा साहित्य की विशेषताओं तथा सिद्ध और जैन साहित्य के साहित्यिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों की विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि लौकिक कहानियों में धार्मिक संकेत की प्रथा प्राचीन है। संवत् ७०० से १००० तक जो भी साहित्य उपलब्ध हो सका है वह जैन मन्दिरों और बौद्ध विहारों में सुरक्षित था। इस साहित्य से यह बात भी निर्विवाद सिद्ध होती है कि हिन्दी आख्यानक काव्य अपभ्रंश के चरित्र और 'पुराण' काव्यों के उत्तराधिकार रूप में हिन्दी को मिले। जिन कहानियों का आधार जैन मुनियों ने लिया वे लोकप्रचलित कहानियाँ थीं, लेकिन समय की विनाशकारी गति, अशिक्षा और राजनैतिक उथल-पुथल के कारण मूल सामग्री अप्राप्त हो गई है।

'अद्दहमाण' (अब्दुर्रहमान) के सदेह रासक में संगृहीत पद्यों के क्रम में हमें प्रबन्ध तत्व का आभास मिलता है, साथ ही ऋतु वर्णन में प्रकृति का उद्दीपन रूप भी। कतिपय विद्वानों ने सदेश रासक के आधार पर हिंदी आख्यान काव्यों, विशेषकर प्रेमाख्यानों की परम्परा को खोजने का प्रयत्न किया है। रासो परम्परा में सबसे विपुल कार्य ग्रंथ पृथ्वीराज रासो है। इसमें अपभ्रंश के चरित, कथा, पुराण आदि अनेक प्रकार के प्रबन्ध काव्यों की शैली का मिश्रण भी प्राप्त होता है। जिसके कारण यह 'बृहत् कथा' पद्धति का काव्य हो गया है।

यदि अनेक कथाओं और आख्यानों के वाह्य आवरण को हटाकर पृथ्वीराज रासो की अन्तर्भावना का परीक्षण करें तो वह मूलतः ऐसा ही प्रेमाख्यानक काव्य प्रतीत होगा जिसमें यत्र तत्र शौर्य, पराक्रम, राजस्तुति तथा युद्ध वर्णनों की रङ्गत चढ़ा दी गई है। 'प्राकृत पैंगलम्' में प्राप्त हम्मीर रासों के फुटकर पद्य भी रासो[1] की 'बैलेड' परम्परा का ही समर्थन करते हैं, वही प्रोषित पतिका,

---

1. 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति पण्डितों ने नाना प्रकार से की है। फ्रेंच विद्वान तासी ने उसका संबंध राजसूय शब्द से जोड़ा है और पं० रामचन्द्र शुक्ल ने रसायण से। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार संस्कृत 'रासक' से इसकी उत्पत्ति है। जिस प्रकार घोटक (संस्कृत) का घोड़ा (खड़ी बोली)

वही सन्देश, वही षटऋतु वर्णन, वही विरह वेदना, प्रिय के शौर्य की वही प्रशंसा सब कुछ एक बँधी हुई लकीर पर चलता है। बीसलदेव रासो अपने वर्तमान रूप में एक ऐसी ही प्रेम कहानी है जिसमें न तो राजा की ऐतिहासिक चढ़ाइयों का वर्णन है और न उसके शौर्य तथा पराक्रम का ही। शृङ्गार-रस की दृष्टि से विवाह और रूठ कर विदेश जाने का (प्रोषितपतिका के वर्णन के लिए) मनमाना वर्णन मिलता है।

अस्तु हिन्दी के रासो ग्रन्थों से हम आख्यानक काव्य एवं प्रेमाख्यानों की परम्परा का प्रारम्भ मान सकते हैं।

चारण-काल के अंतिम चरण में 'मुल्लादाऊद' की नूरकचन्दा की कहानी मिलती है लेकिन अपभ्रंश काल से शृङ्गार के मुक्तक छंदों की डिंगल परम्परा 'ढोला मारू रा दूहा' जैसे शुद्ध प्रेमाख्यानों में विकसित हुई।

राजस्थान की पुण्य भूमि में जहाँ डिंगल की साहित्यिक भाषा में शौर्य और शृङ्गार-पूर्ण 'रासो' निर्मित हो रहे थे वहीं ग्रामगीतों में सुख-दुख विरह-प्रेम आदि शाश्वत भावनाओं की भी अभिव्यक्ति हो रही थी।

खेतों की मेड़ों पर, चरागाहों के हरिताभ वातावरण, एवं पनघटों पर पायलों की रुनझुन की लय पर गाए जाने वाले ये गीत हृदय के सच्चे उद्गार के साक्षी हैं। इन गीतों में विरह-मिलन के नाना व्यापारों की सुन्दर झाँकी मिलती है जैसे एक प्रोषितपतिका अन्योक्ति पूर्ण शैली में अपने प्रेम की अनन्यता और प्रिय की कठोर हृदयता का उलहना देती हुई कहती है कि 'मृग बिना मृगी अकेली है, मृग वन खंड में मृगी को अकेली छोड़ गया, मृग

घोड़ो (व्रज) और घोड़ (अवधी) हो जाता है, उसी प्रकार रासो (खड़ी) रासो (व्रज) और रास (अवधी)। नामवर सिंह ने इसकी व्युत्पत्ति आभीर जाति के सामूहिक नृत्य से मानी है, उनका कहना है 'आभीर जाति के सामूहिक नृत्य को सम्भव है भ्रम से लास्य रास संज्ञा दे दी गई हो। रास में जिस प्रकार का प्रेमाख्यान, विरह निवेदन आदि की सरस रचनाएँ हैं उनका सम्बन्ध राजस्थान में भ्रमण करने वाली आभीर गोप जाति से होना सम्भव है। इसी जाति का नृत्य भी रास है जो राधा-कृष्ण आख्यानों को लेकर कृष्णभक्त कवियों के काव्य का वर्ण्य विषय बना। संदेश रासक में एक स्थान पर नायिका अपनी उपमा गोपालिका से देती है 'पाली हुआ पमाण पर धण लहिहि धुम्मति'। बाल गोपाल के लिए तथा 'पाली' गोपालिका के लिए रूढ़ शब्द थे।

—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० १८७-१८८।

को ढूँढ़ने मृगी निकली, सारे बन खंड को छान-छान कर ढूँढ़ लिया पर वह जुलमी मृग कहीं नहीं मिला। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मृगी थक गई[१]। ऐसे ही प्रिय वियोग में रोती हुई नायिका आँसुओं को सम्बोधन करती हुई कहती है 'अरी ओ आँसुओं की धारा तनिक रुक जा; तनिक रुक जा ऐ बेरिन जरा रुक जा। हमारा मुँह भीग गया है। अंगिया चू रही है, हे आँसुओं का धार जरा रुक जा। न वर्षा है न बादल, न सावन का महीना है, नदी नाले सब सूखे पड़े हैं, पानी का प्रवेश भी नहीं है फिर तू कहाँ से बह रही है[२]।

ऊपर तो हुई वियोग की बात, संयोग के लिए आकुल नायिका प्रवासी पति को पुकार कर कहती है—

हे ढोला, रात तारों से सजी हुई है-और मेरी सेज फूलों से सजी है। अब घर चले आओ प्रियतम, लताएँ वृक्षों से लिपट रही है अब घर चले आओ जिसमें यह वर्षा ऋतु अच्छी तरह आनन्द से कट जाए[३]।

इन लोकगीतों में जहाँ एक ओर मुक्तक भावों का स्फुरण मिलता है वहाँ दूसरी ओर पनिहारी गीत में प्रबन्ध तत्व का रूप भी देखने को आता है।

---

१. 'मिरगे बिना मिरगी एक लड़ी।
मिरगो छोड़ गयो बन खंड माय मिरगी ने एक लड़ो।
मिरगे ने ढूँढ़ण मिरगी निसरी।
ढूँढयो ढूँढ़यो बन खंड छाण।
मिरगो बिना मिरगी एक लड़ी।
मिरगो छोड़ गयो बन खंड मांय मिरगी ने एक लड़ी।'
—'राजस्थान के लोक गीत।'

२. 'मुख भीज्यो, अंगिया चुई, चुइ चुई टपकी जाय।
आंसू डारी धारा तनेयक डट ज्या अे।
ना विरखा, न बदली अे, ना सावणियों मास।
नदी नाला सूका पड़या अे। पाणी डारो नाय पवास।
आंसू डारी धार तनयेक डट ज्या अे।

३. तारा तो छाई रातड़ी जी ढोला फुलड़ा छाई सेज।
इब घर आयजा गोरी रा वालमा हो जी।
बिरछा बिलूमी वेलड़ी पिया, नरा बिलूमी नार।
इब घर आयजा बरसा मत भली हो जी।'
—'राजस्थान के लोक गीत'

एक पनिहारी पानी भरने के लिए पनघट पर गई। अकेले उससे घड़ा सिर पर नहीं रखा जाता। इसी समय एक पथिक ऊंट पर सवार होकर पनघट पर आ पहुँचा। पनिहारी ने उससे सहारा देने की प्रार्थना की पथिक ने पनिहारी से घड़े फेंककर साथ चलने को कहा। क्षत्राणी अपमान से लाल हो उठी और पथिक को सैकड़ो बातें सुनाकर घर पहुँची। बहू को क्रोध से भरी देखकर सास ने क्रोध का कारण पूछा। पनिहारी ने सारा हाल बताया। मां ने उत्सुकता से पथिक की रूपरेखा पूछी। पनिहारी ने बताया। माँ का हृदय प्रेम से गद्‌गद्‌ हो उठा और उसने कहा वही तो तेरा पति और मेरा पुत्र था। पनिहारी झेंप गई।

इन गीतो की रचना का समय निर्धारित करने का प्रयत्न एक भारी भूल होगी, यह तो मनुष्य की चेतना शक्ति के साथ ही निःसृत हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि चारण कालीन रासो-साहित्य के समानान्तर [1] राजस्थानी लोक गीतों में प्रेमाख्यानों का रूप ग्राम-गीतों और पनिहारी गीतों में अवस्थित था।

चारणकाल के अन्त और भक्तिकाल के प्रारम्भ के साथ आख्यानक काव्यों की एक परम्परा सी चल पड़ी जिसका श्रेय मुसलमान कवियों को मिला।

सर्व प्रथम मुल्लादाऊद की नूरक चंदा की कहानी के बाद कुतुबन की 'मृगावती' मिली जिसमें गणपति देव के राजकुमार और कँचनपुर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती की प्रेम कथा का वर्णन है।

मझन की मधुमालती जायसी के पूर्व रची गई जिसमें कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर तथा महारास नगर की राजकुमारी मधुमालती की प्रेम-कथा वर्णित मिलती है। तदुपरान्त मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती का उल्लेख जायसी के द्वारा किया गया, ये रचनाएँ हिन्दुओं की थीं या मुसलमानों की इसका पता अब तक नहीं चल सका है।

जायसी के पद्मावत के उपरान्त उसमान कवि की 'चित्रावली' मिली जिसमें नैपाल के राजा धरनीधर के पुत्र 'सुजान' तथा रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली की प्रेम कथा वर्णित मिलती है।

---

१. राजस्थान के पनिहारी गीत—(राजस्थानी पत्रिका)।

२. विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा।
मधू पाछ मुग्धावति लागी। गगन पूर होइगा बैरागी।
राजकुँवर कंचनपुर गयऊ। मृगावती कँह जोगी भयऊ॥
साधे कुँवर खंडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू।
प्रेमावति कँह सुरबर साधा। उषा लागि अनिरुध वर बाँधा॥
—जायसी—पद्मावत।

शेखनबी ने राजा ज्ञानदीप और रानी देवजानी की प्रेम कथा को लेकर ज्ञानदीप की रचना की। कासिम शाह ने हंस जवाहिर राजा हंस और रानी जवाहिर की कथा को लेकर लिखा तथा नूर मुहम्मद ने 'इन्द्रावती' और अनुराग बाँसुरी की रचना की।

उपर्युक्त सारे आख्यान सूफी परम्परा में लिखे गए हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त 'आलम' का माधवानल काम कन्दला और श्यामसनेही, गुलाम मुहम्मद का 'प्रेमरसाल' सुन्दर कली को 'सुन्दर कली की कहानी' दुली कुतुबशाह की कुतुब मुशतरी, नुसरती का 'गुलशने इश्क', 'इब्न निशाती का फुलवान, निसार का यूसुफ जुलेखा, गवासी का 'किस्सा सैफुल मुलूम वदी उज्जम' और तसीनुद्दीन का कामरूप और कला किस्सा, फजिल शाह का 'प्रेमरतन' तथा रज्जन का 'प्रेमजोवन निरंजन' मुल्ला गाजी बख्श का 'उषा चरित' आदि कितने स्वतंत्र आख्यानक काव्य मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अकेले जान कवि ने, रत्नावली लैला मंजनू, नलदमयन्ती, पुहुपवारिखा, कनकावती, छविसागर, मोहनी, चन्द्रसेन राजा सील निधान की कथा, कामरानी वा पीतमदास की कथा, बलूकिया बिरही की कथा, खिजर खाँ और देवलदे की कहानी, कामलता, रूपमंजरी, छीता कनकावती, मधुकर मालती (बुधिसागर) आदि अट्ठारह कथाएँ लिखी हैं जिनमें कुछ सूफी ढंग की है और कुछ शुद्ध प्रेमाख्यान हैं।

हिन्दी साहित्य में सूफी कवियों के समानान्तर हिन्दू कवियों की प्रेमाख्यान धारा भी सतत प्रवाहित होती रही है। जिस प्रकार मुसलमान कवियो का कथा-साहित्य पौराणिक, काल्पनिक एवं लोक प्रचलित तथा ऐतिहासिक कथाओं पर अवलम्बित मिलता है उसी प्रकार हिन्दुओं ने भी जायसी के पूर्व और उनके पश्चात् आख्यानक काव्यों का विपुल साहित्य निर्मित किया है।

नल दमयन्ती की कथा, रुक्मिणी मंगल, नल दमन, नल चरित्र, नल दमयन्ती चरित्र, नल दमयन्ती कथा, उषा की कथा, बेलि कृष्ण रुक्मिणी री आदि हिन्दुओं के रचित पौराणिक प्रेमाख्यान मिलते हैं।

लोक प्रचलित और कल्पना प्रसूत कहानियों में प्रेम विलास, प्रेमलता कथा, ढोला मारूरा दूहा, कामरूप चन्द्रकला की कहानी, रमणसाह छबीली भटिहारी की कथा, कामरूप की कथा, मृगावती की कथा, राजा चित्रमुकुट की कथा, मधुमालती, चन्दनमलय, गिरिवार्ता, बात सायणी चारणीरी, लैला मजनू आदि आती हैं।

ऐतिहासिक[1] कहानियों में माधवानल काम कंदला और रूपमञ्जरी रखी जा सकती है किन्तु समय के साथ-साथ वह पौराणिक कहानी की कोटि में जा पहुँचीं।

इन आख्यानों की विषयानुकूल दो कोटि—ऐहिक कथाएँ, और पारलौकिक कथाएँ—स्थापित की जा सकती हैं।

ऐहिक प्रेम से सम्बन्धित आख्यान, ढोला मारू रा दूहा, सत्यवती की कथा, चन्द्र कुँवर री बात, रमणसाह छबीली भटिहारी की कथा, राजा चित्रमुकुट की कथा, मधुमालती, चन्दनमलय गिरि वार्ता, बात सायणी चारणी री, माधवानल काम कदला, विरह वारीश, रस रतन, प्रेम विलास, प्रेमलता कथा आदि हैं।

ऐहिक कहानियाँ भी दो रूपों में मिलती हैं। पहली वे जिनमें विवाह के उपरान्त प्रेम का विकास और गार्हस्थ्य जीवन की झाँकी मिलती है, जैसे सत्यवती की कथा, चन्दनमलय गिरि वार्ता, ढोला मारूरा दूहा, बीसलदेव रासो, और दूसरी वह जिनमें विवाह के पूर्व प्रेम का स्फुरण मिलता है और नायक के प्रयत्न द्वारा उद्देश्य प्राप्ति होती है—जैसे मधुमालती, प्रेम विलास, प्रेमलता कथा, रसरतन तथा माधवानल कामकंदला के सभी रूप मिलते हैं।

पारलौकिक प्रेम से सम्बन्धित सूफी ढंग की कहानियों में पौराणिक कथाएँ, एवं कल्पना प्रसूत अथवा लोकप्रचलित कहानियां दोनों ही मिलती हैं। जैसे नलदमन, (सूरदास) उषा की कथा, (रामदास) नलदमयन्ती चरित (सेवाराम) नल चरित (कुवर मुकुन्द सिंह) पुहुपावती, लैला मजनू, रूपमंजरी की कथाएँ आती हैं।

मध्य युग की हिन्दू प्रेमाख्यानों की यह परम्परा संवत् १००० से प्रारम्भ होकर सवत् १९१२ तक चलती हुई मिलती है। हम मृगेन्द्र के 'प्रेम-पयोनिधि' को इस परंपरा का अन्तिम ग्रन्थ कह सकते हैं। वैसे जो परम्परा एक बार प्रारंभ हो जाती है वह अपनी सजीवता को खोकर भी बहुत दिनों तक चला करती है। इसलिए प्रेमाख्यानों की परम्परा के कुछ ग्रथ संवत् १९१२ के बाद भी खोजने पर मिल जाएँगे। फिर भी स० १००० से १९१२ के समय को हम हिन्दू प्रेमाख्यानों का उत्कर्ष काल कह सकते हैं। इसलिए इसी काल की रचनाओं को प्रस्तुत निबन्ध में अध्ययन का आधार बनाया गया है।

———

१. देखिए आगे 'माधवानल काम कंदला' की भूमिका में ऐतिहासिक आधार, पृष्ठ २७२।

हिन्दुओं के प्रेमाख्यानक

(ग्रन्थ-परिचय)

पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि सूफी आख्यानक काव्यों की परम्परा हिन्दुओं और मुसलमानों ने समान रूप से अपनायी। साथ-साथ ऐहिक प्रेमाख्यानो के सृजन में भी दोनों ने समान रूप से योग दिया था। अब तक के इतिहासकारों को हिन्दू प्रेमाख्यानकों की सामग्री प्राप्त न हो सकी थी इसलिए उन्होंने इन पर अपना कोई मत उपस्थित नहीं किया है। नूरमुहम्मद की 'अनुराग बांसुरी' से पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने आख्यानक काव्यो की परम्परा की समाप्ति मानी है उन्हें यहाँ तक कहना पड़ा कि 'इस परम्परा में मुसलमान कवि ही हुए हैं। केवल एक हिन्दू मिला है।' किन्तु समय के साथ साथ हिन्दुओं के काव्य भी मिले जो जायसी के पूर्व और उनके पश्चात् रचे गये है। इस अध्याय में इन काव्यों का संक्षिप्त ग्रंथ परिचय उपस्थित किया गया है।

ढोला मारू रा दूहा (१००० से १६०८) प्रकाशित (ना० प्र० स० काशी)

ढोला मारू रा दूहा लोक गीतों की डिंगल परम्परा का विकसित रूप है। इसका रचना काल सं० १००० से १६०८ तक माना गया है। इसमें ढोल तथा मालवणी एवं मारवणी के संयोग और वियोग का सुन्दर चित्रण मिलता है। इसकी भाषा डिंगल है और सारा काव्य दूहा छन्द प्रणीत है। नागरी प्रचारिणी काशी के द्वारा इस प्रबन्ध काव्य का सुन्दर संस्करण प्रकाशित हो चुका है।

बीसलदेव रासो (सं०१२१२) प्रकाशित

बीसलदेव रासो की रचना नरपति नाल्ह ने सं० १२१२ में की। हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह रचना वीर काव्यों के अन्तर्गत मानी गई है। रासो नाम होने के कारण और बीसलदेव के दक्षिण को जीतने के लिए प्रयाण करने के कारण विद्वानों ने इसे रासो परम्परा के काव्यों के अन्तर्गत रक्खा है। परन्तु हमारे विचार से इसका स्थान हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानकों के बीच है। प्रस्तुत रचना में हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की सभी विशेषताएँ, प्राप्त

होती हैं। राजमती के विरह वर्णन के लिए ही कवि ने इसकी रचना की है। ऐसा प्रतीत होता है।

सदायवत्स सवलिगा (सं० १५००) अप्रकाशित (अप्राप्य)

सदयवत्स सावलिगा की रचना राजस्थानी भाषा में श्री केशव ने सं० १५०० में की है। इसमें राजा महिपाल के पुत्र सदयवत्स तथा उनके राजमंत्री सोम की पुत्री सावलिंगा की प्रेम-कथा वर्णित है। इस कथा का पश्चिमी भारत में बडा प्रचार था इसलिए सदयवत्स की अवस्थिति और भी प्राचीन हो सकती है[1]। अप्राप्य होने के कारण इसका परिचय नहीं दिया जा सकता।

लक्ष्मणसेन पद्मावती की कथा (सं० १५१६) अप्रकाशित (अप्राप्य)

श्री रामकुमार वर्मा ने अपने हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में इसका उल्लेख किया है। उनके अनुसार इसकी रचना दामों कवि के द्वारा हुई। यह एक वीर रस प्रधान आख्यानक काव्य कहा जाता है। अप्राप्य होने के कारण इसका परिचय नहीं दिया जा सकता।

सत्यवती की कथा (सं० १५५८) प्रकाशित (हिन्दुस्तानी पत्रिका भाग ७ पृ० ८१)

सत्यवती की कथा तुलसी से लगभग ७४ वर्ष पूर्व यानी सं० १५५८ में ईश्वरदास द्वारा रची गई। इसमें इन्द्र के पुत्र ऋतुवर्न तथा चन्द्रोदय की पुत्री सत्यवती की कहानी वर्णित है। यह मसनवी और पुराणों के संवादात्मक शैली के मिले-जुले रूप मे लिखी गई है। भाव और भाषा की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना नही कही जा सकती। भाषा की दृष्टि से इसका ऐतिहासिक महत्व है कारण कि इसमें तुलसी के पूर्व अवधी की भाषा का नमूना जैसा का तैसा मिलता है।

माधवानल कामकन्दला (सं० १५८४) प्रकाशित (गायकवाड़) ओरियन्टल सिरीज भाग (XCIII)

माधवानल कामकन्दला की रचना गणपति ने सं० १५८४ में की। यह

---

१. सदयवत्स की अवस्थिति का समय निश्चित नहीं पर संस्कृत कथानक में जैनाचार्य कालक के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा गया है। एवं कथा में उज्जयनी, हरि सिद्ध माता (देवी) प्रतिष्ठान नगर व शालिवाहन राजा बावन बीर, खापरा चोर आदि का उल्लेख है। तदनुसार विक्रम के समकालीन सिद्ध होता है अतः विक्रम कथाओं जितनी ही इस कथा की प्राचीनता समझी जा सकती है—

—राजस्थान भारती भाग ३ अंक १ अप्रैल १९५० अगरचंद नाहटा पृ० ४६।

प्रबन्ध काव्य माधव के पूर्व जन्म से सम्बन्धित है। कवि ने इस काव्य में पट्ट-रानी रुद्र देवी की प्रेम कहानी का भी आयोजन किया है। आधिकारिक कथा में कामावती नगरी की नर्तकी कामकन्दला और पुष्पावती नगरी के विप्र ब्राह्मण माधव की प्रेम कहानी प्राप्त होती है। इसकी भाषा अपभ्रंश है। सम्पूर्ण रचना दूहा छन्द में प्रणीत है।

माधवानल कामकन्दला (सं० १६००) अप्रकाशित (श्री उमाशंकर याज्ञिक लखनऊ के संग्रह में उन्हीं के पास)

प्रस्तुत रचना सस्कृत और हिन्दी मिश्रित भाषा में प्राप्त होती है इसका रचयिता अज्ञात है। इसमें माधवानल और कामकन्दला की प्रसिद्ध कहानी प्राप्त होती है।

माधवानल कामकन्दला (सं० १६१३) प्रकाशित (गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज भाग XCIII)

माधवानल कामकन्दला के प्रसिद्ध प्रेमाख्यान को लेकर सं० १६१३ में कुशललाभ ने प्रेमाख्यान की रचना की। प्रस्तुत रचना नीतिप्रधान प्रेम-काव्य कहा जा सकता है। इसकी भाषा सस्कृत और राजस्थानी मिश्रित है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि कथा का भाग प्राचीन राजस्थानी में है और नीति विषयक बातें सस्कृत के श्लोकों में कही गई हैं।

प्रेमविलास प्रेमलता कथा (सं० १६१३) अप्रकाशित (साहित्य सम्मेलन प्रयाग ६०८।२६०)

प्रेमविलास और प्रेमलता कथा की रचना 'जतमल नाहर' ने सं० १६१३ में की। इसमें राजकुमारी प्रेमलता तथा पोतनपुर के राजमन्त्री के पुत्र प्रेम-विलास की प्रेम कथा का वर्णन प्राप्त होता है। प्रस्तुत रचना राजस्थानी भाषा में एक दोहे और एक चौपाई के क्रम से प्रणीत है। यह एक वर्णनात्मक काव्य है जिसमें लोकोत्तर घटनाओं का समावेश बहुत अधिक किया गया है। भाव और कहानी कला की दृष्टि से यह खंड-काव्य एक उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है।

रूपमंजरी (सं० १६२५ के लगभग) प्रकाशित

प्रस्तुत रचना में निर्भयपुर के राजा धर्मधीर की कन्या रूपमंजरी की कहानी वर्णित है। इसका विवाह एक क्रूर और अयोग्य वर से हो गया था। अपनी सखी इन्दुमती के कहने पर इसने कृष्ण से प्रेम करना प्रारम्भ किया और उनकी कृपा से उन्हें प्राप्त भी कर लिया। श्री नन्ददास की यह रचना उनके व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं से संबंधित बतायी जाती है। अब तक इस

रचना को हिन्दी साहित्य के इतिहास में कृष्ण-काव्य की रचनाओं के अन्तर्गत भक्ति-प्रधान काव्य माना गया है। परन्तु हमारे विवेचन से प्रस्तुत रचना हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानकों की शृङ्खला के अन्तर्गत आती है। उसकी घटना का सविधान प्रेमाख्यानों की परम्परा के अनुकूल हुआ है। जिस प्रकार जायसी सूफी आदि कवियों ने ईश्वर का प्राप्त करने के लिए प्रेम के मार्ग को अपनाने का प्रतिपादन किया है उसी प्रकार नंददासजी ने सगुण ब्रह्म (श्री कृष्ण) को पाने के लिए रूप मार्ग का प्रतिपादन किया है। इसलिए इस काव्य को हम रूपकात्मक प्रेम काव्य कह सकते हैं। जो हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों में प्राप्त होते हैं।

उषा की कथा (सं० १६३०) अप्रकाशित (अप्राप्य)

श्री परशुराम ने उषा-अनिरुद्ध की प्रसिद्ध पौराणिक प्रेमगाथा को लेकर इसकी रचना स० १६३० में की। इसका उल्लेख श्री रामकुमार वर्मा के इतिहास में हुआ है। अप्राप्य होने के कारण इसका परिचय नहीं दिया जा सकता।

बेलि कृष्न रुक्मिणी री (सं० १६३७) प्रकाशित (हिन्दुस्तानी एकेडमी)

अकबर के समकालीन महाराज पृथ्वीराज ने रुक्मिणी हरण की पौराणिक गाथा को लेकर इस प्रेम-काव्य की रचना सं० १६३७ में की। प्रस्तुत रचना शृङ्गार रस से पूर्ण है। भाषा, भाव, अलंकार-योजना एवं छन्द-विधान की दृष्टि से प्रस्तुत रचना एक उत्कृष्ट काव्य है। डिंगल भाषा का ओज और माधुर्य इस खंड काव्य में देखने योग्य है। इसका प्रणयन दोहों में हुआ है।

छिताई वार्ता (सं० १६४७) अप्रकाशित (लेखक के पास)

छिताई वार्ता की रचना कविवर नारायण दास ने सं० १६४७ में की। इसमें ढोला समुंद के राजा सुरसी अथवा सौरसी तथा देवगिरि के राजा रामदेव की पुत्री छिताई की कथा प्राप्त होती है। प्रस्तुत रचना "पद्मावत" की तरह ऐतिहासिक घटनाओं पर अवलम्बित है। विवाह के उपरान्त छिताई का वियोग-वर्णन और पुनः नायक और नायिका के मिलन की घटना प्रेमाख्यानों की परम्परा के अनुकूल मिलती है। छिताई को प्राप्त करने के लिए देवगिरि पर अलाउद्दीन का आक्रमण इस कथा के मूल तत्वों को अग्रसर करने में सहायक हुआ है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि इस काव्य में अलाउद्दीन को कामुक अंकित करने के उपरान्त कवि ने उसे सहृदय भी अंकित किया है। इस प्रकार इस काव्य में चरित्र-चित्रण का समावेश भी प्राप्त होता है।

१—रूपकात्मक = आन्यापदेशिक (एलिगरी)

रसरतन (सं० १६७५) अप्रकाशित (ना० प्र० सं० काशी $\frac{२३१}{१४६}$, $\frac{२७३३}{१६४४}$, $\frac{२२८}{१४५}$ हस्त लिखित ग्रंथ)

रसरतन की रचना पुहुकर ने सं० १६७५ में की। इसमें चम्पावती नगरी के राजा विजयपाल की कन्या रम्भावती तथा बैरागर के राजकुमार सूरसेन (सोम) की प्रेम-कहानी वर्णित है। यह मसनवी शैली में दोहा चौपाई की पद्धति में लिखा हुआ प्रबन्ध-काव्य है। भाषा, भाव, अलंकार तथा छन्द योजनाकी दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना ठहरती है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि कवि ने विरह वर्णन में लक्षण ग्रन्थों का परिपाटी का भी अनुसरण किया है।

नल-दमयन्ता की कथा (स० १६८२) अप्रकाशित

नल-दमयन्ती की पौराणिक कथा को लेकर इस खण्ड-काव्य की रचना कविवर व्यास ने सं० १६८२ में की। इस काव्य में कवि का दृष्टिकोण आदर्शवादी है, दमयन्ती के नख-शिख वर्णन में रहस्यात्मक संकेत मिलते हैं किन्तु कथा का अन्त बडा शिथिल है। इसकी भाषा अवधी है और यह दोहा चौपाई छन्द में प्रणीत है।

रुक्मिणी-मंगल (सं० १७०२) अप्रकाशित (अप्राप्य)

मिहिरचन्द की रुक्मिणी मंगल का परिचय कुल श्रेष्ठ जी ने अपने निबन्ध में किया है। किन्तु अप्राप्य होने के कारण इसका परिचय नहीं दिया जा सकता।

नल-दमन (सं० १७१४) अप्रकाशित (सं० मं० ना०प्र० स० काशी के पास)

नल-दमयन्ती के पौराणिक प्रेमाख्यान को लेकर कविवर सूरदास ने नल दमन की रचना सं० १७१४ में की। प्रस्तुत रचना सूफी भाव धारा से पूर्ण-रूपेण प्रभावित है यही कारण है कि कवि ने पौराणिक गाथा में अपनी सुविधानुसार परिवर्तन कर दिए हैं। इसकी भाषा अवधी है और मसनवी शैली में दोहा–चौपाई छन्द में प्रणीत है।

माधवानल नाटक (सं० १७१७) अप्रकाशित (सा०सम्मेलन प्रयाग $\frac{१५५७}{२६६६}$)

माधव और कामकन्दला के प्रसिद्ध आख्यान को लेकर राजकवि केसि ने इसकी रचना सं० १७१७ में की। इसका शीर्षक नाटक है किन्तु इसमे नाटकीय तत्त्व नहीं मिलते। वरन् दोहा, चौपाई में बद्ध यह एक वर्णनात्मक काव्य है। इसकी भाषा अवधी है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना नहीं कही जा सकती।

पुहुपावती (सं० १७२६) अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी ३४१)

बैरागर के राजकुमार और अनूप गढ़ के राजा अम्बरसेन की पुत्री के काल्प

निक प्रेमाख्यान को लेकर दुखहरन दास ने इस प्रेमाख्यान की रचना की। यह प्रबन्ध-काव्य सूफियों की रहस्यवादी भावधारा से प्रभावित है! इसकी रचना मसनवी शैली में अवधी भाषा में हुई है। संपूर्ण रचना बीस खंडों में विभाजित है जिनका नामकरण वर्ण्य विषय के अनुसार किया गया है। इस काव्य की विशेषता इसके विस्तृत धार्मिक दृष्टि कोण में है। इसके अतिरिक्त इसका अन्त सूफियो के वस्ल या फ़ना में नहीं होता वरन् हिन्दू विश्वासों के अनुसार अवतारवाद और सगुण-भक्ति के रूप में होता है। प्रस्तुत रचना हिन्दुओं और मुसलमानों के सांस्कृतिक सामंजस्य और उसके कल्याणकारी प्रभाव का अच्छा उदाहरण उपस्थित करती है।

माधवानल कथा (सं० १७३७) प्रकाशित (गायकवाड़ ओरियंटल-सीरीज भाग CXIII) •

माधव और कामकन्दला की प्रसिद्ध प्रेम कहानी को लेकर दामोदर कवि ने सं० १७३७ में इसकी रचना की। प्रस्तुत रचना राजस्थानी भाषा में है। सर्वत्र दोहा छन्द का ही प्रयोग किया गया है। इसमें राजा गोविन्द चन्द्र की साम्राज्ञी रुद्र महादेवी को माधव पर आसक्त दिखाया गया है। अपने प्रेम की निष्फलता पर क्रुद्ध होकर उन्होंने छल से राजा द्वारा माधव को देश निकाला दिलाया है।

चन्द्रकुँवर री बात (सं० १७४०) प्रकाशित (शोध-पत्रिका भाग २-अंक ३)

इस वार्ता में अमरापुरी के राजा अमरसेन के पुत्र चन्द्रकुंवर तथा एक श्रेष्ठी की विवाहिता स्त्री के अनुचित प्रेम सबंध को लेकर इस कवि ने अपनी कहानी की रचना की है। प्रस्तुत रचना उपपति प्रेम पर आधारित है। यह वार्ता अन्य काव्यों से दो बातों में भिन्न है। पहली तो यह कि यह परकीया प्रेम से संबंधित काव्य है। दूसरे इसमें स्त्री की ओर से प्रयत्न है पुरुष का प्रयत्न लेश मात्र भी लक्षित नहीं होता। एक कामान्ध वणिक पत्नी की कहानी इसमें मिलती है। संभवतः विदेश यात्रा को बहुत दिन के लिए जाने पर गृहस्थी पर पड़नेवाले दूषित परिणाम का व्यंजित करने के इसकी रचना की गई है। इसकी भाषा राजस्थानी है। पद्य के बीच मे गद्य वार्ता भी प्राप्त होती है। दोहे-चौपाई के अतिरिक्त इस काव्य में सोरठे, चोहटे, देशी, और दूहा छन्द का भी प्रयोग किया है।

नल चरित्र (सं० १७६८) अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी २६६)

नल-दमयन्ती की पौराणिक कथा को लेकर कुँवर मुकुन्द सिंह ने स० १७१८ मे इस काव्य की रचना की। यह रचना सूफी भावधारा से प्रभावित है

जिसमें लौकिक और अलौकिक प्रेम के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कवि ने नल-दमयन्ती की कथा को उदाहरण रूप में उपस्थित किया है। 'कलि' की फौज के द्वारा उच्चरित नारों ने सांसारिक मोह-माया एवं लौकिक आमोद-प्रमोद को पाप मूलक अंकित किया गया है। कथा का प्रारम्भ गणेश-वन्दना से होता है। इसके बाद अन्य देवी-देवताओं की स्तुति की गई है। इसकी भाषा अवधी है। सर्वत्र दोहा-चौपाई छन्द का प्रयोग किया है।

विरह-वारीश (सं० १८०६ से १८१५ के बीच) प्रकाशित (ना० प्र० स० काशी से प्राप्त)

माधवानल कामकन्दला की कहानी को लेकर बोधा कवि ने विरह-वारीश की रचना सं० १८०६ से १८१५ के बीच की है। यह कहानी पौराणिक शैली में विरही और बाला के संवाद के रूप में उपस्थित की गई है। मूल कथा के आदि मे अप्सरा जयन्ती तथा लीलावती की प्रेमकहानी को जोडकर कवि ने जन्मान्तर-वाद की स्थापना की है। कथा के विस्तार मे कवि को सयोग-वियोग की नाना दशाओं को अंकित करने का अवकाश मिल गया है। इसकी भाषा अवधी है। अलंकार तथा छन्द योजना की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट काव्य है।

नलोपाख्यान (सं० १८१४) अप्रकाशित (अप्राप्य)

नल-दमयन्ती की पौराणिक कथा को लेकर मुरलीधर ने इसकी रचना स० १८१४ मे की। अप्राप्य होने के कारण इसका परिचय नहीं दिया जा सकता।

उषा-चरित्र (सं० १८३१) अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी ४६/२१)

उषा चरित्र की रचना जनकुज ने स० १८३१ में की। यह रचना अवधी में बारह खडी में रची गई है। इसलिए वृत्यनुप्रास की छटा इसमें देखने योग्य है। कवि ने कथावस्तु में थोड़ा परिवर्तन कर दिया है। भागवत में उषा केवल अनिरुद्ध का स्वप्न देखती है किन्तु इसमें दोनों एक दूसरे को स्वप्न में देखते हैं। इस परिवर्तन से कथानक में स्वाभाविकता आ गई है।

मधुमालती (सं० १८३७)[1] अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी २०८८/१३०७ ४७२/३४७, ८१५/५७७, २६५/१७०, २६६/१७१)

लीलावती के राजा चन्द्रसेन की पुत्री मालती और उसके मंत्री के पुत्र मधुकर की प्रेम-कहानी को लेकर चतुर्भुज दास कायस्थ ने इसकी रचना सं० १८३७ में की। प्रस्तुत रचना में पशु-पक्षियों से संबधित पांच छोटी छोटी अंतर कथाएँ मिलती हैं। जो कथावस्तु में इस प्रकार गुम्फित कर दी गई है कि अलग नहीं की जा सकतीं। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि इन्हीं अन्तर कथाओं

---

१. मिश्रबन्धु विनोद पृ० ८१७।

के आधार पर मूल कथा आगे बढ़ती है। कवि ने इसमें जन्मान्तरवाद को भी पुष्टि की है। प्रस्तुत रचना में शृङ्गार उतना मुखरित नहीं है जितना कि नीति और दार्शनिक-पक्ष। यही कारण है कि नख-शिख वर्णन आदि अथवा संयोग-वियोग की अन्तर्दशाएँ इस काव्य में कम प्राप्त होती हैं। इन विशेषताओं के साथ प्रिय को पाने के लिए स्त्री की ओर से प्रयत्न की प्रधानता पाई जाती है। तथा आश्चर्य तत्व का संयोजन इस रचना में अन्य रचनाओं से अधिक किया गया है।

नल-दमयन्ती चरित (सं० १८५३) अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी ५२/२६७)

नल-दमयन्ती के पौराणिक प्रेमाख्यान को लेकर कविवर सेवाराम ने इस काव्य की रचना की। प्रस्तुत रचना गणेश महिमा को स्थापित करने के लिए की गई जान पड़ता है। कवि ने गणेश की महिमा को दर्शाने के लिए मूल कथा में परिवर्तन भी किये है। इस काव्य में नीति विषयक सूक्तियाँ, सती स्त्री के तेज का वर्णन तथा पति-परायणता के उदाहरण बिखरे मिलते है। प्रेम-काव्य होने पर भी शृङ्गार-रस के स्थान पर शान्त और करुण-रस की प्रधानता मिलती है। इसकी भाषा अवधी है तथा रचना दोहा-चौपाई छन्द में प्रणीत है।

प्रेमचन्द द्वारा १८५३ में लिखी गई कामरूप चन्द्रकला का उल्लेख खोज रिपोर्ट मे हुआ है किन्तु अप्राप्त होने के कारण इसका परिचय नहीं दिया जा सकता।

उषा-हरण (सं० १८८६) प्रकाशित (साहित्य सम्मेलन प्रयाग १६४५/३२५७, १५६०/२६७५)

उषा-अनिरुद्ध की प्रेम कहानी जीवनलाल नागर द्वारा सं० १८८६ में रची गई। यह रचना श्रीमद्भागवत की कथा वस्तु के अनुकूल होते हुए भी कई स्थानों पर भिन्न है। कथानक में सरसता, स्वाभाविकता तथा उपादेयता लाने के लिए कवि ने अपनी कल्पना से नवीन घटनाओं का संयोजन मूल कथा के बीच-बीच किया है। उषा को उसने पार्वती की पुत्री बताया है और पार्वती के वरदान के कारण ही इस कवि के अनुसार उषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा था। इस परिवर्तन से काव्य में आश्चर्य तत्व के संयोजन के साथ-साथ स्वाभाविकता भी आ गई है।

इसकी भाषा अवधी है किन्तु कहीं-कहीं ब्रज का पुट भी लक्षित होता है। इस रचना में दोहा-चौपाई छन्द के अतिरिक्त सवैया, सारसी तथा पद्धरिका छन्दों का भी प्रयोग किया गया है।

उषा-चरित (सं० १८८८) अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी ७००/१४)

उषा-चरित की रचना मुरली दास ने स० १८८८ में की। प्रस्तुत रचना एक छोटा सा वर्णनात्मक काव्य है। कथा श्रीमद्भागवत के अनुसार है। इसकी प्रतिलिपि बड़ी अशुद्ध है तथा पानी से भींग जाने के कारण पढ़ी नहीं जाती इसलिए काव्य सौन्दर्य आदि का मूल्याकन करना असम्भव है। इसकी भाषी अवधी है लेकिन बीच-बीच में खड़ी-बोली के चलते हुए शब्द मिलते हैं। जैसे —सिर, अन्नर, प्रातःकाल आदि। छन्द-विधान चौपाई और दोहे का ही प्रतीत होता है।

उषा की कथा (सं० १८६४) अप्रकाशित (२५०८/१४६३ ना० प्र० स० काशी)

कविवर रामदास ने उषा की कथा सं० १८६४ में लिखी है। कवि कृष्ण भक्त था। इसलिये अपनी कृष्णभक्ति के प्रदर्शन के लिए उसने कथा मे विस्तार किया है और यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि सभी देवता आदि कृष्ण के उपासक हैं। इज्ये और विज्ये के तथा अन्य छोटे छोटे पौराणिक आख्यानों को कथा के प्रारम्भ मे जोडकर कवि ने कथा के विषय को अलौकिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि देने का प्रयत्न किया है। इस काव्य मे लोकपक्ष और लोक-मर्यादा का विशेष ध्यान रखा गया है। इसीलिये पार्वती के वरदान स्वरूप उषा-अनिरुद्ध के गान्धर्व विवाह की भूमिका तैयार की गई है। प्रस्तुत रचना में संयोग-वियोग आदि तथा नखशिख वर्णन मे वही परिमार्जित अभिरुचि का पता चलता है।

रमणशाह छबीली भठियारी की कथा (सं० १६०५ के पूर्व) अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी याज्ञिक संग्रह १८४/३३ क)

इस रचना में रचयिता एवं लिपिकार का नाम नहीं मिलता। कथा का प्रारम्भ श्री गणेशाय नमः से होता है। इसलिये ऐसा जान पड़ता है कि यह किसी हिन्दू कवि की रचना है। वर्ण्य-विषय को दृष्टि से यह काव्य अन्य आख्यानों से भिन्न है। इसमें राजकुमार रमणशाह तथा छबीली भठियारी की प्रेम कहानी मिलती हैं किन्तु आगे चलकर दो कहानियाँ समानान्तर चलने लगती हैं जिसमें ठाकुर मानसिह की राजकुमारी विचित्र कुँवर भठियारी के प्रेम बन्धन से कुमार को छुड़ाने का प्रयत्न करती है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह कथा महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसका नायक मुसममान है और उसका विवाह हिन्दू राजकुमारी के साथ हिन्दू रीति-रिवाज से कराया गया है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच विवाह सम्बन्ध भी होने लगे थे और ऐसे आख्यान-काव्य भी प्रणीत होने लगे थे।

इसकी रचना गद्य-पद्य मिश्रित शैली में हुई है। पद्यांशों में खड़ी बोली और ब्रज-भाषा का मिश्रित रूप मिलता है। गद्य वार्ता में फारसी शब्दों का प्रयोग जैसे फरमाना मुबारक आदि बहुतायत से पाया जाता है।

कामरूप की कथा (सं० १९०५) अप्रकाशित (अप्राप्य)

सं० १९०५ मे हरिसेवक ने कामरूप की कथा लिखी। पुस्तक अप्राप्य होने के कारण कोई परिचय नहीं दिया जा सकता।

रुक्मिणी मंगल (सं० १९०६) अप्रकाशित (अप्राप्य)

सं० १९०६ में कवि रामलाल ने रुक्मिणी मंगल की रचना की। पुस्तक अप्राप्य होने के कारण कोई परिचय नहीं दिया जा सकता।

मृगावती (१९०६) अप्रकाशित (अप्राप्य)

सं० १९०६ में मेघराज़ प्रधान ने मृगावती लिखी। पुस्तक अप्राप्य होने के कारण कोई भी परिचय नहीं दिया जा सकता।

रुक्मिणी-परिणय (१९०७) अप्रकाशित (साहित्य सम्मेलन प्रयाग- १९०८/३११०)

श्री रघुराज सिंह जू देव ने सं० १९०७ में रुक्मिणी परिणय लिखा। प्रस्तुत रचना में श्रीमद्भागवत की बहुत सी घटनाएँ और कथाएँ मूल कथा के पूर्व संयोजित की गई है इस कारण यह काव्य इतिवृत्तात्मक वर्णनों से पूर्ण है। रुक्मिणी के विवाह और कृष्ण तथा रुक्मिणी के सयोग-शृंगार में कवि की भाषा एवं काव्य-कला के दर्शन होते हैं। ऐसे रसात्मक स्थल बड़े सुन्दर और हृदय-ग्राही बन पड़े हैं। इसकी भाषा ब्रज है। दोहा-चौपाई छन्द के अतिरिक्त सवैया, घनाक्षरी आदि छन्दों का भी प्रयोग किया गया है।

नल-दमयन्ती की कथा (सं० १९११ के पूर्व) अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी ६३/२३)

किसी अज्ञात कवि ने नल-दमयन्ती की कथा सं० १९११ में लिखी। इसकी भाषा अवधी है जो काफी प्रांजल है। इस रचना में दोहा और चौपाई का क्रम मिलता है। इसके अतिरिक्त सोरठा, सवैया आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है।

प्रेम-पयोनिधि (सं० ४९१२) अप्रकाशित (राजकीय पुस्तकालय रामनगर बनारस)

प्रेम-पयोनिधि की रचना मृगेन्द्र ने स० १९१२ में की। इसमें राजकुमार जगत प्रभाकर और कनकपुर की राजकुमारी शशिप्रभा का प्रेमाख्यान मिलता है। इस काव्य में आश्चर्य तत्वों और लोकोत्तर घटनाओं का बाहुल्य मिलता है। कवि ने दोहा-चौपाई में कथा का विस्तार किया है और कवित्त-सवैया

आदि छन्दों में रसात्मक स्थलों की अभिव्यंजना की है। इसकी भाषा ब्रज है। इस काव्य को हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानकों की अन्तिम शृंखला कहा जा सकता है।

उपर्युक्त आख्यानों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी आख्यानक प्राप्त हुए हैं जिनके रचयिता अगर ज्ञात हैं तो उनके रचना काल का पता नहीं चलता। कुछ ऐसे मिलते हैं जिनमें रचना-काल और रचयिता दोनों के नाम अज्ञात हैं। ऐसे प्रेम-काव्य नीचे अंकित किये गये हैं।

लैला-मजनूं की कथा अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी)

कविवर सेवाराम ने लैला-मजनू की कथा लिखी। यह चार सौ पंक्तियों का एक छोटा-सा काव्य है जिनमें लैला-मजनूं की प्रचलित कथा सूफियों की रहस्यवादी परिपाटी में वर्णित मिलती है। काव्य-सौष्ठव, अलंकार, छन्द एवं भाषा की दृष्टि से यह काव्य उच्चकोटि का नहीं है। प्रतिलिपिकार ने बही के एक पन्ने पर इसे उतारा है। सम्भवतः अपनी रुचि के अनुकूल इस प्रतिलिपिकार ने किसी मूल प्रति के अंश उतार लिये हों। उसमें उर्दू तथा हिन्दी भाषा का मिश्रित रूप प्राप्त होता है।

बातसायणी चारणी रो प्रकाशित (राजस्थान भारती भाग १ अङ्क २-३ जुलाई, अक्टूबर, सन् १९४६)

प्रस्तुत रचना प्राचीन राजस्थानी कथा-साहित्य की एक टूटी हुई कड़ी है। इसका अन्त दुखान्त है। पूरी कथा आश्चर्य तत्वों से पूर्ण है, और राजस्थानी गद्य में प्रणीत है।

राजा चित्रमुकुट और रानी चन्द्रकिरण की कथा अप्रकाशित (ना० प्र० स० काशी याज्ञिक संग्रह $\frac{१९४}{२२}$, क $\frac{१०३}{३३}$ ख $\frac{१९४}{३२}$ ग

राजा चित्रमुकुट और रानी चन्द्रकिरण की कथा में राजा चित्रमुकुट और कुमारी चन्द्रकिरण का प्रेम वर्णित है। इसकी भाषा अवधी है तथा इसमें दोहा चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रेम के साथ-साथ सती प्रताप की महिमा भी इस काव्य में देखने को मिलती है।

संवत् १००० से १९१२ तक मिलने वाले प्रेमाख्यानकों का संक्षिप्त परिचय इस अध्याय में उपस्थित किया गया है। अब तक प्राप्त विशिष्ट ग्रंथों का विश्लेषण एवं अध्ययन आने वाले अध्यायों में किया जायगा।

नोट—उपर्युक्त ४१ प्रेमाख्यानकों में ८ अप्राप्त हैं। शेष ३३ प्रेमाख्यानकों की संक्षिप्त आलोचना आगे की गई है।

प्रेमाख्यानों पर पड़नेवाले प्रभाव

आधुनिक-युग प्रारम्भ होने के पूर्व हिन्दी-कविता के जो प्रधान छः अंग थे— डिंगल कवियों की वीर गाथा, निर्गुणियों की बानियाँ, कृष्ण भक्त या रागानुगा भक्ति मार्ग के साधकों के पद, राम भक्त या वैधी भक्ति मार्ग के उपासकों की कविता, सूफी साधना से पुष्ट मुसलमान कवियों के तथा हिन्दू कवियों के 'प्रेमाख्यान' (रोमांस) और रीति काव्य, उनका आदि स्रोत अपभ्रंश साहित्य में मिलता है। यह पहले कहा जा चुका है कि अपभ्रंश की रचनाएँ विक्रम की सातवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक मिलती हैं और उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय भी पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है, किन्तु अधिकतर जैनियों के चरित काव्य, पुराणादि दसवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के ही मिलते हैं जो छठीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक की धर्म-साधना की पद्धति से प्रभावित हुए हैं, साथ ही उन्होंने अर्वाचीन साहित्य को भी प्रभावित किया है।

विक्रम की छठीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक, धार्मिक मत-मतान्तरों की कितनी ही धाराएँ एवं उपधाराएँ उत्तरी भारत में चलती रहीं। बिना इन मूल धाराओं का मूल्यांकन किए हुए हिन्दी की आदि कालीन प्रवृत्तियों और सामान्य विशेषताओं को भलीभाँति समझा नहीं जा सकता इसलिए कि साहित्य समाज का दर्पण है, कोई भी साहित्यकार अपने सामाजिक वातावरण और उस समय के प्रचलित विश्वासों आदि की अवहेलना नहीं कर सकता।

अस्तु विक्रम की छठी से पन्द्रहवीं शताब्दी की धर्म-साधना को हम सुविधा के लिए छठीं से दसवीं तक पूर्वार्द्ध और दसवीं से पन्द्रहवीं तक उत्तरार्द्ध में बाँट सकते हैं।

पूर्वार्द्ध को तंत्र के प्रभाव और प्रचार का काल कहा जा सकता है। इस काल में 'कुमारिल' और प्रभाकर जैसे विख्यात मीमांसकों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने कर्म-मीमांसा को नवीन शक्ति के रूप में उपस्थित किया तथा शंकराचार्य

ने अपने अद्वैतवाद का प्रचार किया इस काल के विशिष्ट ग्रंथ पुराण, आगम, तंत्र और संहिताएँ हैं। किन्तु इनमें आगमों का प्रभाव विशिष्ट लक्षित होता है। सभी आगम अपने उपास्यदेव को परम-तत्त्व के रूप में स्वीकार करते है वे अपने देवता की शक्तियों में और ईश्वर की इच्छा-शक्ति तथा क्रिया-शक्ति में विश्वास करते हैं, जगत को परमात्म तत्त्व का परिणाम मानते हैं माया के कोष कचुक की कल्पना करते हैं, प्रकृति में परमात्म तत्त्व को समझते हैं, सांख्य के सत्व, रज, तम, गुणों को मानते हैं, भक्ति पर जोर देते हैं, उपासना में भी सभी वर्णों तथा स्त्री-पुरुष दोनों का अधिकार मानते हैं, मत्र, बीज, यंत्र, मुद्रा, न्यास, भूत, प्रेत, कुंडलिनी आदि योग की साधना करते हैं। वस्तुतः जैसा कि 'उडरफ' ने कहा है कि मंत्र, यंत्र न्यास, दीक्षा गुरु आदि तत्त्व जिसमें हैं वही तंत्र शास्त्र है।

इसी काल में पांचरात्र संहिताओं का भी अभ्युत्थान हुआ इन पांचरात्र संहिताओं में भी ज्ञान अर्थात् ब्रह्म, जीव तथा जगत के पारस्परिक सबधों का निरूपण मिलता है। मोक्ष के लिए योग की साधनाभूत क्रियाओं पर जोर दिया गया है। साथ ही क्रिया अर्थात् देवालय का निर्माण मूर्तिस्थापना, पूजा आदि पर भी इनमें विचार प्रकट किए हैं और मनुष्य को धर्माचारण के लिए इन्हें आवश्यक बताया गया है इनमें चर्या के अन्तर्गत नित्यनैमित्तिक कृत्यों में मूर्तियों तथा यंत्रों की पूजा-पद्धति एवं पर्वादि के विशेष उत्सवों के लिए भी मंत्रणा दी गई है।

पांचरात्र मत का प्रसिद्ध और विशिष्ट मत चतुर्व्यूह सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार वासुदेव से संकर्षण (जीव) संकर्षण से प्रद्युम्न (मन) और प्रद्युम्न से अनिरुद्ध (अहंकार) की उत्पत्ति मानी जाती है। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि आगे चलकर श्रीमद्भागवत में संकर्षण के स्थान पर कृष्ण के नाम के अतिरिक्त अन्य नामों का परिवर्त्तन नहीं मिलता किन्तु भागवत में यह प्रतीक साकार देव शक्तियों के रूप में अभिहित किए गए हैं। अस्तु संहिताओं में हमें तत्त्वज्ञान, मंत्रशास्त्र, यंत्र शास्त्र, माया योग, मंदिर निर्माण प्रतिष्ठाविधि, संस्कार, वर्णाश्रम धर्म और उत्सवादि इन दस विषयों का विस्तार मिलता है। इसी काल में कश्मीर में शैव-मत का विकास हुआ और 'पशुपत' की पूजा की प्रथा चली किन्तु इन शैवों ने शक्ति की भाँति अद्वैत पर ही विशेष जोर दिया था।

कहने का तात्पर्य यह है कि दशवीं शताब्दी तक उत्तर भारत में मंत्र, तंत्र, न्यास, दीक्षा, गुरु, मतसिद्धि, माया और अद्वैत भावना पर जहाँ लोगों को

एक ओर विश्वास था वहीं दूसरी ओर मूर्तिपूजा, और साकार भक्ति पर भी उन्हें आस्था थी।

पूर्वार्द्ध की समाप्ति के आस-पास ही भागवत पुराण का अभ्युदय हुआ और आगे चलकर पांचरात्र संहिताओं और विष्णुपुराण का आश्रय लेकर, एक ओर वैध मार्गी वैष्णव-साधना विकसित हुई और दूसरी ओर रागानुगा मार्गी या आवेश और उल्लासमय भक्ति-मार्गी साधना भागवत को लेकर चली।

विक्रम की आठवीं शती के बाद नालन्दा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी आदि विद्यालयों में जो बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ वह नवीन ढंग का तांत्रिक और योग क्रिया मूलक धर्म था। इस नवीन तान्त्रिक मत में तीन प्रधान मतों का संधान पाया गया, सहजयान, बज्रयान और काल चक्रयान।

बज्रयानी लोग हिन्दू तान्त्रिकों की भांति शक्ति की उपासना करने लगे और उनमें कुमारी पूजा सिद्धि का साधन बनी।

कालचक्रायन पंथ वाले भूतप्रेतादि की पूजा करते थे इस संप्रदाय ने बुद्ध को भी महा प्रेत माना इन्हीं के बाद सहजयान अथवा हठयोगी सिद्धों ने अपना प्रचार आरंभ किया और इनका प्रभाव राजपूताने में विशेष रूप से पड़ा।

इस उत्तरार्द्ध की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना भारतवर्ष में मुसलमानों का आगमन है जिनका एक संगठित मजहब था। इसके आघात से भारतीय जनता क्षुब्ध हो उठी। इसलाम तलवार के जोर पर बढ़ रहा था। हिन्दू मनीषियों ने हिन्दूजाति को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया, रीतिरिवाज, पर्व आदि के ऐक्य पर जोर दिया किन्तु असफलता मिली। इसी बीच पश्चिम से सूफियों की साधन-पद्धति का आगमन हुआ जिसमें भारतीय साधना के प्रभाव-चिह्न भी थे। इनकी रचनाएँ लोकप्रिय होते हुए भी हिन्दुओं के धार्मिक जीवन को अधिक प्रभावित न कर सकीं।

ऐसे समय में दक्षिण से वेदान्त भावित भक्ति का आगमन हुआ। डा० ग्रियर्सन के अनुसार बिजली की चमक के समान अचानक समस्त धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी यह भक्ति का आंदोलन था। इसने दो रूपों में आत्मप्रकाश किया, पौराणिक अवतारों को लेकर सगुण उपासना के रूप में और निर्गुण परब्रह्म को लेकर निर्गुणोपासना के रूप में।

वैभिन्य होते हुए भी प्रेम दोनों का मार्ग था, सूखा ज्ञान दोनो का अप्रिय था, केवल बाह्याचार दोनों को मान्य नहीं था, आन्तरिक प्रेम निवेदन दोनों को अभीष्ट था, भगवान के प्रति आत्मसमर्पण दोनो के प्रिय साधन थे।

इस प्रकार इस उत्तरार्द्ध काल के अंत में पुराणों, संहिताओं और आगमों

की साधना पद्धति प्रेम का आश्रय लेकर हिंदुओं और मुसलमानों का हृदय अनुरञ्जित करने लगी।

हिन्दू प्रेमाख्यानों में विक्रम की छठीं से लेकर पन्द्रहवी शती तक की धर्म-साधना का स्वरूप पूर्ण रूप से परिलक्षित होता है।

प्रत्येक प्रेमाख्यानक के घटनाक्रम पर अगर हम दृष्टिपात करे तो हमें ज्ञात होगा कि किसी सुन्दरी के प्रेम में व्याकुल प्रेमी जब कार्यसिद्धि के लिए क्रिया-शील होता है तब उसे नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडता है किन्तु उसके कार्य में सारी बाधक वस्तुएँ या तो किसी दैवी-शक्ति जैसे शिव-पार्वती की कृपा से तिरोहित हो जाती है या आधिदैवी शक्तियाँ जैसे अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर, बैताल, तोता, सर्प, हंस आदि के द्वारा उनको अपने इष्ट की प्राप्ति होती है[1]।

देवी-देवताओं की मूर्ति पूजा और उनके प्रत्यक्ष दर्शन एवं वरदान से कितनी ही घटनाएँ घटित होती हैं या कथा को विकसित करने में सहायक होती हैं[2]। उपर्युक्त दोनों बाते हमें लौकिक एवं पारलौकिक दोनो प्रकार की प्रेमगाथाओं में मिलती हैं। इसके अतिरिक्त ईश्वरोन्मुख प्रेम-व्यंजना से परि-व्याप्तकथानकों में गुरु, दीक्षा, मन्त्र शास्त्र, माया, यौगिक क्रियाएँ तथा यंत्र आदि की बहुलता मिलती है।

राजा के द्वारा कुमारी के लिए मन्दिर निर्माण कराने की घटना[3] भी किन्हीं-किन्हीं काव्यों में मिलती है साथ ही प्रेयसी के द्वारा पहेलियाँ बुझाने की प्रथा[4] में संहिताओं के तत्वज्ञान सम्बन्धी विश्वास का पता चलता है।

१, पुहुपावती में रंगीली चतुर्भुज देव की पूजा शिव के कहने पर करती है और अपना इष्ट लाभ करती है। माधवानल काम-कंदला में बैताल द्वारा विक्रमादित्य ने अमृत लाभ कर दोनों को, जीवित किया। चतुरमुकुट की कथा नलदमन्ती, तथा पुहुपावती में सर्प, हंस और मैना के द्वारा इष्ट लाभ होता है। प्रेम पयोनिधि में यक्षराज और सिन्धु-पुरुष के द्वारा नायक-नायिकाओं का समुद्र की दुर्घटना के बाद मिलन आदि।

२. प्रेमपयोनिधि, सत्यवती की कथा, रमणशाह छबीली भटियारी की कथा, रसरतन मे सतान लाभ, मूर्ति-पूजन अथवा इष्टदेव के प्रत्यक्ष दर्शन और वरदान के कारण ही हुआ है।

३. रुक्मिणी हरण में।

४ माधवानल कामकन्दला की गायकवाड़ सीरीज में प्रकाशित प्रतियाँ एवं पुहुपावती में प्रथम मिलन के स्थल।

अस्तु, इन आख्यानों के परिधान या यों कहा जाय कि घटना क्रम और इष्ट प्राप्ति के साधनों में हमें आगमों का मंत्र बीज, यत्र मुद्रा, भूत प्रेत कुण्डलिनी योगसाधना आदि तथा संहिताओं का तत्वज्ञानी मंत्र शास्त्र,[1] माया, योग[2] मन्दिर निर्माण उत्सवादि और वज्रयानियों की कुमारी साधना[3] एवं अलौकिक क्रिया-व्यापार मिलते हैं, जो एक ओर कहानी में असाधारण तत्व का पुट देकर उसे रुचिकर एवं हृदयग्राही बना देते हैं तो दूसरी ओर उस काल के धार्मिक विश्वासों का प्रतिपादन करते हैं।

रागानुगा या कान्त-कान्ता भाव की भागवत सम्बन्धी भक्ति ने ही प्रेमाख्यानों में आन्यापदेशिक काव्यों की प्रथा चलाई। यों तो अपभ्रंश-काल में जैनियों के द्वारा अन्यात्किपूर्ण काव्यो का प्रणयन हो चुका था जैसे जीव मनः करण सलाप कथा, 'मयण पराजय' आदि किन्तु इन काव्यो में 'भोग' (सेक्स) सम्बन्धी प्रतीक या यों कहा जाय कि शृंगार के स्थाई भाव रति की सर्वथा शून्यता रहती थी। किन्तु सूफियों के द्वारा प्रतिपादित 'प्रेम की पीर' ने वज्रयानियों की कुमारी साधना के सिद्धान्त को उत्साहित किया और साहित्य के क्षेत्र में रहस्यानुभूति मय प्रेम का वर्णन होने लगा। रति-सम्बन्धी काव्य की यह प्रथा ईश्वरोन्मुख प्रेम तक ही सीमित न रही वरन् इसने लौकिक प्रेम काव्यों को भी उत्साहित किया।

---

१. प्रेम पयानिधि में सूरजप्रभा एवं उससे प्रदत्त गुटका का मंत्र बल एवं प्रेमविलास प्रेमलता कथा में जोगनी की शक्ति का वर्णन।

२. नाभि कुण्ड वरनी को पारा। अति अथाह विधि कुण्ड सवारा।
महा कुण्ड मह नीर गम्भीरा। तह मन परी नीकसे नहीं तीरा॥
तेहि के मध्म चक्र एक फीरे बहुरि न नीकसे तहा गीरा॥
तेहि के नाल कवल दल फूला। उपजै जहाँ सकल अस धुला॥
कंकन नाल राखा भरो पौना। भीतर नखशिख करै सो गौना।

३. अधर सुधर सोई जनि अहई। पुनि जहि साख मिर्मांसा कहई॥
जध जुगल सोई छांव पावे। जुगल भेद तेहु तिअ अलखावे॥
न्याय साख में तर्क अहै जो। सरस्वती के जानहु रद सो॥
सोड़स लच्छन हैं जहि माही। ओषदस उदेस जो आही।
दो० मत्स्य और पदुम पुरान जो सोइ कर जुग आहि।
धर्म शास्त्र मस्तक अहै प्रनव मोहे है ताहि॥
(नल चरित्र : कुँवर मुकुन्द सिंह :)

मोगल कालीन भोगविलास मय वातावरण ने इन लौकिक काव्यों में वासना-जनित प्रेम के अनावृत्त चित्रों में बड़ी सहायता की। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं की सभी काव्यों में इस प्रकार के चित्र अंकित मिलते हैं। ऐहिक काव्यों में जहाँ तक रति-वर्णन का सम्बन्ध है, हमें यह दो रूपों में मिलती है एक सांकेतिक रूप में दूसरी अनावृत चित्रण के रूप में।

सांकेतिक वर्णन में प्रेमी प्रेमिका एक दूसरे को पहेली बुझाते दिखाए गए हैं[1] यहाँ यह कह देना आवश्यक होगा कि इस प्रथा में भी जहाँ एक ओर लोकगीतो की परम्परा का अनुसरण मिलता है वहीं दूसरी ओर भारतीय धर्मशास्त्रों का सैद्धान्तिक पक्ष भी परिलक्षित होता है। यजुर्वेद और यज्ञसेनी सहिना में पुरोहितों के द्वारा पहेली बुझाने की प्रथा का वर्णन मिलता है, जो अपने इष्ट देव को प्रसन्न करने के लिएँ किया करते थे[2]। सभव है अपनी आराध्य देवी और हृदयेश्वरी प्रियतमा को प्रसन्न कर इच्छित सुख लाभ की आशा की ओर सकेत करने का प्रयत्न इस शैली में मिलता हो, साथ ही नायक की बुद्धि और उत्कर्ष का प्रभाव दिखाने के लिए भी।

अनावृत्त चित्रणों में भी प्रश्न पूछने की प्रथा मिलती है 'पुहुपावती' इसका अच्छा उदाहरण है। जायसी आदि ने भी इस प्रथा का अनुसरण किया है।

सूफियों में विवाह को जीवन का एक आवश्यक अंग माना जाता है इसलिए उनके काव्यों में वासनाजनित प्रेम का चित्रण करना असांस्कृतिक और बहिष्कृत नहीं समझा जाता। दूसरे उनका 'वस्ल' इसी का प्रतीक है। एक

---

1. जो तुम कुँवर पचीसी सीखा। खेलहु चोपरि पास ही मीता॥
   पहिले नीति परा सो काहे। चौथे चीत गवाँ का मोहे॥
   पांच परा सम के कर दाऊ। छट कही कै पीव सत गनाऊ।
   आठ ओरनौ पुनि का कह कहही। दस ग्यारह बारह का अहहीं।
   तेरह चौदह पंद्रह पारा। सोरह सतरह चीत में धारा॥
   अर्थ अठारह बिरला जा'। चौसठि घर सो को पहिचाहे।
   सोरह सारी औ तीनि थपासा। इन्ह मिली जगत खेल परगासा॥
   दो० जुग नीब है तबहीं भला बीछुरन कठिन अकेल।
   पाके गौरी मध्य के तब जीतहु इह खेल॥

   'पुहुपावी'

2. "In the Yajur Veda we also learn of the occasions at which the riddle games were customary, indeed. even formed part.

ओर सूफियों की यह प्रथा थी दूसरी ओर वज्रयानियों की संध्याभाषा में वर्णित गुह्यसाधना और सहज सुख का प्रचार साधारण जनता में था ही। मोगल-कालीन विलासमय वातावरण ने लौकिक-शृंगार के नग्न-चित्रण को और सहारा दिया। संवत् १७०० से १६०० तक की राजस्थानी और मुगलकालीन चित्रकला में नग्न-सौन्दर्य का चित्रण कला के उत्कर्ष-दृष्टि से देखा जाने लगा था। इसका परिचय स्नानागार में स्नान करती हुई स्त्रियों के चित्रों में मिलता है यही नहीं प्रेमी और प्रेयसी के केलि के चित्र भी बड़े सटीक अंकित किए जाने लगे थे[1]। उपर्युक्त सभी बातों ने हिन्दू कवियों को रति के अनावृत वर्णन के लिए उत्साहित किया और वे यहाँ तक बढ़े कि गुप्तांग[2] के वर्णन और रति

---

of the cult. Thus we find in Yajasneyi Samhita in section XXIII a number of riddles with which the priests amused them selves at the renowned ancient horse sacrifice. These riddle games form an equally important part of the worship of Gods as the prayer and sacrificial formulae. However, the term "worship" of Gods express but inadequately the purpose of the prayers and formulae, indeed, of the sacrifices themselves. The majority of the sacrficial cere. monies as also the "Yajus" formulae do not aim at worshiping the Gods but at influencing them, at compelling them to fulfil the 'wishes of the sacrificer."

—A History of Indian Literature.

By Winternitz, Vol, 1 Page 183-184

1 "Some or the rude figures of Moghal queens and princess, either shown at their bath or their toilet exhibit a marked tendency towards the portrayal of the sensuous.. . .. Some of the lovescenes and Harem scenes of the Moghal artists are of extreme frankness, where the lovers are lying on luxurious Divans and cosy coushions, locked in each others embrace, the young woman lying in a carefree condition, where her lovers amorous hands freely stray over her feminine chaims."

—Grousset R Civilizations of the East,

Vol II, Page 184.

२. नाभि सो निपट लाज को ठाउ। हौं अबला केहि भाँति बताऊँ॥
मिरग खोज उपमा कित दीजै। जिउ को हौ न खेर तो कीजै॥

विषयक रक्तस्राव तक का चित्रण कर डाला[1]। संवत् १७०० के उपरान्त मोगलकालीन चित्रकला और कवियों के शब्द चित्रों में होड़-सी जान पडती है। दानों ने एक दूसरे को मात करने का प्रयत्न किया, ऐसा लक्षित होता है। कारण कि अकबर के समय से ही महाभारत आदि ग्रन्थो को चित्र-बद्ध करने की प्रथा चल पडी थी। यही कारण है इस युग के शृंगारी चित्रों और कवियों के शब्द-चित्रो में बडा साम्य दिखाई पड़ता है। कहीं-कहीं कवियो ने चित्रकारो से अधिक सफलता प्राप्त की है। अकबर से लेकर औरगजेब तक मुसलिम और हिन्दू संस्कृति एक दूसरे को प्रभावित करती रही। इसलिए 'फारसी' ढंग की कविताओं का असर हिन्दुओं पर उसी प्रकार पड़ा जिस प्रकार मुसलमानों पर हिन्दू सस्कृति का। यही नहीं हिन्दुओं ने फारसी साहित्य की उन्नति में भी योग दिया था। और कितने ही हिन्दू आख्यानो और ग्रन्थों को फारसी में अनूदित किया था। हिन्दुओं द्वारा फारसी में लिखित मसनवियां भी मिलती है[2] जिनमें कृष्ण चन्द्र इकलास, बनवारी दास वली, सियालकोटी मल, जसवंत राओ, मुशी शिवराम हया, तनसुख राव शोक, आनन्दवन और टीकाराम की रचनाएँ प्रसिद्ध थीं।

जोबन समुद्र सीप तिन्ह माहीं। स्वात बूँद रस पायस नाहीं॥
जिन्ह हुत लिये स्वाति कर बुन्दा। टिकत न अजहुँ सम्पुट मूदा॥
कवल कली पै सुरज न देखा। मुख बांधे निकसी तिन्ह रेखा॥
—'नलदमन' : सूरदास :

१' घूँघट खोलि अधर रस चाखा। मैन विअपार हैन राखा॥
कंचुकी खोलि अकमलावो। करयो अङ्ग उमङ्ग बढ़ाओ॥
गहत लंक विरहै गढ़ तजा। जाई पावरी पर फाड़ो धजा॥
नौबत बाजे लागु नगारा। बीछीआ घुघुरन भा झनकारा॥
मैंन भंडार जाइ उधारा। लेह कुंजी जनु खोला तारा॥
दो० भरी सेज रुधिर सो विरह का भा संहार।
अङ्ग अङ्ग सभ सभ भा जीत नौसत सिंगार॥
'पुहुपावती'

२.

सम्राट	कवि का नाम	पुस्तक का नाम
अकबर	भवन	नलदमन्ती की कथा।
अकबर और जहाँगीर	राजा मनोहर दास	मसनवी : सराव ने अपनी पुस्तक 'वफा' में इनकी बड़ी प्रशंसा की है।

इस प्रकार मोगल काल में महाभारत, रामायण, बैताल-पचीसी से लेकर लोक-प्रचलित काल्पनिक और ऐतिहासिक कथानक फारसी में रूपान्तरित किये जा रहे थे। इस प्रयास के पीछे मुगलों की हिन्दुओं को समझाने की नीति परिलक्षित होती है। अकबर की धार्मिक नीति ने दोनों सम्प्रदायों को बहुत निकट ला दिया था।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस आपसी लेन-देन में दोनो की कृतियों में सांस्कृतिक सामजस्य परिलक्षित होता है।

शाहजहाँ	चन्द्रभान, उपनाम (ब्रहमन)	'चहार चमन' इसकी तुलना अब्दुल फैजी के "ईशा" से फारसी विद्वानों ने की है।
औरंगजेब	शिवराम (हया) हजारी हजारी (गुरुबक्श)	कामरूप कामलता की कथा का अनुवाद।
,,	सुखराज (सबकत) आनन्द	खजानए अमीरा।
	आनंद राम (मुखलिस)	,, ,,

इनके अतिरिक्त लखनऊ और बिहार में भी हिन्दू लेखकों के नाम मिलते हैं।

नवाब	कवि का नाम	पुस्तक का नाम
जहानदर शाह	मधुराम, भगवानदास (मकी शरीफ के शिष्य)	इंशा
,, ,,	लाला मुस्तक राय	रामायण महाभारत का अनुवाद
,, ,,	हकीम आनन्द (थानेश्वर के)	कृष्ण चरित।

इनके अतिरिक्त स्वतन्त्ररूप में कृपाराम खत्री की रगीन बहार जिसमें 'भस्म' और 'दारा' की पुत्रो की प्रेम-कहानी मिलती है, उदितचंद कायस्थ की किस्सए नौरोजे शाह में 'अरेबियन नाइट्स' के आधार पर कहानियाँ मिलती हैं, बनवारी के 'गुलजारे हाल' में प्रबोध चन्द्रोदय का अनुवाद है। रूप नारायन ने 'शाहे जिहात' लिखी जिसमें एक ही कहानी तनिक हेर फेर से छः कहानियों के रूप में परिवर्तित हो जाती थी। 'सिंहासन बतीसी' का अनुवाद चतुर्भुज दास ने अकबर के समय में, बिहारीमल ने जहांगीर के समय और कृष्णदास वासुदेव ने औरङ्गजेब के समम में किया था।

"Hindu contribution to Persian Literature. By M.L Roy.' Journal of the Bihar Orissa Research Society. Vol. XXIX, 1943. Page 122

यदि संतुलित दृष्टि से देखा जाय तो इन आख्यान-काव्यों में उपनिषद से अपभ्रंश और चारण-काल तक चली जाती हुई कथाबन्ध सम्बन्धी रुढ़िगत परम्पराओं का अनुसरण ही विशेष रूप से परिलक्षित होता है। वही राजा या रानी अथवा राजकुमार वा राजकुमारी की कहानियां, वही पशु पक्षियों, देवी-देवताओं तथा अप्सराओं का आश्चर्य तत्व के लिए प्रयोग, वही आदर्शवादी या कवि न्यायमय (Poetic Justice) दृष्टिकोण, वही प्रिय पात्र को पाने के लिए दुख उठाना सभी कुछ उसी प्रकार मिलता है। केवल युग की सांस्कृतिक भाव-भूमि के संयोग से उनमें उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का रंग कुछ गहरा निखर उठता है, यही कारण है कि हिन्दू प्रेमाख्यानों में सम्वत् १००० से लेकर १६०० तक की भक्तिकालीन और रीतिकालीन दोनों प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं।

छन्दविधान के क्षेत्र में हिन्दू प्रेमाख्यानों को अपभ्रंश की देन पुष्कल है। बहुतायत से मात्रिक छन्दों का प्रचलन सबसे पहले अपभ्रंश ने किया जो हिन्दी काव्यसंगीत का आधार भूत तत्व बना। संस्कृत काव्य का संगीत वर्णों और गणों के आरोह अवरोह की योजना पर आधारित था जिसे लोककण्ठ ने सरल किया और मात्रिक आधार पर तुकान्तों के नाद सौन्दर्य पर उसका विकास किया। दोहा इस तरह का पहला छन्द है। जिस प्रकार 'अनुष्टुप' संस्कृत का और गाथा प्राकृत का प्रतीक है उसी प्रकार दोहा अपभ्रंश का। विकास-क्रम की दृष्टि से दोहा गाथा का ही विकसित रूप है। यह ध्यान देने की बात है कि दोहा भी गाथा की तरह विषम चरणों वाला छन्द है।

दोहा के बाद हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में जो छन्द सर्वाधिक प्रचलित रहा वह चौपाई है। अपभ्रंश में इस प्रकार का अडिल्ला छन्द प्राप्त होता है। वह चौपाई की तरह सोलह मात्राओं का होते हुए भी अन्त में दो गुरु की अपेक्षा दो लघु का प्रयोग करता है।

हिन्दी में चौपाई-दोहा के बाद रोला-छप्पय अधिक प्रयुक्त हुआ। रोला छन्द सभी रसों के उपयुक्त समझा जाता था, शायद इसीलिए इसका दूसरा नाम काव्य भी मिलता है। अपभ्रंश में यह 'काव्य' के नाम से मिलता है। अपभ्रंश में 'उल्लाला' का प्रयोग सदैव रोला छन्द के बाद तो नहीं हुआ है परन्तु 'घत्ता' के रूप में यह अवश्य आया है। इनके अतिरिक्त सोलह मात्रा का पंज्झटिका छन्द बहु प्रयुक्त रहा है। अडिल्ला से इसमें यह विशेषता है कि इसमें आठ मात्राओं पर यति के पूर्व दो लघु आते हैं और अन्त में गुरु लघु। अपभ्रंश

में 'घता' नाम से इकतीस मात्रा का एक छन्द प्रयुक्त है[1]।

अपभ्रंश चरितकाव्यों में अडिल्ला, रड्डा, पंज्झटिका छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इन छन्दों की कुछ पंक्तियाँ रखकर एक घता जोडकर एक कड़वक पूरा होता है—कभी-कभी कडवक के प्रारम्भ में हेला, दुवई, वस्तु आदि छन्द भी प्रयुक्त होते हैं[2]।

हिन्दू प्रेमाख्यानों में उपरोक्त छन्दों का बाहुल्य मिलता है और उनका क्रम भी लगभग चरित काव्यों के आधार पर ही मिलता है। हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि इनके अतिरिक्त हिन्दी के अन्य छन्द मिलते ही नहीं। हिन्दी के महत्वपूर्ण छन्द सवैया, घनाक्षरी, कवित्त आदि का प्रयोग तो सम्वत् १८०० के उपरान्त बहुत अधिक मिलता है पर कहने का मतलब यह है कि अपभ्रंश काव्य के भाव और छदों ने एक ऐसी पीठिका तैयार कर दी थी कि हिन्दी काव्य अपने विकास के लिए स्वतंत्र मार्ग निकाल सके।

यहाँ अलंकार योजना के विषय में भी एक बात कह देना आवश्यक है वह यह कि जहाँ हिन्दू कवियों ने अप्रस्तुत योजना के लिए सामग्री भारतवर्ष से ली है वहीं फारसी के प्रभाव के कारण प्रेम-प्रसंग में उन्होंने रक्त मांस आदि का जुगुप्सा मूलक वर्णन भी किया है[3]।

शैली के क्षेत्र में भी उन्होंने मसनवी शैली को किसी-किसी काव्य में अपनाया है—ऐसे काव्य अधिकतर सूफी 'प्रेमाख्यानों' की परम्परा से प्रभावित हैं। छन्द, शैली तथा धार्मिक मतान्तरों के प्रभाव के अतिरिक्त इन काव्यों में परम्परागत साहित्यिक रुढ़ि का अनुसरण भी मिलता है जैसे मंगलाचरण के उपरान्त कवि-परिचय, शाहेवक्त की वन्दना (मसनवी शैली के काव्य में) नगर, वाटिका और

---

१. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग
नामवर सिंह पृ० २०२-२०३।

२. अपभ्रंश के चरित काव्य—
रामसिंह तोमर विश्वभारती खण्ड ५ अङ्क २ अप्रैल, जून १९४६।

३. सूरज कान्ति भुज कवल हथौरे। राते जौ रहुर जो बोरे।
उवा नगर बन सुठ रहर चुंचाते। बैरिन रहर पियत न अघाते।

अथवा

जो जिऊ काढ़ हाथ पर लेई, सो तिन हाथन दिस्ट करेई।
पहरे वाहु टास सलोने; डोलत बांह दोलह कत लोने।

'नलदमन'

महल का वर्णन, नखशिख, प्रेमिका की विरह व्यंजना में परम्परागत उपमान और उत्प्रेक्षाएँ एवं अवस्थाएँ, युद्ध में पुरुष के शौर्य और पराक्रम का चित्रण, कथा का सुखान्त होना और अन्त में रचना का महात्म वर्णन तथा आध्यात्मिक सकेत।

अस्तु, हिन्दू प्रेमाख्यानों ने महाभारत उपनिषद् तथा जैनियो के चरित-काव्यों और लोक-गीतो में प्रचलित कथाबन्ध की परम्परा को ज्यो का त्यों अपनाया जिनमें किसी राजा, रानी अथवा विप्र ब्राह्मण की कथा वर्णित होती है और प्रियपात्र को पाने की कठिनाइयों का वर्णन किया जाता है। इन आख्यानों में प्रेम का प्रारम्भ भी गुण-श्रवण, चित्र दर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन एव स्वप्न-दर्शन से होता है तथा इन्हीं कथाओं की तरह आश्चर्य तत्व के संयोजन में पशु-पक्षियों, गन्धर्व किन्नरों एवं अप्सराओं तथा शिव या पार्वती का सहारा लिया है।

इसी कथा के सगठन में हमें संहिताओं, आगमों एवं पंचरात्र तत्र तथा बौद्धों के अनेक मत-मतान्तरों और विश्वास के दर्शन भी मंत्र, तंत्र, यत्र यौगिक क्रिया आदि के रूप में होते हैं। शाक्तो तथा सूफियों और वज्रयानियों का प्रभाव उनके प्रेम के भोग तत्व (सेक्स) में लक्षित होता है, जो मोगलकालीन भोग-विलास के वातावरण के प्रभाव से अमर्यादित हो गया है। उपनिषदों के पुनर्जन्म वाद की योजना उन्होंने पूर्वापर प्रेम के वर्णन में अपनाई है।

छन्द योजना में हमें अपभ्रंश के चरित काव्यों का प्रभाव परिलक्षित होता है और अलंकारों के क्षेत्र में जहाँ उपमा आदि में भारतीय वस्तु या दृश्य का विधान हुआ है वहाँ साथ ही साथ फारसी के अप्रस्तुत विधान की सामग्री एवं शैली का भी समावेश है।

शैली के क्षेत्र में उन्होंने पुराणों की प्रश्नोत्तर शैली, जातकों की पशु-पक्षियों के वार्तालाप की शैली, कथाकारों की वर्णनात्मक शैली एवं मुसलमानों की मसनवी शैली को अपनाया है। जो सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इन आख्यानों को हमारी जातीयता के विकास का एक महत्वपूर्ण अंग कहना असंगत न होगा।

प्रेम-व्यंजना

प्रेम वह मानसिक क्रिया है जिसका ध्येय आनन्द है। अन्तरायों के कारण 'रति' व्यापार में जितना ही अधिक विघ्न पड़ता है कामवासना और भी परिमार्जित हो उतना ही प्रेम का प्रखर रूप धारण करती है। इसी परिमार्जन के प्रसाद से 'रति' को प्रेम की पदवी दी गई है। नर-नारी इसी शक्ति के वश आनन्दमय विवाह-बन्धन में आबद्ध होते हैं, यही उन मधुर प्रभावों की सत्ता और उद्गम का कारण है, जिनसे पवित्र से पवित्र, उच्च से उच्च और निःस्वार्थ से निःस्वार्थ भावनाओं और कर्मों को बल और स्थिति प्राप्त होती है, इन मधुर प्रभावो द्वारा सम्पूर्णतया आदर्श प्रकृतियों में सुधार तथा उच्चता सम्पादित होती है, जिस मनुष्यता का लक्ष्य प्रत्येक उच्च पवित्र प्रेरणा से है वह मनुष्यता इन्हीं मधुर प्रभावों के दृढ़ बन्धनो द्वारा जकड़ी रहती है।

सृजन की आह्लादमयी प्रेरणा केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं, वरन जड और अन्य चेतन प्रकृति में भी उसके दर्शन होते हैं। इसी प्रेरणा से जाग्रत होकर ग्रीष्म की प्रखर किरणों से तप्त भूमि दूर क्षितिज में बादलों के शीतल स्पर्श से सोंधी उसास लेकर लहलहा उठती है, फूल अपने सौन्दर्य और सुगन्ध को प्रकट करते हैं, पक्षीगण अपने चमकोले पर धारण करते है, झिल्ली की झंकार और कोयल की कूक अपने साथी के आह्वान के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

मनुष्य की वर्ण प्रियता, उसकी कला और संगीत के सौन्दर्य और मधुरता पर प्रेम, कविता में लालित्य के प्रति अनुराग, नयनाभिराम चित्रों का भला लगना यह सब ईश्वर दत्त उसी प्रेम के कारण है।

अस्तु प्रेम 'विधेयात्मक सहानुभूतिमय और सत्य है'। यह सबसे अधिक व्यापक स्थायी उपयोगी है। इसमें स्वार्थ का अभाव संपूर्ण आत्म त्याग और तन्मयता की पराकाष्ठा है। इन्हीं कारणों से शृंगार-रस को रसों का राजा कहा जाता है। यही कारण है कि नौ रसों में सबसे अधिक वर्णन शृगार रस का पाया जाता है। संसार के साहित्य में शृंगारमयी कविता का प्राधान्य है। शृंगार रस का स्थायोभाव प्रेम है। यही कारण है कि शृगार रस की कविता में वैवाहिक सम्बन्ध की ओर संकेत या उसका वर्णन रहता है।

हिन्दी काव्य को जिन भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से होकर चलना पड़ा है

उनका प्रभाव भी उस पर पूरा-पूरा पड़ता रहा है और उसकी प्रेम-व्यंजना भी बदलती रही है। वीर-गाथा काल में जो प्रेम की व्यञ्जना हुई वह यद्यपि गौण रूप में आती थीं तथापि वह किसी वीर गाथा को अग्रसर करने में प्रमुख होती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय के कवियो ने प्रेम को सामान्य रति भाव के रूप में लिया है अतएव वीर गाथा-काल की प्रेम व्यञ्जना में कोई अलौकिकता नहीं है।

प्रेम की अलौकिकता का आरम्भ भक्ति से होता है। मध्य युग में "प्रेम साधना" की लहर सम्पूर्ण भारत को प्लावित करने लगी थी। दक्षिण भारत में आळ्वारों, बगाल में बाउलों के गीत प्रेम की रहस्यमयी अभिव्यञ्जना कर रहे थे। सोलहवीं शती के आस पास उत्तरी भारत में सूफी सन्तों ने प्रेम की पीर का अलख जगाना प्रारम्भ किया तो दूसरी ओर "सहजिया वैष्णवों" की आह्लादमय प्रेमानुभूति जयदेव के "गोत गोविन्द" और विद्यापति की "पदावली" से होती हुई कृष्ण भक्तों की वीणा की मधुर झंकार में फूट पडी। इस प्रकार हिन्दी काव्य के इस युग में "काम" ने भी दो रूप धारण कर लिए जिसमें एक तो वैष्णव अथवा नागर रूप है दूसरा सूफी अथवा रहस्यमय रूप। इसी को हम चाहें तो यों भी कह सकते है कि एक परोक्ष रूप है तो दूसरा प्रच्छन्न रूप। परोक्ष रूप से हमारा तात्पर्य यह है कि "भागवतो" ने जो राधा कृष्ण की लीला को लिया वह उनके लिए परोक्ष प्रेम ही था। उस प्रेम को वे लोग ठीक ठीक उसी रूप में नहीं देख पाते थे जिस रूप में किसी नायक-नायिका के रूप हम प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखते हैं। उनकी इस प्रेम-व्यञ्जना में अलौकिकता इस बात में है कि इसके नायक नायिका अलौकिक हैं। राधा कृष्ण की प्रेम व्यञ्जना में 'अलौकिकता' दिखाने के लिए "रति" व्यापार को अलौकिक बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ी उन लोगों ने अलौकिक व्यक्तियों को ही लौकिक प्रेम में लीन दिखाया और इस बात की आशा की कि इस प्रेम ही के गुण-गान से उनकी गति हो जाएगी और राधा कृष्ण के प्रसाद से वे तर जाएँगे। कृष्ण और राधा से सम्बन्धित प्रेम व्यञ्जना में यदि राधा और कृष्ण का नाम हटा कर किसी अन्य नायक-नायिका का नाम रख दिया जाए तो यह प्रेम शुद्ध लौकिक प्रेम ही कहा जा सकता है।

राधा कृष्ण की प्रेम व्यञ्जना यहाँ तक तो सीधी रही है किन्तु यह एक दूसरे क्षेत्र में जाकर वह कुछ गुह्य हो जाती है। इस गुह्यता में राधा कृष्ण व्यक्ति नहीं प्रतीक के रूप में आ जाते हैं। कृष्ण तो राम का रूप धारण कर लेते हैं

और राधा व्यक्ति विशेष अथवा साधक का। कबीर आदि निर्गुण सन्तों ने प्रेम की व्यञ्जना इसी गुह्य रूप में की है। इस प्रेम-पद्धति में प्रिय और प्रिया का सम्मिलन किसी भूमि में नहीं किन्तु सहस्रदल कमल में होता है। इस प्रेम व्यञ्जना में "सती" और "सूरमा" प्रतीक के रूप में हमारे सामने आते हैं जिन-में प्रेम का महत्व इसी में अधिक व्यक्त होता है कि वे प्रेम-पथ पर बड़ी दृढ़ता के साथ अग्रसर होते हैं और उसी की प्राप्ति में अपने को मिटा देते हैं। यह प्रेम सामान्य भूमि से अलग पड़ जाता है और विषयवासना की ओर से हटा कर एक शुद्ध और शुष्क साधक बना देता है। इस प्रेमव्यञ्जना में तल्लीनता, तन्मयता और रस की सच्ची अनुभूति तो नहीं होती, वरन् वह गुह्य और प्रतीक पर आश्रित है।

हिन्दी में प्रेमव्यंजना का एक और भी रूप मिलता है वह है सूफी सम्प्रदाय की प्रेमव्यञ्जना। यह व्यञ्जना किसी सामान्य नायक-नायिका के रूप में की जाती है। प्रसङ्ग तो सामान्य प्रेम का ही रहता है, किन्तु बीच-बीच में रहस्य के कुछ ऐसे सकेत किए जाते है जिससे हमारे हृदय में भी इसी के प्रति प्रेम का उदय होता है और हम भी अपने आपको एक विरही के रूप में पाते हैं। यह भी एक प्रकार से परोक्ष अथवा गुह्य प्रेमव्यञ्जना ही हुई। इस प्रेमव्यञ्जना में विशेषता यह रहती है कि इसमें लौकिक और अलौकिक दोनों एक साथ चलते हैं। दोनों ही इष्ट होते हैं। एक को हटा कर दूसरे को स्थित नहीं किया जाता। दोनों की स्थापना होती है और दोनों अपने-अपने स्थान पर अपना महत्व दिखाते हैं। इस प्रकार जिन सूफी कवियों ने किसी कथा को लेकर रचना की है उन्होंने प्रस्तुत कथा में अप्रस्तुत की ओर सकेत किया है। उसमें इस अलौकिक प्रेम की व्यञ्जना पात्रों के द्वारा हुई है।

भक्तिकालीन प्रेमव्यञ्जना का यह रूप रीतिकाल में पहुँच कर तत्कालीन भोगविलास के वातावरण और फारसी संस्कृत और साहित्य की शृंगारिकता के सन्निवेश से आकाश से पृथ्वी पर उतर आया। इस युग में आध्यात्मिकता का प्रकाश विलुप्त हो चला था हिन्दुओं की आर्थिक स्थिति भी शोचनीय हो चली थी, आन्तरिक (आध्यात्मिक) अभिव्यक्ति का ही। उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ घर की चहारदीवारी में ही सीमित रह गईं। राजाओं के रनिवास में केलि और विलास की सरिता दोनो कूलों को तोड़ कर बहने लगी, निदान विलास के केन्द्र बिन्दु "नारी" के पद प्रक्षालन को ही कवियों ने अभीष्ट समझा। कामवृत्ति की अभिव्यक्ति पूर्ण स्वच्छन्दता के साथ होने लगी। अतएव रीतिकाव्य की शृङ्गा-

रिकता और प्रेमव्यञ्जना में गोपन अथवा दमन की प्रवृत्ति नहीं मिलती। उसमें स्वीकृत रूप से शरीर सुख की साधना है, जिसमें न आध्यात्मिकता का आरोप है न वासना के उन्नयन अथवा प्रेम को अतीन्द्रिय रूप देने का अनुचित प्रयत्न ही। रीतिकाव्य की प्रेम व्यञ्जना मे भी प्रेम की एक-निष्ठता न होकर विलास की रसिकता ही प्रायः मिलती है।' उसमें भी सूक्ष्म आन्तरिकता 'की अपेक्षा स्थूल शारीरिकता का प्राधान्य है इस प्रेम व्यञ्जना में दूसरी बात यह ज्ञातव्य है कि इसका स्वरूप प्रायः सर्वत्र ही गार्हस्थिक है। इसका कारण यह है कि रीतिकाव्य भारतीय शृङ्गार परम्परा का ही स्वाभाविक विकास है। उस पर बाह्य प्रभाव बहुत कुछ पड़ा जरूर लेकिन उसके मूल तत्व सर्वदा भारतीय ही रहे। "भारतीय शृङ्गार परम्परा का इतिहास साक्षी है कि वह पूर्वानुराग, संयोग, प्रवास, करुणा, विप्रलंभ सभी दशाओं में अपने गार्हस्थ्य तत्व को बनाए रहे इसी परम्परा म होने के कारण रीति कविता का शृङ्गार, दरबारी प्रभाव में रहते हुए भी अपना सहज स्वरूप बनाए रहा। उसमें नागरिकता तो आई परन्तु दरबारी वेश्या-विलास अथवा बाजारू हुस्नपरस्ती की बू नहीं आई[१]। परकीया की प्राप्ति यहाँ दूती दासी आदि की सहायता से सर्वथा घरेलू रीति मे ही होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी काव्य में प्रेम की व्यञ्जना वीरगाथा-काल में सामान्य रति भाव में मिलती है, यह रति भाव भक्ति-काल में एक ओर राधा और कृष्ण के अलौकिक सम्पर्क से अलौकिकता की ओर संकेत करता हुआ भी लौकिक स्तर से ऊँचा नहीं उठता तो दूसरी ओर निर्गुणियों सन्तों और सूफियों की साधना पद्धति में गुह्य और रहस्यमय बन जाता है। इस प्रेमव्यञ्जना में मानसिक-पक्ष प्रधान है और लौकिक गौण, किन्तु रीतिकाल की प्रेमव्यञ्जना शुद्ध कामवृत्ति के उन्नयन और शारीरिक सुख का प्रकाशन करती दिखाई पड़ती है।

इसके अतिरिक्त 'प्रबन्धों' में दाम्पत्य प्रेम का आविर्भाव वर्णन करने की साधारणतः पाँच प्रकार की प्रणालियाँ प्रचलित थीं। पहली वह जिसमें विवाह हो जाने के उपरान्त प्रेम का स्फुरण और चरम उत्कर्ष जीवन की विकट परिस्थितियों में दिखाई पड़ता है।' दूसरी वह जिसमें विवाह के पूर्व नायक-नायिका संसार के क्षेत्र में घूमते हुए कहीं उपवन, नदी-तट, वीथी, वाटिका इत्यादि में एक दूसरे को देख कर मोहित हो जाते हैं, फिर नायक की ओर से नायिका को पाने का प्रयत्न होता है। इसी प्रयत्नावस्था में ही संयोग-वियोग

---

१. रीति काव्य की भूमिका डा० नगेन्द्र पृष्ठ १७४।

आदि का सन्निवेश कर कवि दोनों के विवाह पर कथा की समाप्ति कर देता है। तीसरी वह जिसमें राजाओं के अंतःपुर में, उद्यान आदि के भीतर भोग-विलास या रंग-रहस्य के रूप में प्रेम अंकित किया जाता है। ऐसी प्रेम-पद्धति में सपत्नियों के द्वेष, कलह, विदूषक आदि के हास-परिहास और राजाओं की स्त्रैणता के दृश्य अधिक मिलते हैं। चौथे प्रकार के प्रेम में उसका स्फुरण गुण-श्रवण चित्र-दर्शन स्वप्न-दर्शन आदि से होता है और नायक के प्रयत्न से दोनों के मिलने के बाद अन्त विवाह में होता है। पाँचवें प्रकार का प्रेम किसी अप्सरा या गणिका से होता है किन्तु ऐसे प्रेम में स्थायित्व नहीं मिलता संयोग के उपरान्त इस प्रकार की प्रेमपद्धति में कथा का अन्त वियोग में ही होता है। अप्सराओं के प्रेम-सम्बन्ध की कहानियाँ पुराणों में अधिकतर मिलती हैं जैसे उर्वशी और पुरूरवा आदि के आख्यान।

हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यान को इस प्रकार पांच प्रकार की प्रेम पद्धति और वीरगाथा कालीन भक्ति एवं रीतिकालीन प्रेम-व्यंजना, परम्परा के रूप में प्राप्त हुई थी।

इन कवियों ने तीसरी प्रकार की प्रेम-पद्धति अर्थात् जिसमें राजाओं के अन्तःपुर के विलासी वातावरण का ही वर्णन रहता है (को छोड़ कर) अन्य चारो प्रकार की पद्धतियों को दाम्पत्य प्रेम के आविर्भाव के वर्णन के लिए अपनाया है। 'सत्यवती की कथा', 'छिताई वार्ता', 'चन्दन मलय गिरि वार्ता' 'ढोला मारू रा दूहा' में प्रेम विवाह के बाद प्रस्फुटित होता है। 'माधवानल कामकन्दला' में अप्सरा और गणिका के प्रति प्रेम का उत्कर्ष दिखाया गया है। 'नल दमयन्ती' में और 'उषा अनिरुद्ध' की कथाओं में प्रेम का स्फुरण गुण-श्रवण चित्र-दर्शन एवं स्वप्न-दर्शन से होता है। 'पुहुपावती', 'मधुमालती', 'प्रेम-विलास', 'प्रेमलता कथा' में प्रेम का प्रारम्भ उपवन वाटिका या चटसार में नायक-नायिका के प्रत्यक्ष दर्शन से होता है। रही विवाह के पूर्व प्रेम की बात वह 'ढोला मारू रा दूहा', 'सत्यवती कथा' और 'चन्दन मलय गिरि वार्ता' को छोड़ कर सबमें अबाध रूप से पाई जाती है।

जहां तक इन प्रेमाख्यानों में प्रेम के स्वरूप की रूपरेखा निखरी है वह प्रधानतः शारीरिक पक्ष-प्रधान है, चुम्बन, आलिंगन तथा रति के अनावृत्त वर्णनों की प्रधानता लक्षित होती है, कारण कि यह काव्य वैष्णवों की रागानुगा भक्ति, वज्रयानियों की कुमारी-साधना, रीतिकालीन कवियों के नायिका भेद और मोगलकालीन भोग-विलास के वातावरण से विशेष रूप में प्रभावित हुए। इनका प्रणयन अधिकतर "रीतिकाल" के बीच में हुआ है अस्तु समय की लोकरुचि

और तत्कालीन काव्यरूढ़ियों का प्रभाव इन पर पड़ना आवश्यक था। दूसरी बात यह है कि इन काव्यों के नायक और नायिका साधारणतः कल्पित या इतिहास और लोक प्रसिद्ध पात्र हैं जिनके ऐहिक जीवन में प्रेम सम्बन्धी आने वाली कठिनाइयों के वर्णन के साथ-साथ लक्ष्य प्राप्ति के उपरान्त दाम्पत्य सुख के लाभ का चित्रण ही इनका वर्ण्य विषय था। यह प्रेम की अलौकिकता और परोक्ष-सत्ता की प्रेम द्वारा रहस्यमय अनुभूति का प्रतिपादन करने नहीं बैठे थे। वरन् सांसारिक प्रेम को शुद्धि, आनन्दमयी अनुभूति के आगे वे जप-तप को भी कोई महत्व प्रदान नहीं करते।

वैनी को दरस कुच सम्भु परस,
जहां माधुरी सो अधर रस पीजिए।
आनंद मगन ह्वै मिटै दुख दाह सब,
कल्पलता सी उर लाइ जस लीजिए।
"पुहुकर" विलोके मुख पायो है अमर पद,
लागे ना पलक धारी चाहि चित्त दीजिए।
भेटिए मुक्त हार, कंचुकी मुक्त भई,
ऐसी प्रमुदिता को तजि कौन तप कीजिए।

"रसरतन"

इसी प्रकार "बोधा" अमरता और "अमृत" को तरुणी की तरंगों में ही निहित देखते हैं।

कोइ कह्यो अमृत कवित्तन के निवेदन में,
कविन बतायो प्रेम गान में लसतु है।
प्रेम गान, अमृत बतायो फनिन्द हू के,
फनिप बतायो छपाकर में बसतु है।
छपाकर बतायो अमृत साधुन की संगति में,
साधुन बतायो वेद ऋचा दरसतु है।
वेद ऋचा अमृत बतायो हमें बुद्धसेन,
तरुणी की तरल तरंगनि बसतु है।

"विरहवारीश"

यही नहीं यह कवि नारी के मांसल उपभोग के प्रति इतने आकृष्ट दिखाई पड़ते हैं कि उनके जीवन का दृष्टिकोण ही नारीमय हो उठा है। मानव-जीवन की उत्कृष्टता, सार्थकता और पूर्व जन्म के पुण्यों के फलों का अन्तिम लक्ष्य ही

जैसे सिमट कर दाम्पत्य प्रेम में इनके लिए समाहित हो गया है, इसीलिए तो वह कहने में नहीं हिचकते कि—

तौ लौं तौ जीवो भलौ कहां सांझ कहँ भोर।
जौ लौं प्यारी बगल में कर में उरज कठोर॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कवियों की प्रेमव्यञ्जना में प्रेम का सीधा सांसारिक वर्णन मिलता है जो शुद्ध मानवीय भावनाओं से पूरित है।

जैसा कि हम पहले कह आए हैं कि इन काव्यों की रचना रीतिकाल यानी सं० १७०० से १६०० के बीच में अधिक हुई है इस कारण, इन्हें रीति कालीन शृंगारिक प्रवृत्तिया थाथी के रूप में मिली थीं। रीतिकालीन मुक्तक रचनाओं मे, रति, विपरीत रति, केलि-युद्ध आदि के वर्णनों में कामवृत्ति की जो अभिव्यक्ति स्वच्छन्द रूप में पाई जाती है उसी का अनुसरण इन कवियों ने विवाह के उपरान्त अथवा प्रेमिका और प्रिय के प्रथम मिलन की रात्रि के वर्णन में खुल कर किया है। इन वर्णनों में कामान्ध नर-नारी के केलि का जो चित्र मिलता है उसमें न आध्यात्मिकता का आरोप है न वासना के उन्नयन अथवा प्रेम को अतीन्द्रिय रूप देने का उचित अनुचित प्रयत्न ही। ऐसे वर्णनों में शृंगारिकता है, प्रेम की एकनिष्ठता न होकर विलास की रसिकता ही प्रायः परिलक्षित होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कवियों को रतिसंग्राम का रूपक बड़ा प्रिय था इसलिए सभी प्रबन्धों में इस विषय पर सांगरूपक का आयोजन मिलता है। प्रथम समागम के लिए जाती हुई एक नायिका का एक चित्र देखिये जिसमें उल्लास-हास के साथ-साथ प्रेम का अथाह समुद्र उफनता दिखाई पड़ता है।

कोप काम जीतन मनु चली, चढ़ी गयंद गौन पर अली।
आँगा अङ्ग अङ्गी उजियारी, चीर खमक कुच पाखर डारे।
भौह धनुक बरुनी ते आनी, खरक दसन दुति अधर मसाना।
ठाड़ तिलक जमधर अनियारे, मानिक साँग गह सीस उदारे।
सोही चमक आरसी रही, बाएँ हाथ ढाल जनु गही।
नैन चपल है कोतल कांछै, काजल बाग लगै पुनि आछै।
पवन लाग अंचल फरहरा, सोई जान ध्वजा के धारा।
कटक कटाच्छ न जाँह गिनावा, छुद्र घण्ट मारू जनु गावा।
रोमावलि कमान अडोला, ढिगही कुच कंचन कै गोला।

"नलदमन"

अब केलि के वास्तविक युद्ध का भी दूसरा चित्र अवलोकन कीजिए जिसमें रति के सटीक वर्णन के साथ-साथ कवि ने एक चलचित्र सा उपस्थित कर दिया है।

क्वारे जैत वारे के बरै या कुच
मल्ल युद्ध के करैया काहू टारे न टरत हैं।
सुभट विकट जुरे जंघ बलवान तै,
भुजन सो लपटि न नेकु विहरत हैं॥
बोधा कवि भृकुटि कमान नैना बान दार,
तीक्ष्ण कटाक्ष भर शैल से परतु हैं।
दंपति सो रति विहार विहरत,
तहाँ घायल से पायल गरीब कहरतु हैं॥

किसी-किसी काव्य में रति का अनावृत्त ही नहीं सश्लिष्ट वर्णन भी मिलता है जो कहीं-कहीं अमर्यादित हो गया है जैसे—

आदर सहित सेज पर आना। लेइ कर पान खाओ पाना॥
घूँघट खोल अधर रस चाखा। मैन विअपार मन राखा॥
कंचुकि खोल अङ्गमलावो। कापौं अङ्ग उमङ्ग बढ़ावो॥
गहत लंक विरहै गढ़ ताजा। जाई पँवरी पर गाड़ो धजा॥
नौबत बाजे लागु नगारा। विछीआ घूघरन भा झनकारा॥
मैन भण्डार जाइ उघारा। लेई कुंजी जनु खोला तारा॥
दो० भरी सेज रुधीर से, विरह का भा सँहार।
अङ्ग अङ्ग भङ्ग भा जीत नौ सत सिगार॥

"पुहुपावती"

ऐसे ही नलदमन में भी वही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है जैसे—

सम्पुट बँधी कली खिल गई। सिज्जा पर बसन्त ऋतु भई॥
हना वियोग होरी का जारा। कीन्ह बखान जौन विधि मारा॥

कुछ काव्यों में तो विपरीत रति का भी वर्णन मिलता है जैसे—

के विपरीत रची रति केलि कला। घन ऊपर ज्यों चमकै चपला॥
बिथुरी लट आनन रूप लसै। रजनी तम को रजनी सुलसै॥

"रसरतन"

अथवा

संभोग करत विपरीत रति। तिय खै छातै धरि अमित गति।
कटि लचकि उचकि कुच कठिन कोर। जब मचकि अङ्क धरियत किसोर॥

झंकार होत पायल निसद्द। कोकिल रव कूकत केलि नद्द॥

"उषा-अनिरुद्ध"

उपर्युक्त दाम्पत्य प्रेम की व्यंजना के अतिरिक्त इन काव्यों में स्वच्छन्द प्रेम (Romantic love) की व्यंजना भी हुई है। यह प्रेम के पुजारी कवि प्रेम के आगे संसार के मान-अपमान की बिना चिन्ता किए हुए प्रेम-पथ पर अग्रसर होने वाले व्यक्ति को सच्चा प्रेमी मानते थे। उनका कहना है कि एक बार जिसके शरीर में प्रेम की अग्नि प्रज्वलित हो उठी फिर वह मनुष्य प्रेम के अतिरिक्त संसार की किसी बात की ओर ध्यान नहीं देता। लज्जा और प्रेम एक साथ रही नहीं सकते।

नेह जहाँ लज्जा नहीं लज्जा नेह निवास।
राज लाज सब छांड़ि कै पूजै मन की आस॥

और जब किसी वस्तु की लज्जा ही नहीं तब मान अपमान की बात उठाना ही बेकार है। प्रेम-पन्थ में मिलने वाले उस व्यवहार की जिसे संसार के प्राणी अपमान कहते हैं वह एक प्रेमी के लिए सम्मान है।

प्रेम मान अपमान सो अपमान मोरे अभिमाना।
जो सो होइ प्रेम सम्माना सो अपमान मान में माना॥

"नलदमन"

इसीलिए तो प्रेमी को कुल कानि की लाज माता-पितादि के वर्जन-तर्जन की चिन्ता नहीं रहती। नलदमयन्ती की कथा में दमयन्ती स्पष्ट शब्दों में कहती है।

सब सों लरोंगी कानि कुल की तरोंगी।
मातु पिता सों दुरोंगी करि केतिक जंजाल को॥
आगि में जरोंगी विष खाइ के मरोंगी।
या नलै वरोंगी न वरोंगी दृगपाल को॥

"माधवानल कामकंदला", "प्रेम विलास", "प्रेमलता कथा", "राजा चतुरमुकुट की कथा" एवं "मधुमालती" के आख्यानों में इसी स्वच्छन्द-प्रेम की व्यंजना हुई है। माधव एक उच्च कुलीन ब्राह्मण होते हुए भी वेश्या के प्रेम में रत होकर संसार की अन्य नारियों एवं विक्रमादित्य के रनिवास की सुन्दरियों को ठुकरा देता है। ससार कुछ भी कहे किन्तु वह वेश्या के प्रेम से डिगना नहीं जानता, इन्द्रपुरी की अप्सरा जयन्ती, इसी आख्यान में देवताओं को छोड़ कर मनुष्य के प्रेम में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है, उसे न इन्द्र के वज्र का डर है और न उनका भय वरन् इस प्रेम के कारण शापित होकर वह प्रसन्न दिखाई

पड़ती है। 'मधुमालती' में राजकुमारी 'मालती' 'मधु' के प्रेम के आगे पिता को ठुकरा देती है। 'प्रेमलता' 'प्रेमविलास' के लिए घर से भाग जाने में नहीं हिचकती और 'रानी चन्द्र कुंवरि' 'चतुर मुकुट' के लिए राजदरबार में लोक-लाज को त्याग कर उसके प्राणदान के लिए भीख मांगती है। इन सबसे महत्व-पूर्ण है 'चन्द्र कुंवर री बात' की कथा। इस काव्य में एक 'विवाहिता स्त्री' काम की असह्य वेदना को न सह सकने के कारण अपरिचित, राजकुमार 'चन्द्र-कुँवर को अपनी सखी के द्वारा एक रात्रि में अपने शयनकक्ष में बुला कर रमण करती है। दोनों के भोग विलास की यह क्रिया एक वर्ष तक चलती रही और फिर कुमार उसे छोड़कर अपने पिता के घर लौटकर दूसरा विवाह कर लेता है। हिन्दी-काव्य में यह प्रेमाख्यान सामाजिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। कवि ने प्रेम सम्बन्धी एक नई अभिव्यञ्जना का आश्रय इस काव्य में लिया है जो भारतीय दृष्टि से बड़ा हीन कहा जा सकता है किन्तु उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। कहने का तात्पर्य यह है कि इन काव्यों में सामाजिक बन्धनों, रूढ़ियों, परम्पराओं और मर्यादाओं से परे, स्वच्छन्द प्रेम की भी अभिव्यञ्जना प्रतिध्वनित होती है।

यहां तक तो हुई लौकिक-प्रेम की अभिव्यञ्जना की बात। इन प्रेमाख्यानों में प्रेमव्यञ्जना का एक और भी स्वरूप मिलता है वह है सूफ़ी सम्प्रदाय की प्रेमव्यञ्जना जो 'गुह्य' और 'प्रतीक' पर आश्रित है। 'नलदमन' 'पुहुपावती' नलदमयन्ती चरित्र में ऐसे ही प्रेम की प्रधानता है। इन रचनाओं में गुरु और शिष्य का सबन्ध[१], मायावाद[२], संसार की अनित्यता[3], अद्वैतवाद[४], हठयोगी[५]

१. गुरु बिनु सिधि ग्यान नहिं होई, गुरु बिन पार न लागै कोई।
'नलचरित्र'

२. तन वेसा मनु इमि कहै माया बड़ौ न कोइ।
यही विधै बिधि जगत गयो आप कह खोइ।
'नलदमन'

३. जगत 'अनित्य कमहिं नीरा। केवल विमल नाम हरि हीरा।
कामिनि कनक और हय हाथी। ये तो नाहीं संग के साथी।

४. तुमही सर्व मईं हहु सामी। तुमही हहु प्रभु अन्तरजामी।
'नलचरित्र'

५. "दुती कहा कुंअर तुम राजा। साधहु जोग सो कौने काजा।
काहे न चढ़हु प्रेम के पन्था। तन वस्तर सोइ करु कन्था।
'पुहुपावती'

क्रियाएँ एवं संयोग-पक्ष (वस्ल) तथा प्रियतमा में परमात्मरूप का संयोजन सब उसी प्रकार का मिलता है जैसा कि जायसी आदि सूफी कवियों में।

इन्होंने भी नखशिख वर्णन में भारतीय प्रतिबिम्बवाद का प्रतिपादन किया है जैसेः—

जाकी दिस्टि परी वह कौंधा। नैनहि लागि रहे तिन्ह चौंधा॥
पाहन रतन होइ सो जोती। होंह संजोत न जाते मोती॥
मोरे जान विहंस जब बोली। वहै चमक चपला भइ डोली॥
'पुहुपावती'

इसी प्रकार प्रियतमा मे परमात्मस्वरूप की अभिव्यंजना दमयन्ती के नखशिख वर्णन में देखने योग्य हैः—

"त्रिवली तीन वेद जसु छाजै। जोतिष शास्त्र दिस्टि जनु राजै॥
वेद अर्थ रोमावलि जासू। वेद खण्ड भुज सोह अहइ॥
अधर सुधर सोई जनि अहई। पुनि जाहि शास्त्र मिमांसा कहई॥
"नलचरित्र"

लौकिक प्रेम के द्वारा परोक्ष अथवा गुह्य प्रेम की व्यंजना का रूप रति (वस्ल) के निम्नांकित वर्णन में मिलता है—

"हंसि नृप तन ते कचुकी सारी। करही करही लिए उतारी॥
स्वेदभाव सात्विक भावा। पद पच्छालन मनहुँ चढ़ावा॥
चुंबन अधर आचमन सोई। मुख पंकज आमोहित होई॥
गंध पुहुप के सम से भासे। रोम राजि लसि धूप धुआसे॥
नख पति दुति दीप सरिस दुति। कुच जुग पदुक मनहु नेवज॥
"नलचरित्र"

भागवतों ने राधा-कृष्ण की लीला को लेकर लौकिक प्रेम को जो अलौकिकता नायक-नायिका के अलौकिक होने के कारण प्रदान की थी और जिसकी महिमा सूरदास आदि कृष्णभक्तों में मिलती है उस रूप के अलौकिक प्रेम की व्यंजना भी हिन्दू प्रेमाख्यानों में हुई। पृथ्वीराज की "वेलि", "उषा-अनिरुद्ध" की कथाओं तथा नन्ददास की रूप-मंजरी में प्रेम का यही स्वरूप निखरा है। अन्तर केवल इतना है कि राधा के स्थान पर यहाँ रुक्मिणी, उषा, रूपमंजरी नायिका के रूप में आती हैं। दोनों ही लौकिक नारियाँ हैं इसलिए इन काव्यों के रचयिताओं को इन काव्यों के अन्त में यह कहना पड़ा है कि इन काव्यों को पढ़ने वाले दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से छुटकारा पा जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि सूफियों और "सहजिया वैष्णवों" की गुह्य अथवा रहस्यात्मक प्रेमव्यञ्जना का स्वरूप भी हिन्दू "प्रेमाख्यानों" में निखरा है। किन्तु इन आख्यानों की मुख्य प्रवृत्ति शुद्ध सांसारिक दांपत्य प्रेम की अभिव्यञ्जना की ओर ही विशेष उन्मुख है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह 'कवि प्रेम को केवल विलास के ही रूप में देखते थे अथवा उनका प्रेम बाजारू प्रेम और अय्याशी का सूचक था। इसके बिलकुल प्रतिकूल वे प्रेम को उच्च महान आदर्शात्मक और पवित्र भावभूमि पर अवस्थित देखते थे। प्रेम को वे साधना और तपस्या का फल मानते थे। इस पथ की कठिनाइयों से वे अनभिज्ञ न थे। वे समझते थे कि यह प्रेम का पंथ तलवार की धार से भी तेज और मृणाल के तार से भी सूक्ष्म है।

'अति छीन मृणाल के तारहुँ ते तेहि ऊपर पांव दै आवनो है।
सुई बेह कै द्वार सकै न तहां परतीत को टाँड़ो लदावनो है।
कवि बोधा अनी घनी बेजहुँ ते चढ़ि तापै न चित डुलावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल है जू तरवार की धार पै धावनो है।

"विरहवारीश"

प्रेम के पथ पर चलने वाला कोई बिरला ही सफलता पा सकता है, कारण कि यह अगम अगाध समुद्र के समान है और इस समुद्र में एक बार पड़ कर किनारा पा लेना अति दुष्कर कार्य है—

"खड्ग धार मारग जहाँ गंग जमुन दुहुँ ओर।
प्रेम पंथ अति अगम है निबहत हैं नर थोर।
"पुहुकर" सागर प्रेम को निपट गहिर गंभीर।
यह समुद्र जो नर परै बहुरि न लागै तीर।"

"रसरतन"

इसीलिए तो प्रेमी का जीवन सुखी नहीं होता उसका शरीर दिन-दिन घुलता रहता है। विरहाग्नि में नित्य झुलसता रहता है, नेत्रों से सदैव अश्रुधार प्रवाहित रहती है, और आंसुओ के इसी समुद्र में उसकी जीवन नौका को तिरना पड़ता है इस पर भी अगर प्रियतम की प्राप्ति न हो तो प्रेमी के लिए सिवाय अपने में ही घुट-घुट कर रह जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रह जाता—

दाहिये विरहानल दावन से नित पावन तावन को सहिये।
चहिये सुख तो लहिये दुःख को हगवार पयोनिधि में बहिये।

कवि बोधा इतै पै हितू न मिलै मन की मन ही में रहिये।
गहिये मुख मौन भई सो भई अपनी करि काहू सो का कहिये।

'विरहवारीश'

किन्तु यह विरहाग्नि भी तो सहज में नहीं प्राप्त होती, इस अग्नि को पाने के लिए और उसकी पूर्णानुभूति के लिए शरीर के पाचो तत्वों को साधने की आवश्यकता है इसलिए कि प्रेम एक उच्च पर्वत की चोटी के समान है उसके शिखर पर वही पहुँच सकता है जिसने आत्म-संयम का पालन किया हो।

कहेसि सुनहु अब राज कुमार प्रेम पंथ होइ उच पहारा।
तहाँ चढ़े पंथ बनावा दिरिस्ट न परै वार के भावा।
तेहि पहुँचे सोई पाचौं भूत जो साधै कोई।
सधै न जो पाँचौं माही चढ़त गिरै तहं पहुँचे नाहीं।

'पुहुपावती'

किन्तु एक बार जिसके शरीर में प्रेम की यह पवित्र-अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, वह अजर-अमर हो जाता है तथा उसे विषय वासनादि से छुटकारा मिल जाता है--

जिहितन प्रगट प्रेम तन कीनो।
सो तन अजर अमर कर दीनो।
विहि तनु जोग भोग नहि पावै।
तिहि तन सदन सुरत नहिं आवै।
विषय तत्व सब तिहि तन त्यागो।
केवल प्रेम प्रीति रस पागो।
कठिन पंथ जिहि अन्त न पायो।
बहु विधि विविध तबहुँ विधि भायो।

'रसरतन'

यही नहीं एक बार जिसके हृदय में सच्चा प्रेम जागृत हो गया फिर वह किसी भी प्रकार हटाए न हट सकता है न मारे मर सकता है।

"प्रेम अमर यह मरै न मारा बुझै न प्रेम अगिनि चिनगारा।
वेई वेद पुरानहं गाई जिन मन प्रेम उरझ उरझाई।
नाहित ऐसे गिरा हिरानी प्रेम बिना कछु न बखानी।

"नलदमन"

वीर यही सच्चा-प्रेम चारों पदारथ का दाता भी है ।

"धरम अरथ और काम पुन मुकति पदारथ चार ।
प्रेमहि करि साधित सकल प्रेम समन को सार ॥

"प्रेम पयोनिधि"

प्रेम की इसी महत्ता के कारण ही तो योग, 'जप, तप, तीर्थ, स्मृति, पुराण, आदि सभी प्रेम के अधीन होकर उसके चरणों में लोटा करते हैं ।

"सिम्रित पुरान स्रुत सासन सकल सोध,
बोध लै प्रबोध परिपूरन भगे रहे ।
मुंडित जटिज्ञ ब्रिन्द रिसि मुनि म्रिगिंद,
मारुत अहारी आठो जाम जे जगे रहे ।
साधन के मोर समै ठौर ठौर थोथर हूवै ॥
दौर दौर प्रेम जू के पायन लगे रहे ।

"प्रेम पयोनिधि"

प्रेम की इसी महत्ता के कारण ही इन कवियों के प्रेम के प्रति जो उद्गार मिलते हैं उनमें व्यंजित प्रेम किसी भी प्रकार निम्नस्तर पर नहीं दिखाई पड़ता वह शुद्ध, सात्विक, महान कल्याणकारी, सुख का दाता और शुद्ध आत्मा की सच्ची आत्मानुभूति है ।

इन कवियों की प्रेम व्यंजना के सम्बन्ध में उनके नारी और समाज के प्रति दृष्टिकोण पर भी विचार कर लेना समीचीन प्रतीत होता है ।

स्वभावतः रीतिकालीन कवियों की तरह इन कवियों का नारी के प्रति दृष्टिकोण सामन्तीय है जिसके अनुसार वह समाज की एक चेतन इकाई न हो कर बहुत कुछ जीवन का एक उपकरण मात्र है । इन काव्यों का श्रृंगार एक चेतन व्यक्ति का दूसरे चेतन व्यक्ति के प्रति सक्रिय आकर्षण, वास्तव में कम है, व्यक्ति का एक सुन्दर उपभोग वस्तु के प्रति निष्क्रिय आकर्षण अधिक है । यह ठीक है कि रस-प्रसंगों में नारी भी सक्रिय नहीं दिखाई पड़ती, एक प्रकार से वह किसी-किसी काव्य में (ढोलामारू रा दूहा, नलदमयन्ती चरित्र, चन्द्रकुंवर री बात, मधुमालती) पुरुष की अपेक्षा अधिक सक्रिय है । पुरुष को प्रायः हम उसके चरणों में सर रख देते हैं परन्तु इस सबका अर्थ फिर भी यह नहीं होता कि इन प्रेम-काव्यो में नारी का कोई स्वतंत्र प्रेरक अस्तित्व है । उसकी समस्त सक्रियता, सारी चेष्टायें वास्तव में उसकी उपयोगिता में श्रीवृद्धि करने के ही निमित्त प्रदर्शित की गई हैं । नारी के अस्तित्व, उसके प्रेम, विरह, सुख-

दुख, हाव-भाव, लीला-विलाप का एक ही उद्देश्य है, उसके आकर्षण को समृद्ध करते हुए उसको अधिक से अधिक उपभोग्य बना देना। पुरुष पर अवलम्बित नारी ही इन कवियों को प्रिय है उनका कहना है कि स्त्री कितनी ही सुन्दर गुणज्ञ क्यों न हो, किन्तु पुरुष के बिना उसका कोई अस्तित्व ही नहीं। प्रेम पयोनिधि में शशिकला की माँ उसे शिक्षा देते हुए कहती है—

यद्यपि तू अतिरूप उजागर, सुन्दर विदित भुवन गुन सागर।
तउहुँ तिय जगदीश बनाई, पर अधीन श्रुति सिम्रित गाई।
कैसी हू होय सुघर वर नारी, अति रूपवन्ती उजियारी।
पै पति बिन गति नाहि लहत है, सास्तर सिम्रित वेद कहत है।

"प्रेम पयोनिधि"

पुरुष की स्वतन्त्रता और नारी की परन्त्रता की भावना को तुलसी के शब्दों में व्यक्त करते हुए मृगेन्द्र कहते हैं।

"विधि कत नारि रची भव मांहि, पराधीन सपने सुख नाही।
जनमत मात, पिता बस चारी, जोबन मांहि पति के अनुसारी।
ब्रिध भये सन्तति अधीना, यहै सदा मग नाहि नवीना।"

पुरुष के बिना आश्रय के स्त्री का उत्थान हो ही नहीं सकता। इस ओर सकेत करते हुए कवि कहता है:

"करता कौन सयानप कीन्हों, लता सहज बनिया को दीन्हों।
ढिग द्रुम होइ तो तापुर चढ़ेइ, अरउ अकाश पटतर लहई।

"मधुमालती"

"पुहुपावती" में तो कुमार असह्य कठिनाइयों के सहने के उपरान्त भी "पुहुपावती" को पा जाने के बाद उसे एक ब्राह्मण याचक को दे देने में नहीं हिचकता। कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का वर्णन इन काव्यों में तत्कालीन स्त्री सम्बन्धी मान्यताओं के अनुरूप ही मिलता है। कवियों ने उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया है।

इस शृंगारिकता के विषय मे दूसरी बात यह ज्ञातव्य है कि इसका स्वरूप प्राय: सर्वत्र ही गार्हस्थिक है। हिन्दू प्रेमाख्यानों पर बाह्य प्रभाव पड़े अवश्य लेकिन उसका मूलतत्व सर्वदा भारतीय ही रहा। भारतीय शृंगारपरम्परा पूर्वानुराग, संयोग, प्रवास, करुणा, विप्रलम्भ सभी दशाओं में वह अपने गार्हस्थ्य तत्व को बनाए रहा है। इन प्रेमकाव्यों में नागरिकता तो आई परन्तु

दरबारी वेश्या विलास बाजारी-हुस्नपरस्ती नहीं आ पाई। इस प्रेम में स्वकीया प्रेम का ही माहात्म्य मिलता है। गणिका के प्रेम को माधवानल कामकन्दला में स्वकीया में परिणत कर दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन प्रेमाख्यानों में शृंगारी विलास उच्छृङ्खल होते हुए भी गार्हस्थिक वातावरण से बाहर कभी नहीं हुआ। कुल और शील की छाया उस पर किसी न किसी रूप में सदैव रही और पारिवारिक सम्बन्ध की पवित्रता अक्षुण्ण बनी रही। इसलिए यहाँ नायिका की प्राप्ति दूती, दासी, मालिन आदि की सहायता से सर्वथा घरेलू रीति से ही होती है।

अस्तु इन कवियों ने सामाजिक नियमों का उल्लघन नही किया है वरन प्रेम के द्वारा उन्होंने सती-नारी के महात्म्य और गार्हस्थ्य जीवन के सुख के चित्रण कर सामाजिक नियमों और रूढ़ियों की रक्षा की है। यही नहीं इन काव्यों के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने की भी प्रवृत्ति लक्षित होती है। उदाहरण के लिए 'रमणशाह छबीली भठियारी की कथा' को लीजिए, इसमें एक मुसलमान राजकुमार का विवाह हिन्दू सामन्त की कन्या से हिंन्दुओं की शास्त्रीय रीति से कराया गया है, जो इस बात का प्रमाण है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के भेद-भाव मिटा कर दोनों में 'रोटी-बेटी' का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न उस समय प्रारम्भ हो चुका था।

इसी प्रकार 'लैला मजनू' की शामी कथा को लेकर कवि 'सेवाराम' ने मजनूं की अग्नि-परीक्षा के सम्बन्ध में उसका साम्य प्रह्लाद की पौराणिक-घटना से स्थापित किया है। सूफियों से प्रभावित काव्यों में निराकार और साकार ब्रह्म दोनों की उपासना मिलती है।

मुसलमानों के एकेश्वरवाद या खुदावाद और हिन्दुओं की मूर्ति पूजा एवं बहु देवपूजन की प्रथा का अद्भुत सम्मिश्रण इन उपमित काव्यों में मिलता है। इस प्रकार इन काव्यों मे संस्कृतियों के समन्वय का परिचय प्राप्त होता है।[१] अस्तु हम यह कह सकते हैं कि इन काव्यों ने प्रेम व्यंजना के द्वारा सास्कृतिक सामजस्य (**Cultural Synthesis**) भी स्थापित करने का प्रयत्न किया है।

जैसा कि हम पहले कह आए है कि इन काव्यों में प्रेम का शारीरिक-पक्ष अथवा विलास की भावना साथ-साथ उत्तान और अनावृत्त शृंगारिक चित्रों की बहुलता है इस कारण श्लील और अश्लील का भी प्रश्न उठता है। यह

१. देखिए 'पुहुपावती', 'नलदमयन्ती', 'नलदमन' की प्रारम्भिक स्तुतियाँ।

सत्य है कि इन काव्यों में मर्यादा का उल्लंघन कहीं-कहीं हो गया है।

बीसवीं शताब्दी के आलोचक ऐसे अंशों को समाज के नियमों के विरुद्ध कह सकते हैं और हमें आज वह ऐसा लगता भी है किन्तु किसी भी समय की रचनाओं की आलोचना करते समय हमें उस युग की प्रवृत्तियों को न भूल जाना चाहिये। इन काव्यों का प्रणयन रीतिकाल में अधिकतर हुआ था इसलिए इनमें तत्कालीन लोक-रुचि की छाया मिलती है। संभवतः उस युग में रति के अनावृत वर्णन समाज में बहिष्कृत अथवा अश्लील नहीं समझे जाते थे, रीति-कालीन कविता इस बात की साक्षी है।

इसके अतिरिक्त छिताई वार्ता में[1] रनिवास की चित्रसारी में मांग सम्बन्धी चित्रो के अंकित करने की प्रथा भी मिलती है अगर उस समय की यह रीति न होती तो कवि इसका उल्लेख कभी न करता। कतिपय देवालयों जैसे पुरी में जगन्नाथ के मन्दिर अथवा बनारस के नैपाली मन्दिर एवं दक्षिण के देवालयों की भित्तियों पर ऐसे चित्र आज भी उत्कीर्ण मिलते हैं जो इस बात के प्रमाण हैं कि आज से कुछ दिनों पूर्व काम-क्रीड़ा के चित्र मन्दिरों में अश्लील और अमर्यादित नहीं समझे जाते थे। यही नहीं उसमान की 'चित्रावली' में काम-शास्त्र का एक खंड ही मिलता है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि इन काव्यों में तत्कालीन रुचि या काव्य प्रवृत्ति ही मिलती है जो उस युग के अनुसार अश्लील नहीं थी। फिर इन काव्यों का प्रणयन वयस्क लोगो के पढ़ने और सुनने के लिए हुआ था इसलिए समाज को इनसे कोई विशेष हानि नहीं पहुँचती।

कहना न होगा कि इन प्रेमाख्यानों की प्रेमव्यंजना में हमें प्रेम की महत्ता, विशालता और उसके कल्याणकारी रूप की व्यंजना, इनकी प्रेम सम्बन्धी उक्तियों में मिलती है। सांसारिक-प्रेम का विलासमय और केलि-प्रधान रूप दाम्पत्य-प्रेम सम्बन्धी वर्णन में लक्षित होता है। ईश्वरोन्मुख प्रेम उपमित काव्यों की रहस्यमयी व्यंजना में निहित है एवं स्वच्छन्द प्रेम के दर्शन बीच-बीच में आए हुए प्रसंगों अथवा पात्रों के क्रिया-व्यापारों में पाया जाता है। इतना होते हुए

---

१. देखी कोक कला खाति। चउरासी आसन की भाँति॥
आसन चिन्ह विविध प्रकारा। सुभ विपरीत रंग रस सारा॥
आसन देखत खरी लजाई। अंचल मुँह महि दीन्ही मुस्कयाई॥
सखी दिखावहिं बांह पसारि। कहो कहा कहा विचारि॥
"छिताई वार्ता"

भी इन कवियों ने प्रेमव्यंजना के द्वारा प्रेम के गार्हस्थ्य रूप को बनाये रखा है, सामाजिक रूढ़ियाँ और मान्यताओं का उल्लंघन न कर उनकी पुष्टि की है और किया है हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेद-भाव को मिटा कर सांस्कृतिक सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न। इसीलिए इन काव्यों की प्रेमव्यंजना साहित्यिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण और रुचिकर है।

लोकपक्ष

हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों में प्रेम से पीडित राजकुमारी और राजकुमारों के संयोग-वियोग पक्ष, उनकी मानसिक और दैहिक क्रियाओं का चित्रण प्रधान है, किन्तु जीवन के इस संकुचित क्षेत्र के अन्तर्गत लोक-रीत और नीति के ऐसे स्थल मिलते हैं जो तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों, विश्वासों और रीति-रिवाजों के मूल्यांकन में सहायक हैं। अस्तु इन प्रेम प्रबन्धों के लोकपक्ष का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।

सर्व-प्रथम इन काव्यों के प्रेम तत्व को ही लीजिए। सारे प्रेमाख्यान पति-पत्नी के स्वाभाविक प्रेम-क्रीड़ा का ही अंकन करते हैं, उनमें आसुरी रीति से विवाह करने अथवा केवल वासना जनित प्रेम का चिह्न भी नहीं मिलता। यदि हम सामाजिक दृष्टि से इन काव्यों की परीक्षा करें तो केवल दो काव्य[1] ऐसे मिलते हैं जिनमें नायक का प्रेम दूसरे की विवाहिता पत्नी से दिखलाया गया है, किन्तु यहाँ पर भी कवि ने परिस्थिति आदि का चित्रण करके उसका कुछ परिमार्जन किया है। ऐसे आख्यानों का अभाव इस बात का संकेत है कि इन कवियों को सामाजिक मर्यादा का ध्यान था। अधिकतर कवियों ने अपने को ऐसी अनुचित परिस्थिति से बचाया ही नहीं है प्रत्युत सतीत्व के उच्च-आदर्श की प्रशंसा एवं प्रतिष्ठा की है। पौराणिक और कल्पित या ऐतिहासिक सभी आख्यानों में दाम्पत्य-जीवन के इस पक्ष को उच्च स्थान दिया गया है। विरह-वारीश में कंदला माधव को दूसरी नायिका में रत देख कर कहती है कि 'यदि प्रियतम को दूसरे से प्रेम है तो वह स्त्री मेरे लिए स्वामिनी के समान है। मैं उसके चरणों को झावाँ लेकर साफ करूँगी, उसे नहलाऊँगी और उसके शरीर में तेल लगाऊँगी मैं उसका श्रृङ्गार करके शय्या पर बैठा लूँगी और स्वयं उसको पंखा झलूँगी।''

"जो प्यारी पिय के मन प्यारी, सो स्वामिनी सो बेर हमारी।
ताके चरण झवां लै झांऊ, अन्हवाउ अरु तेल लगाऊँ।
सजौ श्रृंगार सेज बैठारो, अपने कर विजना तेहि ढारों॥

---

१. चन्द्र कुँवरि री बात–रूपमंजरी।

इस कथन में सौतिया डाह, जलन और वैमनस्य की गन्ध भी नहीं आती वरन् प्रेम की पवित्र-धारा हिलोरें लेती दिखाई पडती है, क्योंकि आर्य ललना की इस भावना से कि "युवती के पति एक है, पति को युवति अनेक" से वह प्रेरित है। पत्नी की पति के प्रति अनन्य भक्ति और कर्त्तव्य निष्ठा का एक और उदाहरण लीजिए।

"मन वच क्रम कीजै पति सेवा।
रति तै और वियों नहीं देवा॥
जौ निश्चै पतिव्रत मन धरहीं।
सो तिरिया भव सागर तरहीं॥

इसी सम्बन्ध मे यहाँ एक बात और कह देना अप्रासंगिक न होगी, वह यह कि इन काव्यों में गणिका के प्रेम का भी अङ्कन किया गया है। जो इस बात का द्योतक है कि वेश्या प्रेम की सामाजिक स्थिति से यह कवि अनभिज्ञ न थे। माधवानल कामकन्दला के सभी आख्यान इस प्रेम पर ही अवलम्बित है लेकिन कन्दला को जयन्ती अप्सरा का अवतार अङ्कित कर इन कवियों ने ऐसे प्रेम को बाजारू स्तर से ऊँचा उठा कर आदर्श प्रेम की कोटि में पहुँचा दिया है।

इसी प्रकार हमें जहाँ पतिव्रत धर्म का विचार मिलता है, सती स्त्री की प्रतिष्ठा मिलती है, वहीं एकपत्नी व्रत नायकों का भी परिचय प्राप्त होता है। माधवानल कामकन्दला में माधव सदैव एकपत्नी व्रत नायक के रूप मे ही अङ्कित मिलता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम के लोक-पक्ष के सम्बन्ध में इन कवियों ने वैयक्तिक पारिवारिक और सामाजिक प्रेम सम्बन्धों का जो अङ्कन किया है वह इस तथ्य का द्योतक है कि प्रेमाख्यानों के इन कवियों ने समाज द्वारा निर्धारित, नीति, आचरण एवं मान्यताओं की जो सीमा निर्धारित है या कर्तव्य की प्रतिष्ठा है, उसका उल्लंघन कहीं नहीं किया है। प्रेम की स्वच्छन्द कल्पना को पूरा स्थान देते हुए भी इन कवियो ने सामाजिक मर्यादा का पूरा-पूरा पालन किया है।

एक बात अवश्य ध्यान देने की है वह यह कि प्रेमाख्यानों में स्त्री-वर्ग की प्रधानता होते हुए भी उनके सामाजिक-स्तर में कोई भी अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार था, किन्तु शिक्षित होते हुए भी वह पुरुषों की दासी के रूप में ही चित्रित मिलती है। उनका स्वतन्त्र-व्यक्तित्व पुरुष

के आगे कोई महत्व नहीं रखता । प्रेम पयोनिधि में शशिकला की माँ उसे शिक्षा देते हुए कहती कि स्त्री कितनी ही सुन्दर क्यों न हो किन्तु वह पराधीन है, बिना पति के उसका जीवन निरावलंब है ।

यद्यपि तूं अतिरूप उजागर । सुन्दर विदित भुवन गुन-सागर ॥
तउंहु तिय जगदीश बनाई । पराधीन स्रुति सिम्रति गाई ॥
कैसी हूँ होय सुघर वरनारी । अति रूपवंती उजियारी ॥
ये पति बिन नहि लहत है । सास्तर सिम्रित वेद कहत है ॥

"प्रेमपयोनिधि"

इसी भावना को 'तुलसी' के शब्दों में व्यक्त करता हुआ शशिकला का पिता कहता है कि विधाता तू ने स्त्री को कैसा बनाया है । पराधीन मनुष्य को स्वप्न में सुख नहीं मिलता । किन्तु बेचारी स्त्री जन्म से ही माता-पिता के वश रहती है युवावस्था में पति के आश्रय में उसे रहना पडता है और वृद्धावस्था में वह सन्तान के अधीन रह कर अपना जीवन काटती हैं ।

विधि कत नारि रची भव मांही । पराधीन सपने सुख नाहीं ॥
जनमत मात पिता बस चारी । जोवन मांहि पति के अनुसारी ॥
वृध भए सन्तति आधीना । यहे सदा मग नाहि नवीना ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि उस युग में स्त्री वर्ग की स्वतन्त्रता असहनीय थी किन्तु इसके प्रतिकूल पुरुष स्वतन्त्र था, वह जिस तरह का भी चाहे स्त्री के साथ व्यवहार कर सकता था । पुहुपावती में राजकुमार कथानक के अन्त में पुहुपावती को एक ब्राह्मण को दान दे देने में नहीं हिचकता, यद्यपि उसने इसी 'पुहुपावती' को पाने के लिए कठोर यातनाएँ सही थीं । राजा चन्द्रमुकुट और चन्द्रकिरन की कथा में अपने प्रेम की निष्फलता पर 'सेठ' चन्द्रकिरण को वेश्या के हाथ बेच देता है जो इस बात का द्योतक है कि उस युग में स्त्रियाँ अन्य वस्तुओं की तरह क्रय और विक्रय भी की जाती थीं । स्त्री-जाति की हीन स्थिति का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है ।

यही नहीं भारतवर्ष के हिन्दू घरानों में कुंवारी कन्या माता-पिता के लिए सदैव चिन्ता का कारण रही है । उन्हें उस समय तक सन्तोष नहीं होता जब तब कि उसका विवाह न हो जाए । छिताई वार्ता में छिताई की माँ इसी भावना से प्रेरित होकर कहती है कि 'घर में विवाहने योग्य कन्या होने पर लोग 'प्रपञ्च' करने लगते हैं जिसके घर में कुंवारी कन्या हो उसे रात में सुख की नींद नहीं आती वह सदैव चिन्ता में डूबा रहता है ।'

घरमाहिं कन्या ब्याहन जोगू। अरु भ्रम करह मीडिआ लोगू।
जाकै कन्या कुआरी होई। निस भरि नींद किसुई सोई।
कन्या रिन व्यापे पीरा। तिनके चिन्ता होइ सरीरा।

गार्हस्थ्य जीवन में स्त्री गृहलक्ष्मी के रूप में देखी जाती है उसी के सद्व्यवहार और कार्य कुशलता पर दाम्पत्य-जीवन का सुख निर्भर है एक बड़े परिवार में गुरुजनों परिजनों के साथ उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए, जिन गुणों से वह सर्वप्रिय बन सकती है इसकी जो सीख रंभावती को 'रसरतन' में दी गई है वह आज भी उतनी ही उपयोगी है जितनी कि कवि के समय में रही होगी। उदाहरण के लिए कुल बधू को बड़ों का आदर और कुलदेवता की पूजा करनी चाहिए।

प्रथम सिखावहि सुर गुर पूजा।
सील सुभाव सिखावहि पूजा॥

किन्तु उस पति के सामने आकर्षक बने रहने और लज्जा त्यागने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि गुरुजनों के सामने शील की, पति के सामने स्त्री को सजधज कर जाना चाहिए। दाम्पत्य सुख की प्राप्ति के लिए लज्जा का परित्याग करना स्त्री के लिए नितान्त आवश्यक है :

"डिठ कर लाज सिखावहि नारी। सुरति समय परिहरिये प्यारी॥
प्रति दिन मज्जन की सुकुमारी। अधिक बोय उपजहि रुचिकारी॥
तन सोभित सिंगार बनावहु। विधि विधि अङ्ग सुगन्ध लगावहि॥"

किन्तु इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी आवश्यकता है कोमल वाणी की, इसके बिना स्त्री का सारा सौन्दर्य निर्मूल हो जाता है कोमल वाणी ही उसका वशीकरण मंत्र है :

"वस्य करन रसना रस वाणी। औ सकल बस कही कहानी॥
मधुर बचन मधुरै सु बोलहु। मृदु विहँसन्त घूँघट पट खोलहु॥"

अस्तु एक सफल गृहणी के लिए मृदुभाषी होना, सौन्दर्य-युक्त विदुषी होना और रति रहस्य का ज्ञान नितान्त आवश्यक है, इसके बिना वह गार्हस्थिक जीवन के वास्तविक आनन्द का अनुभव नहीं कर सकती। उपर्युक्त उद्धरण जहाँ एक ओर एक सफल गृहणी के कर्तव्यों और व्यवहारों का परिचय देते हैं, वहीं तत्कालीन स्त्री समाज के नैतिक और व्यवहारिक जीवन के मान दण्ड को भी उपस्थित करते हैं।

भारतवर्ष में बहुविवाह की प्रथा बड़ी प्राचीन है इसलिए इन काव्यों में दक्षिण नायक सूफियों से प्रभावित काव्यों में अधिकतर पाए जाते हैं। जिस समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित है उसमें सपत्नी-कलह, स्त्री सुलभ ईर्षा-द्वेष

आदि का पाया जाना अनिवार्य है। इस सामाजिक प्रथा से उत्पन्न सामाजिक कलह का चित्रण भी इन प्रेमाख्यानों में मिलता है।

'ढोला मारू रा दूहा" में मालवणी और मारवणी का वाद-विवाद प्राप्त होता है। मालवणी मारवणी के देश की निन्दा करती है और मारवणी मालवणी के निवास स्थान का।

कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का वर्णन इन काव्यों में तत्कालीन स्त्री सम्बन्धी मान्यताओं के अनुरूप ही मिलता है, इन कवियों ने उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया है।

विवाह सम्बन्धी कतिपय हिन्दू रीति-रिवाज इन काव्यों में आज के समान ही मिलते हैं जैसे तेल मैन के समय गाई जाने वाली गालिया या अग्नि को साक्षी कर सप्तपदी की प्रथा, :—

"वेद मन्त्र द्विज करत उचारा। सपन सुहागिनि जाकर धारा॥
मलत उबटनों हरख अपारी। देव परस्पर रस की गारी॥
मंगल गान विविध कल गावत। दुहनि दूलह को उबटावत॥"
साखी बाँच अगिनि भगवाना। भांवत दीनि वेद विधाना॥
साखा पढ़ि द्विज परम सयाने। कुल त्रयालि का प्रगट बखाने॥
सपत पदी तब द्विजन कराई। बाव अङ्क तब कुबरि बिठाई॥
विद नारि किय मंगल गाना। त्रिपति तब कीन कनिक दाना॥
"प्रेम पयोनिधि"

विवाहोपरान्त बिदा होती हुई कन्या एवं उसके परिवार के रोने का चित्र, बिदा होती नारी की विवशता से उत्पन्न करुणामय वातावरण बड़े स्वाभाविक रूप से पुहुपावती और नलदमन में अंकित है—

'कोरा गहि जब कन्त बुलाये। सबही समद विवान चढ़ावे॥
रोवहं माई बाप महतारी। रोवहं सखी जिनहि अति प्यारी॥
सब रोवहं झंखह मन मांहा। बस न चलै चली धन ताहां॥

सामान्य जनता सदा से पशु-पक्षी की बोली और शकुन आदि पर विश्वास करती आई है, उसमें वह अपने कल्याण या हानि का आभास पाती रही है। आज भी भारतवर्ष के इस सामान्य जनविश्वास का चित्रण इन प्रेमाख्यानों में हुआ है जैसे शशिकला चन्द्रप्रभा से कहती है कि मेरे दाहिने अंग प्रातःकाल से ही फड़क रहे हैं, मुझे पथ पर अकेली मृगनी दिखाई पड़ी जो मेरा रास्ता काट कर खड़ी हो गई और मेरी ओर व्याकुल दृष्टि से देखने लगी फिर अपनी ही परछाई देखकर वह भड़क कर भागी। इसी प्रकार जब मैंने गृह में प्रवेश

किया तब किसी ने मेरी दाहिनी ओर छींका है अस्तु मुझे कुमार के लिये बड़ी चिन्ता हो रही है।

'आज अङ्ग सभ दाहिनी ओर ते। फरकत है अलि बड़ी मोर ते ॥
मग महि म्रिगनी निसर अकेली। पंथ चोर पुनि खरी दुहेली ॥
मो मुख ओर निरख आकुल भई। भर की लख अपनी परछाई ॥
उतरत जब निवास पगधर्यो। छीक उठ्यो तब दई मारो ॥

"प्रेमपयोनिधि"

अपने देश की स्त्रियों के रहन-सहन बोल-चाल रूप और वेश भूषा का चित्रण भी किया है जैसे ढोला मारू रा दूहा में मालवणी और मारवणी एक दूसरे के वेश की बुराई करते हुए वहाँ के जीवन के विषय में कहती हैं—

"जिन्होंने मारू देश में जन्म लिया है उन महिलाओं के दांत अत्यन्त उज्वल होते हैं, वे कुम्भ के बच्चों के समान गोरांगी होती हैं, उनके नेत्र खंजन के समान होते हैं। मरुस्थल बड़ा सुहावना देश है, वहाँ का जल स्वास्थ्यप्रद है और लोग मधुर भाषी होते हैं, यहाँ की भूमि वालुकामय होने से भूरी है, वन झंखाड़ है, वहाँ चम्पा नहीं उत्पन्न होता कुओं में पानी इतना गहरा है कि ऊपर से तारे की तरह नीचे चमकता दिखाई पड़ता है'

अथवा

'हे बाबा ऐसा देश जला दूँ, जहाँ पानी गहरे कुओं में मिलता है, जहाँ कुओं पर पानी निकालने वाले आधीरात को ही पुकारने लगते हैं जैसे मनुष्यों के मर जाने पर। बाबा मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत व्याहना जो सीधे-सादे पशुओं को चराने वाले होते हैं। वहाँ कन्धे पर कुल्हाड़ा और सिर पर घड़ा रखना होगा। वहाँ दिन भर हाथ में कटोरा और सिर पर घड़ा रखे पानी भरते-भरते मर जाऊंगी।

---

१. 'मारू देश उपन्नियाँ ताँह का दंत सुसेत।
कूम्भ बचां गौरंगियां जेहा नेत।
देश सुहावै जल सजल मीठा बोला लोइ।
मारू कामण मुई दखिण जह हरि दियइत होइ।
थल भूरा बन झंखरा नहीं सुचंपउ जाइ।
गुणों सुगन्धी मारुवी महकी सहु बणराइ।
ऊंडा पाणी कोहरे दीसै तारा जैस।'

२. 'बालू बाबा देसड़ा पाणि जिहां कुवांह।
आधीरत कुह कुड़ा ज्यउ' माणसा मुवाह।

उपर्युक्त अंशों में हमें राजस्थान निवासी जनसाधारण के जीवन का चित्रण मिलता है।

इनके अतिरिक्त दैनिक जीवन से सम्बन्धित कितनी ही सूक्तियाँ और नीति-वाक्य सभी रचनाओं में स्थान स्थान पर बिखरे मिलते हैं। जैसे जहाँ के पूर्वज सज्जन हों वहीं कन्या का विवाह करना चाहिए। ब्याह, वैर, मित्रता अपने से नीचे न करनी चाहिए।

"पुरखा गति सजनाह जिहां। निचइ कन्या दीजइ तिहां॥
व्याह वैर मित्री या प्रमान। एति न चाहीह आप समान॥"

अथवा

वैरी से आशा, ठाकुर से मित्रता न करनी चाहिए इसलिए कि इनका कोई ठिकाना नहीं, यह कभी मीठे, कभी तीखे होते हैं। *

"आसा वैसी न कीजइ। ठाकुर न कीज मीत॥
खिन तातो खिन सियरो। खिन वायर खिन मीत॥"

ऐसे ही एक ही जाति और गुण वालों के द्वारा ही मनुष्य दूसरों से काम निकाल सकता है।

"मृग थी मृग गहइ सब कोई। मइगल थी मइगल बस होई॥
तिअ थी भेज तिआ को लहइ। ऐसे चतुर सयाने कहइ॥"

हिन्दुओं में मुक्ति की कामना बड़ी प्रबल रही है, इसी को लक्ष्य करते हुए इन कवियों ने कहीं-कहीं कहा है कि गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों को पूरा कर अर्थात् एक सन्तान के उत्पन्न होने पर और इस प्रकार पितृ ऋण चुका देने पर मनुष्य को वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होना चाहिये।

"एक पुत्र जब होत सुजाना। बन में जाइ रहे जु निदाना॥
बन में जाइ समाधि लगावै। योनि जो देह मनुष्य की पावै।"

"नल-दमयन्ती चरित्र"

इसलिए कि इस मायामय संसार में कुछ सार नहीं, जो इसमें आकर फँस गया उसने अपना सब कुछ खो दिया।

"तय वेसा मनु हमि कहे। माया बड़ौ न कोइ॥
याही वीधै विधि जगत। गयो आव कह खोइ॥"

"नलदमन"

बाबा मा देह मारुवां वर कूआदि रहेसि।
हाथ कचोलो सिर घड़ो सीच ब्रांय मरेसि।"

जीवन का पथ कोई साफ सुथरा राजमार्ग नहीं है वरन् यह एक रपटीला मार्ग है जिस पर जीव अपने कर्मों और देह का घडा सर पर रखे चलता रहता है। उसके तनिक से भी चूकने पर फिसल कर गिर जाने की संभावना रहती है। ऐसी स्थिति में जीव अपनी पूंजी गवां कर खाली हाथ परमात्मा के पास पहुँचता है अर्थात् मोक्ष लाभ की अभिलाषा से जीव इस संसार में आया है उसे सांसारिकता में पड़कर वह भूल जाता है जिसके कारण उसे फिर आवागमन के चक्कर में पड़ना पड़ता है। इस आवागमन से छुटकारा पाने के लिए जीव को संसार में सदैव सतर्क होकर रहना चाहिए। कवि ने इस उक्ति में जहाँ भारतबर्ष में पनिहारियों के चित्र का अंकन किया है वहीं आवागमन और जन्मान्तरवाद के दार्शनिक तत्व का भी बड़ी सुन्दरता से स्पष्टीकरण किया है।

"माथे बोझ घाट रपटीली। रपट परे दुख होइ छबीली।
जो घट फोरि जाहु घर छूंछौ। का पुनि कहहुँ कंत जब पूछै॥"

× × ×

रपट फोरि घट खोई जल, बिन पानी बिल-लाहि।
पुनि धौं कब आवा चढ़ें, कब कुम्हार कहं जाहिं॥

"नलदमन"

प्रत्येक भारतीय को प्रारब्ध, भाग्य और कर्म पर विश्वास है। वह इस संसार की प्रत्येक घटना को भगवान अथवा भाग्य से नियन्त्रित समझता है, उसे अपने व्यक्तित्व पर उतना भरोसा नहीं है जितना की ईश्वर पर। वह कर्म करता है केवल कर्म करने के लिए वह चिंतित नहीं रहता इसलिए कि कर्मों के फल को वह ईश्वर प्रदत्त समझता है जिस पर उसका कोई भी वश नहीं। भारत के जन साधारण के दैनिक जीवन का यह दार्शनिक पक्ष इन काव्यो में बराबर मिलता है। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए कुछ कवियों ने संस्कृत के श्लोकों को जैसा का तैसा उद्धृत किया है और कुछ ने उसी आशय की अपनी मौलिक रचनाएँ कथानक के घटनाक्रम के बीच में रख दी हैं (कुछ कवियों ने सस्कृत के श्लोकों को जैसा का तैसा उद्धृत किया है और कुछ ने उसी आशय की अपनी रचनाएँ रखी है) यथा—

"उद्यति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे।
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः॥
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां।
न चलति विधि वश्या भावनी कर्म रेखा॥"

"माधवानल आख्यानम्"

"प्राप्ते वसन्त मासे ऋद्धिः प्राप्नोति सकलाबनराजिः
यत्र करीरे पत्रं तत् किं दोषो वसन्तस्य ॥

× × ×

माधवानल कथा (दामोदर)

जिनके भाग भलाइ या बुरी करे नहि कोय ।
मन में चिंता क्या करै होनी होइ सु होय ।"

'चतुरमुकुट की कथा'

"भागवद को फल देखि बड़े ठौर पहुँचे कहा ।
व्याल शंभु गल देखि ते समीर भखिकै जियत ।
बूड़े वूड़ा सहज है लीन्हों एकै गोत ।
कहा होष दरियात्र को भाग आपने होत ।"

"विरहवारीश"

इनके अतिरिक्त कुछ नीति विषयक सूक्तियो का भी अवलोकन कीजिए जैसे मनुष्य को दान, मन्त्र और अभिमान तथा संभोग विषयक बातों को कभी प्रकट न करना चाहिये नहीं तो उसे दुख उठाना पड़ेगा ।

"दान मन्त्र अभिमान काम कामा संग त्रियपगि ।
पुनि प्रीति रीति बोधा सुकवि प्रगट करत जे मन्द मति ।
कीजै इकंत ये मन्त्र सब भये प्रकट उपजत विपति ।'

"विरहवारीश"

ऐसे ही ज्वारी व्यभिचारी आदि को दया और कसक नहीं होती—

"ज्वारी व्यभिचारी मदी मांस अहारी कोय ।
इसके शोच संकोच नहि दया कसक नहि होय ॥"

"विरहवारीश"

जीवन परिवर्तनशील है । लक्ष्मी, हार जीत, प्रेम कभी एक रस नहीं रहते—

"द्रव्य न काहू की रही सदा रहै नहि प्रीति ।
कबहुँक रन में हारिये कबहुँ पाइए जीति ॥"

"नल-दमयन्ती, सेवाराम"

प्रेम के लिए रूप और सौन्दर्य ही आवश्यक नहीं है, इनके न होते हुए भी स्वभाव की साम्यता के कारण ही सच्चा प्रेम हो सकता है वही सच्चा प्रेम है ।

"गुन रूपहिं नहि ऐं चाही जग जानत जग रीति ।
तिय प्यारी के परस्पर प्रकृति "मिलै तौ प्रीति ॥"

उपर्युक्त उद्धरण जहाँ काव्य में सरलता लाते हैं वहीं इन कवियों के गूढ़ मानवस्वभाव का ज्ञान भी कराते हैं।

जहाँ इन कवियों ने रीति और व्यवहार पर अपने विचार प्रकट किए हैं वही इन्होंने हमारे समाज के आधारस्तम्भ गुरु और पुरोहित का आदर किया है। उनके अनुसार गुरु का आदर करना मनुष्य का परम धर्म है। ग्रन्थारम्भ की वन्दनाओं में ईश्वर के बाद गुरु की वन्दना भी उसी भक्तिभाव से की गई है। अधिकतर सूफी ढंग के काव्यों में यह प्रथा विशेष रूप से मिलती है। कथानक के बीच में भी गुरु माहात्म्य का वर्णन कम नहीं मिलता यथा—

"गुरु बिनु सिधि ग्यान नहिं होइ। गुरु बिन पार न लागै कोइ॥"

+ + +

गुरु की निन्दा करे जो कोई। ताकौ सिधि न कबहुँ होई॥'

+ + +

"गुरु कहु मात पिता बड भ्राता। गुरु है सकल सकल सिद्धि को दाता॥"
गुरु ते दाता और न कोई। गुरु प्रताप हरि मिलिहैं सोई॥"

आज भी जिस ज्योतिष और नक्षत्र के प्रभाव पर लोगों को विश्वास है उसी फलित ज्योतिष के प्रति तत्कालीन समाज की आस्था थी। इनका परिचय इन काव्यों में कुमार और कुमारियों के जन्म के सम्बन्ध में मिलता है। उस समय भी जन्म के बाद पुरोहितों को बड़े आदर और सम्मान के साथ बुलाकर सन्तान की कुण्डली बनवाई जाती थी और उनसे उनका भविष्य पूछा जाता था, जो फलित ज्योतिष में लोगों के विश्वास का प्रतीक है।

स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार था उन्हें वेदादि ग्रन्थों के अतिरिक्त नृत्य-कला, संगीत आदि की शिक्षा दी जाती थी। साथ ही उस समय सहशिक्षा का भी प्रचार था या वह समाज में मान्य मानी जाती थी क्योंकि मधुमालती और प्रेमविलास प्रेमलता कथा में प्रेम का प्रारम्भ चटसार से ही दिखाया गया है।

उस समय लोगों को भूत, प्रेत, अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर, मन्त्र, तन्त्र आदि पर विश्वास था यही कारण है कि इन काव्यों में पराप्राकृतिक शक्तियों का सहयोग कथा के घटनाक्रम के विकास में निरन्तर लिया गया है। "माधवानल कामकन्दला" में "बैताल" प्रकट होकर विक्रमादित्य को अमृत दान करता है। प्रेम पयोनिधि में दानव के द्वारा रंगीली और कुमार का मिलन सम्भव हुआ है। इसी प्रकार सूरजप्रभा से प्राप्त जादू की गुटका के कारण ही कुमार प्रेम पयोनिधि

में शशिकला को प्राप्त कर सका। "गणपति" द्वारा "रचित" माधवानल कामकन्दला में पुहुपावती की नारियाँ माधव को वश में करने के लिए तान्त्रिक प्रयोग करते अंकित की गई।[१] अप्सरा जयन्ती और कल्पलता की प्रेम-कहानी रसरतन और माधवानल कामकन्दला में मिलती है। ढोल मारू रा दूहा में ऊँट मनुष्य की बोली बोलता और समझता दिखाया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन काव्यों में मिलने वाले आश्चर्य तत्व का कारण तत्कालीन पराशक्तियों में विश्वास ही है।

भारतवर्ष में मनोविनोद के लिए पहेली बुझाने की प्रथा प्राचीन है। लोकगीतों में भी इसका बड़ा प्रचार है। कतिपय अपभ्रंश-कालीन काव्यों में राजकुमारों और राजकुमारियों का विवाह ही सम्भव हुआ है। इन कवियों ने भारतवर्ष में प्रचलित इस मानसिक मनोविनोद की प्रथा को परम्परा के रूप में अपनाया। पहेली बुझाने की प्रथा का आयोजन इन काव्यों में प्रथम-मिलन की रात्रि[२] के समय में मिलता है। सूफियों से प्रभावित काव्यों में तो अध्यात्म-तत्व का विश्लेषण पहेली के द्वारा ही कराया गया है।[३]

---

१. "शंकर पुठइ संचारी। सही सहेली साथ॥
पेखी रिषि रीसाविया। ज्योखिम जु जुगनाथ॥
प्रमदा जे पोतालणीं भरा भोगवई ने थेह॥
अबला अबला अवरनी। साधि सकइ किम तेह॥

"माधवानल कामकन्दला"
गणपति पृ० १४९-५०

२. "सरोवर पालइ हंसलु, वेलि वली वली खाइ।
पंख पसारइ पारविया, सर सूकइ मर जाइ।"

× × ×

"उ अवइ आणइ गमइ, जिम आवइ तिम जाइ।
चतुरा दीसइ चिंहु पगे धरणि न लागइ पाइ।"

"माधवानल कामकन्डला"
गणपति पृ० १०८।

३. "प्रिय तुम चौपरि खेल बतावा। गंजीफा कस नाहि सिखावा॥
सुरज चाँद उगहीं दिन राती। केहि कारन भावंद अजाती॥
तज विप्र सिर राजा होई। पुनि कुमाच तन पहिरै सोई॥
दुलहा होई बरात सवारै। गहि तरु अरि सो काकह मारै॥"

"पुहुपावती"

जैसा कि हम पहिले कह आए हैं कि हिन्दू प्रेमाख्यानों में वेश्या प्रेम की भी अभिव्यञ्जना हुई है। इस कारण वेश्या के जीवन, उसके विचारों और रहन-सहन का चित्रण भी गणपति की रचना में मिलता है जैसे एक वेश्या कहती है कि चाहे मनुष्य राजा या राजसन्तान ही क्यों न हो हमारे ही घर आता है। हमारा कार्य है राजाओं के राज को मिटा देना और धनपतियों के धन को धूल में मिला देना। हम आनन्द से सुन्दर भोजन अनार, अगूर आदि फल खाती हैं। और लखपतियो को अपने कांख में दवाये रहती हैं[1] वास्तव में हमें धन से काम है वही हमारा सर्वस्व है जो हमें धन दे[2]।

इस काव्य में जहाँ वेश्या जीवन का सविस्तार वर्णन मिलता है वहीं इस जीवन की कटु निंदा की गई है जैसे वेश्या अग्नि के समान है। कामी पुरुष का तन धन यौवन इस अग्नि में पड कर भस्म हो जाता है[3]।

कहने का तात्पर्य यह है कि कवि ने वेश्या जीवन के सामाजिक पक्ष का चित्रण कर जहाँ अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है वहीं इस व्यवसाय से उत्पन्न सामाजिक हनि पर भी अपना विचार प्रकट किया है जो इन काव्यों के हित-कारी लोकपक्ष का द्योतक है।

इसी प्रकार संसार में रोटी का प्रश्न आज से नहीं आदि काल से बडा प्रबल रहा है। भूख से व्याकुल मनुष्य क्या नहीं करता। मनुष्य का ज्ञान ध्यान शील और व्यवहार उसी समय तक नियमित और शिष्ट रह सकता है जब तक कि उसके रोटी का प्रश्न बिना किसी कठिनाई के हल होता रहे। इस प्रश्न में कठिनाइयाँ उत्पन्न होने के साथ ही मनुष्य की मनुष्यता खो जाती है। रोटी के इस प्रश्न पर भी इन कवियों ने विचार किया है। कहने का तात्पर्य यह है

---

१. ''जोग तिजइ जोगीसणा गृह ते महिला माय।
धन भडारी धन तिजइ-भजइ आपण पाय।'

२. 'सीउ कोढी सिउ दू बल, सिउ सफेद सिउ स्याम।
ऐह कथा सी आपणी, दाम सिरसु काम।'

···'माधवानल कामकन्दला'
गणपति पृ० १४०-१४३।

३. 'वेश्या पावक पूतली, कामी काठ शरीर।
तन धन यौवन सिउ दहइ, रहि न नाभ्या नीर।'

'वही'
पृ० २७६-२७७

कि इन कवियों ने अन्नम् "प्राणम्" का प्रतिपादन भी अपने काव्यों में किया है।

"व्यापति जासु शरीर में भूख भूतिनी आय।
रूप शील बल बुद्धि हित ताच्छण सबै नशाय।"
ताच्छण सबै नशाय ज्ञान गुण गौरव हरही।
पुनि कंदर्प विनाश पान वीरा अति करही।
सुत सोदर पितु माय नारि सो नेह उथापित।
जब जाके तन माँहि भूख भूतिनी व्यापति।

"रसरतन"

कहने का तात्पर्य यह है कि वर्ण्य विषय के प्रतिपादन में घटनाओं के क्रम में, नायक-नायिका के परस्पर व्यवहार में, घटनाक्रम के बीच-बीच आने वाली परिस्थितियों जैसे यात्रा, युद्ध, सपत्नी-कलह, मातृस्नेह, वीरता, स्वामिभक्ति, कृतघ्नता, छल और सतीत्व के वर्णन और पात्रों के सम्बाद अथवा कथोपकथन में हमें राजनीति, समाजनीति, लोक व्यवहार, गार्हस्थ्य धर्म, आदि लोक-विषयक अंगों के दर्शन होते हैं जिनके द्वारा कथा की रसानुभूति के साथ हमारा शिक्षण भी होता है।

यहाँ यह कह देना अप्रासगिक न होगा कि आख्यानों में मिलने वाले लोक-पक्ष और लौकिक-प्रेम के चित्रण के बीच या साथ-साथ इनमें आध्यात्मिक संकेत भी मिलते है। नायक-नायिका के जीवन और कार्यकलाप की समाप्ति उनके संयोग और मिलन में ही नहीं हो जाती प्रत्युत वे धर्म दान आदि मे रत होकर अपने पारलौकिक और आध्यात्मिक जीवन के सुधार और सत्कार की चिन्ता भी करते है। इस प्रकार उनके लौकिक प्रेम का आध्यात्मिक जीवन में पर्यवसान होता है जो भारतीय जीवन की और दर्शन की अत्यन्त स्वाभाविक प्रवृत्ति है। दूसरे शब्दों मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि कष्ट और अग्नि परीक्षा के बाद नायक-नायिका सयोग का सुखानुभव करते हुए भी उसमें सर्वथा डूब नहीं जाते वरन् भारतीय जीवन का जो चरम लक्ष्य मोक्ष है उसकी प्राप्ति के साधन में बराबर निरत रहते हैं। जिन काव्यों की समाप्ति मिलन के उपरान्त ही हो जाती है उनमें अन्त की प्रशस्ति में आध्यात्मिकता की ओर संकेत करती है। अस्तु लौकिक और अन्योक्ति काव्यो में अध्यात्मपक्ष समान रूप से मिलता है।

अध्यात्मपक्ष

हिन्दू काव्यों के प्रेमाख्यानों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, पहले वह जिसमें लौकिक प्रेम ईश्वरोन्मुख प्रेम हो जाता है और दूसरे वह जिनमें शुद्ध प्रेमानुभूति और ऐहिक प्रेम का चित्रण रहता है।

प्रथम प्रकार के काव्यों में नलदमन (सूरदास) उषा की कथा (रामदास) नलदमयन्ती चरित (सेवाराम) नल चरित (कुंवर मुकुन्द सिंह) पुहुपावती तथा लैला मजनूं की कथाएँ आती हैं। और दूसरे प्रकार के काव्यों में माधवानल कामकन्दला के सभी आख्यान, रसरतन, चन्द्रकुंवरि री बात, रमणशाह छबीली भठियारी का किस्सा, राजा चन्द्रमुकुट चन्द्रकिरन की कथा, नलदमयन्ती, उषा-अनिरुद्ध के कतिपय आख्यान, मधुमालती, विरहवारीश, प्रेम पयोनिधि, आदि हैं।

किन्तु इन दोनों प्रकार के काव्यों में अध्यात्म पक्ष समानरूप से मिलता है यह बात दूसरी है कि प्रथम कोटि के काव्यों में वह अधिक मुखर है। यह काव्य सूफी मत के सिद्धान्तों और साधनों से विशेषरूप से प्रभावित हैं अस्तु इनके अध्यात्मपक्ष को समझने के लिए 'तसव्वुफ' अथवा सूफीमत का संक्षिप्त परिचय नितान्त आवश्यक है।

सूफीमत

सूफियों के अनुसार मानव का जन्म आदिशक्ति के द्वारा हुआ है उसी आदिशक्ति 'अल्लाह' के पास उसे फिर लौटना है इसलिए वे मानव के उत्थित और अनुगति दो वृत्त मानते हैं। "बवासे नाजूल' अथवा अनुगति के वृत्त द्वारा मनुष्य का विकास होता है और उसे बुद्धि की प्राप्ति होती है और "बवासे उरूज" या उत्थित वृत्त के अन्तर्गत बुद्धि के विकास से लेकर "अल्लाह" में लय होने तक के सारे स्तर और क्रियाएँ निहित हैं। उसके अनुसार आवागमन का यही चक्र है[1]।

---

1. "As a man, then sprang originally from the primal element, the Sufi seeks to return to it. On the one side the circle is "Quaus-i-Nazul" or arc of descent, which includes the whole process of development until man becomes possessed of

यों तो सूफियों को इस्लाम धर्म के कर्म चतुष्टय सलात, जकात, सौम, एवं हज में विश्वास था और वे प्रकारान्तर से इस्लामी धर्म का ही प्रचार करते थे, किन्तु उनके साधनों और विश्वासों में "इस्लाम" की कट्टरता और संकीर्णता के स्थान पर हृदय की विशालता और सहृदयता मिलती है। यही कारण है कि इनकी साधना पद्धति अन्य इस्लामी सम्प्रदायों से भिन्न है। यह प्रेम या इश्क-हकीकी को ही "अल्लाह" की प्राप्ति का साधन मानते हैं। उनका कहना है कि—

"अगर इश्क न होता इन्तजाम आलमे सूरत न पकड़ता, इश्क के बगैर जिन्दगी बवाल है। इश्क को दिल दे देना कमाल है। इश्क बनाता है, इश्क जलाता है। दुनिया में जो कुछ है इश्क का जलवा है। आग इश्क की गर्मी है, हवा इश्क की बेचैनी है। पानी इश्क की रफ्तार है, खाक इश्क की कियाम है। मौत इश्क की बेहोशी है, जिन्दगी इश्क की होशियारी है, रात इश्क की नींद है, दिन इश्क का जागना है। मुसलिम इश्क का जमाल है, काफिर इश्क का जलाल है। नेकी इश्क की कुरबत है, गुनाह इश्क से दूरी है, बिहिश्त इश्क का शौक है, दोजख इश्क का जैक है"[१]—

कहने का तात्पर्य यह है कि सूफी सामान्यतः अल्लाह (प्रियतम) के वियोगी हैं, वे अल्लाह की आराधना स्वर्ग सुख के लिए न करके उसके संभोग के लिये करते है। वह उसके लावण्य पर मरते हैं। उसके दीदार के लिए बिहिश्त को ठुकरा कर जहन्नुम जाने के लिए भी तैयार रहते हैं। अल्लाह भी उसको लुभाने के लिए कभी बुत बनता है और कभी कण-कण में झाँकता फिरता है। इसीलिये सूफी पशु-पक्षियों के कलरव में, पेड़ों की मर्मर ध्वनि में, पवन की सन-सनाहट में और बिजली की तड़क में उसी 'एक' की आवाज सुनता है और मुग्ध हो जाता है।[२] उसके लिये प्रकृति जड़ न होकर चेतन होती है जो अपने प्रिय के प्रेम में हर समय तड़पती रहती है।

---

reasonable powers. On the other side is Quaus-i-Uruj or arc of ascent, which includes each stage from the first dawn of the reasoning powers of man until he is finally absorbed in the primal element. This is the origin or return of man."

—Sufism—By Rev. Canon Sell :—Page 31,

१. तसव्वुफ अथवा सूफीमत—

— चन्द्रबली पांडेय पृष्ठ ११६।

2. "O! God I never listen to the cry of animals or to the quivering of trees or to the murmuring of water or to the

सूफियों का प्रवचन है कि परमात्मा के प्रति जीवात्मा का जो प्रेम है उससे जीवात्मा के प्रति परमात्मा का प्रेम पुराना है। जीव अज्ञानवश समझता है कि वह परमात्मा से प्रेम कर रहा है। परन्तु वास्तव में तो वह प्रेम के पीछे पीछे चल रहा है जिसका स्रोत परमात्मा है। यजीद ने सिद्ध कर दिया कि प्रेम की दशा में बाह्य कृत्यों का कुछ महत्व नहीं उसको तृप्ति तो तब मिली जब उसके प्रियतम ने उससे "ओ तू मैं" कहा। उसने फना का प्रतिपादन कर सूफीमत में आर्य संस्कारों को भर दिया और भविष्य के सूफियों के लिये अद्वैत-वाद का मार्ग खोल दिया। जूलनून एवं यजीद ने सूफीमत में पीरी मुरीदी पर पूरा ध्यान दिया। जूलनून ने सच्चे शिष्य को गुरुभक्त बनने को यहाँ तक आदेश दिया कि वह परमात्मा की भी उपेक्षा कर गुरु की आज्ञा पालन करे। यजीद ने घोषणा कर दी थी कि जो व्यक्ति गुरु नहीं करता उसका इमाम शैतान होता है। 'जूलनून की पीरी मुरीदी' के साथ 'मंसूर' के 'अनहलहक' ने सूफी मत की परमगति को निश्चित कर दिया। उसका कथन था कि मैं वही हूँ जिसको प्यार करता हूँ। हम एक शरीर में दो प्राण है, यदि मुझे देखता है तो उसे देखता है, और यदि उसे देखता है तो हम दोनों को देखता है। यही कारण है कि इस अद्वैत-भावना में निहित सूफियों का प्रधान भाव 'रति' है वे अपने माशूक को अल्लाह का प्रतीक मानते हैं, उसकी कपोलों की अरुणिमा में सुरा की मादकता में, रति-सुख में तथा सरायों में उसी को देखते हैं। साकी के अधरों में वह परमात्मा का रहस्यमय सन्देश पाते हैं, अलकों की लम्बाई में उसकी अनन्तता और विशालता का अनुभव करते हैं और मदिरा में ज्ञान का प्रकाश देखते हैं[1]।

---

warbling of birds or to the rustling wind or to the crashing thunder without feeling them to be an evidence of thy unity and a proof that there is nothing like unto thee."

—Mystics of Islam. :—

By Reynold A. Nicolson, Page 7.

1. "Much sufi symbolism is correspondetel and is worship. It appears when he calls God the beloved, and finds Him on the red cheek of beautiful damsels—in sexual love, in wine, in tavrns, such phases are art to him. The Tavern means the call of contemplation, the lips open to inscrutable mysteries of God's essence. Tresses and curls illustrate expansion and infiniteness, wine is wisdom"

—Sufism: By Jerregard, Page 8.

इसी इश्क 'हकीकी' के उपासक सूफी साधना के चार स्तर मानते हैं। शरीअत, तरीकत, मारफित और हकीकत। उनके अनुसार 'प्रियतम' के सौंदर्य और लावण्य को बताने के लिये एवं सच्चे 'प्रेम की पीर' को साधक के हृदय में जागृत करने के लिये किसी भेदिये (मुरशिद) का होना परमावश्यक है। सूफी इस मत को इस्लामी (कर्मकांड) शरीअत से भिन्न मानते हैं। उनके विचार से शरीअत एक सामान्य विधि है, इसके पालन से सहजानन्द नहीं मिल सकता, उससे तो केवल प्रियतम को पाने की उत्सुकता जागृति होती है। प्रियतम के दीदार का दर्शन तो कोई अनुभवी सन्त ही हो सकता है जो कृपा कर उसके प्रियतम का पता बता सकता है। इसलिए उपासक (आविद) को जब शरीअत से सन्तोष नहीं होता और प्रियतम के मार्ग को जानने की उत्सुकता हो जाती है तब वह किसी जानकार के पास पहुँचता है। मुरशिद उसकी लगन को देख कर उसे अपना मुरीद (शिष्य) बना लेता है और एक निश्चित मार्ग का उपदेश दे उसे उस पथ पर चलने की अनुमति दे देता है। मुरीद अब उस परम प्रियतम के संयोग के लिए विरही बन प्रेम पन्थ पर निकल पड़ता है। इस प्रकार वह शरीअत को पार कर 'तरीकत' के क्षेत्र में विचरता है। तरीकत की दशा में उसको अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध या जिहाद करना पड़ता है। यहाँ यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि हिन्दी के सूफी कवियों ने तरीकत के क्षेत्र में हठ-योग की क्रियाओं यानी यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का आयोजन किया है।

जब वह तरीकत के क्षेत्र में सफल हो जाता है तब उसमें म्वारिफ का आविर्भाव होता है। म्वारिफ के उदय में परमात्मा के स्वरूप की चिन्ता हो जाती है और वह हकीकत के क्षेत्र मे पहुँच जाता है। इस हकीकत के क्षेत्र में उसे परमात्मा का सहयोग मिलता है, और इस प्रकार वह धीरे-धीरे 'वस्ल' से 'फना' की दशा में पहुँच जाता है, उसे स्मरण भी नहीं रह जाता कि वह प्रियतम से भिन्न है, यहाँ वह द्वन्द्व से मुक्त हो 'हक' बन जाता है और अपने को 'अनल हक' 'अहं ब्रह्मास्मि' घोषित करने लगता है।

यह तो हुए सूफियों के साधन चतुष्टय इनके अतिरिक्त सूफियों के अनुसार सालिक का अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कतिपय भूमियों को पार करना पड़ता है जिन्हें वे मुकामात कहते हैं। सूफियों के लिये वस्ल अथवा फना जरूरी है। मुहब्बत सामान्य सम्बन्ध नहीं है। 'आविदा' प्रियतम की खोज में उस समय निकल पड़ता है जब उसमें मुरशिद इश्क की चिनगारी डाल देता है। आशिक अपने माशूक को अपनाने के लिए अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध

या जेहाद करता है। वृत्तियों के निरोध से 'आविद' में प्रज्ञा का उदय होता है और वह 'म्वारिफ' के मुकाम पर पड़ाव डालता है। 'म्वारिफ' से जब 'आरिफ' और आगे बढ़ता है तब उसे सत्य की झलक दिखाई पडती है और वह हकीक की भूमि पर ठहर जाता है। इस मुकाम पर 'आरिफ' को 'हक' का आभास तो मिल जाता है पर उसके संयोग को नहीं पाता। इसलिये वह कुछ और आगे बढ़ता है और वस्ल की भूमि पर अपने प्रियतम का साक्षात्कार करता है और उसी के सम्भोग में निरत हो जाता है। यही उसका लक्ष्य भी था। प्रियतम में वह जब इतना तल्लीन हो जाता है कि उसे प्रियतम के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, यहाँ तक कि उसका अहंभाव भी नहीं रह जाता तब उसे शाश्वत 'बका' का आनन्द मिलता है और वह फना की भूमि में ब्रह्म-विहार करता है इस प्रकार तसव्वुफ के मुकामात क्रमशः, इश्क, म्वारिफ, वज्द, हकीक, वस्ल एवं फना है।

तसव्वुफ के इस दार्शनिक पक्ष को सूफियों ने अन्यापदेश या रूपक के सहारे प्राचीन कथाओं या अपनी कल्पना से निर्मित अथवा नवीन कथाओं के द्वारा प्रतिपादित किया है। उनकी मसनवियों में जो भाव निहित रहता है, वह यह है कि जीव संसार के रूप-राग में किस प्रकार लिपटा रहता है, भोग-विलास में लीन है, और सद्गुरु के आदेश अथवा अन्तरात्मा की पुकार से विचलित हो किस प्रकार वह प्रियतम की ओर उन्मुख हो चल पड़ता है, पर बीच में ही लोभ विशेष के कारण फँस जाता है और फिर उचित आदेश पाकर अपने लक्ष्य में लीन हो अपने को सत्य समझ कर परमात्मा और जीवात्मा का एकीकरण कर अपनी वास्तविक सत्ता का परिचय प्राप्त कर लेता है।' फारस में मौलाना रूम और अत्तार की मसनवियों तथा हिंदी में मंझन, जायसी, नूरमुहम्मद आदि के प्रबन्धों में यही भाव मिलते हैं। किसी मसनवी ढंग की मुस्लिम रचना पर विचार करते समय यह न भूल जाना चाहिए कि उसका आदि पुरुष या सूत्रधार वास्तव में रसूल, बकर, उमर, उसमान, अली किंवा अन्य प्रतिष्ठित साथी ही माना जाता है। इसलिए कथा के प्रारम्भ में इनकी वंदना पहले ही कर ली जाती है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि हिन्दुओं ने भी सूफियों के ढंग की रचनाएँ कीं, किन्तु इनकी रचनाओ में दो भेद मिलते हैं, पहला यह कि इन्होंने आदि पुरुष या सूत्रधार को कोई 'पीर' या 'पैगम्बर' न मान कर स्वयं ईश्वर को उसका सूत्रधार माना है, यही कारण है कि इनमें निर्गुण-ब्रह्म और सगुण-ब्रह्म की बन्दना मिलती है। दूसरे यह कि ये केवल संयोग-पक्ष या यों कहा जाय कि सायुज्य मुक्ति को ही मानने वाले थे। इसलिये इनका प्रेम 'सम' होता है।

मुसलमानों की तरह विषम से सम की ओर जाने वाला नहीं होता। इनकी रचनाओं में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध,[1] मायावाद,[2] संसार की अनित्यता[3], अद्वैतवाद,[4] हठयोगी क्रियाएँ एवं संयोग पक्ष (वस्ल) तथा प्रियतमा में परमात्म रूप का संयोजन सब उसी प्रकार मिलता है। कथाओं में आने वाले हंस, तोता, मैना, मालिन आदि नायक के लिए गुरु का ही स्थान ग्रहण करते हैं[5]।

---

१. गुरु बिनु सिधि ग्यान नहिं होई। गुरु बिन पार न लागै कोई॥

× × ×

गुरु करु मात पिता बड़ भ्राता। गुरु है सकल सिद्धि को दाता॥
गुरु ते दाता और न कोई। गुरु प्रताप हरि मिलि है सोई॥

"नल चरित"

२. तय वेसा मनु इमि कहै, माया बढ़ौ न कोइ।
याही बीधै विधि जगत गयो आप कहं खोइ॥

"नलदमन"

३. जगत अनित्य कर्महि नीरा। केवल विमल नाम हर हीरा॥
कामिनी कनक और हय हाथी। ये तो नहिं सँग के साथी॥

"रसरतन"

४. तब पुनि नारद मुनि भगतेसा। लगे अस्तुति करन असेसा॥
तुमही सभ के कारन अहहू। तुमही नीति अनीतिहि गहहू॥
तुमही सर्व मई हहु सामी। तुमही हहु प्रभु अंतरजामी॥
तुमही रवि ह्वै वासर करहू। तुमही ससि ह्वै निसि जग भरहू॥"

"नलचरित"

५. 'मोरि अवग्यां करहु जनि, पंछी लखि वरनारि।
हम पंडित सम जानउं, मोहि सिखए मुख चारि॥'

—'नल-चरित्र'

कुवर सुनत हुती मुख वाता। भा चीत चेत हेत के राता॥
आइ मिला गोरख गुर भारी। छुटी कै भरथहरी कै तारी॥
गुरु कहं चीन्हां पाव लेइ पारा। रावै लागु विरह दुख जरा॥'

× × ×

नागमती कह जस भा सुआ। एही मैना कह सो गुन हुआ॥

—'पुहुपावती'

संसार की अनित्यता और मायावाद के संकेत उपनायिकाओं के रूप में मिलते हैं। नायिका को प्राप्त करने के साधनों में हठयौगिक क्रियाओं का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है जैसे :—

'दुती कहा कुंअर तुम राजा। साधहु जोग सो कौने काजा॥
काहे न चढ़हुँ प्रेम के पंथा। तन वस्तर सोइ करु कंथा॥
सांस सुमिरनी करु माला। तंतु को तिलक सो कीजै माला॥
नैन चक्र सुख संमध धारी। निसुदिन राम नाम अधिकारी॥
अनहद सब्द बासुरी बाजै। तहां चीत लाय पातख भाजै॥'

—'पुहुपावती'

ऐसे ही प्रियतमा के नखशिख वर्णन में प्रतिबिम्बवाद का उदाहरण भी प्राप्त होता है :—

'जाकि दिस्ट परी वह कौंधा। नैनहि लागि रहे तिन्ह चौंधा॥
पाहन रतरु होंहि सो जोती। होंइ संजोत न जाते मोती॥
मोरे जान बिहंस जब बोली। वहै चमक चपला भई डोली॥'

प्रतिबिम्बवाद के साथ-साथ प्रियतमा में परमात्मास्वरूप का भी अवलोकन कीजिए—

"त्रिबली तीन वेद जसु छाजै। जोतिष सास्त्र दिस्टि जसु राजै॥
वेद अर्थ रोमावलि जासू। वेद खड्ग भुज सोइ अहई॥
अधर सुधर सोई जनि अहई। पुनि जाहि सास्त्र मिमांसा कहई॥
जंघ जुगल सोई छबि पावै। जुगल भेद तेहु तिअ लखावै॥
न्याय सास्त्र में तर्क अहै जो। सरस्वती के जानहु रद सो॥"

'नलचरित'

रति (वस्ल) में सहजानन्द की कल्पना के चित्र का सूफियों की पद्धति में वर्णन भी प्राप्त होता है :—

"हंसि नृप तन ते कंचुकि सारी। करही करही लिए उतारी॥
स्वेदभाव सात्विकभावा। पद पछालन मनहु चढ़ावा॥
चुम्बन अधर आचमन सोई। मुख पंकज आमोदित होई॥
गन्ध पुहुप के सम से भासे। रोम राजि लसि धूप धुआँ से॥
नख पाती दुति दीप सरिस दुति। कुच जुग पदुक मनहु नेवज॥"

'नलचरित'

आत्मा का परमात्मा से मिलन अथवा सूफियों के 'फना' को हिन्दी साहित्य में सदैव विवाहोपरान्त विदा होती हुई नव-वधू के रूपक में वर्णित किया गया है। उसका भी उदाहरण लीजिए—

"कोरा गहि जब कन्त बुलावै। सबही समद बिवान चढ़ावै ॥
रोवइ माँई बाप महतारी। रोवइ सखी जिनहि अति प्यारी ॥
सब रोवंह झङ्खइ मन माँहा। बस न चलै चली धन ताँहा ॥"
'पुहुपावती'

अस्तु हिन्दुओं के रूपकात्मक काव्यों की कथा के संयोजन में एवं लौकिक प्रेम के बीच आध्यात्मिक संकेतों में हमें सूफियों की दार्शनिकता एवं साधना-पद्धति की स्पष्ट छाया मिलती है। सूफी साधना के चार स्तरों का संकेत तो कहीं-कहीं बड़ा स्पष्ट है[1]।

प्रत्येक प्रेमाख्यान चाहे वह सूफी ढंग का हो या लौकिक प्रेम से सम्बद्ध-ईश्वर की वन्दना से प्रारम्भ होता है। इस मंगलाचरण में निराकार और साकार ब्रह्म दोनों की आराधना मिलती है। राम, कृष्ण, शिव, गणेश, सरस्वती तथा अन्य देवी देवताओं की वन्दनाएँ वैदिक और सनातन धर्म के सामंजस्य के प्रतीक हैं, साथ ही धार्मिक क्षेत्र में सहिष्णुता का भारतीय दृष्टिकोण लक्षित होता है। इस विषय में एक बात और ध्यान देने की है, वह यह, कि सूफियोंसे प्रभावित प्रेमाख्यानकों में हमें सूफियों की तरह कट्टर एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद नहीं मिलता, उन्होंने अन्य देवी देवताओं की आराधना उसी प्रकार की है जिस प्रकार निराकार ब्रह्म की। इसलिये इनमें निराकार ब्रह्म के साथ साकार ब्रह्म की उपासना भी खुले हृदय से की गई है। रामभक्ति का उदाहरण रसरतन में मिलता है :—

पुहुकर वेद पुरान मिलि, कीनो यही विचार।
यह संसार असार मे राम नाम है सार ॥
पुहुकर भवसागर गरुव गम्भीर।
राम नाम नौका चढ़े, हरिजन लागे तीर ॥

---

१. चारि भांति सोचहि भुअपाला। गृह प्रवीस कीन्हेउ तेहि काला ॥
अति सनद्ध जो चौकीदारा। तिन्हहि अनादरि चले भुआला ॥
दुति अइहै जो तस्कर नाई। छपै जाहि कहुँ नल लषि पाई ॥
—'नलचरित'

अथवा

निसु दिन बन्दौं राम पद्, तुम अनादि करतार।
माली आदि तुही भँवर, फुलवारी संसार॥
'पुहुपावती'[१]

राम की तरह शिव उपासना भी मिलती है:—

सुख समुद्र सब जगत भक्त वत्सल प्रतिपालक।
धरै गौर अर्द्धंग प्रेम विस्तारन कारन॥
भूषन जासु फनिन्द् माल कपाल विराजै।
तीन नैन रोस सुमिरत जेहि भाजै॥
नरनाग-देव सब सरन जेहि कवि पुहकर तेहि सरन।
चितय चकोर चितन्य चमीसुं, रुद्र चरण मंगल करन॥
'रसरतन'।

अथवा

"अब संकर को चरन मनावौं। जिनकी कृपा ग्यान दृढ़ पावौं॥
तिन सर और देव नहि दूजा। ब्रह्मादिक मिल शिव कह पूजा॥"

शिव की तरह गणेश की वन्दना भी प्राप्त होती है—

"लम्बोदर विद्या के दाता। गौरा नन्दन गनपति ग्याता॥
एक रदन गज बदन विराजै। मुख देखत के सब दुख भाजै॥

यह तो हुई रूपकात्मक काव्यों और सूफी शैली में लिखे गए प्रेमाख्यानों की बात। लौकिक प्रेमाख्यानों में अध्यात्मपक्ष सर्वथा शून्य नहीं है। इन आख्यानों में कर्म और भाग्य को प्रधान माना गया है, जो भारतीय धार्मिक दृष्टिकोण का एक प्रधान अंग है। प्रारब्ध पर विश्वास और ईश्वर पर आस्था दोनों यहाँ एक ही रूप में देखे जाते हैं। यही विश्वास आगे चल कर संसार की अनित्यता और मनुष्य की लघुता मे परिणित हो जाता है। जैसे 'रसरतन' में एक स्थान पर कवि ने कहा है—

सप्त पतार सोत खन काढ़ा। निकस नीर ऊपर लौं बाढा॥
चहुँ दिसि चारौं पवर दुवारा। तिन्हहि लागि पुनि लोह किवारा॥
कुण्ड संजीवन भरे गढ़ माहीं। अमृत नीर तह नदी वहाहीं॥
अलग लगाव कहौ कछु नाहीं। ज्यों आतम काया गढ़ माहीं।
—'नलदमन'

"सुख दुख बुद्धि कर्म दुखदाई। कर्म प्रधान कहे सब कोई॥
जगत अनित्य कर्महि नीरा। केवल विमल नाम हरि हीरा॥
कामिनि कनक और हय हाथी। ये तो नाहीं संग के साथी॥"

किन्तु लौकिक प्रेमाख्यानों का आध्यात्मिक पक्ष कथा के अन्त में दिए गए माहात्म्य वर्णन में अधिक निखरा है, जैसे—

"यह कथा नल भुयपाल केर स उदधि सम छवि गावई।
रहन और सर्जह सलिल पूरित पढ़त हरख बढ़ावई॥
जत गूढ़ पद अरु भाव जुत सो बूझि के मन लावई।
नित पढ़ें गावै हरख छावै चारि पद सो पावई॥"

अथवा

"उषा अनुरध की कथा कहै सुनै मन लाई।
मुकति पति सुख लहै कलिमल दुख नसाई॥"

प्राय: सभी प्रेमाख्यान इस बात की ओर संकेत करते हैं कि इनके पढ़ने वाले को सर्व सुख प्राप्त होगा, कलि के कष्ट का निवारण होगा और भगवद्-भक्ति प्राप्त होगी। कविवर पृथ्वीराज ने 'वेलि' के सम्बन्ध में यहाँ तक कह डाला है कि जो 'वेलि' को पढ़ता है उसके कंठ में सरस्वती, घर में लक्ष्मी और मुख में शोभा विराजती है। भविष्य के लिए मुक्ति और बहुत से भोगों की प्राप्ति होती है और हृदय में ज्ञान और आत्मा में हरि-भक्ति उत्पन्न होती है।

कहना न होगा कि उषा-अनरुद्ध, रुक्मिणीहरण आदि की कथाएँ स्वयं ही हिन्दुओं में इतनी पवित्र मानी जाती हैं कि उनके प्रणयन से पाठक भव-सागर पार करने की शक्ति का संयोजन करता है। इसके अतिरिक्त हमें इन काव्यों में आगमों का मन्त्र, भूतप्रेत, कुंडलिनी, शक्ति, योगसाधना तथा संहिताओं का तत्वज्ञान, मंत्र-शास्त्र, माया-योग एवं उपनिषदों का जन्मान्तर-वाद आदि भी प्राप्त होते हैं।

नलदमयन्ती चरित में कवि ने मनुष्यों को एक सन्तान प्राप्ति के उपरान्त वान-प्रस्थ और सन्यास आश्रम में प्रविष्ट होने और योगसाधन करने की शिक्षा दी है—

"एक पुत्र जब होत सुजानाँ। बन में जाइ रहे जुनिदानाँ॥
बन में जाइ समाधि लगावै। योनि जो देह मनुष्य की पावै॥"

इसलिए कि इस माया मय संसार में कुछ सार नहीं है जो इसमें आकर फँस गया उसने अपना सब कुछ खो दिया। जीवन का पथ कोई साफ सुथरा राज मार्ग नहीं है वरन् यह एक रपटीला मार्ग है जिस पर जीव अपने कर्मों और देह का

घड़ा सर पर रक्खे चलता रहता है। उसके तनिक से भी चूकने पर फिसल कर गिर जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी स्थिति में जीव अपनी पूँजी गवा कर खाली हाथ परमात्मा के पास पहुँचता है अर्थात् मोक्ष लाभ की जिस आशा से जीव इस संसार में आया है उसे सासारिकता में पड़कर वह भूल जाता है जिसके कारण उसे फिर आवागमन के चक्कर में पड़ना पड़ता है। 'सूरदास' ने जन्मान्तर-वाद के इस दार्शनिक विचार को पनिहारी के प्रतीक द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से अंकित किया है—

"लेजू पाट गहैं गह हाथें। नैनन्ह पानी कलसा माथै ॥
निपट लाज सो आवहि जाही। पायन दिस्टि सुरत घर माँही ॥
जो कोई सखी ताह समुझावहं। जन परदेसिन्ह पन्थ बतावह ॥
बलि चेतहु घर मन देहू। झाँकी द्रिस्टि सूध कै लेहू ॥
माथै बोझ बाट रपटीली। रपट परै दुख होइ छबीली ॥
जो घट फोरि जाहु घर छूछै। का पुनि कहहु कन्त जब पूछै ॥"

माधवानल कामकन्दला, एवं 'रसरतन' में, जयन्ती कल्पलता एवं कन्दला की कहानियाँ जन्मान्तरवाद पर ही अवलम्बित हैं।

मन्त्र तन्त्र और जादू आदि पर विश्वास गणपति के माधवानल कामकन्दला एवं प्रेम-प्रयोनिधि में अङ्कित हैं। पुहुपावती में माधव को वश में करने के लिये वहाँ की स्त्रियाँ मन्त्र और तन्त्र का प्रयोग करती दिखाई गई हैं[1]।

ऐसे ही पुहुपावती में बुझाई गई पहेलियों में संहिताओं का तत्व ज्ञान परि-लक्षित होता है[2]।

---

१. "शकर पूठइ संचरी, सही सहेली साथ।
पेखी रिषि शीस विया, ज्योखिम जु जुगनाथ ॥
प्रमदा जो पोतातणी, भग भोगवइ ने नेह।
अबला-अबला अरवनी, साधि सकइ किम तेह ॥"

—माधवानल कामकंदला—गणपति पृष्ठ ४९—५० ।

२. पिय तुम चौपरि खेल बतावा। गंजीफा कस नाहि सिखावा ॥
सुरज चांद उगही दिन राती। केही कारन भावंद अजाती ॥
तज दिए सिर राजा होइ। पुनि कुमाच तन पहिरै सोई ॥
दुलहा होइ बरात सवारे। गहि तरुअरि सो काकहँ मारे ॥

—'पुहपावती'।

एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति का अद्वैतवादी सिद्धान्त भारतवर्ष का प्राचीनतम धार्मिक विश्वास है। इस विश्वास का प्रतिपादन सूफियों से प्रभावित काव्यों में बहुत अधिक प्राप्त होता है। जैसे नलदमन में कवि सूरदास कहते हैं। "जब मैंने संसार को भली भाँति देखा अर्थात् ज्ञानमय चक्षु से जब मैंने संसार का अवलोकन किया तब मुझे संसार में केवल एक उस अलख अगोचर ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ न दिखाई पड़ा जो अपने आप अपने में छिपा हुआ है।[१]

वज्रयानी सिद्धों और गोरख पंथी साधुओं के प्रचार के कारण भारतवर्ष में हठयोगी क्रियाओं का प्रचार और उसकी मान्यता बहुत अधिक बढ़ गई थी। हिन्दू कवियों ने अपने 'रूपकात्मक' (Allegorical) काव्यों में हठयोग सम्बन्धी उक्तियों का बहुतायत से उल्लेख किया है। पुहुपावती में दूती कुमार को पुहुपावती के पाने के लिए योग साधने के लिए कहती है। इसी प्रकार महलों और चित्रसारी के वर्णनों में सहस्रार्ध कमल एवं हृदय का प्रतीक प्रस्फुटित हुआ है।[3]

कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों में मिलने वाले अध्यात्मपक्ष में जहाँ हमें एक ओर सूफियों की साधनापद्धति मिलती है वहीं

---

१. देखत देखत देखि जब दिस्टि कही कछु नाहिं।
दिस्टि अगोचर अलखवहु ता वाही के मांह ॥
—'नलदमन'

२. "दुती कहा कुँवर तुम्ह राजा। साधहु जोग जो कौने काजा ॥
कौहै न चढ़हु प्रेम के पंथा। तन वस्तर सोइ कर कंथा ॥
सांस सुमिरनी तन करु माला। तंतु को तिलक सौ किजै भाला ॥
नैन चक्र सुख संमध धारी। निसु दिन राम नाम अधिकारी ॥
अनहद शब्द बांसुरी बाजै। तहा चीत लाय पातख भाजै ॥"

× × ×

३. "पुनि गै देखिसि कोट अनूपा। धौला गिरि परवत के रूपा ॥
दस दुवार वावन कंगूरा। निस दिन ठाढ़ै पै बाजै तूरा ॥
संख औ घंट भेरी सहनाई। बाजै नौबत सुनत सुहाई ॥"

× × ×

—'पुहुपावती'

दूसरी ओर वैष्णव, शैव, शाक्त धर्मों के विश्वासों का परिचय प्राप्त होता है तथा निर्गुण और सगुण के समन्वय की प्रवृत्ति लक्षित होती है। वेदान्तियों के अद्वैत-वाद और "शंकर के मायावाद तथा पुराणों के जन्मान्तर एवं संहिताओं और आगमों के बीज, मुद्रा, मन्त्र आदि में आस्था दिखाई पड़ती है।

अस्तु, हम यह निःसन्देह कह सकते हैं कि यह काव्य भारत-भूमि में मिलने वाले स्वदेशी और विदेशी धार्मिक विश्वासों के एक सुन्दर लघु संस्करण हैं।

काव्यतत्त्व

रस

संसार प्रकृति पुरुष की केलि रंगस्थली है। नारी-पुरुष की प्रीति, प्रकृति-पुरुष की बड़ी प्रीति का प्रतिबिम्ब मात्र है। शृङ्गार-रस की इसी प्रीति का प्रतिपादन इन प्रेमाख्यानों में प्राप्त होता है। शृङ्गार रस प्रधान इन काव्यों में नायक के उत्कर्ष को अंकित करने के लिए कतिपय आख्यानों मे आये हुए युद्ध के प्रसंगों में वीर भयानक और वीभत्स-रस का संयोजन भी मिलता है। किन्तु इसके कारण 'रसराज शृङ्गार' की पुष्टि में कोई अड़चन नहीं पड़ती।

शृङ्गार-रस के आलम्बन-विभाव में नायक-नायिका में समान आकर्षण एवं समता का भाव निहित रहता है, परस्पर एक दूसरे पर न्यौछावर हो जाने की क्रिया में तन्मयता पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। द्वैत-भाव का लोप-सा हो जाता है। देवी और मानुषी दोनों ही प्रकार के 'उद्दीपनों' के संयोजन से इन कवियों ने शृङ्गार के कलेवर को भूषित किया है। 'अनुभावों' के अन्तर्गत शारीरिक अवस्थाओं का चित्रण स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हुआ है। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि ये कवि 'रीति' मुक्त कवियों की श्रेणी में आते हैं, इसलिए 'रस' निरूपण में 'रीतिकालीन' सभी शास्त्रीय अवयवों का इनमें मिलना असंभव-सा ही है, फिर भी ये रचनाएँ अधिकर सं० १७०० से १६०० के बीच में ही हुईं इसलिए आलम्बन विभाव में नायिका भेद आदि संयोगपक्ष में हावों आदि के संयोजन में, रीतिबद्ध शैली की छाया मिलती अवश्य है। अलंकारों और छन्दों के चयन में भी समकालीन प्रवृत्तियों की देन लक्षित होती है, अस्तु इस अध्याय में इन काव्यों की शास्त्रीय आलोचना करने का प्रयत्न किया गया है।

शृङ्गार-रस का 'आलम्बन' नायक और नायिका हैं। शास्त्रानुकूल नायिका का उपयुक्त पात्र नायक त्यागी, कृती, कुलीन, समृद्ध, रूपयौवनोत्साही, दक्ष, लोकरञ्जक, तेजस्वी और सुशील होना चाहिये, जहाँ तक नायकों के चयन का सम्बन्ध है इन आख्यानों के नायक राजा या राजकुमार ही अधिकतर अंकित किये गये हैं, जिनमें उपर्युक्त सभी गुणों का समावेश मिलता है।

नायिकायें राजकुमारियाँ हैं जो विशेषकर मुग्धा[१] अंकित की गयी हैं। स्वकीया मुग्धा नायिकाओं के ज्ञातयौवना[२], नवोढ़ा[३], मध्या[४] और प्रौढ़ा[५] रूप भी देखने को मिलते हैं। हंस कवि की चन्द्र कुंवरि री बात की नायिका केवल 'परकीया ऊढ़ा' नायिका है। 'माधवानल कामकन्दला' में

---

१. तन लज्जा मुख मधुरता लोचन लोल विसाल।
देखत जौबन अंकुरित रीझत रसिक रसाल ॥
भौंह चक्र पच्छिम अनियारे पद्म पत्र पर भमर विचारे।
कुण्डल किरन कपोलन झांई छवि कवि पै कछु बरन न जाई ॥
मन्दहास दसनन छवि देखी सुधा सीचि दारों दुति लेखी ॥
नासा निकस अधर मधु राखे चाहत कि बिंब फल चाखे ॥
जुग उरोज कछु दई देखाई उपमा इक मेरे मन आई ॥
जनु कमल कली सोभा सुखदाई ॥

"पुहुकर"

२. खेलति-सी उलती गग डोलहिं। कञ्चुकि आप कसै अरु खोलहिं ॥
हार उतार हिये पहिरै पुन। पाव धरै लहि त्यों न उराधन ॥
यों कटि मोरत छांह निहारत। ओढ़नि बारहि बार सम्हारत ॥
केशर आर दिये सुकुमारिय। मैन मई झलकै नव नारिय ॥

× × ×

जो लेह सो बारी रही, जानी परा नहिं सोग।
मह सआनी तरुनी जब उपजी विरह वियोग।
दहै मदन तन कीछु नहीं भावै पल कीं पलकन नींद न आवै।
विरहन मुख पिआस सन सानी छीन होय काया पियरानी।
गहि जञ्जीर तोरन चहै मदन मत्त गजराज।
सकुचि महावत रोकि लिय दै अंकुस गजराज।

अथवा

नैन लाज उर त्रास बढ़ि मदन दुरी तन मांहि।
हुलति नारि नाहीं करै सकत छुड़ावत बांहि।

४. 'नवल नेह अभिलाख बढ़ि मिलन मनोहर जीव।
हंसति लसति लज्जित ललित हुलसति हीव।'

५. कंदला, मालती, कल्पलता, नायिकाएँ प्रौढ़ा नायिका के रूप में ही चित्रित की गयी हैं, इनके रति वर्णन में नायक-नायिका दोनों ही काम-कला में चतुर दिखाये गये हैं—

'कन्दला' नर्तकी है किन्तु उसे गणिकानायिका की कोटि में नहीं रखा जा सकता उसके शील-व्यवहार एवम् चरित्र के कारण उसे 'स्वकीया प्रौढ़ा' नायिका की कोटि में ही रखा जा सकता है अन्यथा नहीं। सूफी काव्यों से प्रभावित काव्यों के पूर्वराग में इन कवियों ने, प्रत्यक्षदर्शन, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन, गुणश्रवण आदि का आलम्बन विभाव के अन्तर्गत संयोजन किया है।

उद्दीपन विभाव के लिये चन्द्र, चांदनी, चन्दन, बसंतऋतु, शीतल-धीर-समीर, भ्रमरादि का गुंजार, पुष्पवाटिका, एकान्तस्थल एवं दूती, सखी आदि का वर्णन करना कवियों की परम्परा रही है। हिन्दू प्रेमाख्यानों में दूती, सखी जिनमें हंस, तोता, मैना आदि पक्षी भी आते हैं एवम् एकान्तस्थल का प्रयोग ही विशेष मिलता है किसी-किसी काव्य में जैसे विरहवारीश, नलदमन और नलचरित्र में प्रकृति के उद्दीप्त रूप भी मिलते जैसे—

"वटपारन बैठि रसालन पै कोयली दुखदाय करे रहिहै।
बन फूले हैं फूल पलाशन के तिनको लखि धीरज को धरिहैं॥
कवि बोधा मनोज के ओजन सो विरही तन तूल भयो वरिहै।
कछु तंत नहीं बिनु कंत भटू अब कीधौं बसन्त कहा करिहै॥

पुष्पवाटिका और भ्रमरादि के गुंजार एवं बिल्वफल को देखकर नल के हृदय में दमयन्ती के प्रति उद्दीप्त होते हुये अनुराग का चित्रण भी देखिए।

तकिए भूप भ्रमर समुदाए। काम बान सम सोभा पाए॥
बानउ के रव होत अपारू। तिहि विधि जानहु भ्रमर गुञ्जारू॥
हुऊं के अहे सिलो मुख नामा। विरही तन कह दोउ दुख धामा॥
एह देखिए भूपति मन लाई। बेलब फल जुत छवि पाई॥
नारि पयोहर सम छवि पावै। निरसत कै तन पुलक धावै॥

कुंवर मुकुन्द सिंह ने तो इन्द्र का संदेश ले जाते हुए नल के हृदय में

तन से तन मन से मन भीना। अङ्ग से अङ्ग सोखै लीना॥
अधर से अधर मधुर रस लीन्हा। हिअ से हिआ लाइ सुख दीन्हा॥
कर से कर भुज से भुज गहा। नैन से नैन निरखि छवि रहा॥
पेट से पेट लंक से लंका। होइ एक सुख प्रेम के अंका॥
जंघ से जांघ पाव से पांवू। सीस से सीस मिलावो राउ॥
एहि विधि छतीस आसन भोगी। औ चौरासी आसन जोगी॥
कोक कला कै काम निवारा। जागत रैन भयौ भिनुसारा॥

'रंगीली की रति'

दमयन्ती के प्रति प्रेम को उद्दीप्त करने के लिए रनिवास की अन्य स्त्रियों की कामचेष्टाओं का बड़ा विशद वर्णन किया है—

रामनी कोउ पयोधर माही। लेपत चन्दन छवि त्रिध काही ॥
संभु सरिस उपमा सो पाए। जानि विभूति सर्वांग लगाए ॥
कोउ अग्यात जोबना नारी। खेलत कटि ते छूटेउ सारी ॥
कोउ कोमल तन अति सुकुमारी। उघटति तन धरि कंचुकि सारी ॥
लोने संभु प्रत्यंग उघारी। दुति वय चिलकत भूप निहारी ॥

× × ×

केयुर कटि माहि सो अटको। सर की सारी नीवी छटको ॥
भए उघार सकल तसु अंगा। बढ़ेउ भूपमन काम तरङ्गा ॥

किन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है उद्दीपन विभाव में दूती, सखी आदि को ही प्रधानता मिलती है जो कथा के क्रमिक विकास में सहायता देते हुए रस की पूर्ण निष्पत्ति में सहायक होती है।

शृङ्गाररस में स्त्रियों की चेष्टाओं और उनके मनोविकारों के वर्णन करने की प्रवृत्ति ही प्रधान होती है, इसी कारण विविध अनुभवों का संयोजन ऐसे काव्यों का एक मुख्य अंग है।

आचार्यों ने स्त्रियों के तीन अंगज अलंकार-भाव[1], हाव[2] और हेला[3] माने हैं। भाव के लिए चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन गुणश्रवणादि का प्रयोग इन काव्यों में लक्षित होता है।

हाव और हेला का वर्णन लगभग नहीं सा ही है केवल मधुमालती में ही दोनों का प्रयोग एक स्थान पर मुखर हुआ है।

मधु समुझि सकुचि जियधरी। नीची दृष्टि धरनि पर परी ॥
मानो कुंभ ढरे सहस जल। लज्या भई प्रान ते परल ॥
मालति पुनि आप सम्हारी। दूजी गेंद फूल की मारी ॥
बदन दुराय हों कहु कैसे। निरख बसन चितवत कीह कैसे ॥

अथवा

मधु मोसो ऐसो कब करिहै। मालति दशन आंगुरी मुख धरिहै ॥
झीने बदन दूर जब करिहै। दुखदाई होइ सुख दइहै ॥

---

१. भाव : निर्विकार चित में प्रथम विकार उत्पन्न होना।

२. हाव : भ्रकुटी तथा नेत्रादि विकारों से संभोग अभिलाषा सूचक मनोविकारों का अल्पप्रकाश।

३. हेला : उपर्युक्त विकारों का अत्यन्त, स्फुट होकर लक्षित होना।

जहाँ तक अयत्नज अलंकार शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य का सम्बन्ध है यह प्राय: सभी नायिकाओं में मिलते हैं। कान्ति का अधिकतर वर्णन सुरतान्त में किया गया है जैसे 'वेलि' में कवि कहता है कि रुक्मिणी के ललाट पर पसीने के कणों में कुंकुम का बिन्दु शोभित है। ऐसा मालूम होता है मानों कामदेव रूपी कारीगर ने सुवर्ण में हीरे जड़ कर बीच में माणिक मिला दिया हो। माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य नायिकाओं के चरित्र के प्रधान अंग हैं जो कथानक की घटनाओं में प्रस्फुटित हुये हैं।

स्वभाव सिद्ध अलंकारों में बिव्वोक, किलकिंचित, मोट्टायित कुट्टमित और "केलि" ही प्रधान रूप से प्राप्त होते हैं किन्तु, वैवर्ण्य हेला, विभ्रम, स्तम्भ और अश्रु हाव भी कहीं-कहीं मिलते हैं। जैसे स्तम्भ और अश्रु।

चलै परग दुइ पुनि होइ खरी। पीय डर हीये धुकधुकी परी।
पूछे मुख नाहिं आवै बैना। भए सकल जल दुनों नैना।

विभ्रम—काम रस माती उन्माती सी विहाल बाल।
प्रेम के समुद्र मांझ मगनपरी है जू।
भूली सी फिरत ज्यों कुरंगनी कुरंगनैनों।
मानो सरपंच ने जीवन हरी है जू।
अंजन लगायो भाल चन्दन सी आंज दृग।
सकल सिगार विपरीत का करी है जू।
वीरी लावै कानन हि ज्ञान न सयान कछू।
बारूनी के पान ज्यों विधान विसरी है जू।
"रसतरन"

हेला—लखिजान मनोज सुवाल हिये। विहंसे अञ्चल ओट दिये।
पिय नाहियं-नाहियं यों कपती। मन मांह उमाह बनो गहती।
मुस्क्याय कभू मुखहाय कहै। तब माधव हिये सुख छाय रहै।
"विरहवारीश"

वैवर्ण्य—नैन लाज डर त्रास बढ़ि मदन दुरौ तन मांही।
डुलति नारि नाहि करे सकल छुड़ावत बाहि।
"रसरतन"

कुट्टमित—पटु चाप रही कसि जंघ दुबो। प्रिय सो विनवे जिन अङ्क छुवो।
बलकै करसों कुच चाप रही। पिय तब घंघरा की फूंद गहि।
झकझोरत छोरत जोर किए। लपटी भय लाजन बाल हिये।
"विरहवारीश"

किलकिंचित और विब्बोक ।

तिय चाहत बांह छुड़ाय भजो । पिय चाहत है कबहूँ न तजो ॥
कसिकै सिसके, रिस चित्त धरे । ननकार विकारन और करै ॥
जब ही पिय की बांह पिय नाथ गहे । तबही तिय वासो छोड़ कहै ॥
पग के छुवते अकुलात खरी । मुख से निकले सखि हाय मरी ॥
"रसरतन"

संचारियों में ग्लानि, दैन्य, चिन्ता, स्मृति, सुत, व्याधि और उन्माद का ही वर्णन साधारणतः मिलता है ।

ग्लानि—सुरझो फिर ना उरझो जबते । हरिही अनुराग रही जियते ।
बिलखे सिगरी न लखे पिय को । कलपे तलफे न लखे पिय को ।
हरि हो हरि हो हरि हो रटतीं । दम ऊरध ले दम सी सरतीं ।
निशि वासर वो करुणा करती । मुर्च्छा लहि हा कहि भू परतीं ।
कबहूँ बन कुञ्जन में बिहरै । लखि केलि सहेट विलाप करैं ।
कबहूँ गज झुण्डन देखि हँसे । हरि जू बिन को बन मोहि बसै ।
"विरहवारीश"

दैन्य—हे नल नृप मैं सरन तुअ लीन्हों मन बच कर्म ।
जोवन के जीवन तुमही छाड़े होय अधर्म ।
करुनामय तोहि कह सम कोई । किमि अधीन पर दया न होई ।
समै छांड़ि मैं तोहि लव लाई । रज होए रहीं चरन लपटाई ।
दुख निधि मंह मोहि बूड़त जानी । लेहु निकार भूप दे पानी ।
"नल चरित्र"

चिन्ता—आपु सोच मोहि रञ्च न होई । तुम अकेलहु साथ न कोई ।
सेवा कौन करिहि तुम राई । इहि सोच मन हृदि अति छाई ।
"नलचरित्र"

स्मृति—रजनी भई चरन लिपटाती ।
सेवा करत संग लगि जाती ।
जानी में न कपट की रीती ।
भई पतंग दीपक की रीती ।
"रसरतन"

व्याधि—चंदन चिनगी घन सार मानो,
सार धार विमल कमल कल न परति है ।

सीर सी उसीर लागे कुमकुमा करौत ऐसो,
पवन दवन मानो देखत डरति है
तीर ऐसो नीर तरवार सो तुसार तन,
नैजा ऐसी सेज मानो जीवन हरति है
'विरहवारीश'

मुस—नल के बिछुरन के डर जानी।
नाहि उघारत पलक सयानी।
जागत हूँ में सोए रहहीं।
नल के मिलन आन कुछ न चहहीं।
'नलपुराण'

उन्माद—काम रस माती उन्माती सी विहाल बाल।
प्रेम के समुद्र मांझ मगन परी है जू।
भूली सी फिरत ज्यों कुरंगनी कुरंग नैनी।
मानो सरपंच ने जीवन हरी है जू।
अञ्जन लगायो दृग चंदन सो ओज दृग।
सबल सिंगार विपरीत को करी है जू।
वीरी लावहि काननहि ग्यान न सयान कछू।
वारुनी के पान ज्यों विधान विसरी है जू।
'विरहवारीश'

संयोग शृंगार जब नायिका की ओर से प्रारम्भ होता है तब उसे नायिकारब्ध संयोग कहते हैं और जब नायक की ओर से होता है तब उसे नायकरब्ध कहते हैं। अधिकतर इन काव्यों में "नायकरब्ध" संयोग मिलता है किन्तु माधवानल कामकंदला, कल्पलता और "सूरजप्रभा" के संयोग-पक्ष में यह नायिकारब्ध है।

शृङ्गार रस का दूसरा पक्ष विप्रलम्भ शृङ्गार है। इसके पाँच भेद माने गये हैं। अभिलाषा[1] हेतुक (पूर्वराग) ईर्ष्याहेतुक[2], प्रवासहेतुक[3], शापहेतुक[4], विरहहेतुक[5], ।

---

१. गुण श्रवण, स्वप्न दर्शन आदि से उत्पन्न प्रथम अनुराग।
२. मान के समय का वियोग।
३. मिलने के उपरान्त दम्पति में से किसी का प्रवास में होना।
४. राजा या आदि दैवी शक्तिद्वारा प्रिय से वियोग।
५. गुरुजनों की लज्जा आदि से न मिल सकना।

सूफियों से प्रभावित काव्यों, एवं उषाअनिरुद्ध और रुक्मिणी हरण की कथाओं में अभिलाषाहेतुक विरह का चित्रण मिलता है, साधारणतया इन काव्यों में अभिलाषा और प्रवासहेतुक विप्रलम्भ शृङ्गार की ही प्रधानता है अन्य तीन प्रकार के शृङ्गार नहीं मिलते हैं।

जैसा कि ऊपर आ चुका है कि इन शृङ्गार प्रधान काव्यों में 'वीर रस' बहुतायत से मिलता है कारण कि नायक को या तो विवाह के उपरान्त लौटते समय या विवाह के प्रयत्न के बीच में ही युद्ध करना पड़ता है। प्रश्न यह उठता है कि काव्य-शास्त्र की दृष्टि से यह कहाँ तक उपयुक्त है कारण कि श्रेष्ठ काव्य वही गिना जाता है जिसमें समतापूर्वक एक ही प्रधान-रस हो तथा अन्य सहकारी रस एवं उनके संपोषक भाव-विभाव आदि गौण रूप से उस प्रधान रस की इस प्रकार पुष्टि करें जिस प्रकार एक प्रधान सरिता के अनेक नद, स्रोत, शाखा अपना जल प्रदान कर उसे परिपुष्ट करते रहते हैं। दंडी के 'रसाभावनिरन्तम्' का प्रयोजन भी यही है। शृङ्गार-रस की विवेचना करते हुए विश्वनाथ कविराज ने लिखा है 'रस विच्छेद हेतुत्वात् मरणं नैव वर्ण्यते'। सामान्य दृष्टि से भी देखा जाय तो पास ही पास एक काव्य में दो विरुद्धधर्मी रसों का वर्णन शोभा नहीं देता।

रस विरोध और अविरोध के विषय में ध्वन्यालोककार ने आगे चल कर कहा है।

'अविरोधी विरोधी वा, रसोंगिनी रसान्तरे।
परिपोषनम् न नेतव्यस्तया स्याद् विरोधि सा ॥"

उ० ३।२४१

अर्थात् विभिन्न धर्म वाले अंगी रस अथवा प्रधान रस में कवि को अविरोधी वा विरोधी किसी भी दूसरे अंगभूतरस का स्वतंत्ररूप में परिपोषण कभी नहीं करना चाहिये। किन्तु किसी भी रस के विरोध या अविरोध का प्रश्न तभी उठता है जब दोनों रस के आलंबन एक ही हों। वीर और शृङ्गार का यदि एक ही आलम्बन हो तो वह अवश्य विरोधी है किन्तु यदि आलम्बन दूसरे हों तो इन दोनों रसों का साथ-साथ वर्णन हो सकता है। इन काव्यों में शृङ्गार रस की आलम्बन नायिकायें हैं और वीर रस के विरोधी लोग अथवा नायक के शत्रु इसलिये हमारे विचार में उपयुक्त काव्यों में रस विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता है।

शृंगार-रस की नांई युद्ध भूमि में बीभत्स और भयानक रस भी अच्छा निखरा है जैसेः—

"फिकरैं भूत बैताला जोगिनि गुहे मुन्ड की माला।
चरख चील बहु दिसि ते धाए हरखि गीधनी अङ्ग लगाए।
रुधिर मच्छि सब करहि अहारा पैरत भैरो फिरत अपारा।

"उषा की कथा"

"चोसठ जोगिनी आइ तुलानी। पिअहि रुधिर आइ रहसानी॥
बाजहि डवरू होइ अकूता। नाचहि कूदहिं राकस भूता॥
गीधि चील्ह बहुते मेड़राही। बहुते काग मास चट खाहीं॥
बहुते जंबुक स्वान अवाने। फेकरत फिरे लरहि बौराने॥

इस प्रकार रस परिपाक की दृष्टि से ये काव्य, काव्य-शास्त्र की दृष्टि से खरे उतरते हैं। यह अवश्य है कि कहीं-कहीं ये कवि "संयोग" शृङ्गार में मर्यादा का उल्लंघन कर गए हैं जिसके कारण उनका वर्णन अनुचित हो गया है ऐसे स्थलों पर रसाभास हो जाता है।

घूँघट खोलि पङ्क मलावो। कस्यो अङ्ग उमङ्ग बढ़ायो॥
गहत लंक विरहे गढ़ तजा। जाइ पवरी पर गाड़ो धजा॥
नौबत बाजे लागु नगारा। बिछोया घुँघरून भा झनकारा॥
मैन भण्डार जाइ उघारा। लेहु कुञ्जी जनु खोला तारा॥
भरी सेज रुधीरन से बीरह का भा संघार।
अङ्ग अङ्ग सम भङ्ग सा भा जीत नौ सत सिगार।

"पुहुपावती"

किन्तु ऐसे स्थल लगभग नहीं के बराबर ही हैं।

अलङ्कार

अलङ्कार—योजना में इन कवियों ने सादृश्य मूलक अलङ्कारों का ही आश्रय लिया है। जिस युग की ये रचनाये हैं उस युग में सूफियों के प्रभाव के कारण रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति, तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कारों का ही प्रयोग अधिक किया जाता था। रीति कालीन कवियों ने श्लेष, यमक, अपह्नुति, विरोधाभास एवं असङ्गति अलङ्कारों के प्रयोग से काव्य में चमत्कार लाने की प्रथा का अनुसरण किया था साथ ही वे अलङ्कारों आदि के लक्षण गिनाकर उनके उदाहरण दिया करते थे। अलङ्कार योजना और काव्य तत्व की उपयुक्त प्रवृत्तियो का प्रभाव इन कवियों पर भी पड़ा। इनके उपमान साधारणतः कवि-समय-सिद्ध उपमान ही

हैं किन्तु इन्हें सन्देह और रूपक अलङ्कार विशेष प्रिय जान पड़ते हैं। जैसे कटि के लिये सिंह, मुख के लिये चन्द्रमा आदि।

वस्तूत्प्रेक्षा—"लखत बाल के भाल में रोरी विन्दु रसाल।
मानो शरद शशि में बसी बीर बहूटी लाल।
चन्दन सो माँग भरि मोतिन सँवारि सरि।
मेरे मन आई कछु उकति सी भाँति है।
पावस उमड़ घनघोर मानो कारी घटा।
ता मधि विराजै वर वागनि की पाति है।

हेतूत्प्रेक्षा—पौहकर अधरन अरुनता केहि गुन भई अचान।
जनु जीतन को मदन पै लिए पैज कर पान।

अथवा

दमयन्ती लावन्य सरोवर। बाल रूप मनहुँ पंच सर।
पैरन सिखवत है सो हठि धरि। दमयन्ती कुच लइ कलस करि।

× × ×

हिय सरवर कुच अंबुज करे। संपुट बधे करेरे खरे।
निकसत किरन बन्द ससि दई। निपट कठोर सकुच होइ गई।
ऊपर स्याम अधिक छवि छाई। ते अलि छौन बैठ जनु आई।
धरै नैन दोउ लूट खिलौना। ऊपर स्याम लगाइ डिठौना।

उपमा—नौ जीवन को ठाट के छाजेन छायो नेह।
एक साजन पीतम विना भावे कुञ्ज सम गेह।

× × ×

गति गयंद जंघ केलि भ्रम केहरि जिमि कटि लंक।
हरि दसण विद्रुम अधर, मारु भृकुटि मयंक।

× × ×

अधर सुधर दमयन्ती केरा। सन्ध्या सरिस छवि हेरा।
सन्ध्या राग अधर अरुनाई। रद द्युति जानि ससि करिनाई।

अतिशयोक्ति—लंक निहारि ससंक भए कवि का बर्नों मति ते अधिकाई।
बार सितार को तार कहौ पुनि होतो लखे पर देत दिखाई।
खैर छरी त्रवली गुण लाय के मैन महीप सो हाथ बनाई।
ब्रह्म की लीक सी देखि परे नृप है औ देति है नाहि दिखाई।

विरोधाभास—दोनों जंघ भुजान पर कर में पीन उरोज।
अचरज पिय मुख इन्दु लखि विहंसत कंज सरोज।

संदेह—अमल कमल के नाल किधौं,
विमल विराज मान वेनी कैसी झाई है।
चक्रवाक, चंचुते छुटि सिवाल मञ्जरी,
कि नागिन निकसि नाभि कूप ही ते आई है।
जमुना की धार तम धरि की खानि धरि,
किधौं अलि सावक की पंगति सुहाई है।
पुहकर कहै राम राजियाँ विराजी आइ
वरनी न जाइ कवि उपमा न पाई है।

अथवा

नगन की जोति उर लसै लर मोतिन की।
चकचौंधहि होति मनि गन जाल जू।
कैंधों मखतूल झूल, मानहु झलति है हिंडोरा।
मानहु सिखर सुमेरन बीच वारिध के बाल जू।
कैधों नवग्रह संग मिलि संकर सहाइ होत।
समर समर काज आए तिहि काल जू।
पुहकर कहै पीय प्रान तिय परम मोद।
रीझत निहारौ छवि रसिक रसाल जू।

अथवा

उर सर परी कुच कंचन कली। कवल फूल जस कुन्दी भली।
कै सोनार सांचे मंह ढारा। श्री फल ऐसन गोल संवारा।
कै जनु विरह 'कन्तु के कागा। कोप के फुली काम जनु जागा।
कंचुकी पहिर तनीक सो बाँधा। सिव कारन तंबु जस साधा।

दो०—के दुइ कञ्चन कलस भरी अम्रित राजा गोय।
मैन छाप सिर स्यामता छुवे न पावे कोय!

रूपक—कोप काम जीतन जनु चली, चढ़ी गयन्द गौन पर अली।
आंगा अङ्ग अङ्गी उजियारी। चीर खमक कुच पाखर डारी।
भोह धनुक वरुनी ते कानीं, खरक दसन दुति, अधर मसाना
ठाढ़ धनुक तिलक जमधर अनियारे, मानिक सांग गह सीस उदारे।
सो ही चमक आरसी रही, बाँए हाथ ढाल जनु गही।
नैन चपल है कोतल कांछे, कजल वाग लगे पुनि आछे।
पवन लाग अञ्चल फरहरा, सोई जान ध्वजा के धरा।

कटक कटाच्छ न जांह गिनावा, छुद्र घंट मारून जनु गावा।
रोमावलि कमान अडोला, ढिगही कुच कंचन के गोला।

दो० फेरि भँवर सुर राजही नूपुर बजंह निसान।
ऐसी कामिनि चली सेज जुद्ध मैदान।

व्यतिरेक—वरनौ भाल रूप ससि रेखा।
सरद समै जस दुइजी रेखा।
दुइजी जोति कहै कंह वोती।
सरवर करै न सुरज जोती।

लोकोक्ति—भानु उदय उदयाचल और ते पूरब को पुनि पांव धरै ना।
ज्यों गज-दंत सुभाय कह्यो कदली तरु दूसर बेरि फरै ना।
त्यों ही जवान बढ़े नर की मुख सों निकसे वह फेरि फिरै ना।

× × ×

धोबिन सो जीते नहीं मतन खरी को कान।
परखइया को खोट का घर को खोटा दाम।

× × ×

व्याउए की पीर कैसे बांझ पहिचानै।
कैसे ज्ञानिन की बात कोउ कामी नर मानि है।
कैसे कोउ ज्ञानी काम कथन प्रमान करै।
गुर की स्वाद कैसे बाउरी बखानि है।
कैसे मृग नैनी भावै पुरुष नपुंसक को।
कवि की कवित्त कैसे शठ पहिचानि है।
जानै कहा कोउ जापै बीत्यो न वियोग।
बोधा बिरही की पीर कोई बिरही पहिचानि है।

यमक—बिन गुन कूप वारि नहि देई।
बिन गुन हार हियो नहि लेई।
बिन गुन नाउ नीर मह डोलै।
बिन गुन कनक तुला नहि तोलै।

अनुप्रास—चारु चीर चूनरी बनाई। सहचरी चतुर आनि पहिराई।
चुपरि कुंलेल कंचुकी मीनी। बहुत सुगंध कुम कुमा भीनी।
चन्दन खौरि सकल तन कीनी। जनु पदमिनी प्रभुताई लीनी।

सूफियों के प्रभाव से नखशिख वर्णन में शामी उपमानों का प्रयोग भी कहीं कहीं मिलता है जैसे :—

जानो रकत हथोरी बूड़ी।
रवि परभात तात वे जूड़ी।
हिय काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा।
रुहिर भरी अंगुरी तेहि साथा।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि रीतिकालीन प्रभाव के कारण यह कवि कहीं-कहीं रूप वर्णन करते समय या संयोग वियोग पक्ष के वर्णन में काव्य-शास्त्र का संकेत भी करते थे जो इनके काव्य-शास्त्र के ज्ञाता होने का परिचायक होते हुए एक नवीन अभिव्यञ्जना शैली का भी द्योतक है जैसे :

स्वेद कंप रोमांच अश्रुपात जन्नात।
प्रलय वैवरन भंगसुर तन तोरत अलसात।
प्रगट होय पिय परसतें ये लक्षण तिय अंग।
निरख कंदला देहते माधव चाह्यो रंग।
"विरहवारीश"

स्वेद श्रम रोमांच है व्यापत अरु सुरभंग।
अश्रुपात वैवरन प्रलै अष्ट गुन संग।
ते सब गुन रंभा प्रगट सखी निरखहु तुम नैन।
वारि बूँद मृग दगन ढरै कहति भंग सुर वैन।
"रसरतन"

कोउ अज्ञात यौवना नारी। खेलत कटि ते छूटेउ सारी।
"नल चरित्र"

सूर बिना सकुचै कमल हरखि न करै प्रयास।
सूरज सकुच्यौ कमल बिनु यहै विरोधाभास।

रसरतन में तो कवि ने रंभा के वियोग-वर्णन में दसों अवस्थाओं का वर्णन काव्य-शास्त्र के लक्षण उदाहरण सहित किया है जैसे—

छन्द—"सदा रहत मन चिंत में मन ते पड़े न वित्त।
ताहि कहत अभिलाष कवि इत उत चलहि न चित्त ॥'

आलोच्य-काल में कविवर नीति के लिए दोहा, सोरठा, आख्यानक काव्य के लिए दोहा चौपाई, वीररस के लिए छप्पय तथा शृङ्गारवर्णन के काव्यों में सवैया और कवित का साधारणतः प्रयोग किया करते थे। इस प्रकार सोरठा, दोहा, चौपाई, छप्पय और कवित्त तथा सवैया छंदों का प्रयोग बहुतायत से

होता था। हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानो में इन छन्दों का बाहुल्य तो है ही इसके अतिरिक्त इन कवियों ने अपभ्रंश के अन्य छन्दों का प्रयोग भी किया है। पुहुपावती रसरतन आदि प्रबन्धों में दोहा चापाई के अतिरिक्त अन्य छन्दों का प्रयोग से हुआ है जैसे—

छप्पय : कह चकोर सुख लहत मीन कीन्हा रजनी पति।
कह कमलन कह देत भाव सह हेत कीन्ह अति।
घुन कह कहा मिठास लकुट भूरी टकटोरत।
दीपक पतङ्ग आय नाहक शिर फोरत।
नहि तजत दुसह यद्यपि प्रगट बोधा कवि पूरी पगन।
है लागी जाहि जानत वही अजब एक मन की लगन।

पद्धरि—विरहिन विकल उद्वेग संग। अति विथत बान जे हति अनंग।
आमरन दुसह इमि लगत अंग। जन डसत छुधित विषधर भुजंग।

त्रोटक—त्रिपुरारि त्रिलोचन शूल धरे। करुणा करि संकर काम हरम्॥
अरधङ्ग विराजति संग प्रिया। जनु पुहुकर हास हुलास जिया॥

भुजङ्गी—नमो देव देवा दिवानाथ सूरं। महा तेज सोमं तिहूँ लोक रूपं॥
उदै जासु दीसं प्रदीसं प्रकासं। हियौं कोक सोकं तमं जासु नासं॥

घटक सारदूल—बन्दे संकर नन्द सिद्ध मुखो सिद्धिदं गौरी सुतं।
बुद्धि दाया सुदाया ईस तनमें सर्वज्ञ दानि वरं।
काव्ये मंगल उत्सवे प्रथम तुव नाम उच्चारनं।
वानी उक्ति कुकाव्य छन्द निविघ्न निर्वाहनं।

गाथा—हो कदला पश्चीनं। तुव वियोग मम दुख लीन।
छिना-छिना छिन दीन। बुद्धि रख माधवा योगी।

तोमर—द्विज पुछ्यां शुक काहि। टिकिए कहां पुर माहि।
तब यो कह्यो परवीन। नृप बाग चाह नवीन।

सोम कान्ति—जा कुन्देन्दु तुषारं हारं। जास अवस्था विस्तारं।
जा वीनां दण्डी मण्डीयं। सम्या पातोयं चण्डीयं।

मोती दाम—प्रकाशित चन्द विलोकहि बाम।
मनो सरपञ्च लिए कर काम।
चढ़ै इक सुन्दर आइ अवास।
विलोकनि आननि मण्डित हास।

दुमिल—कटि किंकिनि कूजनि कञ्जन के।
कुच मुतिया भाल विलोल सरै।

कहि पुहुकर गङ्ग तरङ्ग मनो।
जुग हंसन के चढ़ि सीस वहैं।

भुजङ्ग प्रयात—महा सूर पयान निस्सान बाजे।
मनौ मेघ भादौ महा नाद गाजे।
बजै दुन्दुभी ढोल भेरी मृदङ्गा।
सुने सोर पाताल मध्ये भुजङ्गा।

छन्द नाराच—गहे सुवांह विप्र की सकोप बाल यों कहै।
बताव मीत मोहि तोहि काढ़ि देन को कहै।
शाप देउं तास की सुनु सो हाल ही करौं।
उतार शीश देहते हजूर राइ के धरौं।

द्रुवलिका—वह को विद्या जो वाल।
तिहि रची सेज विशाल पुनि सजे भूषण वेश।
पिलसू जवार सुदेश।
तित दम्पति हिये उठाइ।
वह गइ झट पगलाय।
तव माधव वा उनमान।
रति करी तजि के काम।

छन्द सुमुखी—लीलावती ने यह सुध पाई। माधव को निकरावत राई।
जग भय छोड़ कै कुल कान। नृप पै चली अतिहि रिसान।
कर गहि माधव को लीन्ह। इहि विधि तिह ठां कीन्ह।
को समरत्थ लखि इहिवार। देहै माधवाहि निकार।

कवित्त—तुही मेरो धन ध्यान तेरोइ करत दिन,
तुही मेरो प्रान प्रान तुही मे बसतु है।
तुही मेरो चैनु चैनु चरचा चलावे कौन,
तुही नैन तुही को तुही को चहतु है।
पुहुकर कहै तुही तुही दिन रैनु कहौ,
तेरी धुनि सुनिबे को श्रवन दहतु है।
तुही मेरो प्यारी होति नहि दजै न्यारी।
परम अयाने लोग बिछुरन कहतु हैं।

कुण्डलिया—व्यापति जासु शरीर मे भूख भूतनी आय।
रूप शील बल बुद्धि हित तात्क्षण सबै नशाय।

ताक्षण सबै नशाय ज्ञान गुण गौरव हरहीं।
पुनि कन्दर्प विनाश पान बीरा अति करहीं।
सुत सोदर पितु माय नारि सौं नेहु उथापति।
जब जाके तन मांहि भूख भूतिनि हो व्यापति।

सवैया—ये हो अज्ञान प्रहारक प्रान।
ये कौन से ठान अठान करै तू।
प्रेम के पन्थ में पाउं धरै।
अपने रकतापने हाथ मरै तू।
हाहा भले निज राम को मान लै।
नेह के नाम न हाय भरै तू।
या के नफे हूँ मैं नुकसान सौ।
जान किसान को दण्ड धरै तू।

इस प्रकार हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों में शृङ्गार रस प्रधान है "वीर रस" उसके सहायक रूप में प्रस्तुत किया गया है। अलङ्कारों में इन्होंने सादृश्य मूलक अलङ्कारों का ही आश्रय लिया जिनमें कवि-समयसिद्ध उपमान ही अधिक मिलते हैं। सादृश्यमूलक अलङ्कारों में उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा का व्यवहार अधिक मिलता है। छन्द-योजना में इन्होंने दोहा, दोहा चौपाई (जिसमें आठ अर्द्धाली के बाद एक दोहा का क्रम पाया जाता है) का प्रयोग किया है किन्तु इनके अतिरिक्त छप्पय, त्रोटक, पद्धरि, भुजङ्गी, घटक, सारदूल, गाथा, तोमर, सोमक्रान्ति, मोतीदाम, द्रुमिला, भुजङ्गप्रयात, नराच, दुविलका, सुमुखी, कवित्त, कुण्डलिया-सवैया और सोरठा का भी प्रयोग किया गया है। छन्द-अलङ्कार की दृष्टि से यह काव्य बड़े महत्वपूर्ण ठहरते हैं।

भाषा-शैली

भाषा संबंधी कठिनाइयां

अब तक प्राप्त हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की भाषा के सम्बन्ध में अपना निष्कर्ष देना कठिन प्रतीत होता है। इन कठिनाइयों के तीन कारण हैं—पहली यह कि कुछ कवि अभी तक अज्ञात थे। उनकी एक रचना के अतिरिक्त और रचनाएँ प्राप्त नहीं हैं। दूसरी यह कि इन प्रेमाख्यानों के प्रतिलिपिकारों ने भाषा सम्बन्धी बहुत भूलें की हैं जिनके कारण यतिभङ्ग आदि कितने ही दोष आ गए हैं छन्दों की मात्राएं घट बढ गई हैं, अकार, इकार, और उकार की ओर ध्यान ही जैसे नहीं दिया गया है। किसी-किसी स्थान पर इन अशुद्धियों के कारण अर्थ समझ में नहीं आता।

कुछ हस्तलिखित प्रतिया ऐसी हैं जिनके बहुत से अंश भ्रष्ट लिपि के कारण तथा पानी आदि से भींग जाने के कारण पढ़े नहीं जाते। दूसरी बात यह है कि अधिकतर यह आख्यान मौखिक रूप में अपने रचनाकाल के उपरान्त जन-साधारण में प्रचलित रहे, इसी कारण ध्वनि सम्बन्धी और प्रयोग सम्बन्धी कितने ही परिवर्तन इनकी रचनाओं में होते रहे हैं।

तीसरी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि लोक-गीतों के रूपों में प्रचलित होने के कारण समय-समय पर अन्य व्यक्तियों ने कुछ अंश अपनी ओर से जोड़ दिए हैं या अन्य कवियों की रचनाओं के अंशों का समावेश कर दिया है। उदाहरण के लिए कुशललाभ के माधवानल कामकन्दला को ही लीजिए इसकी भाषा मुख्यतः अपभ्रंश है जैसे—

'विरला जाणति गुणा, विरला निद्धण नेह।
विरला पर कज्जकरा, पर दुक्खे दुक्खिया विरला॥'

किन्तु बीच-बीच में अवधी के अंश भी मिलते हैं, जैसे—

'लोच तुम हौ लालची, अति लालच दुःख होय।
जूठा सा कछूत्तर मोहै, साँच कहैंगो लोइ॥'

यही नहीं कबीर की उक्ति भी मिलती है—

'लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लालन देखन मैं चली मैं भी भई गुलाल ॥'

माधवानल कामकन्दला की सभी रचनाओं में चाहे वह संस्कृत और अपभ्रंश मिश्रित हों, और चाहे केवल अपभ्रंश या संस्कृत में, एक रचना की उक्तियाँ दूसरी रचनाओं में पाई जाती हैं। ऐसे स्थलों की भाषा अन्य अंशों की भाषा से भिन्न पाई जाती है।

जिन कवियों की उक्तियों से हिन्दी संसार भिज्ञ है उनको ढूँढकर अलग कर लेना तो सहज है, किन्तु उन अज्ञात कवियों की उक्तियाँ ढूँढ़ना बड़ा कठिन है जिनके विषय में हम नहीं जानते।

अस्तु रचयिता की असली भाषा क्या थी और उसकी रचना में क्षेपक कितना है इसका पता लगाना उस समय तक दुस्तर कार्य है, जब तक अन्य हस्तलिखित प्रतिया न प्राप्त हो जायँ या इन कवियों की अन्य रचनाओं का पता न लग जाय। फिर भी जो सामग्री अब तक प्राप्त है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह रचनाएँ संस्कृत और अपभ्रंश मिश्रित भाषा, शुद्ध अपभ्रंश, साहित्यिक डिंगल, साधारण बोलचाल की राजस्थानीय, अवधी, ब्रज एवं अवधी और ब्रज मिश्रित खड़ी बोली में पाई जाती हैं।

संस्कृत और अपभ्रंश मिश्रित भाषा

कुशललाभ तथा दामोदर विरचित माधवानल कामकन्दला संस्कृत और अपभ्रंश मिश्रित भाषा के अच्छे उदाहरण हैं। अधिकतर इन कवियों ने कथा का वर्णन राजस्थानी, तथा अपभ्रंश में किया है लेकिन बीच में धर्म, नीति एवं राजनीति सम्बन्धी उक्तियाँ संस्कृत में पाई जाती हैं जैसे—

अेक त्रिया इम टलवलइ, अेक कसइ निज प्राण।
माधव मुखि अमृत वसइ, किन्हा गयउ चतुर सुनाण।
अेक भणि रे कामनी, भुज गइ सघली सान।
नवि गमि कांई वातड़ी मुखि नवि भावइ धान ॥

"दामोदर"।

लेकिन इसी प्रकार कथानक को यह कवि अपनी भाषा में लिखते हुए जब किसी विशेष घटना के उल्लेख के बाद कोई नीति विषयक बात कहना चाहते हैं तब वे अपभ्रंश में उस घटना का वर्णन करके उसके नीचे संस्कृत के

श्लोकों का प्रयोग करते हैं। जैसे—कुशललाभ माधव के निष्कासन पर अपने विचार प्रकट करता हुआ उस घटना का वर्णन निम्नांकित रूप में करता है—

त्रिणिह पाननउ वीड़उ करी राजा कोप मनि धरी।
माधवनइ दीधउ आदेस, तू छड़िजे अह्मारू देस॥
× × ×
माता यदि विषं दद्यात्, पिता विक्रयते सुतम्।
राजा हरति सर्वस्वं, यत्र का परिवेदना॥

इस प्रकार इन कवियों की रचनाएँ संस्कृत अपभ्रंश और कहीं राजस्थानी के मिले-जुले रूप में प्राप्त होती हैं।

अपभ्रंश

गणपति के 'माधवानल काम कन्दला' की भाषा अपभ्रंश है। इस ग्रन्थ में अपभ्रंश के शोरसेनी और उपनागरिका पश्चिमी अपभ्रंश के रूप प्राप्त होते हैं। वैयाकरणों ने अपभ्रंश के तीन भेद नागरिका, उपनागरिका और ब्राचड़ किए हैं। इस रचना की भाषा में श, ष, स, न, ण स्वर मध्यम-वर्ती व्यञ्जन के लोभ और उसके स्थान पर य श्रुति का विकास जैसे दिनकर के लिए दिणयर आदि तथा प्रत्यय् , डा, ड़ा, और पुलिंग तथा स्त्रीलिंग में डी, ड़ी के प्रयोग जैसे हियड़ा, बेलड़ी, णाइ तथा नई आदि में नागरिका के उदाहरण प्राप्त होते हैं। परन्तु कहीं-कहीं पर श, न आदि ध्वनियों के प्रयोग से भाषा पर उपनागरिका का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

अपभ्रंश के साहित्यिक सौन्दर्य के साथ-साथ कहीं-कहीं उसकी भाषा में सरल राजस्थानी की छटा भी देखने को मिलती है जैसे:—

आभइ जलइ धरती जलइ दिनिदिनि जलती धाख।
भायग पाहरइ भेटयु, वारू भई वैशाख॥
अथवा
अवनि तपइ, अम्बर तपइ, तपइ सुशशिहर सूर।
माधव अक्षी जेठ मांहा, तूं अलंगु वाइ तूर॥

डिंगल

पृथ्वीराज की 'बेलि' की भाषा साहित्यिक डिंगल है। यह ग्रन्थ मुगल-सम्राट अकबर के शासन काल में बना था। इस समय फारसी आदि भाषाओं का काफी प्रचार हो चुका था लेकिन बेलि में विदेशी शब्दों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। इसके शब्द भण्डार में संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत आदि भाषाओं के शब्द ही विशेष मिलते हैं।

जहाँ तक भाषा के साहित्यिक सौष्ठव का सम्बन्ध है 'बेलि' की भाषा बड़ी परिमार्जित और विषयानुकूल बन पड़ी है। इस कवि के थोड़े से शब्दों में जो अर्थ गाम्भीर्य मिलता है वह सराहनीय है। उदाहरणार्थ रुक्मिणी के वयः-सन्धि का वर्णन करता हुआ कवि कहता है।

"सैसव तनि सुखपति जोवण न जाग्रति।
वेस सन्धि सुहिणा सुन्नरि।
हिव पल पल चढ़तो जि होइसे।
प्रथम ज्ञान एहवी परि।।"

शैशव काल को सुषुप्तावस्था और अंकुरित योवन को जागृतावस्था से समानता देकर कवि ने अपनी काव्यकला का अच्छा परिचय दिया है। शब्दचयन भी भावानुकूल मिलता है।

इसी प्रकार कवि का युद्ध-वर्णन बड़ा सजीव और ओज पूर्ण है। भाव के अनुकूल टकारों का प्रयोग अनुप्रास, समीकृत व्यंजन, संयुक्त अक्षर, अनुप्रास आदि बँधे हुए से प्रतीत होते हैं जो शाब्दिक चित्र को उपस्थित करने में बड़े सफल हैं जैसे—

कल कलिया कुत किरण कलि ऊकलि।
बरजित बिसिख विवरजित वाउ।
धाड़ धड़ि धवकि धार धारू जल।
सिहरि सिहरि समखे सिलाड़।।

बोलचाल की राजस्थानी

साधारण बोलचाल की "राजस्थानी" का रूप इस कवि की "चन्द्र कुँवरि री बात" में मिलता है, इसकी भाषा में सरलता और प्रवाह दोनों पाए जाते हैं जैसे—

प्रीत करा नहीं काय पराए वारणैं।
विछुड़ता दुख होय के प्रीत के कारणै।
जीवड़ो पड़े जंजाल सुणोंरी सखीयां।
काया छुटे नेह लगे जब अंखियाँ।

अवधी और ब्रज

अपभ्रंश, राजस्थानी और डिंगल भाषा के काव्य उतने नहीं प्राप्त होते जितने अवधी और ब्रजभाषा में पाए जाते हैं। वास्तव में हिन्दू कवियों के प्रमाख्यानों का चरम उत्कर्ष सम्वत् १७०० से १६०० सौ के बीच हुआ इसलिए

इन कवियों ने तत्कालीन काव्यभाषा अवधी के दोनों रूपों-पूर्वी और पश्चिमी-एवं ब्रज में ही अधिक रचनाएँ की हैं।

पूर्वी अवधी में पुहुपावती, नलदमन, सत्यवती की कथा प्रणीत है तथा पश्चिमी अवधी में रसरतन, एवं नल दमयन्ती चरित्र उल्लेखनीय है।

पुहुपावती में कवि ने जायसी की भाषा का अनुसरण किया है। जैसे—

बरनों भाल रूप ससि रेखा। सरद मनौ जस दुइजी देखा।
दुइजी जोति कहै कह वोती। सरवर करै न सुरज जोती।
पुनि चंद सो देखी लिलाटा। दीन दीन ते अपन तन काटा।
महादेव ते कीन्हिस नेहा। मकु लिलाट सम पावों देहा॥

इस रचना के कवित्तों में भाषा के मिठास के साथ-साथ भावानुकूल प्रवाह भी देखने योग्य है। जैसे—

वन भवो भवन गवन जब कीन्हों पीव,
तन लागे तवन मदन लाइ तापनी।
भूत भवो भुखन वो चुरी चुराइल भइ,
हार भवो नाहर करेजे छुरी कापिनी।
दुख हरन पीव बिन मरन की गति,
कासों में बरनी कहों बीती कहौं आपनी।
फूल भवो सूल मूल कली भई काटा ऐसी,
रकसिनी भई सेज रात भइ सांपिनी।

"पुहुपावती"

अवधी भाषा का प्रवाह उसका सौष्ठव एवं अभिव्यञ्जना की शक्ति नलदमन में देखने को मिलती है। नायिका की विरह दशा का एक शाब्दिक चित्र अवलोकनीय है—

जदपि नैन चातक न सिराई, ऊं तिन्ह स्वाति बून्द लव लाई।
दिव ज्यों त्यों दुख पीर सहारै, विरह रैन दूभर अति भारी।
तपा सूर दिन मे निसि मांही, नीरज नैन खुलै न मुंदाही।
मन भया भंवर भवे चहुँ ओरा, हंस कमोदनि ज्यों गह मोरा।
चल्ह भखरात तपत उस्त्रांसा, बढ़ी प्रेम मन पीउ पिपासा।

पश्चिमी अवधी का सौष्ठव नलचरित और रसरतन में अवलोकनीय है। इसके छन्दों के शब्द चयन को देखकर तुलसी की परिमार्जित भाषा और शब्द-चयन का स्मरण हो आता है।

परवीन पूरन चन्द बदनी वंक जुग भ्रकुटी लसै।
छुटि अलक लटक कपोल पर जनु कमल अलि अवली लसै।
मृग मीन खञ्जन नैन अञ्जन, चित्त रञ्जन सोहई।
विष धार बान विलोक बरुणी देख मनमथ मोहई।
"रसरतन"

दक्खिनी हिन्दी

दक्खिनी हिन्दी का रूप बोधा के विरह वारीश में मिलता है। जैसे—
नशा न कभी खाते हैं। अये हम इश्क मदमाते हैं।
गये थे बाग के नाईं। उतै के छोकरी आईं।
उन्ही जादू कुछ कीन्हा। हमारा दिल कैद कर लीन्हा॥

ब्रज और खड़ी बोली मिश्रित भाषा

ब्रज और खड़ी बोली मिश्रित भाषा का रूप रमणशाह छबीली भठियारी की कथा में मिलता है। ऐसी भाषा में क्रियापद खड़ी बोली के तथा परिसर्ग कारक चिन्ह आदि ब्रज भाषा के पाए जाते हैं। जैसे—

मेरा है गूजर सो मिर का है सिरताज।
साहिब वस वही साहिजादा आप जैसा है।
कहने की होय सो तौ कहूँ साहिजा जू सों।
मोहर की गाँठ खोलि बांध्या लोह पैसा है।
घर की न खांड खाय गुड को पारए जाय।
राति दुखै आंखि द्यौस चलत अनैसा है।
कहत है रमन साहि रानी चन्द्र हेरे की सौ।
गुजरी तु ऐसी तेरा गुजर धौ कैसा है।

ब्रज भाषा

जहाँ तक भाषा सौष्ठव ओज और माधुर्य गुण का सम्बन्ध है वह ब्रज के काव्यों में अधिक मिलता, है। सीधी-सादी भाषा में मार्मिक व्यंजना करने में यह कवि सिद्धहस्त थे। एक नायिका की मनोदशा और विरह जनित व्याकुलता का चित्रण बड़े ही सरल और चलते हुए शब्दों में कवि ने अङ्कित किया है। जो इन कवियों की भाषा सम्बन्धी अद्भुत शक्ति का परिचायक कही जा सकती हैं जैसे—

वह सुन्दर रूप दिखाय पिया चल की चखते उरझाय गयो।
वर बैन सुनाय रिझाय मुझे ललचाय हिये हिय छ्वाय गयो।

उर प्रेम बढ़ाय जनाय रसे रतिराज हिये उपजाय गयो।
लपटाय गरै करि दाय चितै उम्फटाय लुकाए पलाय गयो ॥
—"उषा चरित, जीवनलाल नागर"

इसी प्रकार सेना के चलने के प्रभाव का ओज पूर्ण वर्णन भूषण के शब्द-विन्यास के सादृश्य ही पाया जाता है जैसे :—

कसमसित कमठ धस मसित भूम।
डिग डिगत अद्रि उठि गगन धूम।
फन सहस सेस सलसलत सेत।
नृपवान चढ़ि दिग्विजय हेत ॥
—"उषा चरित।"

शृङ्गार काव्य होने के कारण तो इन काव्यों की भाषा माधुर्य गुण से ओत-प्रोत है। कोमल-कान्त-पदावली के प्रयोग की छटा सर्वत्र दिखाई पड़ती है। नखशिख वर्णन में भाषा का यह गुण सबसे अधिक पाया जाता है। एक उदाहरण देखने योग्य है—

चुपरि चुनाई चोली सेत श्री साफ छाजत,
कबीन मन उकति को धायो है।
मेरे जान हेमगिरि सिखिर उतंग बिव,
तापर तुषार परि पतरो सो छायो है।
झीने जल जलज कमल कली सी,
मानो अमल अनूप रूप रतन लजायो है।
महां मनि छटा पट अमित बिराज मान,
किधौ पूजि पट जुग ईसन चढ़ायो है ॥

गद्य की भाषा

हिन्दी और राजस्थानी भाषा के प्रारम्भिक गद्य का रूप रमणशाह छबीली भटियारी की कथा एवं चन्द्र कुंवर री बात में देखने को मिलता है। छबीली भटियारी के गद्य में पद्य की तरह खड़ी बोली के कुछ क्रिया पदों का प्रयोग प्राप्त होता है। बीच-बीच में फारसी के शब्द जैसे फुरमाना, माफक, मलमूं, मुमारक आदि भी मिलते हैं जैसे।

"तब छबीली पीवने का खासा ठंडा पानी का प्याला भरि लाई जो साहजादे ने पीया। तब छबीली ने हाँथ जोरि कही के साहब खानेको क्या होगा, सो

फुरमाइये। तब साहिजादे नै छबीली कौ येक 'असरफी दीन्हीं और कही के खाना करवाओ। छबीली असरफी लै कै 'सास के पास गई' और कही उन्नौवे येक असरफी दीनी है और कही है कि हमकौ खाना पकाओ।"

चंद कुंवर री बात में वार्ता का भाग राजस्थानी गद्य में मिलता है। राजस्थानी में "अछई, और छई का प्रयोग मध्यम पुरुष के एक वचन में किया जाता है। इसी 'अछइ' का संक्षिप्त रूप इस वार्ता में 'छय' के रूप में प्रयुक्त किया गया है। जैसे—

"गोरी उठ सिणगार कर जो देखो सो दूसरौ कुंवर आयो छै। महा काम देवरो अवतार छैं। मे तो इस डौक देह सुपना माहि देख्यो नहीं उसड़ो आयो छै।

अथवा

युं कहंता थकां कुमर जि, सहर मांहि आया। चौहटे आय उतरिया। इतरे इण नगरी को नाम त्रवांपुरी छै। तिणमा है सामनी सेठ नामे साहूकार वसै छै। सो एक दो प्रस्तावे सेठ परदेस गयो छै। बारे बरस हुवा पण आयो नहीं। सौ उणारी अस्तरी कामन्द हुई, बोहत विरह सतावण लागो तब सब सखो प्रेत कह्यो।

एक बात और ध्यान देने की यह है कि 'गौरी उठ', 'बारह बरस हुआ', 'सहर मोहि आया' में खड़ी बोली के क्रिया पदों का प्रयोग मिलता है।

जहाँ तक शैली का सम्बन्ध है इन कवियों ने दूहा, चौपाई, दोहा-चौपाई की वर्णनात्मक शैली एवं मुसलमान कवियों की मसनवी शैली के साथ-साथ पौराणिक संवादात्मक शैली, कथोपकथन की नाटकीय शैली, एवं गद्य-पद्य की चम्पू शैली में रचनाएँ की हैं।

'ढोला मारू रा दूहा' दूहों में, कुशललाभ का 'माधवानल कामकन्दला' चौपाई में, कथोपकथन की नाटकीय शैली रमण शाह छबीली भटियारी में पाई जाती है। मसनवी शैली में पुहुपावती, रसरतन, विरह-वारीश प्रणीत हैं और पुराणों की संवादात्मक शैली में नलचरित, नलपुराण आदि निर्मित हैं। दोहा-चौपाई की शैली में उषा-अनिरुद्ध की सम्पूर्ण रचनाएँ निर्मित हैं।

इस प्रकार हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों में अपभ्रंश, राजस्थानी, डिंगल अवधी के दोनों रूप, ब्रज, एवं प्रारम्भिक खड़ी-बोली की भाषा प्राप्य है। और शैलियों में तत्कालीन सातों प्रचलित काव्यशैली मिलती हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन प्रेमाख्यानों में भाषा की जो अनेकरूपता मिलती है वह अध्ययन का अत्यन्त आवश्यक विषय है। फिर भी यदि इनकी भाषा के रूपात्मक विकास का भाषाविज्ञान की दृष्टि से विश्लेषण किया जाए तो एक ग्रन्थ ही अध्ययन के लिए पर्याप्त है। भाषा का ऐसा विस्तृत अध्ययन न तो संभव है और न आवश्यक। इसी से भाषा सम्बन्धी विचार यहाँ अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुतत किए गए हैं।

प्रकृति चित्रण

हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों मे संयोग एवं वियोग पक्ष मे षटऋतु और बारह-मासा लिखने की प्रथा प्राचीन है, इसका अनुसरण जायसी आदि सूफी कवियों ने प्रेम की पीर उसकी अनन्यता एवं रहस्यात्मक अनुभूतियों के प्रदर्शन के लिए किया है। हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानो में प्रकृति प्रेम, उसका चित्रण कम लक्षित होता है। अपभ्रंश के माधवानल-प्रबन्ध और पृथ्वीराज की 'बेलि' को छोड़कर अन्य काव्य ऐसे नहीं मिलते जिनमें कवि का ध्यान प्रकृति के आलम्बन अथवा उद्दीपन पर गया हो। फिर भी किसी-किसी काव्य में जो थोडा बहुत प्रकृति चित्रण मिलता है उसके आधार पर प्रस्तुत परिचय दिया जाता है—इन कवियों में फुलवारी वाटिका आदि के वर्णन में फूलों की एक फेहरिस्त गिनाने की रीतिकालीन परिपाटी का अनुसरण लक्षित होता है।

> सुर सुरभित सभ फुलवारी बेला कहूँ चवेली क्यारी।
> कहूँ मोतिया कहूँ मोगरा जुही केतकी कहूँ केवरा।
> मदनबान कहूँ जरद चमेली कहूँ निराली फुलित खेली।
> इक दिस फूलत सुमन गुलाली, चुहचुहात मुख गूड़ी लाली।
>
> "प्रेम पयोनिधि"

आश्चर्य को बात तो यह है कि 'मधुमालती' 'पुहुपावती' और 'रसरतन' में नायक-नायिका की भेंट वाटिका में होती है किन्तु वहाँ कवि एक दूसरे की प्रेमदशा को चित्रित करने में इतना मग्न रहता है कि उसे प्रकृति की पृष्ठभूमि का स्मरण तक नहीं रह जाता, अस्तु प्राकृतिक सौंदर्य की झाँकी तक इन काव्यों में नहीं मिलती।

फिर भी यह न समझना चाहिए कि प्रकृति चित्रण का अभाव है। दो एक काव्यों में प्रकृति चित्रण प्राप्त होता है जैसे सूरदास के नलदमन में भाटी कुन्दन-पुर के चारों ओर लगे हुए नारियल, जामुन, खिरनी, आंवला आदि तथा उन पर किलोल करते हुए पक्षियों का वर्णन करती है इस वर्णन में वह सारी

प्रकृति को प्रेम के दर्द में रंग हुआ देखती है, उसका वर्णन उत्प्रेक्षाओं से अभिभूत है यथा—

महुआ टपक देखावह रोई। मात मोह मद यह गत होई।
खिरनी कहे देह यह खिरनी। चेतन बहुत खरी सो करनी।
अमले कहे मोहि मधु अमले। जाग नींद मेटी पिउ मिलै।
महुर जो पेम दाह दह रही। तिन दुख सदा पुकारे दही।
मोरो निपट पेम दुखदाई। निस दिन मेंउ-मेंउ चिल्लाई।
कोकिला विरह जरी भई कारी। कुहू-कुहू सब दिवस पुकारी।
चहु दिसि पाके पोख बनाई, पाक पेम जनु मिटी कचाई।
जद्यपि पेम हिलो उठावै, उमङ्ग आंस जल ढरन न पावे।
नीरज नैन पेम रङ्ग राते, पुतरी चंवर मीर्त मद माते।
नारंग विन वन्ह पेमी सोई, फांक-फांक जाकर हिय होई।
कहे देखाई दरार अनारा, सो पेमी जो हिये दरारा।

"नल दमन"

उपर्युक्त वर्णन में कवि की दृष्टि मनुष्य की प्रेम दशा तक ही सीमित न रहकर प्रकृति के विशाल क्षेत्र में भी पहुँचती है और वह पशु पक्षियों, फल-पौधों को भी प्रेम के रङ्ग में रंगी हुई देखती है। प्रकृति रहस्यवाद के अतिरिक्त आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण की रुचि भी इन कवियों में परिलक्षित होती है जैसे—

बरसत धरनि धार धाराधर। कबहुंक मन्द कबहुंक जल भर।
गंधि सीत चलत पुरवाई। छित छकि रति ले स्वास सहाई।
खल खलात चहुँ दिसि नारे। निर्झर भरे ढरत जल ढारे।

"उषा हरण, जोवन लाल नागर"

"बेलि किसन रुक्मिणी री" और "ढोला मारू रा दूहा" में प्रकृति के सुन्दर चित्रों का संयोजन मिलता है जैसे बेलि में ग्रीष्म ऋतु और पावस ऋतु के आगमन का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि मृगावत (बड़े जोर से चलने वाली गरम हवा) ने चलकर हिरणों को किकर्तव्य-विमूढ़ कर दिया है धूलि उड़ कर आकाश में सूर्य से जा लगी है आर्द्रा में वर्षा ने बरस कर पृथ्वी को गीली कर दिया है गड्ढे जल से भर गए हैं और किसान उद्यम में लग गए हैं[1] अथवा है

१—ऊपड़ी धुड़ी रवि लागि अम्बरि।
खेतिए ऊजम भरिया खाद
मृगशिरा वाजि किया किंकर मृग
आद्रा बरसि कीध घर आद्र।—"बेलि"

प्रियतम स्थल-स्थल पर जादूगरनी बदलियां छाई हुई हैं। वे मेह बरसने से सूख जाती हैं और लू से हरी भी हो जाती हैं। नदियाँ नाले और झरने भरपूर चढे हुए हैं कहीं ऊँट कीचड़ में फिसलेगा। हे पथिक पूगल बहुत दूर है'। ऐसे ही वर्षाकालीन मारवाड़ देश की प्रकृति-शोभा का यह चित्र बड़ा सुन्दर अंकित हुआ है—

"बाजरियाँ हरियालियाँ विच विच बेला फूल।
जउ भरि बूढ़उ भाद्रवइ मारू देस अमूल।"

"ढोला मारू रा दूहा"

आलम्बन के अतिरिक्त उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्रकृति चित्रण की प्रवृत्ति का सकेत भी मिलता है—

तकिए भूप भ्रमर समुदाए। काम बान सम सोभा पाए।
बानउं के रव होत अपारा। तिहि विधि जानहु भ्रमर गुंजारा।
हुउं के अंह सिली मुखनामा। बिरही तन कह दोउ दुख धामा।
एहि देखिय भूपति मन लाए। विश्व फल जुत छवि पाए।
नारि पयोहर सभ छवि पावै। निरखत कै तन पुलकहि छावै।

'नल चरित्र, मुकुन्द सिंह'

यही नहीं प्रकृति को मानवीय भावनाओं और क्रियाओं से प्रेरित नायिका के रूप में चित्रण करने की शृङ्गारिक परिपाटी का अनुसरण आलंकारिक शैली में कहीं-कहीं लक्षित होता है जैसे—वर्षा ऋतु में तरु लता पल्लवित हो गए हैं तृणों के अंकुर निकल आए हैं पृथ्वी हरी साड़ी पहिने हुए नायिका के समान सुशोभित हो रही है उसने नदी-रूपी हार धारण कर रखा है और उसके पैरों में दादुर रूपी नूपुर स्वरित हो रहे हैं। त्रिवेणी का वर्णन करते हुए कवि एक स्थान पर कहता है कि जिस प्रकार 'रति' क्रीड़ा के समय स्त्री का केशपाश

१—प्रीतम कामण गारियाँ थल थल बादलियाँह
धर बसते लूँ सूँ बागुरियाँह।
लण बरसंते सूँ पागुरियाँह।
नदियाँ नाला झंझरण पावस चढिया पूर।
करहउ कादिम तिस्यइ पन्थी पूगल दूर।

"ढोला मारू रा दूहा"

तरु-लता वल्लवित तृणे अंकुरित
निलाणी नीलाम्बर न्याई
प्रथमी नदि में हार पहिरिया, पहिरे दादुर नूपुर पाई। (बेलि)

बिखर जाता है उसी प्रकार मेघ रूपी पति तथा पृथ्वी रूपी पत्नी के समागम से त्रिवेणी का जल अपने तटों को जलमग्न करता हुआ बह चला है इस अंश में कवि ने जमुना के नील जल की बालों और उसमें गुथे हुए लाल और सफेद फूलों की गंगा और सरस्वती से तुलना की है।[१]

नीति मिश्रित प्रकृति चित्रण की भी झलक 'बेलि' में दिखाई पड़ती है जैसे आश्विन के व्यतीत होते ही आकाश में बादल पृथ्वी पर कीचड़ और जल में गंदलापन विलीन हो गया जैसे सद्गुरु की ज्ञानाग्नि का प्रकाश प्रकट होते ही मनुष्य के कलिकाल के पाप विलीन हो जाते हैं[२]। ऐसे ही प्रभात वर्णन में एक स्थान पर कवि प्रकृति के कार्यकारण की ओर इंगित करते हुए कहता है कि सूर्य ने उदय होकर संयोगिनी के वस्त्र, मथन दण्ड, (मथानी) कुमुदनी की शोभा को बन्धन दे दिया और घर, हाट, ताल, भ्रमर और गोशाला को बन्धन मुक्त कर दिया।

कहना न होगा कि इन काव्यों में प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन, शृंगारिक और नीतिमय, तथा रहस्यमय, चित्रों के साथ-साथ केवल कुछ फूलों और पौधों के नाम गिनाने एवं प्रकृति व्यापारों के कार्य कारण सम्बन्धी वर्णन की सभी परिपाटियां मिलती हैं। यह अवश्य है कि राजस्थानी काव्यों में प्रकृति सुषमा अवधी एवं ब्रज काव्यों से अधिक मिलती है कारण कि इन कवियों ने कथानक और घटना क्रम पर एवं रति विषयक अंशों पर अधिक ध्यान दिया है।

———

१. मिळियै तट ऊपहि विथुरी पिळिया।
घर-घर धराधर धणी।
कैस जमण गंग कुसुम करम्बित
बेणि किरि त्रिवेणी वणी।—'बेलि'

२— बितए आसोज मिले नभि बादल
प्रथी पङ्क जलि गदृल पण
जिमि सतगुरु कलि कलुख तणा जण
दीपति ज्ञान प्रगटे दहण।—'बेलि'
संयोगिणि चीर रई कैरव श्री
घर हाट ताल भमर गोधोरु
दिणि पर उगि एतला दीधा
मोखियां बन्ध बांधियाँ मोख।—'बेलि'

स्वरूप और प्रक्रिया

भारतवर्ष ही में नहीं वरन् अन्य योरोपीय देशों में ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के आस पास आख्यान काव्यो का प्रणयन बहुतायत से हो रहा था। फ्रांस और इंगलैंड में यह काव्य रोमांस के नाम से प्रसिद्ध है। रोमांस का तात्पर्य साधारणत: उन काव्यों से है जो तत्कालीन साहित्यिक भाषा लैटिन में न लिखे जाकर प्रादेशिक भाषाओं में लिखे जाते थे। ऐसी कविताएँ उस समय साधारण कोटि की मानी जाती थीं, किन्तु आगे चलकर रोमास का प्रयोग उन विशेष प्रकार की कविताओं के लिए होने लगा जिनमें कुतूहल और आश्चर्य तत्व की प्रधानता होती थी[1]।

प्रारंम्भिक "रोमांस" में शालेमन और उसके दरबार के वीरों की कहानियाँ वर्णित मिलती हैं, तदुपरान्त ग्रीस, रोम, ट्रोजन के वीरों के कुतूहलप्रद आख्यान एवं इंगलैंड के प्रसिद्ध राजा "आर्थर" और उसके "नाइटस" से सम्बन्धित काल्पनिक और ऐतिहासिक आख्यान प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार रोमांटिक महाकाव्यों में प्राचीन ऐतिहासिक वीरों की कहानियाँ तथा काल्पनिक और पौराणिक (Mythological) पात्रों के वीरत्व व्यञ्जक कार्यों की ही बहुलता प्राप्त होती है। ऐसे काव्यों में "प्रेम" है तो, किन्तु उसका स्थान गौण है। इस प्रकार के काव्यों की तुलना हमारे साहित्य के 'रासो' काव्यों से की जा सकती है।

---

1. The word Romance" simply means a poem or a story written in one of the vernacular romance languages instead of "Latin" and so by implication Less serious and Learned, but in time it acquired the sense that indicates the essential quality of these works, their love for the marvellous—

The Classical Traditions,
By Heighet,
P, 13.

समय के साथ-साथ उपर्युक्त काव्यों की रूप रेखा बदलती गई। 'ओविड'[1] के 'आर्ट आफ लव' ने मध्यकालीन प्रबन्धों को बहुत प्रभावित किया. धीरे-धीरे इन प्रबन्धों में वीररस की कमी और शृङ्गार तथा अद्भुत घटनाओं की प्रधानता बढ़ने लगी[2]। इस प्रकार वीर गाथाएँ प्रेम काव्यों में परिणत होने लगीं।

फ्रांस और इंगलैण्ड में छ प्रकार के रोमांस प्राप्त होते हैं। पहला 'हीरोइक रोमांस' जिसमें ग्रीस और रोम आदि के वीरो की गाथाएँ प्राप्त होती हैं इनमें 'रो लैण्ड' मुख्य है। दूसरे ऐतिहासिक वीरों की गाथाएँ जैसे 'लीटार्ट' का 'रोमास आफ एलेक्ज़ांडर' तासरा धार्मिक महाकाव्य जैसे 'मिल्टन' का 'पैराडाइज लास्ट' और 'पेराडाइज रीगेन्ड'। ऐसे काव्यों का दूसरा नाम 'रेलिजस-कमेडीज' भी है। चौथे उपमित आख्यान जैसे 'रोमांस आफ रोज' और पाँचवें 'पास्टोरल रोमास' छठें दुखान्त रोमान्स जैसे 'प्रीमस और थिसबी'।

मध्यकालीन 'रोमाटिक एपिक्स' में प्राचीन-काल के वीरों की गाथाएँ तथा मध्यकालीन प्रेमाख्यानो का मिला जुला रूप प्राप्त होता है। 'मैडनेम आफ रोलां' में "रोला" के प्रेम और वीरतापूर्ण कार्यों की कहानी मिलती है। यह आख्यान फ्रांस पर 'सारेन्स' के आक्रमण और उनकी हार से सम्बन्धित है। 'रोला' 'कैथे' के खान की पुत्री 'ऐनजीलिया' के असफल प्रेम में पागल हो जाता है। उसका पागलपन तभी दूर होता है जब "आस्टोलाफ" चन्द्रमा में 'सेण्टजान' के साथ जाकर 'आरलैण्डों' की बुद्धि की शीशी लाकर उसे दे देता है।

दुखान्त रोमास में 'प्रिमस' और 'थिसबी' सबसे प्रसिद्ध हैं। इस काव्य में "फिलमिला" पर उसकी बहिन का पति 'थेरियस' बलात्कार करता है और उसकी जबान काटकर बन्दी बना लेता है लेकिन वह अपनी इस दर्द भरी कहानी को कपड़े पर काढ़ कर अपनी बहिन 'प्रासने' के पास भेज देती है।

---

1. Ovid was the mastar poet of love and the greatest poet who had ever told of marvels, miraculous transformations & sex.

   Heighet—Page, 59.

2. The Medieval Freneh Romances dealt with three topics, fighting love and marvels. As the years passed on, as the Medieval World became more sophishieated,fighting became less & less important and love & marvels more & more.

   The same Author......

'प्रासने' 'फिलमिला' की सहायता से अपने बच्चों की हत्या कर डालती है और उनके मांस को अपने पति को खिलाती है। फिर दुख के अतिरेक से दोनों बहनें 'नाइटिंगेल' और 'स्वालो' पक्षी में परिवर्तित हो जाती हैं, जो आज भी अपने दुख की कहानी सुनाती रहती हैं।

रेलिजस कमेडीज में मिल्टन का 'पैराडाइज लास्ट' और 'रीगेंड' प्रसिद्ध हैं। इस काव्य में आदि मानव के शैतान द्वारा उकसाए जाने पर उसके पतन और पुनः उत्थान की कहानी प्राप्त होती है। सम्पूर्ण काव्य ईसाई धार्मिक विश्वासों और मान्यताओं से ओत प्रोत है।

'रोमांस आफ रोज' उपमित प्रेम काव्यों की एक उत्कृष्ट रचना है। इस रचना में गुलाब का फूल (Rose) नायिका का प्रतीक है या यह कहा जाए कि नारीत्व का प्रतिनिधित्व करता है जो एक प्रेमी के जीवन पथ पर आशा और निराशा की धूप-छांह डालती रहती है। नायिका स्वयं रङ्गमञ्च पर नहीं आती कारण कि इस काव्य की सारी घटनाएँ उसी के हृदय में घटित होती हैं। किसी भी प्रेम की कहानी में मनुष्य और नारी के बीच भावनाओं का आरोह-अवरोह ही नहीं होता वरन् नारी के हृदय में स्वयं ही अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है।

इस काव्य के पात्र तथा प्राकृतिक चित्र सभी प्रतीकात्मक हैं। किले के बाहर बहने वाली सरिता, जीवन और यौवन का प्रतीक है, आगे चलकर वह राज-दरबार के सामाजिक जीवन और युवक के मस्तिष्क का प्रतीक बन जाती है। गुलाब का फूल गाँव में रहने वाली युवती के रूप में अवतरित किया गया है।

इसके चरित्र तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं। पहली मानव जाति की वह भावनाएँ हैं जो कभी स्त्री और कभी पुरुष के हृदय में अवस्थित होकर उसे प्रेम की ओर प्रेरित करती रहती हैं।[1] दूसरी वह, जो केवल पुरुष के हृदय में पाई जाती हैं और तीसरी वह जो केवल नारी के कोमल और पुरुष वृत्ति से सम्बन्धित है। स्त्री और पुरुष के सम्मिलन में सहायक "वीनस", "रति" का प्रतीक है।

इस प्रकार "रोमान्स आफ लव" नारी और पुरुष की आभ्यन्तरिक भावनाओं का रूपकात्मक चित्रण करता है, इस काव्य का रङ्गमञ्च बाह्य प्रकृति न होकर स्वप्न में प्रेमी और प्रेमिका के हृदय में चलने वाले व्यापार हैं।

---

1. "It is the tale of a difficult prolonged but ultimately successful love affair, told from the mans point of view. The hero is the lover, the heroine the Rose. The characters are

उपर्युक्त रोमांसों के अतिरिक्त 'पास्टोलर रोमांस' सबसे अधिक पाये जाते हैं। इन 'पास्टोलर रोमांसों' में ग्वालों और ग्वालबालों के जीवन की पृष्ठभूमि में प्रेम की नाना अन्तर्दशाओं का वर्णन प्राप्त होता है। अधिकतर इन रोमांसों में एक युवक-युवती की प्रेम कहानी निहित रहती है जिनके वियोग की लम्बी अवधि में प्रेमी को कितनी ही अग्नि परीक्षायें सहनी पड़ती है। कथानक की गति में कितनी ही छोटी-छोटी अवान्तर घटनाएँ पाई जाती हैं या यह कहा जाये कि कथानक के अन्दर ही छोटी-छोटी कहानियाँ रहती हैं।

प्रेमी को प्रेमिका को पाने के लिए दूर देशों की यात्रायें करनी पड़ती है इस यात्रा में सामुद्रिक घटनाओं, हब्शियो के आक्रमण आदि की रोमांचकारी घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। कभी-कभी पात्रों के छद्मवेश के कारण भी कथावस्तु में कुतूहल की मात्रा का समावेश किया जाता है। लेकिन यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि यह काव्य सुखान्त हैं दुखान्त नहीं।

जहाँ तक इन काव्यों के वातावरण का सम्बन्ध है यह काव्य चाहे वे महा-काव्य हों और चाहे अन्य पाँच प्रकार के, सब में आश्चर्य तत्व और परा-प्राकृतिक घटनाओं की प्रधानता रहती है। ग्रीस और रोम में प्रचलित जन-साधारण के परा-प्राकृतिक शक्तियों में विश्वास रोमांस महाकाव्यों के रहस्यमय परा-प्राकृतिक वातावरण के निर्माण में सहायक होते हैं जैसे जादूगरों के असाधा-रण कार्य, अप्सराएँ एवं जादू से फूँके हुए शिरस्त्राण तलवार आदि। यही नहीं इन काव्यों के कथानक भी लगभग एक से ही होते हैं जैसे वही कठिनाई में फँसी हुई नारी का उद्धार, वही देव और दानव के अत्याचार, वही जंगलों और पहाड़ों और किलों की पृष्ठ भूमि, वही अखाड़ो में वीरों के शस्त्र कला प्रदर्शन आदि सभी बातें हर काव्य में एक सी पाई जाती हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि महाकाव्यों में परा-प्राकृतिक तत्वों की प्रधानता और काव्य-प्रणयन की एक बँधी हुई शैली का अनुसरण किया जाता है।

---

mainly abstractions, hypnotized, moral & emotional qualities such as the rose's guardians, slandear, jealousy, fear, shame and offended pride..... The entire poem takes place in a dream and contains a great number of symbols, some of them emphatically sexual, thus the action takes place in a garden and the climax is the caoure of a tower, followed by the lovers contact with the imprisoned Rose."

The classical traditions
By Heighet P. 63

उपर्युक्त सभी बातें अंग्रेजी के और फ्रेंच भाषा के तथा अन्य योरोपीय देशों में मिलने वाले प्रेमाख्यानो अथवा रोमांस और रोमांस एपिक्स में समान रूप से पाई जाती हैं[1]।

इस स्थान पर इन काव्यों की प्रेम व्यञ्जना-पद्धति पर विचार कर लेना आवश्यक है। इन काव्यों में वर्णित प्रेम अधिकतर मध्यकालीन राजदरबारों में प्रचलित प्रेम-प्रथा (Courtly love) का द्योतक है। उस युग में प्रेम और विवाह दो भिन्न बातें मानी जाती थीं। वैवाहिक जीवन स्वच्छन्द प्रेम में बाधक नहीं माना जाता था। वास्तव में विवाह एक क्षणिक बन्धन था जो तनिक से भी आघात पर छिन्न-भिन्न हो सकता था इसलिए इन काव्यों की प्रेमव्यञ्जना साधारणतः वासनाजनित प्रेम की ही परिचायक कही जा सकती है[2]।

---

1 An essential part of epic is the supernatural, which gives the heroic deeds their spiritual back ground. We find that in the epics on contrary subjects Greek-Roman mythology provides practically all the supernatural elements on the other hand is the Romantic epics most of the supernatural element is provided, medielal fantasies, magic, sorcerers, enchanted objects, masks, helmets and swords

Classical traditions.

By Heighet P. 68.

........Their action would be set in a mystic arena, where realities of life were as most ignored as in our Christmas pantomims The characters plots and machinery of these stories show little variety The bold Knight errant, the distressed damsel the sage enchanter, the wicked and gigantic oppressor, who is so easily knocked on the head as soon as the hero stands upto him, and the castle forests and curnement lists which form the scenery are as like one another as the stage room & street.

Romance and Legend of Chisalry.

By Moncrieff P 13

2. Marriage had nothing to do with love and no nonsense absured love was toleiated All the matches were matches of interest, that was continually changing. Any idealization

लेकिन आगे चल कर कुछ रोमांसों में प्रेम के इस पक्ष में परिवर्तन हुआ और यह आदर्श, शुद्ध, सात्विक और निःस्वार्थ प्रेम के रूप में देखा जाने लगा। 'डान क्विकजोट' में प्रेम के इस रूप के दर्शन होते हैं। 'वह कहता है कि दानवों के संहार के द्वारा हमें आत्माभिमान का हनन करना चाहिए, ईर्षा को सहृदयता द्वारा नष्ट करना चाहिये। आलस्य और प्रमाद तथा बहुभोजन की लालसा को नियन्त्रण द्वारा रोकना चाहिये। वासना को अपने प्रिय पात्र के प्रति शुद्ध प्रेम की भावना से शुद्धतर बनाना चाहिये'।

कहने का तात्पर्य यह है कि इन काव्यों में प्रेम का वासना जनित परस्त्री-गमन का रूप तथा आदर्शात्मक शुद्ध सात्विक प्रेम दोनों ही प्राप्त होते हैं।

पिछले अध्यायों में हम कह चुके हैं कि प्रेमाख्यानों की परम्परा भारतवर्ष में बड़ी प्राचीन है। ऋग्वेद में यम, यामी, पुरुरुवा, उर्वशी, अहल्या, आदि की प्रेम कहानियों के बीज प्राप्त होते हैं। उपनिषद् काल में ऋग्वेद की ऋचाएँ पृथुल प्रेम कहानियों के रूप में अवतरित हुईं साथ ही नवीन कल्पना प्रसूत प्रेमाख्यानों का भी प्रणयन हुआ। संस्कृत के ललित साहित्य में, कुमारसम्भव, मेघदूत, कादम्बरी, अभिज्ञान शाकुन्तल, आदि प्रेमाख्यान प्राप्त होते हैं। अपभ्रंशकालीन जैन और बौद्ध साहित्य में प्रेमाख्यानों के द्वारा नीति और धर्म के उपदेश देने की प्रथा प्राप्त होती है।

हिन्दी में भी ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक प्रेमाख्यानों का प्रणयन हुआ। अस्तु हम यह कह सकते हैं कि वैदिक-काल से लेकर आधुनिक युग के प्रारम्भ तक भारतवर्ष में प्रेमाख्यानों का प्रणयन

---

of sexual love in a society where marriage is purely utillitarian must begin by being an idealization of adultry.

The allegery of Love,
By Lewis,
P. 13 & 14.

1. In slaying giants we must destroy pride and arrogance, we must vanquish by generosity wrath by a serene humble spirit,gluttony & sloth by temperance and vigilance, licentiousness by chastity and inviolable fidelity to the sovereign mistress of our hearts, indolence by travelling the world in search of gaining renown as Knights and Christians

Romance and Legend of Chivalry,
By Moncrieff, P 11.

अबाधगति से होता रहा जिनकी रूपरेखा और उद्देश्य तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक और धार्मिक वातावरण के अनुरूप बदलता गया।

अपभ्रंश साहित्य की देन हिन्दी को अन्य भाषाओं से अधिक है इस कारण हिन्दी के प्रेमाख्यानों में अपभ्रंश कालीन प्रेमाख्यानों के स्वरूप और प्रक्रिया की छाप सबसे अधिक है।

पाश्चात्य प्रेमाख्यानों और हिन्दी के प्रेमाख्यानों के 'कथानक' का संगठन लगभग एक सा ही है। इनमें राजकुमारों और राजकुमारियों की प्रेम कहानियाँ प्राप्त होती हैं तथा प्रेमी और प्रेमिका के वियोग की लम्बी अवधि का वर्णन मिलता है। नायिका को प्राप्त करने के लिए नायक को विदेशों की यात्रा करने में नाना प्रकार की कठिनाइयाँ सहनी पडती हैं, जिनमें सामुद्रिक दुर्घटनाओ आदि के वर्णन पाए जाते हैं। नायिका की प्राप्ति के लिए राजकुमारों को युद्ध करना पड़ता है, यही नहीं किसी-किसी काव्य में, मधुमालती की कथा, रसरतन, पुहुपावती में, तो एक ही कथानक के अन्तर्गत छोटी-छोटी अन्य कहानियों का भी सन्निवेश किया गया है।

सूफियों से प्रभावित प्रेम काव्यों को हम रूपात्मक (Allegorical) तथा 'रेलिजस कमेडिज' की कोटि के काव्य कह सकते हैं। अगर 'रेलीजस-कमेडीज' में मानव के उत्थान और पतन की 'बाइबिल' से सम्बद्ध घटना प्राप्त होती है तो इन काव्यों में प्रेम के द्वारा ईश्वर प्राप्ति का साधन पाया जाता है।

हमारे विचार से यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि हिन्दी में पाश्चात्य भाषाओं के काव्यों की तरह 'रेलीजस कमेडीज' और 'लव एपिक्स' अधिकतर पाए जाते हैं।

जहाँ तक इन काव्यों में मिलने वाले आश्चर्य तत्त्व और पराप्राकृतिक घटनाओं का सम्बन्ध है, हिन्दी और फ्रेंच तथा इङ्गलिश के काव्यों में कोई अन्तर नहीं लक्षित होता।

योरोपीय कवियों ने असाधारण तत्त्वों के सन्निवेश के लिए रोम और ग्रीस की प्राचीन गाथाओं और पौराणिक विश्वासों का आधार लिया है तो हिन्दू कवियों ने "पञ्चशतकम", "महाभारत", "वैताल पचीसी" आदि ग्रन्थों को आधार बनाया है। भौगोलिक और सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण दोनों में मिलने वाले आश्चर्य तत्त्वों के विधान में अन्तर होते हुए भी तात्त्विक दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं परिलक्षित होता।

हाँ, दोनों की प्रेमव्यञ्जना में अन्तर अवश्य है। योरोप में 'कोर्ट लव' के प्रचार के कारण परस्त्री से प्रेम निषिद्ध न था लेकिन भारतवर्ष में विवाह

के पवित्र बन्धन का उल्लंघन हिन्दी के स्वच्छन्द प्रेम के कवि भी न कर सके। नारी के सतीत्व पर इन कवियों ने आँख भी न उठाई। बहु विवाह की प्रथा होते हुए भी हिन्दी काव्यों में वासना-जनित उच्छृङ्खल प्रेम नहीं प्राप्त होता। यह अवश्य है कि इन कवियों ने स्त्री-पुरुष की काम-क्रीड़ा का उन्मुक्त वर्णन किया है उनमें भोग-विलास कहीं कहीं मर्यादा का उल्लंघन कर गया है, किन्तु यह स्वच्छन्द प्रेम सामाजिक मान्यताओं का उल्लंघन नहीं करता।

कहना न होगा कि प्रेम व्यंजना को छोड़ कर भारतीय और विदेशी प्रेमाख्यानो में कथानक का संगठन लगभग एक सा ही हुआ है।

वास्तव में मध्ययुगीन प्रेम काव्यों का निर्माण उन लोगों के लिए हुआ जो जीवन की वास्तविक कटुता को भूलकर मानसिक आनन्द में ही विचरना चाहते थे। या यो कहा जाय कि जो युवक थे अथवा अपने को युवक की कोटि में ही रखना चाहते थे। इसलिए यह काव्य तत्कालीन पलायनवादी दृष्टिकोण के द्योतक है इन काव्यों में मिलने वाले सभी पात्र अठारह वर्ष के लगभग के हैं जो केवल अपनी भावनाओं में ही तल्लीन रहना तथा प्रेम की मधुर पीड़ा को सहना ही जीवन का चरम उत्कर्ष समझते हैं। इन काव्यों के नायक और नायिका घटनाओं के चक्र में पड़कर भटकते हैं, रोते और कलपते तथा दुःख सहते हैं, किन्तु उनका मिलन युवावस्था में ही होता है, जहाँ वे अपने प्रेम का उचित फल और आनन्द लाभ कर सकें। जीवन के प्रति मध्ययुग के सामन्तों का यही दृष्टिकोण रहा है, सामन्ती साहित्य चाहे वह भारत का हो अथवा इङ्गलैण्ड अथवा फ्रांस का लगभग एक-सा ही है।

फिर भी हिन्दी प्रेमाख्यानों के स्वरूप के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इनमें भारतीय प्रेमाख्यानों के परम्परा की मूलभूत विशेषताओं का पूरा-पूरा पल्लवन हुआ है। अद्भुत तत्व या कौतूहल तत्त्व का सन्निवेश, अलौकिकता या परलौकिकता का समावेश, राजकुमार और राजकुमारियों के नायक होते हुए भी उनका अत्यन्त मानवोचित चित्रण एवं निरूपण, (राजवंश के होते हुए भी कार्य-कलाप साधारण मनुष्य के समान हैं) जनजीवन से नायकों का तादात्म्य और जनजीवन की झलक, प्रेममार्ग की बाधाएँ और प्रेम का उत्कर्ष, प्रेम की यात्राएँ और उसकी कठिनाइयाँ, कथाओं में अन्तर्कथाओं का समावेश, लौकिक प्रेम के बीच अध्यात्म का संकेत और इसकी व्यंजना, इस प्रकार कहीं-कहीं धार्मिक पुट सुखान्त आनन्दप्रद एवं कल्याणमय समाप्ति आदि इन प्रेमाख्यानों की विशेषतायें बन गई हैं।

उपर्युक्त विशेषतायें तो कम अधिक मात्रा में मध्ययुग के सभी प्रेमाख्यानों

में ढूँढ़ी जा सकती हैं और सम्भवतः मिल भी जाँयेंगी, किन्तु इनके स्वरूप के सम्बन्ध में जो सबसे बड़ी महत्वपूर्ण बात कहनी है वह यह कि जहाँ अन्य देशों के साहित्य के प्रेमाख्यानों मे कहीं कहीं शील और नैतिकता की रक्षा नहीं हो सकती है वहीं हिन्दी के इन प्रेमाख्यानों के रचनाकारों ने एक ओर तो प्रेम के क्षेत्र में मिलने वाले या नैसर्गिक रूप में वांछित 'रति रस' की स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता की मुक्त कल्पना की है जिसे योरोपीय संस्कृति ने और साहित्य ने 'रोमान्टिक' कह कर अपनाया है और दूसरी ओर उन्होंने नायक और नायिकाओं के चरित्र की रक्षा इस प्रकार की है कि वे समाज द्वारा निर्धारित नीति और शील का उलंघन न करें। इसी से इनमें प्रायः रसाभास नहीं मिलता। राजवंश के होने के कारण अभिजात्य होने के कारण वे बहुत कुछ स्वतंत्र हैं, वे सामान्य जनता की बाधाओं और सीमाओं तथा दुर्बलताओं से बँधे नहीं हैं। 'राजा करै सो न्याय' के कारण वे सब कुछ करने को स्वतंत्र और समर्थ भी हैं। अतः राजकुमार होने के कारण वे हमारी कल्पना में कुछ ऊँचे उठ कर उस क्षेत्र में पहुँच जाते है जहाँ वह स्वतंत्र है और उनकी स्वतंत्रता तथा स्वच्छन्दता स्वाभाविक भी लगती है। लेकिन फिर भी 'जनमानस' की जो मान्य भावनाएँ है उनसे सदा समन्वित रहते है। इसी से उनका जन जीवन से तादात्म्य है और वे हमारी रुचि और सहानुभूति के केन्द्र बने रहते हैं। यह हमारे कथाकारों की सबसे बड़ी विजय है और है उनकी कृतियों की अनुपम मौलिकता।

संक्षेप में स्वच्छन्दता और संयम का यह स्वर्ण संयोग (हिन्दू कवियों के) इन प्रेमाख्यानों के स्वरूप की सबसे बड़ी विशिष्टता है जो साहित्यिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्रक्रिया

कहानी-कला और काव्य-सौष्ठव का स्वर्ण-संयोग इन रचनाओं की विशेषता है। पाठक जहां रसात्मक स्थलों पर काव्यानन्द का अनुभव करता है वहीं कहानी की रोचकता और घटनाओं की अनेकरूपता एवं प्रबन्ध के प्रवाह की ऊँची नीची गति में डूबता उतराता रहता है। इस प्रकार यह रचनायें पाठक की तत्कालीन कुतूहल वृत्ति तथा अद्भुत अनुराग का भी शमन करती हैं।

कहानी में रोचकता लाने के लिए इन कवियों ने नाटकीय शैली का अवलम्ब लिया है इसलिए इनके कथानकों को हम प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्याशा नियताप्ति और फलागम में विभाजित कर सकते हैं।

कथानक के प्रारम्भ में पौराणिक आख्यानों को छोड़कर लगभग अन्य सभी आख्यानों में एक सन्तानहीन राजा का वर्णन मिलता है जिसकी अथक तपश्चर्या अथवा किसी ऋषि या देवता के बरदान से उसे सन्तान प्राप्ति होती है। इस सन्तान के लालन-पालन और युवावस्था तक पहुँचने तक की उसकी शिक्षा आदि का वर्णन कुछ शब्दों में कवि कर देता है। सुविधा के लिए इस अंश को हम कथानक के प्रारम्भ की भूमिका कह सकते हैं।

इस भूमिका के उपरान्त नायक और नायिका के हृदय में प्रेम का सूत्रपात करने के लिए इन कवियों ने स्वप्नदर्शन, गुणश्रवण और प्रत्यक्ष दर्शन को अपनाया है। साधारणतः इन काव्यों में गुणश्रवण के द्वारा प्रेम की जागृति अधिकतर पाई जाती है। ऐसे आख्यानों में प्रमुख नायिका का वर्णन किसी पक्षी जैसे हंस, तोता आदि से उस समय कराया गया है जब नायक की रूप गर्विता-पत्नी उस पक्षी के द्वारा अपने रूप की प्रशंसा कराना चाहती है। ठीक उसी समय जब कि पक्षी इस गर्विता के गर्व के खर्व करने के लिए अन्य देश की राजकुमारी के रूप-सौंदर्य का वर्णन करने लगता है, राजकुमार का प्रवेश अंकित किया गया है जो उस राजकुमारी के रूप-सौदर्य को सुन लेता है। पक्षी द्वारा अन्य देश की राजकुमारी के रूप-गुण-श्रवण से कथानक का प्रारम्भ होता है।

इसके बाद ही कुमार की ओर से प्रमुख नायिका को पाने का प्रयत्न हो जाता है। साधारणतः ऐसे प्रयत्नों में विदेश की यात्रा का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रयत्न के बीच आश्चर्य तत्वों तथा परा प्राकृतिक शक्तियों का सन्निवेश कथानक में कुतूहल बनाने के लिए किया गया है, जैसे अप्सराओं, गन्धर्वों, किन्नरों एवं राक्षसादि के द्वारा नायक की कठिनाइयों का समाहार अथवा कथानक की मूल घटनाओं को गति देने के लिए प्रासंगिक कथाओं का निर्माण।

जिस समय नायक नायिका के समक्ष अथवा उसके नगर या शयन गृह में पहुँच जाता है उस समय प्राप्त्याशा होने लगती है, लेकिन थोड़ी देर के उपरान्त, राजाज्ञा, दैवी कोप, ऋषि श्राप अथवा कन्या के पिता या आकस्मिक दुर्घटना के कारण नायक और नायिका का विछोह हो जाता है और दोनों प्रेमी एक दूसरे से दूर जा पड़ते हैं। कथानक के ऐसे स्थल पर नायक नायिका का मिलन दुर्लभ प्रतीत होने लगता है। ऐसे स्थल को हम नियताप्ति कह सकते हैं।

इस नियताप्ति की अवस्था में नायक का प्रयत्न द्विगुणित रूप में दिखाया जाता है। उसकी कठिनाइयों के शमन के लिए ऐसे स्थलों पर कवियों ने फिर

आश्चर्य तत्वों और परा प्राकृतिक शक्तियों का सहारा लिया है जिसके कारण कथानक में कुतूहल और अद्भुत तत्व की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। साथ ही कथानक पुनः उद्देश्य की ओर मुड़ जाता है।

नियताप्ति की अवस्था का शमन अथवा कथानक की "चरम सीमा" अधिकतर आश्चर्यमय और अद्भुत घटनाओं के द्वारा ही निर्मित होती है और फिर दोनों प्रेमियों के मिलन और उनके विवाह से साधारणतः कथानक का अन्त हो जाता है। इसे हम शास्त्रीय भाषा में "फलागम" कह सकते हैं।

यहाँ तक तो हुई आधिकारिक कथानक के पाँच तत्वों "आरम्भ", "प्रयत्न", "प्राप्त्याशा" "नियताप्ति" और "फलागम" की बात। अब हमें प्रासंगिक कथाओं पर भी विचार कर लेना चाहिये।

जैसा कि हम पहले कह आए हैं कि नायक के प्रयत्न के बीच इन कवियों ने छोटी-छोटी घटनाओं का समावेश मूल कथानक की गति को बढ़ाने के लिए किया है जैसे "माधवानल कामकन्दला" में बैताल द्वारा अमृत प्रदान करने की घटना या विक्रमादित्य के द्वारा माधव को सहायता। इसके अतिरिक्त किसी किसी काव्य में जैसे "प्रेमपयोनिधि", "रसरतन", "पुहुपावती" आदि में रंगीली, कल्पलता, सूरजप्रभा आदि की प्रेम कहानियां भी प्राप्त होती हैं जो काव्य में रसात्मकता लाने के साथ-साथ कथानक को रोचक बनाने में भी सहायक हुई हैं। यह प्रासंगिक कथाएँ मूल कथा से बड़े सुन्दर रूप में गुँफित मिलती हैं।

जहाँ तक अधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं के गुफन का सम्बन्ध है, साधारणतः इन काव्यों में कोई भी घटना आवश्यकता से अधिक वर्णित नहीं मिलती, उदाहरणार्थ "माधवानल" के कतिपय आख्यानों में "रुद्रदेवी" को ही लीजिये, कवि ने उसके रूप और प्रेम-चेष्टाओं का वर्णन केवल "माधव" के प्रति उसकी भावना को प्रदर्शित करने के लिए ही किया है। ऐसे ही "पुहुपावती" में "रंगीली" की अन्तकथा "पुहुपावती" के प्रति कुमार के प्रेम की अनन्यता को प्रदर्शित करने में सहायक हुई है।

काव्य की प्रबन्ध निपुणता यही है जिस घटना का सन्निवेश हो वह ऐसी हो कि कार्य से दूर या निकट का सम्बन्ध भी रखती हो और नये-नये विशद भावों की व्यञ्जना भी करती हो।

सम्बन्ध निर्वाह के अन्तर्गत ही गति के विराम पर भी विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। कथानक के प्रारम्भ से लेकर कथानक के मध्य अथवा यों कहा जाये कि नियताप्ति तक इन कथानकों में गति का विराम पाया

जाता है। आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा तथा नियताप्ति की अवस्था में संयोग-वियोग के रसात्मक स्थलों में इन कवियों की वृत्ति खूब रमी है। ऐसे स्थल काव्य कला के सुन्दर अंश हैं। इनमें इतिवृत्तात्मकता की कमी है। (यद्यपि कुछ प्रबन्धों में इतिवृत्तात्मकता ही अधिक है) पर भावुकता की अधिकता के कारण इन आख्यानों में काव्य तत्व की कमी नहीं।

अस्तु हम कह सकते हैं कि कहानी कला एवं 'कार्यान्वय' तथा प्रबन्ध-कल्पना और सम्बन्ध-निर्वाह की दृष्टि से यह काव्य सुन्दर और सफल आख्यान हैं।

मुसलमान कवियों से सामनताएँ और विभिन्नताएँ

समानताएँ—

मुसलमान कवियों ने जैनों की धर्म कथाओं के आधार पर अपने "प्रेम की पीर" का प्रतिपादन प्रारम्भ किया था इसलिये जहाँ तक आख्यानों का सम्बन्ध है हमें उसके परिधान और संगठन में हिन्दुओं से कोई भी अन्तर नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि दोनों ने ही ऐतिहासिक लोक-प्रसिद्ध पौराणिक और काल्पनिक आख्यानों को अपनाया है उसमें कथा-संगठन भी एक-सा ही मिलता है जैसे किसी राजा या राजकुमारी का प्रेम सम्बन्ध स्वप्नदर्शन, प्रत्यक्षदर्शन, गुणश्रवण या चित्र-दर्शन से प्रारम्भ होता है और फिर उनके नायक अपना राजपाट छोड़कर प्रेयसी को प्राप्त करने के लिये निकल पड़ते हैं। उनका पथप्रदर्शक सुवा, मैना, हंस दूती आदि होते हैं। रास्ते में नाना प्रकार की कठिनाइयाँ सहते हुए वे अपने गन्तव्य स्थान को पहुँचते हैं जहाँ उनका गान्धर्व विवाह होता है। तदुपरान्त उचित रीति से विवाह कर नायक घर लौटता है और विवाह के उपरान्त अधिकतर कथानक का अन्त हो जाता है। कहानी के बीच आश्चर्य तत्वों का संयोजन भी लगभग एक-सा ही मिलता है, यह अवश्य है कि कतिपय हिन्दू प्रबन्धों की प्रासङ्गिक कथाओं में एक या एक से अधिक उपनायिकाएँ मिलती हैं जिनका संयोग-वियोग-पक्ष मुसलमान काव्यों से अधिक चित्रित किया गया है। किन्तु जहाँ तक आधिकारिक कथा का सम्बन्ध है उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।

सूफियों से प्रभावित काव्यों का प्रणयन मसनवी शैली में हुआ है जिनमें कवि परिचय और शाहे वक्त की वन्दना समानरूप से पाई जाती है। यात्रादि के वर्णन भी लगभग एक से ही हुए हैं पुहुपावती में तो कवि ने जायसी की तरह सातों समुद्रों का वर्णन किया है, प्रेम पयोनिधि में वर्णित सामुद्रिक दुर्घटना में पद्मावत का प्रभाव लक्षित होता है।

कथानक के बीच-बीच में रहस्यमयी उक्तियाँ सामानरूप से पाई जाती है।[१]

सूफ़ी कवि प्रेम की पीर अथवा यों कहा जाए कि अपने प्रियतम के विरह में इतने तल्लीन रहते हैं कि उन्हें प्रकृति का कण-कण विरह का अलख जगाता दिखाई पड़ता है, यही कारण है कि उनके प्रकृति वर्णन प्राकृतिक दृश्यों और प्रकृति की रम्य सुषमा की अभिव्यञ्जना न कर प्रकृति के क्रिया-व्यापारों में भी प्रेम की रहस्यमयी अनुभूति का ही दिग्दर्शन कराते हैं। उसमान, जायसी, मंझन आदि की रचनाओं मे विरहिणी प्रकृति का ही चित्रण प्रधान है। हिन्दू कवियों ने सूफियों से प्रभावित होने के कारण अपने कतिपय प्रेमाख्यानों में प्रकृति को इसी रूप में अङ्कित किया है। नलदमन में सूरदास के अनुसार महर पक्षी की दही-दही पुकार, मोर की कूक, परमात्मा के वियोग के कारण उनके विलाप का द्योतक है। कोयल प्रेम की ज्वाला में झुलसने के कारण ही काली पड़ गई है[२]।

सूफ़ी कवियों की प्रधान नायिकाएँ, परमात्मा का प्रतीत अङ्कित की गई हैं अतएव उनके नखशिख वर्णन में तथा कथा के घटनाचक्र में उनके परमात्मा-

---

१. वनस्पति सुनि विथा हमारी. बरहैं मास होइ पतझारी।
ढेसू जरि पुनि भयो अङ्गारा. फरहद आगि लाइ फिर जारा।
दारिय हिय फाट सुनि पीरा, पै पिय तोर न दया सरीरा।
चित्रावली : उसमान :
प्रेम नैन रकत जो रोवा, सो ते ताहि रकत मुख धोवा।
पग करार भए दोउ कारे, दुख बाही तरिवर पछितारे।
कमल गुलाल भई रतनारे, फूल सबहिं तन कापर कारे।
देख अनार हिया भरि आना, नींबू तरु निज डार पेसराना।
माधुमालती "मझन"

२. महर जो प्रेम दह दह रही, तिन दुख सदा पुकारे दही।
मोरो निपट प्रेम दुख दाई, निस दिन मेउ मेउ चिल्लाई।
कोकिल विरह जरी भई कारी, कुहू कुहू सब दिवस पुकारी।
महुआ टपक देखा दंह रोई, मात मोह मद यह गत होई।
खिरनी कहे देह यह खिरनी, चेतन बहुत खरी सी करनी।
अमले कहे मोहि मधु अमले, जाग नींद मेटी पिउ मिले।
× × ×
"नलदमन"

तत्व का संकेत यह कवि निरन्तर अपने काव्यों में करते आए हैं। ऐसे वर्णन में भारतीय प्रतिबिम्बवाद का दार्शनिक-पक्ष अधिक निखरा है। जैसे जायसी ने पद्मावती का सौन्दर्य वर्णन करते समय कहा है कि जिसने उस रूपवती को हँसते देखा है वह हंस बन गया और जिसने उसके शरीर की निर्मल छाया का अवलोकन किया वह निर्मल जल बन गया[1]। या जिस समय पद्मावती ने अपनी केशराशि बिखेर दी उस समय सारे संसार में उसकी कालिमा का अन्धकार छा गया। ठीक इसी प्रकार की उक्तियां हिन्दुओं के सूफियों से प्रभावित प्रेमाख्यानों में मिलती हैं। पुहुपावती का सौन्दर्य वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जिस ज्योति को लेकर ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की है, जो ज्योति सारे संसार में व्याप्त दिखाई पड़ती है उसी ज्योति का साकार रूप 'पुहुपावती' है[2]।

मुसलमान धर्म में एकेश्वरवाद की प्रधानता है। वह केवल 'एक' के अतिरिक्त किसी अन्य में विश्वास नहीं करते। सूफी इस एकेश्वरवाद की भावना से प्रेरित होकर आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं मानते। इस सम्बन्ध में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि मंसूर का 'अनलहक' हिन्दुओं के अहं ब्रह्मास्मि 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का दूसरा रूपान्तर है। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानों के आख्यानों में अद्वैतवाद समान रूप से पाया जाता है 'इन्द्रावती' में कवि इद्रावती के सम्बन्ध में कहता है कि वह ही आदि और अन्त है वही प्रत्यक्ष और परोक्ष भी है, वही देखती और सुनती है और वही मनुष्यों को ज्ञान देती है उसके अतिरिक्त संसार में अन्य कोई सत्ता ही—

---

१. हँसत जो देखा हंस भा निर्मल नीर सरीर

× × ×

"जायसी"

२. ब्रह्म जोति सो लेइ जग साजे,
उहे जोति सब ठाउ बिराजै।
जहाँ लगी जग मह जोति बखानीं,
उहे जोति सब मांहि समानीं,
जो सो जोती तुह देखत नैना,
वीसरत रस भोजन सुख चैना।
दुखहरन कोह जोती नीजु जेहाँ की उपमा नाहि।
इह जो जोती सम देखहु सो वोहि की परिछाहिं।

"पुहुपावती"

नहीं है[1]। ठीक इसी आशय की उक्ति नलदमन में भी मिलती है कवि कहता है कि जब मैंने संसार को भली भाँति देखा अर्थात् ज्ञान मय चक्षु से जब मैंने संसार का अवलोकन किया तब मुझे संसार में केवल एक उस अलख अगोचर ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी न दिखाई पड़ा जो अपने आप में ही छिपा हुआ है।

हिन्दुओं को सदैव से जन्मान्तरवाद पर विश्वास रहा है। उनका विचार है कि जब तक मनुष्य को मोक्ष नहीं मिल जाता तब तक जीव को इस संसार में बराबर जन्म लेना पड़ता है। इसलाम में 'कुरान' जन्मान्तरवाद पर विश्वास नहीं करता। मुसलमानों के अनुसार 'कयामत' के दिन सारी रूहें पुनः जाग्रत होकर अल्लाह के सामने खड़ी होती हैं और उसी समय उनके कर्मों के अनुसार उन्हें विहिश्त या दोजक नर्क या स्वर्ग में जाने की आज्ञा 'खुदा' की ओर से मिलती है किन्तु हिन्दुओं के संसर्ग के कारण सूफियों ने जन्मान्तरवाद का प्रतिपादन अपने आख्यानों में प्रारम्भ कर दिया था। 'मधुमालती' में कुमार मधुमालती के प्रति अपने प्रेम को जन्म जन्मान्तर का बताता हुआ कहता है कि 'ए राजकुमारी जिस दिन से विधि ने इस संसार की रचना की उसी दिन से मैं तुम्हारे प्रेम से उत्पन्न दुख को सहता चला आ रहा हूँ। इस प्रकार मैं तुम्हारे प्रेम की पीर से पूर्व जन्मों से परिचित हूँ[2]। हिन्दू

---

१. आप गुपुत औ परगट आप आद और अन्त।
आप सुनै औ देखे कीन्ह मनुष बुधवन्त।

'इन्द्रावती'

\+ \+ \+ \+

देखत देखत देखि जब दिस्टि कही कछु नाहिं।
दिस्टि अगोचर अलख वाह, ता वही के मांहि।

'नलदमन'

२. कहैं कुवँर सुन प्रेम पियारी, मोहि प्रीति पुब्ब विधि सारी।
मैं न आजु तौर दुक्ख दुखारी, तोर दुख स्यों आदि चिन्हारी।
यह जग जीवन मोह ते लाहा, मैं जीऊँ देह तोर दुख बेसाहा।
जेहि दिन सिर ज्यों अंस विधि मोरा, बिन तेहि दिन माँहि भयो दुख तोरा।
बर कामिनि तुम्ह प्रीति कनेरू, मानति बहु सानि सरीरू।
दोहा— पुरब दिन स्यों जानहिं, तुम्हारी प्रीत की पीर।
मोहि मानति विधि सान की तो यह सिर ज्यों सरीर।

'मधुमालती' मंझन

कवियों के प्रेमाख्यानों में जन्मान्तरवाद "माधवानल कामकन्दला" एवं "मधुमालती" में आधिकारिक कथा का आधार ही है। इसलिए हिन्दुओं और मुसलमानों के काव्यों में जन्मातरवाद का भारतीय विश्वास समान रूप से पाया जाता है।

वज्रयानी सिद्धो और गोरख पन्थी साधुओ के प्रचार के कारण भारतवर्ष में हठ योगी क्रियाओ का प्रचार और उसकी मान्यता बहुत अधिक बढ़ गई थी। साधारण जनता को इन योगियों के चमत्कारों पर बडा विश्वास था। भारत भूमि में अपने मत का प्रचार करने के लिए सूफियों को भी इन हठयोगियों की साधना-पद्धति को अपना पडा। इसके अतिरिक्त सूफियों के शरीयत, तरीकत, मारफत और हकीकत तथा हिन्दुओं के अष्टागों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के मिलते-जुलते रूप भी हैं इसलिए जायसी एवं अन्य सूफियों के आख्यानों में हठयोगी क्रियाओं का तथा उसकी साधना-पद्धति का उल्लेख निरन्तर मिलता है। मुसलमान कवियों का तरह सूफियो से प्रभावित हिन्दू कवियों के आख्थानों में भी हठयोग सम्बन्धी उक्तियाँ पाई जाती हैं। पुहुपावती में दूती कुमार से पुहुपावती को पाने के लिए योग साधने के लिए कहती है।

दुती कहा कुंवर तुम्ह राजा। साधहु जोग जो कौने काजा।
कहे न चढ़हु प्रेम के पंथा। तन बस्तर सोइ कर कंथा।
सांस सुमिरनी तन करू माला। ततु को तिलक सो किजै माला।
नैन चक्र मुख समध धारी। निसु दिन राम नाम अधिकारी।
अनहद सब्द बांसुरी बाजे। तहा चीतलाय पातल भाजै।

इसी प्रकार "चित्रसारी" के वर्णन में सहस्त्र कमल एवं हृदय का प्रतीक प्रस्फुटित हुआ है।

"पुनि गे देखेसि कोट अनूपा। धौलागिरि परवत के रूपा।
दस दुआर बावन कंगूरा। निसु दिन ठाढ़ पै बाजै तूरा।
संख और घंट भेरी सहनाई। बाजै नौबत सुनत सुहाई।"

आवा गवन करहँ सब कोई, वस्तु केहि जस पूजिय होई।
पूजी रही तपस मैं लीन्हा, वन मो अलख अदखो कीन्हा।
पुनि दयाल या दाता सुमिरत ताको नाउ।
यमपुर की तट कँह वस्तु बेसाहन जाउ।

'इन्द्रावती' (अप्रकाशित)

(भारतीय हिन्दू एवं मुसलमान दोनों सम्प्रदाय गुरू और पीर पर अन्ध-विश्वास करते आए हैं। दोनों का विश्वास है कि बिना गुरू-दीक्षा के कोई भी साधक अपनी साधना में सफल नहीं हो सकता, यही कारण है कि इनके आख्यानों में गुरू के प्रति श्रद्धा उस पर अनन्य विश्वास समान रूप से पाया जाता है।)

"सरत पंथ गुरु सो मिले, मिले निगम को भेद।
मगन दीन गुरु सुभ भयो, जासो कष्ट न खेद।
'इन्द्रावती"

"गुरु अंचित को पंथ जग, बहु जल तरनी नाव।
पहुचनहार जो पार भो, सो राखे तंह पांव।
"नलदमन"[१]

इस प्रकार दोनों कवियों में कतिपय धार्मिक विश्वास जैसे गुरु-महिमा, जन्मान्तरवाद, अद्वैतवाद, प्रतिविम्बवाद, हठयोगिक क्रियाओं द्वारा साधना-पद्धति समान रूप से पाई जाती है।

धार्मिक विश्वासों के अतिरिक्त उस समय के कवि अपने पूर्व की रचनाओं का परिचय तथा काव्य-शास्त्र के सकेतों का उल्लेख प्रायः अपने काव्यों में करने लगे थे। इस परम्परागत परिपाटी का अनुकरण दोनों के काव्यों में मिलता है[१]।

साधारतः यह कवि रीतिमुक्त कवियों की कोटि में आते हैं फिर भी इन्हें काव्य शास्त्र का ज्ञान था। हिन्दुओं और मुसलमानों के आख्यानों में रस अलं-

---

१. मृगावती सुख रूप बसेरा। राम कुंवर भयो प्रेम अहेरा।
सिंघल दीप पदुमावती भो रूपा। प्रेम कियो है चित उर भूपा।
मधुमालति, होइ रुप देखावा। प्रेम मनोहर होइ तह आवा।
"चित्रावली"

× × ×

विक्रम धंसा प्रेम के वारा। सपनावति कंह गयउ पतारा।
मधु पाछु मुगधावती लागी। गगनपुर होइगा वैरागी।
राजकुंवर कचनपुर गयऊ। मिरगावती कंह जोगी भयऊ।
साधे कुंवर खड़ावत जोगू। मधुमालति का कीन्ह वियोगू।
प्रेमावति कंह सुरपुर साधा। उषा लागि अनिरुध वर बांधा।
'पद्मावत'

+ + +

कार सम्बन्धी एवं नायिका भेद सम्बन्धी शास्त्रीय शब्दों एवं उनके उदाहरणों का उल्लेख समान रूप से पाया जाता है। अनुराग बांसुरी में सर्वमंगल पर स्वदर्शन के प्रभाव पर सखी कहती है—

'तेरो रहस विंहस वह नाही, भयउ सान्त रस तव मन मांही।'

इसी प्रकार उसका चित्र लिखते समय चित्रबन्धनी कहती है—

'करुना रस उपनत है मोही, चित्रों बिना जीव के तोही।'

प्रेम-दशा और नायिका-भेद के लक्षण तक मिलते हैं।

उन्माद औ जड़ता औ परलाप।
पल पल आइ दिखावे ताको दाप।

× × ×

रूप गर्व राखे धनि जोइ, जानहु रूप गर्विता सोइ।
प्रिय के प्रेम गर्व जो राखे कवि तेहि प्रेम गर्वित भाखे।
"अनुराग बाँसुरी"

जोबन लाज नयन मो दीन्हा मुगधा से मध्या तेहि कीन्हा।
"इन्द्रावती" (अप्रकाशित)

वस्त्र मलीन उदास तन उभय सांस बहु लेई।
नींद भूख लज्जा तजै, बिरही लच्छन एउ।
"माधवानल कामकंदला"

स्वेद कंप रोमांच सुर अश्रुपात जंभात।
प्रलय वेवरन भंग सुर तन तोरत अलसात।

'कहा मृगावती जमुना माना। कहा चित्रावली कुंवर सुजाना।
कह मधुमालती कुंवर मनोहर। जनमत मनो समन घर सोहर।
"पुहुपावती"

× × +

नल-दमयन्ती मिली जो आई, माधव कामकन्दला पाई।
'रसरतन'

'सुन सुभाव सब कथा सुनाई, कालिदास बहु रुचि गाई।
सिंहासन बत्तीसी मांहीं। पुनि कही भोज नृप पांही।
पिंगल कह बैताल सुनाई। बोधा खेतसिंह सह गाई।
"विरहवारीश"

प्रगट होत पिय परश तें ये लक्षण तिय अंग।
निरखि कंदला देहते माधव चाह्यो रंग।
"विरहवारीश"

स्वेद रोमांच है व्यापत अरु सुर भंग।
अस्वपात वैवर्नता प्रलै अष्ट गुन संग।
ते सब गुन रंभा प्रगट सखी निरखहु तुम नैना।
वारि बूंद मृग दृगन ढरे कहति भंग सुर बैन।
"रसरतन"

\+ \+ \+

रसरतन में तो कवि ने रंभा के वियोग वर्णन में विरह की दसों दशाओं का वर्णन काव्य शास्त्र के लक्षण और उदाहरण सहित किया है, यथा,

सदा रहत मन चिन्त में मन ते कढ़े न वित्त।
ताहि कहत अभिलाष कवि इत उत चलहिं न चित्त।

काम-शास्त्र की ओर भी कवि उन्मुख हो रहे थे उसमान ने अपनी चित्रा-वली में काम शास्त्र खण्ड की रचना तक कर डाली है। उनका कहना है कि।

काम भेद जो जाने कोई,
दंपति सेज महा सुख होई।
रंग अनेक जान जो पीऊ,
तिय तन कहाँ समर ले जीऊ।
काम भेउ बिनु माँगे रङ्गा,
जस पसु करे पसू सो सङ्गा।
एहि जग मांहि एक रस सारा,
रस बिनु छूंछ सकल संसारा।

रसरतन में कुमारी को सीख देती हुई एक सखी कोक की "पुन्य। कला" का उल्लेख करती हुई कहती है कि कामोत्तेजना—

दच्छिन अङ्ग पुरिष के बाढ़ै।
बायों अङ्ग त्रिया कै चढ़ै।
कृष्ण पच्छ दूजै अङ्ग आवै।
मावसि उतरि तहीं ठहरावै।
तिथि विचारि करियहि जिय जानो।

मदन वासि निश्चय पहिचानौ ।
पुरुखि परस उहि अङ्ग कराई।
सुरति सन्तोष होइ अधिकाई।
नारि अङ्ग उहि अङ्गन लावै।
त्यों-त्यों पुरिख मन भावै।

यहा तक तो हुई हिन्दुओं और मुसलमानों के रूपात्मक काव्यों में मिलने वाली समानताओं की बात। अब दोनों के शुद्ध प्रेमाख्यानों में मिलने वाली समानताओं पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। अब तक मुसलमानों के लौकिक प्रेम काव्यों में हमें गुलाम मुहम्मद का प्रेमरसाल, आलम का माधवानल कामकन्दला और जान कवि के रत्नावली, नलदमयन्ती की कथा, पुहुपवारिखा, कवलावती, छबिसागर की कथा, चन्द्रसेन राजा सीलनिधि की कथा, लैला-मजनू, कामलता, रूपमञ्जरी छीता, कनकावती और मधुकर मालती आदि देखने को मिले हैं।

जान कवि को मेरे विचार से मुसलमानों के लौकिक प्रेमाख्यानों का प्रतिनिधि कवि कहना चाहिए।

जहां तक कथावस्तु और उसके संगठन का सम्बन्ध है सभी उपर्युक्त काव्य हिन्दुओं के समान ही ठहरते हैं। कथा के प्रारम्भ में जान कवि ने रसूल और अन्य पैगम्बरों की वन्दना की है किन्तु उनमें नूरमुहम्मद आदि पीछे के सूफी कवियों की तरह धार्मिक कट्टरता नहीं मिलती। गुलाम मुहम्मद ने तो हिन्दू देवताओं की बन्दना की है जैसे,

नमों नमों भगवान जो सबको सिर मौर है।
गुपति प्रगटि वहि जानि ठौर-ठौर में रम रह्यो।

यही नहीं वह राम रहीम की एकता बताते हुए कहते हैं।

कोऊ राम जानौ बखानों रहीम कोऊ।
नाम है अनेक वही करतार के।
वाही में आवे फिर वाही में समावे अन्त।
जीव जन्तु जल थल या संसार के।
हितकारी चितलाओ सदा गीता परायन सुन।
हे मुनि गुन गाओ नारायन औतार के।

'प्रेम रसाल' (अप्रकाशित)

आलम के माधवानल कामकंदला में तो कवि ने गणेश की वन्दना[1] अन्य रसूल की वन्दना के साथ-साथ की है। अस्तु हम कह सकते हैं कि "लौकिक-प्रेमाख्यानों" के मुसलमान कवि धार्मिक दृष्टि से अधिक उदार थे।

मुसलमान कवियों के लौकिक प्रेमाख्यानों का उद्देश्य हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की तरह लोक-रंजन था इसलिए उन्होंने तत्कालीन प्रचलित प्रेमोद्दीपन की परम्परा एवं सामग्री का पूरा पूरा उपयोग किया है। अतएव इन्होंने हिन्दुओं की तरह स्वप्न-दर्शन चित्रदर्शन या गुणश्रवण से आरम्भ होने वाले प्रेम के साथ-साथ विवाह के बाद स्फुरित होने वाला दाम्पत्य प्रेम तथा प्रत्यक्ष दर्शन से उत्पन्न आसक्ति को भी अपने काव्य का आधार बनाया है। यही कारण है कि इनमें भारतीय पद्धति का सम प्रेम भी मिलता है और शामी पद्धति का विषम से सम की ओर जाने वाला प्रेम भी।

इसके अतिरिक्त नखशिख वर्णन भी दोनों में लगभग एक-सा ही है। उपमानों के संयोजन मे दोनों ने लगभग एक-सी ही तुलना दी है जैसे कटि के लिए केहरि, नासिका के लिये तोते के टोंट, जंघा के लिए कदली आदि।

संयोगपक्ष में उत्तान शृंगार-वर्णन और प्रथम मिलन की रात्रि में पहेलियाँ बुझाने की प्रथा भी समान रूप से पाई जाती है। इन पहेलियों के द्वारा किसी-किसी काव्य में सूफियों की तरह अध्यात्म तत्वों की विवेचना भी मिलती है[1]।

एक बात और ध्यान देने की है वह यह कि दोनों ने अपने काव्यों का शीर्षक नायिका के नाम पर ही रखा है 'जिन हिन्दू कवियों के आख्यानों में नायक का नाम शीर्षक में लाया है उसमें दोनों नाम साथ-साथ मिलते हैं जैसे माधवानल कामकंदला, मधुमालती, रमणशाह, छबीली मठियारी की कथा आदि।

जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है दोनों के आख्यान सूफियों से प्रभावित विशेषकर अवधी में मिलते हैं जिनमें दोहा चौपाई छन्द का प्रयोग साधारणतः पाया जाता है। शृंगार के क्षेत्र में सादृश्यमूलक जैसे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का व्यवहार दोनों में समान रूप से अधिक पाया जाता है। मुसलमानों के प्रभाव से प्रेम पक्ष में जुगुप्सामूलक उपमानों का प्रयोग भी हिन्दू कवि करने लगे थे। जैसे नलदमन में दमयन्ती का रूप-सौन्दर्य-वर्णन करता हुआ कवि हथेली की स्वाभाविक लालिमा को प्रेमी के रुधिर से सनी हुई होने के कारण लाल बताता है।

---

१. देखिए पुहुपावती।

'सुरज कांति भुज कंवल हथोरे, राते जो रहुर से बोरे।
उबा नगर बन सुठ रहर चुंचाते, वैरन रहर पियत न अघाते।
पुनि पहिरे ससि नखत अंगूठी, जनु पावक राखति गह मूंठी।
जो जिउ काढ़ हाथ पर लेई, सो तिन हाथन दिस्ट करई।

'नलदमन'

किन्तु यह प्रवृत्ति अधिक नहीं दिखाई पड़ती।

उपर्युक्त समानताओं के विषय में कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि मुसलमान और हिन्दू कवियों में मिलने वाले प्रेमो-द्दीपन के स्वरूप, नखशिख वर्णन एवं रूप सौन्दर्य वर्णन में संयोजित उपमानादि तथा दार्शनिक पक्ष में गुरुमहिमा, हठयोगिक क्रियाएँ, जन्मान्तरवाद, अद्वैतवाद, प्रतिबिम्बवाद आदि का मूल श्रोत भारतीय है जो सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के काव्यों में पाया जाता है जिसे मुसलमानों ने भारतीय प्रभाव के कारण एवं अपनी रचनाओं को लोकप्रिय प्रभावोत्पादक एवं साहित्यिक बनाने के लिए ग्रहण किया है।

इन समानताओं के अतिरिक्त दोनों वर्ग के कवियों में कुछ विभिन्नताएँ भी धार्मिक विश्वासों, काव्य प्रणयन के दृष्टिकोण एवं सामाजिक स्तर के वैभिन्य के कारण मिलती है।

हिन्दू कवियों ने सूफियों से प्रभावित आख्यानक काव्य लिखे अवश्य किन्तु मुसलमानों के प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण के इस वैभिन्य के कारण ही मुसलमानों में प्रेम का मानसिक पक्ष अधिक निखरा है तो हिन्दुओं में शारीरिक पक्ष की प्रधानता है[1]।

मुसलमान कवियों ने जहाँ केवल गुणश्रवण, चित्रदर्शन एवं स्वप्नदर्शन से ही

---

१. यथा नारंगी रेशमी तेहि समान कुच दोय।
पूरब पुन्यन ते पुरुष ग्रहण करत है कोय।

"विरहवारीश"

नल औ तुमहि प्रीति जो भएउ।
तौलन ताहि काम मन दिएउ।
पलरा ससि कह मनहुँ बनाए।
रस्मि जासु डोरा जनि लाए।
नल के नख के जब रेखा लहिहै।
कुच ससि सेखर से छवि गहिहै।

प्रेम का आरम्भ दिखाया है वहाँ हिन्दुओं ने इसके साथ ही साथ अन्य प्रकार के प्रेम-सम्बन्धो को जैसे विवाह के उपरान्त स्फुरित होने वाले गार्हस्थिक प्रेम सम्बन्ध का भी आधार लिया है। प्रत्यक्ष दर्शन से उत्पन्न होने वाला प्रेम भी उनमें प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दुओं के प्रेम सम्बन्धों में गार्हस्थिक प्रेम का रूप अधिक मुखर है। हम यह कह सकते हैं कि हिन्दुओं के आख्यानों में प्रेम का क्षेत्र अधिक व्यापक और विस्तृत है।

भाषा, छन्द, अलंकारयोजना और शैली में भी हिन्दुओं ने मुसलमानों से अधिक विस्तृत क्षेत्र को अपनाया है। अब तक जितने भी "मुसलिम" प्रेम प्रबन्ध प्राप्त हुए हैं वे सब अवधी में है तथा उनमें केवल मनसवी शैली और दोहा चौपाई या सोरठा (पाँच या सात अर्द्धालियों के बाद एक दोहे या सोरठे का क्रम पाया जाता है) छन्द का प्रयोग किया गया है किन्तु हिन्दुओं के काव्य डिंगल, राजस्थानी, ब्रज, अवधी एवं संस्कृत मिश्रित अपभ्रंश तथा खड़ी बोली और उर्दू मिश्रित ब्रज तथा राजस्थानी में पाए जाते हैं।

शैली के क्षेत्र में हिन्दुओं ने मसनवी शैली के अतिरिक्त, पुराणों की संवाद शैली, कथोपकथन की शैली, एवं नाटकों की चंपू शैली को भी अपनाया। है।

अस्तु, भाषा-शैली और प्रेम-व्यंजना में हमें दोनों काव्यों में काफी अन्तर लक्षित होता है। दूसरे शब्दो में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि जहाँ तक, अद्वैतवाद, प्रतिबिम्बवाद, हठयोगी क्रियाओं आदि धार्मिक पक्ष का संबंध है दोनों में समानरूप से पाई जाती है। भूत-प्रेत, किन्नर गन्धर्व आदि परा शक्तिओं पर विश्वास भी समानरूप से मिलता है। आश्चर्य तत्वों के संयोजन में भी दोनों में कोई अन्तर नहीं लक्षित होता। काव्य परिपाटियों को जैसे अपनी रचनाओं में काव्य शास्त्र के संकेत और काम शास्त्र के उल्लेख को दोनों ने समानरूप से परम्परा के रूप में अपनाया है। दोनो के लौकिक प्रेम व प्रबन्धों में हृदय-पक्ष की प्रधानता, उल्लासमय वातावरण, संयोग और वियोग के मानसिक

उपवन वन सरसी फुलवारी।
नल संग करहु केलि वर नारी।
मदन मंत्र दोउ मल्ल समाना।
करहु युद्ध निस रस से साना।
नल औ तोहि सग जब ह्वैहैं।
विरह ताप दुहुँ केर भुलैहैं।

"नलपुराण"

और शारीरिक पक्ष एवं धार्मिक दृष्टिकोण में सामंजस्यवादी प्रवृत्ति भी समान रूप से पाई जाती है।

केवल भाषा, शैली, छन्द-योजना और प्रेम की अभिव्यंजना में ही विशेष अन्तर लक्षित होता है। पूरे युग की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए हम यह कह सकते है कि दोनों के काव्यों में विभिन्नताओं के स्थान पर समानता अधिक मिलती है किन्तु इसके साथ ही दोनों के काव्य निजी विशेषताओं, अनेकरूपता और विविधता से मंडित भी हैं।

सामान्य विशेषताएँ

कवि के स्वभाव-वैचित्र्य, कथानक के स्रोत वैभिन्य और उद्देश्य तथा लक्ष्य के अन्तर के कारण प्रत्येक काव्य में अपनी कुछ न कुछ विशेषता होती ही है, फिर भी एक भावधारा को लेकर चलने वाले काव्यों में एक परिपाटी अथवा रम्परा का अनुसरण दिखाई पड़ता है जो भावगत तथा शैलीगत दोनो हो सकते हैं। इसलिए हिन्दू कवियों के सभी प्रकार के आख्यानों में कुछ विशेषताएँ सामान्य रूप से मिलती हैं।

वर्णनीय विषय या कथानक की दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक काव्य में प्रेम का आरम्भ प्रायः समान रूप से ही होता है जैसे नायक नायिका एक दूसरे का चित्र देखकर अथवा स्वप्न देखकर, हंस, तोते, या मनुष्य के द्वारा एक दूसरे का गुण सुनकर मोहित होते है।

यह प्रेम दोनों ओर से सम होता है अस्तु दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल रहते है। नायिका राजकुमारी होने के कारण महलों की चहार-दीवारियों मे आह भरती आँसू बहाती रहती है और नायक अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होता है, वह अधिकतर अपने पिता की राजधानी को छोड़कर कुछ साथियों के साथ गन्तव्य मार्ग पर चल पड़ता है, और मार्ग में नाना प्रकार की कठिनाइयों को झेलता रहता है।

अपनी लक्ष्यप्राप्ति में इन्हें लगभग पाँच छः वर्ष का समय लग ही जाता है इसी समय में प्रबन्ध काव्यों में नायक अन्य नायिकाओं से भी प्रेम सम्बन्ध स्थापित करता चलता है किन्तु लक्ष्य को नहीं भूलता और अपनी हृदयेश्वरी को प्राप्त कर लौटते समय वहाँ इन स्त्रियो से भी यथोचित विवाह कर राजधानी में लौट आता है। किन्तु खण्ड काव्य के रूप में जो प्रेमाख्यान मिलते हैं उनमें यह प्रवृत्ति नही दिखाई पड़ती। अलौकिक तत्वों का संयोजन इनकी दूसरी विशेषता है।

अपने पथ पर आरूढ़ नायक को जहाँ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वहीं आधिदैवी शक्तियों जैसे, अप्सरा, बैताल, सर्प, आकाशवाणी आदि के

द्वारा उसे सहायता मिलती है और कभी कभी तो दैवी शक्तियों में महादेव पार्वती आदि नायक की रक्षा कर उसको उसकी प्रियतमा के नगर तक पहुँचाने में सहायक होते हैं।

प्रियतमा के नगर में पहुँचने के उपरान्त नायक दूती, मैना, हंस, सखी या मालिन के द्वारा महल की वाटिका अथवा नायिका के शयन गृह में अपनी प्रियतमा का दर्शन लाभ करता है। इसी स्थान पर दोनों में गान्धर्व विवाह का सयोजन लगभग सभी काव्यों में मिलता है इसीलिए इन काव्यों में संयोग श्रृङ्गार की प्रधानता पाई जाती है जो कहीं-कहीं अमर्यादित हो गई है।

इस गुप्त प्रेम के प्रकटीकरण पर नायक को नायिका के पिता की ओर से कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, किन्तु यह व्याघात अधिक समय तक नहीं रहता और दोनों पक्षों में सुलह के उपरान्त यथोचित रूप में विवाह हो जाता है।

विवाह के उपरान्त अपने देश को लौटते समय प्रायः सभी नायकों को किसी शत्रु के मार्गविरोध पर युद्ध करना पड़ता है, उसको हरा कर नायक अपनी राजधानी में प्रवेश करता है।

पुत्र और पुत्र-बधू अथवा राजा या रानी के प्रत्यावर्तन पर माता-पिता और प्रजा आनन्द मनाती है और फिर नायक को धर्म में रत दिखाया जाता है। प्रबन्ध काव्यों में तो पुत्र लाभ के बाद नायक अपने वयस्क पुत्र को राज्य-भार सौंपकर वानप्रस्थ लेते भी दिखाए गए हैं।

काव्य के आरम्भ करने की शैली भी एक रूढ़ि का अनुसरण करती दिखाई पड़ती है। प्रत्येक काव्य के आरम्भ में 'मंगलाचरण' मिलता है जिनमें, अधिकतर निराकार ब्रह्म की स्तुति रहती है तदुपरान्त गणेश की वन्दना कर कवि अपना परिचय तथा आश्रयदाता के नाम का उल्लेख करता है। सूफीमत की शैली के काव्यों में इसके बाद शाहेवक्त के प्रति श्रद्धाञ्जलि* मिलती है।

आधिकारिक कथा का आरम्भ किसी निःसन्तान राजा की सन्तान प्राप्ति के प्रयत्न के वर्णन से होता है, उक्त राजा विशेष के महल और नगर का वर्णन भी संक्षेप में किया जाता है। देवी, देवता, ऋषि या मुनि के प्रताप से उस राजा को पुत्र या पुत्री का लाभ होता है। इसी सन्तान की प्रेम-गाथा का वर्णन सम्पूर्ण काव्य में मिलता है।

प्रारम्भ की तरह अन्त भी कथा के माहात्म्य वर्णन और पुष्पिका में रचना काल की तिथि से होता है।

प्रत्येक काव्य, तरंगों या अध्यायों में विभाजित है और प्रत्येक तरङ्ग के अन्त में उसका नामकरण वर्ण्य विषय के अनुसार उल्लिखित किया गया है।

कथा-बन्ध और वर्णन-शैली की ही तरह छन्द-विधान में भी परम्परा का अनुसरण परिलक्षित होता है। अधिकतर उन काव्यों में दोहा, चौपाई की शैली का भी अनुसरण किया गया है। दोहा-चौपाई का क्रम समान रूप से आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहे या सोरठे का है, किन्तु इस परिपाटी का पालन अक्षरशः नहीं मिलता। दोहा-चौपाई के अतिरिक्त इन कवियो ने सवैया, कवित्त, मोतीदाम, भुजङ्ग-प्रयात और अडिल्ल छन्द का अधिक प्रयोग किया है।

इसके अतिरिक्त प्रेम-अभिव्यञ्जना में भी हमें समानता दृष्टिगोचर होती है। प्रेम का प्रथम सोपान सौन्दर्य है, अस्तु रूप-सौन्दर्य-वर्णन में नखशिख का आयोजन सभी काव्यों में समान रूप से पाया जाता है और नायिका के अलंकृत वर्णन में अप्रस्तुत विधान लगभग सब में एक-सा ही है। जैसे कटि के लिए केहरि, नासिका के लिए तोता, जंघों के लिए कदली आदि।

इनमें नारी-सौन्दर्य की ही प्रधानता मिलती है। पुरुषों में सौन्दर्य के स्थान पर शौर्य, साहस, तेज आदि का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार सभी काव्यों में प्रेम दोनों ओर से सम अङ्कित किया गया है जिसके फलस्वरूप संयोग-पक्ष की नाना दशाओं और 'रति' का विस्तृत वर्णन इन काव्यों में मिलता है। जहाँ भी कवि को समय मिला है वहीं उसने नखशिख या 'रति' का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया है यही कारण है कि पुहुपावती, रसरतन, नलचरित्र, आदि काव्यों में तो उसकी भरमार मिलती है।

इन काव्यों में संयोग की नाना दशाओं का वर्णन है, और वियोग का कम। यही कारण है कि बारह मासा आदि के वर्णन इन काव्यों में अधिकतर नहीं पाए जाते। जिसके फलस्वरूप प्रकृति चित्रण कम प्राप्त होता है।

इस प्रकार छन्द-विधान, कथा-प्रारम्भ और अन्त करने की रीति, कथा के संगठन और संयोग-वियोग-पक्ष के चित्रण में हमें कुछ परम्परागत ऐसी सामान्य प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जो इन काव्यों को एक सूत्र में बाँध देती हैं।

हिन्दू कवियों की देन

हिन्दू प्रेमाख्यानों के आधार पर संवत् १००० से १६१२ तक की साहित्यिक, धार्मिक, सास्कृतिक और सामाजिक प्रवृत्तियों का अध्ययन बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। "ढोला मारू रा दूहा" "सत्यवती की कथा" माघवानल कामकन्दला "प्रेमविलास प्रेमलता कथा" के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह काव्य लोकगीतों के रूप में प्रचलित थे क्योंकि इनमें लोकगीतों की लगभग सभी सामान्य प्रवृत्तियां मिलती हैं। जैसे अपने प्रेमी को पाने के लिए नायक अथवा नायिका का प्राण-प्रण से प्रयत्न करना और अनेक बाधाओं को हटाकर उसे प्राप्त कर आसुरी या गाधर्व रीति से विवाह करना, आदर्श वीरता के आख्यान, पहेलियों द्वारा मानव भाग्य का निपटारा, विशेषत: पहेलियों के शुद्ध उत्तर द्वारा प्रेमी दंपति का मिलन होना, अलौकिक सत्ता और आश्चर्य तत्वों में विश्वास, अतिशयोक्ति, पुनर्जन्म और भाग्य पर विश्वास, पशु-पक्षियों द्वारा, मानवहित सम्पादन, कहानी का उपदेश दायक होना, तथा धार्मिक सिद्धान्तों का प्रशस्ति रूप में प्रचार। यही नहीं यदुनाथ सरकार के अनुसार गीति-काव्यों के प्रणयन के सभी लक्षण जैसे प्रबन्ध गति की तीव्रता, शब्द विन्यास की सादगी, प्राकृतिक और आदिम मनोभावों की व्यापक मर्मस्पर्शिता, विचार-विश्लेषण के बजाय कार्यशीलता, प्रभावोत्पादक स्थूल चरित्रचित्रण, प्राकृतिक पृष्ठ भूमि पर स्थूल अवयव चित्र, साहित्यिक कृत्रिमताओं के न्यूनातिन्यून प्रयोग भी मिलते हैं। अस्तु कथा का संगठन और उसकी शैली लोकगीतों का ही अनुसरण करती है।

यह लोक गीत जैन मुनियों के द्वारा अपभ्रंश काल में धार्मिक कथा का रूप ग्रहण करने लगे थे मुसलयानों ने सूफी मत के प्रचार के लिए इन्हीं प्रचलित लोक गीतों का आश्रय लिया, आगे चलकर दोनों समुदायों ने कथाओं में कोई मौलिक परिवर्तन न कर अपनी साहित्यिक और धार्मिक परिपाटियों और विश्वासों द्वारा इन्हें अलंकृत और सुसज्जित कर हिन्दी-साहित्य का एक प्रधान अवयव बना दिया। अस्तु हम यह कह सकते हैं कि हिन्दू कवियों ने अपने काव्यों

में अतीत कालीन ऐतिहासिक और लोक प्रचलित चरित्रों का पुनरुद्धार कर अपभ्रंश की लुप्त प्राय कथाओं को नई सज-धज से जन साधारण के सामने फिर ला उपस्थित किया। कहना न होगा कि इन लोक प्रचलित कथाओं का किसी भी देश की संस्कृति में कितना महत्वपूर्ण स्थान होता है। लोक संस्कृति की झलक दिखलाने वाले इन काव्यों को हिन्दू कवियो की महत्वपूर्ण देन माननी चाहिए।

प्रारम्भ में यह काव्य दाहा, चौपाई, या दूहा-चौपाई के मिले जुले छन्दों में ही प्रणीत हुए, किन्तु 'रीत' कालीन काव्य के प्रभाव से अन्य छन्दों का प्रयोग, नख-शिख वर्णन, अनुभावों का संयोजन तथा नायिका भेद का पुट देकर अलकृत भाषा का प्रयोग किया जाने लगा।

इस प्रकार प्रबन्धगति की तीव्रता में शिथिलता आई, रागात्मक मनोभावों के मर्मस्पर्शी वर्णन के साथ विचार विश्लेषण की प्रवृत्ति ने 'रति' सम्बन्धी मानसिक और शारीरिक अवस्थाओं के चित्रांकन को जन्म दिया आर यह गीत शुद्ध साहित्यिक काव्यों की कोटि में आ गए। इन काव्यों की भाषा, अलंकार तथा छन्द योजना में हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास की कहानी छिपी हुई है।

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि अपभ्रश काल का साहित्य उस काल के धार्मिक विश्वासों से अनुप्राणित था विक्रम की आठवीं शती पुराण, आगम, सहिताओं, तन्त्र, यन्त्र, शैव और शाक्तो के धार्मिक विश्वासों के अतिरिक्त बौद्धो की महायान और बज्रयानी शाखा का प्रभाव जनता पर सबसे अधिक पड़ा था। फिर पन्द्रहवीं शती के लगभग भागवत पुराण के कारण रागानुगा भक्ति का प्रचार हुआ जिसमें दक्षिण आने वाली वेदान्त भाषित भक्तिधारा ने योग देकर निर्गुण और सगुण ब्रह्म की उपासना को जन्म दिया। इसी काल में पश्चिम से मुसलमानों द्वारा प्रतिपादित सूफी मत भी फैलने लगा। अस्तु अपभ्रंश से निःसृत होने वाली प्रेमकाव्य-धारा अपने साथ अपभ्रश कालीन धार्मिक विश्वासों को लेकर अवतरित हुई—जिसमें पुराणों, संहिताओं और आगमों की स्रोतस्विनियों के साथ-साथ रागानुगा भक्ति सम्बन्धी भागवत पुराण की सभी भावनाएँ मिलती हैं। अस्तु यह काव्य विक्रम की छठीं से उन्नीसवीं शती तक के धार्मिक विश्वासों और साधनाओं के अध्ययन की अमूल्य सामग्री उपस्थित करते है। हिन्दुओं की सारग्राहणी शक्ति उनके दृष्टिकोण की विशालता और धार्मिक मतमतान्तरों में सामंजस्यमयी प्रवृत्ति का परिचय इन आख्यानों में निहित है। उन्होंने नूरमहम्मद की तरह किसी देवी देवताओं का निरादर नहीं किया, अन्य मतों के प्रति अश्रद्धा नहीं प्रकट की वरन् इसके प्रतिकूल सूफियों की साधना-पद्धति को अपनाया, निर्गुण और सगुण

के भेद-भाव को मिटाने का प्रयत्न किया शैवों और शाक्तों के विश्वासों को प्रश्रय दिया। राम और कृष्ण के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की और किसी के धर्म पर कोई आक्षेप नहीं किया।

प्रेमी और प्रेयसी के अश्रु और हास, राग-रंग और मनुहार के बीच जो कुछ भी लोक पक्ष निखरा है उससे ज्ञात होता है कि उस समय देश में ब्राह्मणों का बड़ा आदर था, भाग्य, ज्योतिष-शास्त्र और गुरु पर लोगों की असीम श्रद्धा थी राजा और प्रजा में श्रद्धा और प्रेम का व्यवहार था। जन-साधारण की प्रवृत्ति धर्मोन्मुखी थी, किन्तु वे अर्थ और काम के प्रति उदासीन नहीं थे। स्त्री और पुरुष को शिक्षा का समान अधिकार था, स्वयंवर की प्रथा और गान्धर्व विवाह की रीति वर्जित न थी किन्तु स्त्रियों को समाज में कोई स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त नहीं हुई थी, आदर्श गृहणी और प्रतिव्रता स्त्री ही समाज में आदर का पात्र बन सकती थी। नृत्य, संगीत, साहित्य शास्त्र, और काम सूत्र शिक्षा के प्रधान अवयव माने जाते थे। मुगलकालीन भोग-विलासमय वातावरण के कारण साहित्य में नारी का मांसल रूप प्रधान हो गया था और वह धीरे-धीरे केवल उपभोग की सामग्री बन गई थी।

कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दू प्रेमाख्यान भारतीय संस्कृति और साहित्य के विकास की एक महत्वपूर्ण श्रृंखला है जिन्होंने छठीं से उन्नीसवीं शती तक की धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को एकत्रित रूप में ला उपस्थित किया है।

इन्होंने धार्मिक क्षेत्र में स्वदेशी और विदेशी भावधाराओं के संघर्ष को मिटाकर सहृदयता और मानवता की उसी प्रकार पृष्ठ भूमि निर्मित करने का प्रयत्न किया, जिस प्रकार जायसी आदि मुसलमान कवियों ने की थी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इनकी रचनाओं में मानवतावाद की प्रधानता थी। अंग्रेजों के आने तथा संकुचित राजनैतिक वातावरण की विषैली प्रतिक्रिया के पूर्व हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो सहृदयता और धार्मिक सहिष्णुता का वातावरण था, उसके निर्माण में इस कोटि के काव्यों का हाथ अवश्य है। इसके अतिरिक्त इन काव्यों ने वैदिक-काल से लेकर संवत् १६०० तक की धार्मिक भावधाराओं को बीज रूप में अपने में निहित रख कर हमारी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

सामाजिक क्षेत्र में रीति-रिवाज, रहन-सहन एवं हिन्दू गार्हस्थ्य जीवन के प्रेम उल्लासमय वातावरण का चित्रांकन करते हुए इन काव्यों ने कर्तव्याकर्तव्य की ओर सदैव ध्यान दिया है। यह बात विशेष ध्यान देने की है कि इन काव्यों में वर्णित प्रेम कुत्सित प्रेम के स्तर पर नहीं उतरता जो समाज की जड़ें हिला

सके। इनकी नायिकाएँ सती नारी की जीती जागती मूर्ति हैं उनमें भारतीय नारी के त्याग, उदारता, शील और सौंदर्य का अद्भुत सम्मिश्रण मिलता है। हमारा जीवन भोगविलास में पड़कर विश्रृंखल न होने पाए इसलिए स्वकीया प्रेम को ही महानता दी गई है। सूफियों से प्रभावित काव्यों में दक्षिण नायक का संयोजन मिलता अवश्य है किन्तु साधारणतः इनमें एक पत्नी-व्रत नायकों की ही प्रधानता मिलती है। इस प्रकार इन काव्यों ने दाम्पत्य जीवन की पवित्रता को कलुषित होने से बचाया है। रीतिकालीन उन्मुक्त प्रेम-वर्णन के बीच यह कवि सामाजिक पक्ष को नहीं भूले थे। लोक मर्यादा और आदर्शमय जीवन का दृष्टिकोण सामाजिक क्षेत्र में, इन काव्यों की सबसे बड़ी देन है। साहित्य के क्षेत्र में इन काव्यों ने संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य की प्रवृत्तियों को अपनाया है। संस्कृत साहित्य का प्रेम-तत्व विशेष कर 'कालिदास' के शृंगार वर्णन की पद्धति का प्रभाव इन काव्यों में विशेष रूप से लक्षित होता है। जहाँ तक अपभ्रंश का सम्बन्ध है इन काव्यों ने इस भाषा में मिलने वाले ऐहिक और आमुष्मिक दोहों के साथ साथ खण्ड-काव्यों की आध्यात्मिकता और पुराणों तथा चरित काव्यों के आदर्श मय चरित्रों का अनुसरण किया है। छन्द और अलंकार की दृष्टि से यह काव्य अपभ्रंश के बहुत अधिक ऋणी ठहरते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इनमें मोलिकता नहीं मिलती वरन् मतलब यह है कि इन काव्यों ने प्राचीन और तत्कालीन साहित्यिक परिपाटियों के बीच सामञ्जस्य बनाये रखा है। इस प्रकार यह दोनों युग की साहित्यिक परिपाटियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए अगर हमें इन काव्यों में रीतिकालीन प्रेमव्यञ्जना पद्धति, नायिका-भेद, आलंकारिक शब्द-विन्यास, एवं छन्द-विधान मिलता है तो अपभ्रंश कालीन दूहा, दोहा-चौपाई की शैली के साथ कथानक की घटनाओं में आश्चर्य तत्व एवं लोकोत्तर घटनाओं का संयोजन, नायक-नायिका का एक दूसरे को पहेली बुझाने की प्रथा का अनुसरण मिलता है। कथा प्रारम्भ करने 'की परिपाटी भी परम्परानुकूल' है जैसे प्रारम्भ में भावना या स्तुति, तदनन्तर कवि परिचय, गुरु-वन्दना आदि बीच-बीच में नगर वाटिका, और राजाओं राजकुमारियों के महलों आदि का वर्णन भी अपभ्रंश कालीन रचनाओं के परम्परानुकूल है। इस प्रकार रीतिकालीन मुक्तक और मध्ययुगीन प्रबन्ध काव्यों की मिली जुली शैलियों एवं भावव्यंजना की परिपाटी में वे काव्य प्रणीत हुए हैं। अस्तु भाषा, भाव, अलंकार तथा छन्द-विधान की दृष्टि से इन काव्यों का हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। यह इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि हिन्दी साहित्य में मिलने

वाले प्रेमकाव्यों की परम्परा विदेशी न होकर स्वदेशी थी और आचार्यों का यह मत है कि प्रेमाख्यानों की परम्परा जायसी से प्रारम्भ होकर नूरमुहम्मद की अनुराग बांसुरी से समाप्त हो गई निराधार ठहरती है। वरन् यह कहना उपयुक्त होगा कि सम्वत् १००० से १६०० के बीच अपभ्रंश के बाद हिन्दी में प्रेमाख्यानों का प्रणयन अन्य काव्य-धाराओं के समानान्तर चलता रहा और इन काव्यों ने प्रबन्ध काव्यों की एक नई परिपाटी चलाई। अब तक के जितने भी काव्य मिलते हैं वे या तो मुक्तक में नीति, शृंगार या धर्म सम्बन्धी हैं या प्रबन्ध काव्यों के वीर और भक्ति रस के ही मिलते हैं। इन हिन्दू प्रेमाख्यानों के द्वारा शुद्ध साहित्यिक प्रेम-काव्यो की परम्परा चली। यह काव्य शुद्ध आख्यान काव्य हैं जिनमें प्रेम की ही प्रधानता है। यह बात दूसरी है कि यह कवि काव्य के अन्त में अध्यात्म पक्ष की ओर संकेत करते हैं या कुछ कार्यों में सूफियों के प्रभाव के कारण रहस्यात्मक प्रेम की गहरी छाया मिलती है। फिर भी तात्विक रूप में यह काव्य शुद्ध प्रेमाख्यान ही कहे जा सकते हैं जिनमें लौकिक पक्ष को प्रधानता है। अस्तु, साहित्य के क्षेत्र में प्रबन्ध काव्य की नवीन परिपाटी इन प्रेमाख्यानों की सबसे बड़ी देन है।

इन कवियों ने शुद्ध मानव अनुभूतियों का चित्रण कर उसे भरसक धार्मिक या आध्यात्मिक रङ्गों से बचाकर शुद्ध साहित्य का बड़ा उपकार किया है। साहित्य को धर्म के पीछे बाधा नहीं यद्यपि धर्म आदि के प्रभाव से साहित्य सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता। उन्होंने साहित्य की स्वतंत्र सत्ता और उसके निजी व्यापक क्षेत्र की प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भक्ति-काल में निर्गुण और सगुण भक्ति-धारा के समानान्तर शुद्ध प्रेमाख्यानों की धारा प्रवाहित हो रही थी।

यह कहना असङ्गत न होगा कि हिन्दू कवियों ने हिन्दू प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त मुसलमानों की शामी कथाओं को भी अपने काव्य का आधार बनाया है। जैसे लैला मजनूँ, रमणशाह छबीली भठियारी की कथा। किन्तु इनके ये काव्य भारतीयता और हिन्दू संस्कृति से प्रभावित हैं। लैला मजनूँ कथा का अन्त प्रह्लाद की पौराणिक घटना के उल्लेख से होता है रमण शाह की कथा में शाहजादे का विवाह हिन्दू कन्या के साथ हिन्दूरीति से दिखाया गया है। सूफियों से प्रभावित काव्यों में भी मूर्ति-पूजा, जन्मान्तर वाद, सगुण भक्ति आदि के दर्शन होते हैं। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानों के भेदभाव को मिटा कर इन काव्यों ने दोनों के बीच एक सांस्कृतिक

सामंजस्य स्थापित किया है जो इन काव्यों की साहित्यिक देन से कहीं अधिक मूल्यवान तथा हमारे राष्ट्र के संगठन एवं पुनरुत्थान के लिए श्रेयस्कर है।

कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों ने जनसाधारण प्रचलित लोक गीतों की परम्परा को अपनाकर और उनकी रक्षा कर उन्हें अक्षुण्ण बनाए रखा, अपभ्रंश काल की लुप्तप्राय कहानियों का पुनरुद्धार किया साथ ही साथ अतीत-कालीन ऐतिहासिक और लोक-प्रसिद्ध चरित्रों को विस्मृति के गर्भ में विलीन होने से बचाया, तथा प्राचीन काव्य-परिपाटियों एवं मध्ययुगीन और रीतिकालीन प्रेमव्यञ्जना-पद्धति का मिला-जुला रूप उपस्थित कर "प्रबन्ध" काव्यो की एक नवीन परिपाटी चलाई, जो तुलसी और जायसो से भिन्न शुद्ध प्रेमाख्यानों पर अवलंबित है। अस्तु इनके लोकपक्ष में तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक तथा गार्हस्थ्य जीवन का प्रतिबिम्ब अधिक मुखर है।

प्राप्य ग्रन्थों का विशिष्ट अध्ययन

क. शुद्ध प्रेमाख्यान

ख. अन्यापदेशिक-काव्य

ग. नीति-प्रधान प्रेम-काव्य

शुद्ध प्रेमाख्यान

ढोला मारू रा दूहा

रचयिता........(अज्ञात)

रचना काल सं० १०००–१६१८।

'ढोला मारू रा दूहा' का लेखक कौन है और यह कब लिखा गया इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। लगभग सात सौ दोहों का यह संग्रह मौखिक रूप में राजस्थान में बहुत दिनों तक सुरक्षित रहा और समय समय पर इसमें परिवर्तन होता गया। यह शुद्ध प्रेमाख्यान है। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'ढोला मारू रा दूहा' की भूमिका में विद्वान सम्पादकों ने इसकी रचना की ऊपरी सीमा सं० १००० के आस-पास मानी है और निचली सीमा कवि कुशललाभ का समय यानी सं० १६१८ के आस-पास मानी है[1]।

'ढोला मारू रा दूहा' में गीति-काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं, यदुनाथ सरकार ने गीति-काव्य की विशेषताओं का वर्णन करते हुए एक स्थान पर कहा है कि इन काव्यों में गति की तीव्रता, शब्द-विन्यास की सादगी, प्राकृतिक और आदिम रागात्मक मनोभावो की व्यापक मर्मस्पर्शिता, विचार-विश्लेषण के बजाय कार्यशीलता, प्रभावोत्पादक स्थूल चरित्र-चित्रण, प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर स्थूल अवयव चित्र का अंकन, साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनातिन्यून प्रयोग मिलते हैं[2]।

'ढोलामारू' में मारवणी और मालवणी के संयोग तथा वियोग-पक्ष के मार्मिक चित्र उपस्थित किए गए हैं। वियोगावस्था के वर्णन में हमें प्रकृति के सवेदनात्मक रूपों का ही आयोजन मिलता है। अप्रस्तुत विधानों में सीधे-सादे नित्य

---

१. ढोला मारू रा दूहा —नागरीप्रचारिणी सभा, काशी पृष्ठ १३।

2. "Rapidity of movement, simplicity of diction, primary emotions of universal appeal, action rather than subtle analysis broad striking characterisation—thumbnail sketches of background and sparest use or rather complete avoidance of literary artifices these are the essential requisites of the true ballad."—Yadunath Sircar.

प्रति के जीवन में आने वाले व्यापारों का संयोजन किया गया है। ढोला, मारवणी और मालवणी के चरित्र-चित्रण में सूक्ष्म विश्लेषण के स्थान पर उनके चरित्र की मोटी विशेषताएँ मिलती हैं प्रकृति-चित्रण में स्थानीय चित्र बड़ी कुशलता से अंकित किए गए हैं। भाषा अनलंकृत और सादी किन्तु प्रभावोत्पादक है, घटनाओं में गत्यात्मकता है, प्रत्येक पात्र कार्यशील दिखाई पड़ता है—स्त्री पात्रों की यात्रादि का वर्णन तो नहीं किन्तु अपने प्रियतम की प्राप्ति के लिये संदेश भेजने और 'डाढ़ी' आदि को एकत्रित करने में वह क्रियाशील दिखाई गई है। अस्तु गीति काव्यों के सभी अवयव इस काव्य में मिलते हैं। इस कारण यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि 'रास ग्रन्थों' की परम्परा से संबद्ध यह काव्य दूहों के रूप में प्रचलित था, जिसे कुशललाभ ने संकलित कर चौपाइयों के द्वारा क्रमबद्ध कर दिया है। इसलिये यह रचना सं० १००० से १६१८ के बीच की ठहरती है।

ऐतिहासिक आधार

ढोला नाम तो बहुत पुराना है। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में जो अपभ्रंश के उदाहरण दिए गए हैं, उनमें ढोला शब्द आया है। 'हेमचन्द्र' का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी है वहाँ ढोला से आशय नायक का है। ढोला नाम नायक का क्यों पड़ा कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। बहुत सम्भव है कि इस कथा के नायक की सुप्रसिद्धि से नायक का नाम ढोला पड़ गया हो। ढोला का संवत् लगभग १००० है। वह कछवाहा वंश का तथा नरवर का राजा था। उसका नाम साल्ह कुमार था और ढोला उसका प्रेम का उपनाम था। टाड के राजस्थान में ढोला और उसके पिता नल का नाम मिलता है। ढोला के बाद कछवाहों ने जयपुर (ढूंढाड़) में अपना राज्य स्थापित किया। मूतां नैणसी की 'राजस्थानी ख्यात' में भी ढोला का उल्लेख मिलता है। उसमें यह भी लिखा है कि उसके दो रानियाँ थीं। एक मालवा की दूसरी मारवाड़ की। मारवाड़ एवं मालवा में उस समय पवारों का राज्य था। इसलिए मूल कथा का आधार ऐतिहासिक है[1] किन्तु प्रेमाख्यान होने के कारण सम्पूर्ण कथा की घटनाएँ ऐतिहासिक नहीं कहीं जा सकतीं।

कथावस्तु

किसी समय पूगल में पिंगल और नरवर में नल नामक राजा राज्य करते थे। पिंगल के मारवणी नाम की एक कन्या थी और नल के ढोला या साल्हकुमार नामका एक पुत्र था। एक बार पूगलदेश में अकाल पड़ा तो पिंगल सपरिवार

---

१ भूमिका ढोला मारू रा दूहा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

नल के देश में चला गया जहाँ नल ने उसे बड़े आदर के साथ ठहराया। ढोला को देखकर पिंगल की रानी रीझ गई। उसने राजा पर जोर डाल कर अपनी कन्या मारवणी का विवाह ढोला के साथ करवा दिया। उस समय ढोला की अवस्था तीन वर्ष की थी और मारवणी की डेढ़ वर्ष की। छोटी अवस्था होने के कारण पिंगल ने मारवणी को ससुराल में नहीं रखा और अपने साथ लौटते समय पूगल ले आया। कई वर्ष बीत गए उधर राजा नल ने पूगल को दूर जान कर और रास्ता भय पूर्ण समझकर ढोला का दूसरा विवाह मालवा की राजकुमारी मालवणी के साथ कर दिया और उसके पूर्व के विवाह को उससे छिपा रखा। ढोला और मालवणी प्रेमपूर्वक बड़े आनन्द से रहने लगे।

इधर मालवणी बड़ी हुई तो उसके पिता ने ढोला को बुलाने के लिये दूत भेजे। परन्तु मालवणी ने सौतिया डाहवश पूगल से आने वाले रास्ते पर ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि पिंगल के द्वारा भेजे हुए दूत ढोला के पास पहुँचने के पूर्व ही मार डाले जाते थे।

मारवणी ने एक दिन ढोला को स्वप्न में देखा। उसकी विरह पीडा जाग्रत हो उठी। उसी समय नरवर की ओर से घोड़ों का एक सौदागर पूगल में आया उसने ढोला के दूसरे विवाह की बात पिंगल से कही। राजा पिंगल ने ढोला को बुलवाने के लिये पुरोहित को भेजना चाहा पर रानी के कहने पर ढाढ़ियों को इस कार्य के लिये चुना। मारवणी ने भी अपना सदेश ढाढ़ियों से कह दिया। ढाढ़ियो ने ढोला के देश जाकर मालवणी के पहरेदारों को अपने गाने से प्रसन्न कर लिया। ढोला के महल के नीचे डेरा डाल कर ढाढ़ियों ने रात भर 'मांड राग' में करुण स्वर में मारवणी का प्रेम-संदेश गाया। गाने को सुनकर ढोला व्याकुल हो उठा। प्रातःकाल होते ही उन्हें बुलाकर सारा हाल सुनने के उपरान्त यथा योग्य उत्तर और इनाम देकर उसने उन्हें विदा कर दिया। ढोला के हृदय में चिन्ता और उत्कंठा भर गई। मालवणी ने चतुरता पूर्वक पति के दिल की बात जान ली। ढोला ने मारवणी को लिवा लाने की इच्छा प्रकट की परन्तु मालवणी ने अनुनय विनय करके ग्रीष्म और वर्षा भर ढोला को रोक रखा। अन्त में शरद की आधीरात को मालवणी को सोती छोड़कर ढोला चुपके से एक तेज चाल वाले ऊँट पर सवार होकर पूगल की ओर चल पड़ा। प्रस्थान करते हुए ऊँट की बलबलाहट को सुनकर मालवणी जागी और ढोला को न पाकर दुखी हुई। पीछे से उसने अपने तोते को समझा कर पति को लौटाने के लिए भेजा। तोते ने चंदेरी और बूँदी के बीच में एक तालाब पर ढोला को दतून करते हुए पाया और कहा कि उसके विरह में मालवणी मर गई। ढोला इस

बात को समझ गया और उत्तर में कहला भेजा कि तू जाकर सविधि उसकी अन्त्येष्टि कर दे। तोता लौटा, मालवणी निराश हो गई। ढोला आगे चला। तीसरे पहर उसने आड़ावाला पहाड़ को पार किया। मार्ग में ढोला को ऊमर सूमरा का एक चारण मिला, जो ऊमर की ओर से मारवणी के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव लेकर पिंगल के पास गया था, किन्तु हताश होकर लौट रहा था। उसने ईर्ष्यावश ढोला से कहा कि मारवणी अब बुढ़िया हो गई है तू जाकर क्या करेगा। थोड़ी दूर आगे जाने पर बीसू नाम का दूसरा चारण मिला जिसने मारवणी का सच्चा हाल बता कर ढोला की चिन्ता मिटाई।

ढोला पूगल पहुँचा। ससुराल में बड़ा स्वागत हुआ, बधाइयाँ हुईं। पिंगल ने खूब आनन्दोत्सव मनाए। मालवणी के हर्ष का पारावार न रहा। जिस दिन से ढोला पूगल पहुँचा था, लोग बड़े मग्न रहते थे। पन्द्रह दिन उपरान्त वह बहुत सा दहेज लेकर नरवर को विदा हुआ। मार्ग में एक विश्राम स्थल पर सोती हुई मारवणी को पीवणे साँप ने पी लिया। सवेरे जागने पर ढोला ने मारवणी को मरी पाया। वह विलाप करने लगा और चिता बना कर साथ जलने को उद्यत हुआ। जिस समय चिता प्रवेश की तैयारी हो रही थी उसी समय एक योगी और योगिन इस मार्ग पर आ निकले। योगिनी के अनुरोध से योगी ने मारवणी को अभिमन्त्रित जल से जीवित कर दिया। ढोला प्रसन्न हुआ और आगे चला।

इस समय तक ढोला की यात्रा की सूचना ऊमर सूमरा को हो गई थी। मारवणी को छीन लेने के लिए वह फौज सहित बीच में आ डटा। ढोला से मिलने पर उसने कपटपूर्वक ढोला का खूब सत्कार किया। ढोला उसके धोखे की बातों में आकर उसके साथ ठहर गया। ऊमर की सेना के साथ मारवणी के पीहर की एक डूमणी गायिका थी। उसने गाते हुए इशारे से मारवणी को इस धोखे और षड्यन्त्र की बात समझा दी। समझ कर मारवणी ने अपने ऊँट को जोर से छड़ी से मारा ऊँट भाग खड़ा हुआ। ढोला जब ऊँट को सम्हालने के लिए आया तब मारवणी ने उसको चुपके से षड्यन्त्र की बात कह सुनाई। झटपट दोनों ऊँट पर सवार हो गए। ऊँट पूरे वेग से दौड़ पड़ा और देखते-देखते कोसों दूर निकल गया। इस प्रकार ढोला मारवणी सहित सकुशल नरवर पहुँच गया और आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगा।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख वर्णन

मारवणी का नखशिख वर्णन रूढ़िगत परम्परा के अनुसार ही हुआ है। जैसे उसकी जाँघ केले के खम्भे के समान है, विद्रुम के समान उसके अधर

हैं, कमर सिंह के समान है, उसके लोचन तीखे हैं तथा उरोज पपीहे के समान हैं आदि।

विप्रलम्भ-शृंगार

प्रस्तुत रचना शुद्ध प्रेमाख्यान है। इसमें ढोला तथा मारवणी के संयोग-वियोग के बीच की विविध परिस्थितियों, प्रसंगों, मनः स्थितियों का चित्रण है। किन्तु विप्रलम्भ शृङ्गार की नाना मनोवैज्ञानिक दशाओं का स्फुरण इसमें विशेष-रूप से हुआ है। संयोग-शृङ्गार गौण-सा है। इस रचना का विप्रलम्भ शृङ्गार दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। मारवणी की वियोग अवस्था और मालवणी का ढोला के चले जाने के उपरान्त विरहजन्य चित्रण। दोनों ही वर्णन सरस और मार्मिक है।

मारवणी के विरह को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया गया है। मारवणी ने ढोला को देखा नहीं था किन्तु यौवनावस्था में किसी अज्ञात पीड़ा से वह दुखी रहती थी। एक दिन सिर हथेली पर रखे हुए प्रेम-रस में निमग्न मुग्धा मारवणी विरह कालीन मेघों की थाह ले रही थी। उसकी इस दशा पर सखियों ने उससे पूछा कि तुमने प्रिय को देखा नहीं फिर किस प्रकार तुम प्रेम के तत्व को जान सकी। मारवणी ने इसका बड़ा मार्मिक उत्तर देते हुए कहा कि जो जिसका जीवन है वह उसके तन में बसता है। पयोधरों में से बालक दूध की धाराओं को जो उसका जीवन है किस प्रकार निकाल लेता है।

"जो जीवण चिन्हां तणां तन ही माहि बसन्त।
धारइ दूध पयोहरे बालक किम काढंत॥"

इसलिये सच्चा प्रेमी समुद्र पार होने पर भी हृदय में बसता है और कपट-सनेही घर के आंगन में रहते हुए भी मानो समुद्र के पार रहता है। तब उसे सखियों ने बताया कि जिसे तुम स्वप्न में देखती रहती हो वही तुम्हारा पति साल्हकुमार है। इसे सुनने के उपरान्त उसमें काम जाग्रत हो उठा और वह विरह में व्याकुल रहने लगी। विरहणी मारवणी पपीहे से प्रार्थना करती है कि ऐ पपीहे पहाड़ी पर चढ़ या सरोवर की ऊँचाई पर चढ़ कर बोल जिसमें मेघों की गर्जना सुनकर प्रियतम कहीं लौट न जाएँ। उसके कानों में पिउ-पिउ की रट की पुकार पड़े जिसमें उसे मेरी याद आ जाए। ऐसा न हो कि तेरी आवाज न सुन कर मेरी दशा को भूल कर वह पावस ऋतु में मालवणी के पास लौट जाए। कितनी मार्मिक है यह प्रार्थना—

"बाबहिया, चढ़ि डूंगरे, चढ़ि उचहरी पाज।
मतही साहिब बाहुड़इ, सुणि मेंहारी गाज॥"

किन्तु विरह में कभी एक ही वस्तु प्रिय लगती है तो दूसरे ही समय उन्मनावस्था के कारण वही बुरी लगने लगती है। वही पपीहा जिससे प्रियतम को बुलाने की प्रार्थना की गई थी बुरा लगने लगा। पिउ-पिउ की रट को विरहणी न सहन कर सकेगी। स्त्री सुलभ ईर्षा से जल कर वह कह उठती है, 'हे नीले पंखों वाले पपीहें तू नमक लगाकर मुझे क्यों काट रहा है। पिउ मेरा है और मैं पिउ की हूँ।

बाबहिया निल पंखिया, बाढ़त दइ दइ लूण।
प्रिउ मेरा मई प्रिउ की, तू प्रिउ कहइ सकूण॥'

यह जनुश्रुति है कि प्रातःकाल जब कौआ किसी की अटारी पर बोलता है तो कोई पहुना अवश्य आता है। इसलिये किसी की अटारी पर कौवे को बोलता सुनकर मारवणी कितनी मार्मिक प्रार्थना करती है, हे काग यदि तू मुझे मेरे प्रियतम से मिला दे तो मैं तुझे बधाइयाँ दूंगी और अपना कलेजा निकालकर तुझे भोजन कराउंगी। प्रेम की पराकाष्ठा का इतना सुन्दर उदाहरण अन्यथा मिलना दुर्लभ है।

"कउआ दिऊ बधाइयाँ प्रीतम मेलइ मुज्झ।
काढ़ि कदेजउ आपणउ भोजन दिउली तुज्झ॥"

डाढ़ियों को दिए हुए सन्देश में मारवणी का स्पंदित होता हुआ हृदय परिलक्षित होता है। उसकी वेदना, स्तुति, मनुहार, खीझ और बेबसी जैसे इस संदेश में समाहित हो गई है। संदेश देती हुई मारवणी की दशा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि वह एक सन्देश को कहती है, बदलती है फिर कहती है, कहकर फिर बदल देती है। इस प्रकार वह प्रियतमा विलास करती हुई ढाढ़ी के हाथ सदेश भेज रही है।

'भरइ, पलट्टइ, भी भरइ, भी भरि, भी पलटेहि।
ढाढ़ी हाथ संदेसड़ा धण विकलंती देहि॥'

कितना मनोवैज्ञानिक है यह चित्रण, विरह-विह्वला मारवणी चाहती है कि उसके एक संदेश पर प्रियतम भागा हुआ चला आए। इसलिए वह मार्मिक से मार्मिक संदेश कहलाना चाहती है। अपनी पहली उक्ति पर उसे विश्वास नहीं आता कि वह प्रियतम के हृदय को द्रवित कर सकेगा इसलिए उसे बदल कर दूसरा कहती है, किन्तु दूसरे ही क्षण उसे भी बदल डालती है। एक विरहणी की इस मनोदशा का बड़ा सुन्दर वर्णन इस अंश में प्राप्त होता है। इस अवस्था में उसके द्वारा भेजे गये संदेश में तारतम्य न होकर एक विशृंखलता है जो अश्रु के एक एक बूँद की तरह विरल होते हुए भी करुणा से परिप्लावित और वेदना की ऊष्मा से तप्त हैं।

इस संदेश में कुछ उक्तियाँ ऐसी भी हैं जो अन्य कवियों में भी प्राप्त होती हैं जिसका कारण हमारे विचार से यह है कि मौलिक, परम्परा का काव्य होने के कारण अज्ञात कवि पहले की सुनी हुई मार्मिक उक्तियों की छाया को अपनाते गए हैं। जैसे कबीर की दो उक्तियों की छाया निम्नांकित अंश में मिलती है। विरहणी कहती है कि मैं अपने शरीर को जला दूँ जिसमें उसका धुँआ आकाश तक पहुँच जाय और मेरा प्रियतम बादल बन कर बरसे और बरस कर मेरी आग को बुझा दे।

'यह तन जारि मसि करूँ धुआँ जाहि सग्गरिग्ग।
मुझ प्रिय बद्दल होई करि, बरसि बुझावइ अग्गि॥'

ऐसे ही दूसरे स्थान पर विरहणी कहती है कि कितने ही सदेश प्रियतम को भेजे किन्तु उसका कोई उत्तर न आया। आँखे राह तकते-तकते पथरा गईं। इसलिए वह खिजला गई और कहती है कि 'हे प्रियतम क्या तुम्हारे पास कागज नहीं है या स्याही नहीं है या लिखते हुए आलस होता है, या उस देश में सदेश बड़े मूल्य पर बिकते हैं, इसलिए तुम उन्हें भेज नहीं सकते।

'कागल नहीं, कमसि नहीं, लिखतां आलस थाइ।
कह उण देस संदेसड़ा, मोलइ बड़इ बिकाइ॥'

विरह में करुणा के उद्रेक के कारण हृदय की कोमलता पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। प्रत्येक दुखी प्राणी के प्रति सहानुभूति जाग्रत हो उठती है। इसीलिए मालवणी चन्द्रमा को सम्बोधित कर पूछती है कि हे चन्द्रमा मुझे तो विधाता ने खण्डित किया है किन्तु तुझे किसने खण्डित किया। तू तो फिर भी पूर्णिमा को पूर्ण होकर उगेगा परन्तु मैं सम्भवतः आगामी जन्म में ही प्रियतम का संयोग पाकर पूर्ण हो सकूंगी। मेरा दुख तुझसे भी घना और दीर्घकालीन है।

'चन्दा तो किण खंड्यिउ मो खंडि किरतार।
पूनिम पूरउ ऊगसी आवंतइ अवतार॥'

प्रियतम का संयोग, उसका स्पर्श तथा उसकी सेवा करने का संयोग अगर स्थावर प्रकृति में रूपान्तरित हो जाने पर भी सुलभ हो तो विरहणी मानव शरीर से उसे अधिक श्रेयस्कर समझती है इसीलिए मालवणी विधाता को उलहना देती हुई कहती है कि हे विधाता तू ने मुझे मरुदेश के रेतीले स्थल के बीच में बबूल क्यों नहीं बनाया, जिससे कि पूगल जाते हुए मेरे प्रियतम छड़ी काटते और मैं उनके हाथों का स्पर्श फल पाती।

'बावलि कांइ न सिरजियां मारू मंझ थलांह।
प्रीतम बाढ़त कांपड़ी फल सेवत करांह॥'

इस प्रकार मारवणी और मालवणी के वियोग वर्णन में हृदय की सच्ची अनुभूति मिलती है। इन वर्णनों में मनोवैज्ञानिकता के साथ सादगी और स्वाभाविकता है। अन्य कवियों की तरह ऊहात्मक शैली का प्रयोग नहीं मिलता और न 'कबाबे शीख' और रक्त आँसुओं के ही दर्शन होते हैं, जो विदेशी प्रभाव के कारण कभी-कभी जुगुप्सा मूलक बन जाते हैं। भारतीय नारी के प्रेम की अनन्यता, आत्मसमर्पण की विशालता एवं स्थानीय वातावरण का जीता जागता चित्र एक-एक दूहे में प्रस्फुटित हो उठा है। वर्णन की यह सीधी सच्ची शैली अन्य कवियों में कठिनाई से मिलती है।

संयोग-शृङ्गार

सयोग-शृंगार मारवणी के मिलन में अंकित किया गया है। यह छोटा है किन्तु है प्रभावोत्पादक। इसमें रति का वर्णन ही विशेष प्राप्त होता है लेकिन वह अमर्यादित नहीं है। प्रसंगानुकूल कवि ने मर्यादा की रक्षा के लिये संकेत से ही काम लिया है केवल एक दूहे में यह सकेत कुछ अधिक मुखरित है।

ढोला के आने पर मारवणी के अनुभवों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उसके नेत्र अधर तथा शरीर, नाभि-मंडल आदि प्रिय-मिलन की आशा से फड़क रहे थे।

आशा-लुब्ध प्रेयसी ने गले से कंचुकी उतार दी, उस समय उसके कुच-युग्म मानसरोवर को भूल कर मारवणी के सौन्दर्य-सरोवर में तैरते हुए दो हसों के समान सुशोभित हो रहे थे।

> 'आसा लूँध उतारियउ धण कुचुवउ गलांह।
> घूमइ पड़िया हँसड़ा भूला मांनसरांह॥'

फिर दोनों मदमत्त प्रेमी सेज की ओर चले। उसके बाद कवि ने रति का सीधा वर्णन किया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि हम ढोला मारू को विप्रलंभ शृङ्गार-प्रधान काव्य कह सकते हैं। संयोग सम्बन्धी कुछ इने गिने दोहें ही इसमें प्राप्त होते हैं।

प्रकृति-चित्रण और स्थानीय चित्र

इस काव्य के प्रकृति वर्णन में जहाँ हमें प्रकृति का आलम्बन रूप देखने को मिलता है वहीं स्थानीय चित्र (local colour) भी बड़ी सुन्दरता से अंकित किए गए हैं वर्षा-ऋतु में अपने प्रियतम को पूगल जाने से रोकती हुई मारवणी कहती है कि प्रियतम, स्थल-स्थल पर जादूगरनी बदलियाँ छाई हुई हैं। वे मेंह बरसने से सूख जाती हैं और लू से फिर हरी-भरी हो जाती हैं, नदियाँ,

नाले और झरने भरपूर चढ़े हुए हैं, कहीं ऊँट कीचड़ में फिसल न जाए, हे पथिक पूगल बहुत दूर है। पूगल के पथ पर नाले, नदियाँ, झरने आदि पड़ते हैं, वहाँ का पथ बरसात में बड़ा कठिन हो जाता है। इस व्यंजना के साथ-साथ वर्षा-ऋतु में पृथ्वीतल की जो दशा हो जाती है, उसका सीधा-सादा चित्र इन पंक्तियों में अङ्कित हो गया है[1]।

वर्षा-ऋतु में मारवाड़ की वर्षाकालीन शोभा का वर्णन करता हुआ ढोला कहता है कि वर्षा के कारण बाजरे के खेत हरे हो गए हैं, उनके बीच-बीच में बेला फूल रहा है, यदि यह मेंह भादों भर बरसता रहा तो मारू देश बड़ा सुन्दर हो जायगा। मारू देश में उत्पन्न होने वाले बाजरे के अतिरिक्त वर्षा-ऋतु में खेतों की हरिताभा और बेला के फूलने के कारण उस देश को प्राकृतिक-सुषमा का चित्र कितना सुन्दर बन पड़ा है[2]।

मालवणी और मारवणी के वाद-विवाद में मालवा और मारवाड़ के जो चित्र आए हैं उनमें दोनों स्थानों के प्राकृतिक एवं भौगोलिक वातावरण के अतिरिक्त देशवासियों के स्वरूप तथा उनके रहन-सहन के ढंग का भी अच्छा चित्रण मिलता है। मारवणी अपने देश की प्रशंसा करती हुई कहती है कि जिन्होंने मारू देश में जन्म लिया है, उन महिलाओं के दाँत अत्यन्त उज्ज्वल होते हैं। वे 'कुंभ' के बच्चों के समान गौरांगी होती है। उनके नेत्र खंजन के समान होते हैं। मरुस्थल बड़ा ही सुहावना देश है। वहाँ का जल स्वास्थ्यप्रद और लोग मधुर भाषी होते हैं। मारू देश की कामिनी दक्षिण देश में यदि भगवान ही दे तो मिल सकती है। वहाँ की भूमि बालुकामय होने से भूरी है, बन झंखाड़ हैं, वहाँ चंपा नहीं उत्पन्न होता, कुओं में पानी इतना गहरा है कि ऊपर से तारे की तरह नीचे चमकता दिखाई पड़ता है।

इसी प्रकार मालवणी के द्वारा मारवाड़ की बुराई में मारवाड़ के रहन-सहन का चित्र प्राप्त होता है। जैसे—'हे बाबा ऐसा देश जला दूँ जहाँ पानी गहरे

---

१. 'प्रीतम कामण गारियाँ थल-थल बादलियाँह।
वर बसते सूफियाँ लू सूं पाणुरियाँह॥

\+ \+ \+

२. 'बाजरियां हरियालियां बिच-बिच बेला फूल।
जउ भरि बूढ़उ भाद्रवह मारू देश अमूल॥'

\+ \+ \+

कूओं में मिलता है, जहाँ पर कूओं से पानी निकालने वाले, आधी रात को ही पुकारने लगते हैं, जैसे मनुष्यों के मर जाने पर। हे बाबा, मुझे मारवाड़ियों के यहाँ मत ब्याहना जो सीधे-सादे पशुओं को चराने वाले होते हैं। वहाँ कंधे पर कुल्हाड़ और सिर पर घड़ा रखना होगा। वहाँ दिन भर हाथ में कटोरा और सिर पर घड़ा रखे पानी भरते-भरते मर जाऊँगी'।

'हे मारवणी तुम्हारे देश में एक भी कष्ट दूर नहीं होता। या तो ऊचाला (अकाल में विदेश गमन) या अवर्षा या फाका या टिड्डियाँ कोई न कोई अनर्थ अवश्य होता रहता है। जिस मारवाण देश में भूमि में पीने वाले साँप और करील तथा ऊँट कटार ही पेड़ों की गिनती में आते है, जहाँ आक और फोग की ही छाया मिलती है और भुरट घास के दानों से ही पेट भरना पड़ता है। जहाँ पहनने और ओढ़ने को ऊनी कंबल ही मिलते है, जहाँ पानी साठ पुर्स गहरा मिलता है, लोग भी जहाँ एक जगह टिक कर नहीं रहते और जहाँ बकरी और भेड़ का ही दूध पीने को मिलता है ऐसा तुम्हारा मारवाड़ देश है।

छंद

प्रस्तुत-रचना दोहा छन्द में प्रणीत है।

अलंकार

अधिकतर कवि ने कवि-परम्परा के अनुसरण पर सादृश्यमूलक-कवि-समय-सिद्ध उपमा अलंकार का प्रयोग किया है किन्तु बीच बीच में मौलिक तथा नूतन उद्भावनाएँ भी प्राप्त होती हैं। एक स्थान पर मारवणी ने अपने को बंजारे की

---

१. मारु देस उपन्नियाँ तांह का दंत सुसेत।
कूझ बचाँ गोरंगियाँ जेहा नेत।
\+ \+ \+
बाळू बाबा देसड़ा पाँणी जिहाँ कुवाँह।
आधी रात कुहकड़ा ज्यउँ माणसाँ मुयाँह॥
(ढोला मारू रा दूहा)

२. मारू थाँके देसड़े एक न भाजै रिड्ड।
ऊचालो का अवरसणों फाको का टिड्ड॥
पहरण ओढण कामळा साठे पुर से नीर।
अपण लोक उभांखरा गाडर छाली खीर॥
(ढोला मारू'')

भट्टी से समानता दी है। यह उक्ति ठेठ ग्रामीण उपमा के साथ-साथ संवेदनात्मक अप्रस्तुत विधान का बड़ा सुन्दर आयोजन है[1]।

भाषा

भाषा की दृष्टि से यह काव्य महत्वपूर्ण है। वीसलदेव रासो एवं पृथ्वीराज-रासो में साहित्यिक भाषा का प्रयोग मिलता है किन्तु इसकी भाषा चलती हुई राजस्थानी है। इस सीधी-सादी अलंकृत भाषा में भाव ग्रहण करने की अद्वितीय शक्ति परिलक्षित होती है जो मर्मस्पर्शी है।

---

१ 'हे कुलाणी कंत विण जह बिहूणी बेल।
विण जाणी भाइ जिउँ गया धुकँती मेल्ह॥'

बेलि क्रिस्न रुक्मिणी री

पृथ्वीराज कृत ।
रचनाकाल सं० १६४७

कवि-परिचय

महाराज पृथ्वीराज का जन्म मिति मार्गशीर्ष कृष्ण १ संवत् १६०६ को हुआ । ये महाराज रायसिंह जी बीकानेर नरेश के छोटे भाई तथा राव कल्याण-मल जी के पुत्र थे । बालपन से ही विद्याव्यसनी, शूरवीर, एवं धर्मनिष्ठ थे । इनके वैयक्तिक चरित्र के विषय में विवेचना करते हुए हम कह सकते हैं कि ये अद्वितीय शूरवीर और स्वाभिमानी थे । जो व्यक्ति समस्त भारत की शक्तियों को नतमस्तक करने वाले मुगल साम्राज्य की शक्ति के अधिकृत रहते हुए भी अपनी और अपने देश की स्वतंत्रता की कल्पना कर सके उसके शौर्य में किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकता । महाराणा प्रताप को उनके द्वारा भेजा हुआ पत्र इस बात का प्रमाण है ।

महाराज पृथ्वीराज उच्च कोटि के विद्वान थे । इस बात का प्रमाण उनकी कविता के गम्भीर भावों में मिलता है । उनकी बेलि से पता चलता है कि उन्हें संस्कृत साहित्य और काव्य, भारतीय दर्शनशास्त्र, ज्योतिष, छन्द, सङ्गीतशास्त्र, कला इत्यादि अनेक भारतीय शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था । वे उत्कृष्ट भक्तों की श्रेणी में गिने जाते थे । नाभा जी के भक्तमाल में इनके भक्तिपूर्ण काव्य के विषय में लिखा है—

'ये कृष्ण के भक्त थे, इन्हें पिंगल शास्त्र का ज्ञान था और ये अच्छे कवि थे[1] ।' इसी प्रकार कर्नल टाड ने इनके व्यक्तित्व के संबंध में लिखा है कि पृथ्वीराज अपने समय के क्षत्रियों में एक श्रेष्ठ वीर थे । वे पाश्चात्य "ट्रूवैडार"

---

१. 'सवैया, गीत, श्लोक, दोहा गुण, नवरस ।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विध गायो हरिजस ।
परि दुख विदुष सश्लाध्य वचन रसना जु उचारे ।
अर्थ विचित्रन मोल सबै सागर उद्धारे ।

वीर कवियों की तरह, अपनी ओजस्विनी कविता से मनुष्यों के हृदय की स्फूर्ति और प्रोत्साहित कर सकते थे, तथा आवश्यकता पडने पर हाथ में तलवार लेकर उत्साह और उत्तेजना पूर्वक रणक्षेत्र में डट सकते थे'[1]।

प्रसिद्ध टीकाकार तथा गवेषक एल, पी. टैसीटरी ने महाराज पृथ्वीराज के काव्य-गुणों का विवेचन करते हुए उनको डिंगलकाव्य के होरेस कवि के सदृश कहा है। उनके काव्य 'बेलि' में उत्साह, अदम्य ओज और प्रासाद गुण, स्फूर्ति, प्रवाह और अलंकार योजना एवं भाव गाम्भीर्य के कारण उसे हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों में उत्कृष्ट स्थान दिया जा सकता है।

कथावस्तु

बेलि की कथावस्तु साधारणतः भागवत की मूल कथा के आधार पर ही आश्रित है किन्तु स्थान-स्थान पर कवि ने कथातन्त्र को अपनी कल्पना से रंग कर परिवर्तित कर दिया है। जैसे भागवत में रुक्मिणी ने कृष्ण के पास ब्राह्मण को केवल मौखिक संवाद ही लेकर भेजा है लेकिन इस काव्य में ब्राह्मण मौखिक संवाद के अतिरिक्त एक पत्र भी ले जाता है। इस पत्र में एक भक्त के हृदय के उद्गार गुम्फित किए गए हैं। रुक्मिणीहरण के उपरान्त जो युद्ध-वर्णन है वह भागवत के उल्लेख से विशेष समता नहीं रखता इसी प्रकार प्रेयसी रुक्मिणी के अनुरोध से भगवान् के प्रसन्न होकर रुक्म के मुड़े सर पर हाथ फेरने से केशों के पुनः निकल आने का वर्णन भी स्वतन्त्र है।

कहा जाता है कि महाराज पृथ्वीराज ने कृष्णभक्ति से अभिभूत होकर उनकी लीला के लिए इसकी रचना की थी। यह सत्य है कि इस रचना की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है। रुक्मिणी द्वारा कृष्ण को प्रेषित पत्र में आत्मा को परमात्मा से, उसके उद्धार की याचना के साथ एक भक्त के हृदय का अपने आराध्य देव के प्रति उद्गार मिलता है, फिर भी सम्पूर्ण रचना शृङ्गार-प्रधान

रुक्मिणी लता वरणन अनुप वागाश वदन कल्याण सुव।
नरदेव उभय भाषा निपुण पृथीराज कविराज हुव॥
(भक्तमाल)

—नाभादास

1. "Prithviraj was one of the most gallant chieftains of the age and like Troubadour princes of the west, could grace a cause with the soul-inspiiing effusion of the Muse as, well as aid it with the sword. ...."

काव्य है। रुक्मिणी के वयःसन्धि के चित्रण में, नखशिख-वर्णन में एवं प्रथम समागम से डरने वाली रुक्मिणी की चेष्टाओं तथा सुरतान्त के चित्रों के अंकन में रीतिकालीन-प्रेम व्यंजना-पद्धति की स्पष्ट छाया मिलती है।

इसके अतिरिक्त कवि ने अपने काव्य में साहित्यिक सौष्ठव लाने का अथक परिश्रम किया है। उसके शब्द विन्यास, अलंकार-विधान और भावाभिव्यंजना की शैली में कलात्मकता की गहरी छाप है, जो इस बात का प्रमाण है कि उसने प्रत्येक शब्द को तौल-तौल कर रखने का प्रयास किया है।

बेलि का प्रकृति-चित्रण हिन्दी साहित्य के सर्व सुन्दर चित्रणों में से एक कहा जाता है। इसकी तुलना कवि-सम्राट कालिदास के ऋतुसंहार से की जा सकती हैं।

हिन्दी प्रेमाख्यानों में इस रचना का नाम अग्रगण्य रचनाओं में लिया जा सकता है और राजस्थानी के प्राप्य ग्रन्थों में तो यह सर्वोत्कृष्ट कारण है।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख-वर्णन

कवि की अन्तर्दृष्टि और सूक्ष्म अवलोकन शक्ति का परिचय हमें रुक्मिणी के शैशव वर्णन और वयःसन्धि के चित्रण में मिलता है। बालिका रुक्मिणी शैशवावस्था में सुमेरगिरि पर सद्य. प्रस्फुटित दो पत्तों वाली स्वर्णलता के समान सुशोभित थी। इस उपमा में जहाँ एक ओर प्रकृति निरीक्षण की पैनी दृष्टि है वहाँ दूसरी ओर बेलि के शीर्षक की यथार्थता और उपयुक्तता की पुष्टि मिलती है।

वयःसन्धि के वर्णन में उपमा का संयोजन, स्थूल से सूक्ष्म की ओर विशेष उन्मुख है। सुषुप्ति, स्वप्न और जागृति के बीच निरखती हुई चेतना का साम्य सुन्दरी के अङ्गों के क्रमिक विकास के साथ इतने सुचारु रूप से संघटित किया गया है कि अन्य कवियों में मिलना दुर्लभ है। मनोविज्ञान की अन्तर्दशाओं के द्वारा अंकित शब्दचित्र अद्वितीय और अनुपम बन पड़े हैं। जिस प्रकार सुषुप्तावस्था में पदार्थज्ञान का लोप रहता है वैसे ही बाल्यावस्था के समय रुक्मिणी के शरीर में यौवन लुप्त था परन्तु वयःसन्धि में प्रवेश करते ही यौवन भी सुषुप्ति से स्वप्नावस्था में जा पहुँचा। स्वप्नावस्था में पदार्थज्ञान का न तो सर्वथा लोप ही रहता है और न पूर्व ज्ञान ही वैसे ही वयःसन्धि की अवस्था में पदार्पण करते ही रुक्मिणी के शरीर में यौवन भ। कुछ-कुछ अपनी झलक दिखाने लगा जो न स्पष्ट ही था न पूर्ण अस्पष्ट ही। किन्तु वयःसन्धि से ज्यों-

ज्यों रुक्मिणी निकलती जाती थी त्यों-त्यों उसके शरीर में यौवन का रंग-रंग स्पष्ट होता जाता था, जिस प्रकार स्वप्नावस्था का अन्त होकर धीरे-धीरे पदार्थ ज्ञान भी अधिकाधिक स्पष्ट होता जाता है।

कपोलों पर यौवन की अरुणिमा और अंबर में झांकती हुई उषा की रक्तिम आभा के साथ ऋषियों के निद्रितावस्था से पूजन के लिए उठने की क्रिया का साम्य, यौवन आगम पर उरोजों की उठान से सम्बद्ध कर कवि ने अपनी उर्वरा कल्पना का परिचय दिया है[1]।

यौवनावस्था का क्रमिक विकास दिखा कर कवि ने परम्परानुकूल रुक्मिणी का नखशिख वर्णन किया है, जैसे बाल्यावस्था यदि शिशिर है, तो यौवन बसन्त। इसीलिये कवि ने रुक्मिणी के शरीर रूपी उद्यान में यौवनरूपी बसन्त का बड़ा मार्मिक चित्रांकन किया है। बाल्यावस्थारूपी शिशिर को व्यतीत होता जानकर बसन्त अपने परिवार के साथ गुण, गति, मति आदि को लेकर आ गया। इस यौवन रूपी बसन्त में रुक्मिणी का अवयव समूह ही स्वच्छ पुष्पित हुआ वन है, नेत्र ही कमलदल हैं, सुहावना स्वर ही कोयल का कंठ-स्वर है और पलक रूपी पांखों को सँवार कर भौंह रूपी भ्रमर उड़ने लगे हैं[2]।

---

१. सैसव तनि सुख पति जोवण ग जाग्रति,
वेस सन्धि सुहिया सुवरि।
हिव पल पल चढ़तो जि होइ से,
प्रथम ज्ञान एहवी परि॥

+ + +

पहिलै मुख राग प्रगट ज्यों प्राची।
अरुण कि अरुणोद अम्बर।
पेखे किरि जगिया पयोहर।
संझा बन्दण रिसेखर।'

२. 'सैसव सु वु सिसिर वितीत थयौ सहु।
गुण गति मति अति एक गिणि॥
आय तणौ परिग्रह ले आयौ।
तरुण पौ रितु राउ तिणि॥
दल फूलि विमल वन नयन कमलदल।
कोकिल कंठ सुहाइ सर॥
पांपणि पंख सँवारि नवी परि, भूहारे भमिया भमर॥' (बेलि...)

उसका अंग ही मलयागिरि है, मन में उमंग रूपी मंजरी निकल रही है। कामदेव के नव प्रस्फुटित अंकुर स्वरूप कुच ही मलय तरु की कलियां हैं। उसकी ऊर्ध्व श्वांस ही मलय समीर है और स्वासोच्छ्वास को ही शीतल मन्द सुगन्ध मलयज समीर कहना चाहिए।

इनके अतिरिक्त परम्परागत उपमानों का प्रयोग भी हमें नखसिख वर्णन में मिलता है। जैसे यौवन की नई आन-बान को वर्णित करता हुआ कवि कहता है कि कामिनी के कठिन कुच मानों हाथी के कुम्भस्थल हैं, उनके ऊपर की सघन श्यामता मानों यौवनरूपी मस्त हाथी का मद है। अथवा कठिन सुन्दर परिपूर्ण पयोधर सुमेर गिरि के शिखर हैं। कटि बहुत ही पतली और सुघड़ है। उनकी छियोचित नाभि प्रयाग के समान है और त्रिवली त्रिवेणी तथा नितम्ब किनारों के समान हैं[1]।

उसके पद पल्लव के ऊपर नखों की शोभा निर्मल कमलदल के ऊपर जल कण के समान है अथवा वह रत्नों का तेज है अथवा तारों का प्रकाश या बाल सूर्य है या बालचन्द्र है अथवा हीरे हैं।

अम्बिका पूजन हेतु जाती हुई रुक्मिणी के शृंगार के वर्णन में नखशिख से अधिक लालित्य और सरसता मिलती है। यथा रुक्मिणी ने गुलाब जल से स्नान करने के उपरान्त श्वेत परिधान पहिना है और उसकी लटों से जल कण

---

1. मलयाचल सुतनु मलै मन मोरे।
कली की काम अंकुर कुच॥
चणौं दखिणि दिसि दीखण त्रिगुण में।
ऊरध सास समीर उच॥'

\+ + +

कामिणि कुच कठिन कपोल करी किरी।
वेस नवी विधि वाणि बखाणि॥
अतिस्यामता विराजति ऊपरि।
जोबण दाण दिखालिया जाणि॥'

\+ + +

घर-घर शृंग सुघर सुपीन पयोधर।
घणी खीण कटि अति सुघर॥
पदमणि नाभि प्रयाग तणी परि।
त्रिवली त्रिवेणी सोणि तट॥

टपक रहे हैं। उसके केश-कलाप से टपकते हुए जल-विन्दु ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो काले रेशम के टूट जाने पर उसमें गुथे हुए मोती जल्दी-जल्दी गिर रहे हों। उसके कण्ठ में बँधी हुई काली रेशम की डोर देखकर कण्ठ को कपोत कहा जाय या नीलकण्ठ कहा जाय या उसे जमुना से परिवेष्ठित हिमालय कहा जाय, या यह कहा जाय कि शंख को विष्णु ने एक अंगुली से पकड रखा है और वही अंगुली इस प्रकार सुशोभित हो रही है'[1]।

कहने का तात्पर्य यह है कि रुक्मिणी के नखशिख वर्णन में कविवर पृथ्वी-राज ने उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं एवं सन्देह अलङ्कारों की बड़ी सुन्दर योजना की है। उन्होंने परम्परागत उपमाओं के प्रयोग में भी अद्भुत लालित्य उत्पन्न कर दिया है। वेलि को पढ़कर कालिदास के काव्य का स्मरण हो जाता है।

संयोग-शृंगार

जहाँ हमें रुक्मिणी के सौंदर्य-वर्णन में लालित्य के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक क्रिया-व्यापारों का परिचय उपमानों के रूप में मिलता है, वहाँ सयोगपक्ष में पति-पत्नी के हृदय में उद्वेलित होनेवाली भावनाओं और अनुभवों का परिचय भी उसी शैली में प्राप्त होता है।

सन्ध्या का समय है, प्रिय समागम की बेला ज्यो-ज्यों समीप आती जाती है, त्यों-त्यों रुक्मिणी संकुचित होती जाती है। इस मनोवैज्ञानिक अनुभूति का साम्य कवि ने प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों से किया है। जिस प्रकार सन्ध्या समय में पथिक वधू की दृष्टि, पक्षियों के पंख, कमल की पंखुड़ियाँ और सूर्य की किरणों का प्रकाश संकुचित होने लगता है, उसी प्रकार रति को चाहती हुई रमणी श्री रुक्मिणी लज्जा से संकुचित हो रही हैं। एक ओर रमणी सुलभ लज्जा और सकोच और दूसरी ओर कृष्ण की प्रिय-मिलन की उत्सुकता का मनोवैज्ञा-

---

१. "ऊपरि पद पलव पुनर्भव ओपति
त्रिमल कमलदल ऊपरि नीर॥
तेज कि रतन कि तार की तारा
हरि हंस सावक ससिहर हीर॥
× + +
कुम कुमै मंजण करि धौत बसन धरि
विहुरे जल लागौ चुवण।
छीणे जाणि छछोहा छूटा
गुण मोती मखतूल गुण॥

निक शाब्दिक चित्र अनुपम और अति सुन्दर बन पड़ा है। रुक्मिणी की भावना के प्रतिकूल कृष्ण की मनोवस्था का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि निशाभिमुख में जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणें, व्यभिचारिणी, अभिसारिका और निशाचरों की दृष्टि दौड़ने लगती है (विस्तार को प्राप्त होती है) उसी प्रकार अपनी स्त्री का मुख देखने के लिए अतीव आतुर, पति श्रीकृष्ण ने बड़ी प्रतीक्षा के उपरान्त रात्रि का मुख देखा। इसी प्रकार सकुचती, ठिठकती सखियों का सहारा लिए कृष्ण से मिलने जाती हुई रुक्मिणी का शब्द-चित्र बड़ा अनूठा-बन पड़ा है। कवि कहता है कि पग-पग पर सखियों का हाथ पकड़ कर खड़ी होती हुई गजगामिनी लज्जारूपी लोहे के लंगरों से बँधे हुए मदोन्मत्त हाथी के समान लाई गई। संयोग-वर्णन में रति का सीधा वर्णन अन्य कवियों की तरह इस कवि ने नहीं किया है, वरन् उसका संकेत करता हुआ कवि कहता है कि एकान्त में होनेवाली क्रीड़ा का आरम्भ हुआ जिसे किसी देवता अथवा ऋषि-मुनि ने भी नहीं देखा। अनदेखी और अनसुनी बात किस प्रकार कही जाय उस सुभ को जानने वाले कृष्ण और रुक्मिणी ही हैं।

सस्कृत कवियों की परिपाटी के अनुसार कवि सुरतान्त वर्णन करता हुआ कहता है, कि रुक्मिणी के ललाट पर पसीने के कणों में कुंकुम का विन्दु ऐसा सुशोभित हो रहा है मानों कामदेव-रूपी कारीगर ने स्वर्णमय हीरे जड़ कर बीच में माणिक लगा दिया है। रुक्मिणी सरोवर में गजेन्द्र क्रीड़ा के द्वारा मलिन हुई कमलिनी के समान शय्या पर सुशोभित हो रही है[1]।

वीर-रस

कवि-कुल-कमल पृथ्वीराज की 'बेलि' के शृङ्गार वर्णन में जहाँ कोमल कल्पना, भावानुभूति की अनूठी व्यंजना तथा संचारियों का लालित्य प्राप्त होता

---

1. 'संकुलित सम समा सन्ध्या समये'
   रति वंछिति रुषमणि रमणि।
   पथिक वधू द्रिठि पंख पंखियाँ
   कमल पत्र सूरिज किरणि।

   + + +

   पति अति आतुर त्रिया मुख पेखण
   निसा तणौ मुख दीठ नीठ।
   चंद्र किरण कुलटा सुनि साचर
   द्रवहित अभिसारिका द्रिठ॥

है, वहीं युद्ध वर्णन में कवि की भाषा विषयानुकूल तथा ओज गुण से ओतप्रोत है। इस प्रकार इस काव्य में वीर और शृंगार-रस का संमिश्रण बड़ा सुन्दर और प्रभावोत्पादक बन पड़ा है।[१]

कृष्ण और शिशुपाल की सेना के युद्ध-वर्णन में वर्षा का रूपक अद्वितीय है। दो काली घटाओं के समान दोनों सैन्यदल आ जुटे और युद्ध में रक्त बरसने के आसार जान कर दोनों ओर से योगिनियाँ आईं। ऐसा मालूम होता था मानों वर्षा सूचक दोनों ओर से योग जुट आए हैं भाले रूपी सूर्य किरण युद्ध में सन्तप्त होकर चमचमाने लगीं। दोनों दल पास से युद्ध करने लगे। बाण चलने बन्द हो गए मानों वायु का चलना बन्द हो गया और सैनिकों के शरीर पर तलवारों की धारें चमकने लगीं, मानों शिखर-शिखर पर बिजलियाँ चमक रही थीं।

इस भयानक युद्ध में वीभत्समय वातावरण चारों ओर दिखाई पड़ता है। युद्धस्थली में लम्बी-लम्बी चोटियों वाली चौंसठ योगिनियाँ कूद रही थीं, शिरों के कट-कट कर गिरने पर धड़ उकसते थे, बलराम और शिशुपाल ने शस्त्र प्रहार की झड़ी लगा रखी थी। बहुत से हाथों से मुंड कट-कट कर गिर रहे थे, जिससे रक्त की नदी बह चली थी और उसमें बुलबुलों के समान योगिनियों के खप्पर बह चले थे[१]।

अवलंबि सखी कर पगि पगि ऊभी
रहती मद बहती रमणि।
लाज लोह लंगरे लगाए
गय जिम आणी गय गमणि॥
× × ×
एकांत उचित क्रीड़ा चौ आरंभ……'
(बेलि)

१. 'कठठी वे घटा करे कालाहणि
समुहे आमहो सामुहे।
जोगिणि आवी आडग जाणे
बरसै रत वेपुड़ी बहै॥
× × ×
कलकलिया कुन्त किरण कलिऊकलि,
वरजित विसिख विवरजित वाउ।

भाषा

वेलि की भाषा साहित्यिक डिंगल है।

अलङ्कार

कवि ने उपमा और उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलङ्कारों का प्रयोग किया है। कवि की हेतुत्प्रेक्षाएँ बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं, जैसे श्यामा ने क्षीण कटि पर करधनी पहन रखी है, ऐसा मालूम होता है कि भावी भाग्योदय के सूचनार्थ सब ग्रह सिंह राशि पर एकत्रित हुए हैं। इसी प्रकार कलाई पर गजरे और पहुँचियों को काले धागे में ग्रथित देखकर कवि कहता है मानों हस्त-नक्षत्र ने चन्द्रमा को वेध लिया है, अथवा भ्रमरों से घिरे हुए अर्धकमल सुशोभित हो रहे हैं। कहना न होगा कि उक्त कथन में कवि के ज्योतिष ज्ञान के अतिरिक्त उसकी असाधारण काव्य-कला का भी परिचय प्राप्त होता है।

भक्ति

पृथ्वीराज राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के अनन्य भक्त थे। वेलि को स्वयं भगवान कृष्ण ने द्वारावती जाते हुए पृथ्वीराज से सुना था। यह किंवदन्ती इस रचना के विषय में बड़ी प्रसिद्ध है।

वेलि शृङ्गार-प्रधान काव्य है किन्तु वह लौकिक प्रेम की प्रतीक न होकर एक भक्त की माधुर्य भक्ति की परिचायिका है। विषय की गहनता का परिचय देता हुआ कवि कहता है कि लक्ष्मी पति श्रीकृष्ण की कीर्ति को आदर सहित कहना जो मैंने अङ्गीकार किया है, वह मानो गूंगे ने सरस्वती से जीतने का हठपूर्वक विवाद छेड़ा है। इसलिये कि हे कमलापति कौन श्रेष्ठमतिमान है जो आपके गुणों का स्तवन कर सकता है। ऐसा कौन तैराक है जो समुद्र तैर सकता है, कौन पक्षी है जो अन्तरिक्ष तक पहुँच सकता है और कौन कङ्गाल है जो अपने हाथ मे मेरु को उठा सकता है किन्तु जिस श्री कृष्ण ने मुख में जीभ देकर संसार में जन्म दिया है और जो कृष्ण हमारा भरण-पोषण करते हैं उनका कीर्तन कहने का श्रम किए बिना कैसे बन सकता है।

धड़ि-धड़ि धवकि धार धारु जल
सिहरि-सिहरि समखै सिलाउ ॥
× × ×
चोटियाली कूदै चौसठि चाचरि
धू दलियै ऊकसै धड़ ।
अनल अनै सिसुपाल ओझड़ै
झड़ मातौ माण्डियौ झड़ ॥'—वेलि

अपनी भक्ति-भावना के मोह का संवरण न कर सकने के कारण ही कवि ने पौराणिक गाथा में परिवर्तन कर ब्राह्मण के द्वारा मौखिक सन्देश के अतिरिक्त चिट्ठी भी भिजवाई है। इस चिट्ठी और मौखिक सन्देश में एक भक्त की भगवान के प्रति स्तुति है या यों कहा जाय कि आत्मा को परमात्मा से उसके अनुग्रह के लिये की गई अभ्यर्थना है। रुक्मिणी ब्राह्मण से कहती है कि उनसे विधिपूर्वक कहना कि हे अशरण-शरण मैं रुक्मिणी तेरे शरण हूँ और कहना कि हे बलि को बाँधने वाले यदि मुझे कोई दूसरा ब्याहेगा तो सिंह की बलि को शिकार भक्षण करेगा, कपिला गाय कसाई जैसे पात्र के हाथ दी जायगी और मानों चाण्डाल के हाथ में तुलसी दी जायगी। इसीलिये हे हरि वाराह होकर आपने हिरण्याक्ष को मारकर पृथ्वी रूप मे मेरा पाताल से उद्धार किया था। हे करुणामय केशव कहिए उस समय आपको किसने शिक्षा दी थी।

यही नहीं हे करुणा करनेवाले हरि कौन-सी शिक्षा से आपने रामावतार के समय रावण का वध किया, समुद्र को बाँधा और लङ्का से सीता-रूप मेरा उद्धार किया। इसलिये हे नाथ अम्बिका पूजन के बहाने मैं मन्दिर में आऊँगी, तुम मेरी रक्षा करो।

---

१. कठठी वे घटा करे कालाहणि,
समुहे आमहो सामुहे।
जोगिणि आवी अडग जाने,
वरसै रत बेपुडी वहै॥

× × ×

कलकलियो कुन्त किरण कलि ऊकलि,
वरजित बिसिख विपरजित वाउ।
धड़ि धड़ि धवकि धार धारु जल,
सिहरि सिहरि समखै लाउ॥
(वीररस)

× × ×

कमलापति तणी कहेवा कीरति,
आदर करै जु आदरी।
जाणे वाद मांडियो जीपण,
वागहीन वागेसरी॥
(भक्ति)

कथा के अन्त में इसी भक्ति-भावना की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। बेलि महात्म में कवि कहता है कि जो 'बेलि' को पढ़ता है उसके कंठ में सरस्वती, घर में लक्ष्मी और मुख में शोभा विराजती है। भविष्य के लिए मुक्ति और बहुत से भोगों की प्राप्ति होती है तथा हृदय में ज्ञान और आत्मा में हरिभक्ति उत्पन्न होती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस शृङ्गार काव्य के बीच हमें कृष्ण भक्ति का वही स्वरूप दिखाई पड़ता है जो सूर अथवा अन्य अष्टछाप के कवियों एवं अन्य कृष्ण-भक्तों के शृङ्गारिक गीतों में पाया जाता है।

प्रकृति-चित्रण

बेलि का प्रकृति-चित्रण स्वतन्त्र, उद्दीपन-विभाव तथा अलंकृत शैली में विभाजित किया जा सकता है। कवि को प्रकृति के सौंदर्य-चित्रण में सांगरूपक से विशेष प्रेम दिखाई पड़ता है। ऋतुराज की महफिल में रूपक का यह रूप बहुत अधिक निखरा है। ऐश्वर्य और संपन्नता एवं राजसी वातावरण के बीच रहने वाले कवि ने राज-दरबार की महफिल का चित्रांकन बड़ी तन्मयता और चित्रात्मकता के साथ किया है।

'बलि बँधण मूंभ स्याल सिंह बलि
प्रासै जो बीजौ परणै।
कपिल धेनु दिन पात्र कसाई,
तुलसी करि चण्डाले तणै॥

\+ + +

हरि हुए बराह हुए हरिणाकस
हूँ ऊधरी पताल हूँ।
कहीं तई करुण मैं केसव
सीख दीध किण तुम्हीं सूं।

\+ + +

सरसती कंठ श्री गृही मुखि 'सोभा
भावी मुगति तिकरि भुगति।
उवरि ग्यान हरि भगति आतमा
जपै बेलि त्या ए जुगति॥'

(भक्ति)—'बेलि'

ऋतुराज बसंत अपने मंत्री कामदेव के साथ शिशिर राज का उन्मूलन कर सिंहासनारूढ़ हुए हैं। उनके स्वागत में मंगल मनाया जा रहा है। राजा ऋतु-राज पर्वत की शिलाओं रूपी सिंहासन पर मंत्री कामदेव के साथ आरूढ हैं। आम्र वृक्षों के छत्र तने हुए हैं और वायु से संचलित मंजरी के मानों चॅवर डुलाए जा रहे है।

बिखरे हुए अनारों के दाने ही मानो ऋतुराज पर न्यौछावर किए हुए रत्न हैं और पक्षियों के पंजों से नीचे हुए एवं उनकी चोंचों से विदीर्ण फलों से टपकता हुआ रस ही मानों पथ को सिंचित करने का जल है और स्वर्ग तक फैले हुए ऊँचे ताड़ के वृक्षों की सीधी पेड़ियों पर चंचल पत्ते मानों बन्सतराज की दिग्विजय के घोषणा पत्र हैं[1]। इस सज-धज के साथ बसन्त राज के सामने गायन वादन की महफिल लगी है। इस महफिल में वन ही मण्डप हैं, निर्झर ही मृदंग है, कामदेव ही उत्सव-नायक है, कोकिला गायिका है और पक्षी दर्शक गण।

उपर्युक्त आलंकारिक शैली के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण भी इस काव्य में बिखरा हुआ मिलता है, जैसे वर्षा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जोर की वर्षा होने के कारण पहाड़ों के नाले शब्दाय-मान होने लगे हैं। सघन मेघ गम्भीर शब्दों में गरजने लगा है तथा जल समुद्र में नहीं समाता और बिजली बादलों में, अथवा शरद् ऋतु के आने पर गायें दूध देने लगीं, पृथ्वी रस उगलने लगी और सरोवरों में कमलों की सुन्दर शोभा दिखाई पड़ने लगी। स्वर्ग में निवास करने वाले पितरों को भी मृत्युलोक प्यारा लगने लगा है। ग्रीष्म ऋतु में मृतवात् (बड़े वेग से चलने वाली गरम हवा) ने चल कर हरिणों को किंकर्तव्यविमूढ कर दिया है। धूल उड़ कर आकाश में

---

१. मंत्री तहाँ मयण वसत महीपति
सिला सिंहासन धर सधर॥
माथे अम्ब छत्र मंडाणा,
चलि वाइ मंजरि ढलि चमर॥
दाड़िम बीज विसतरिया दीसै,
निऊँछाँवरि नाखियाँ नग।
चरणाँ लुञ्चित खग फल चुम्बित,
मधु मुञ्चित सीचन्ति मग॥
(बेलि)

सूर्य से जा लगी है। आर्द्रा में वर्षा ने बरस कर पृथ्वी को गीली कर दिया है। गड्ढे जल से भर गए हैं और किसान उद्यम में लग गए हैं। ग्रीष्म ऋतु से व्याकुल लोग छाया चाहते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या है। सूर्य ने भी तो हिम दिशा (उत्तर दिशा) की शरण ली है और वृषराशि (वृष राशि) का आश्रय ढूंढा है[1]।

उपर्युक्त अंशों में प्रकृति के उद्दीपन विभाव का संकेत है किन्तु स्वतन्त्र उद्दीपन विभाव के रूप में मानव सापेक्ष्य अनुभूतियों के अनुकूल प्रकृति-चित्रण का स्वरूप भी इस काव्य में प्राप्त होता है, जैसे कवि कहता है कि पावस ऋतु की मूसलाधार वर्षा से पृथ्वी जल-प्लावित दिखाई पड़ती है और उसके साथ-साथ विरहिणी स्त्री के नेत्रों से अश्रुधार रुकती ही नहीं, इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में नैऋत्यकोण से चल कर झोले की बाये ने वृक्षों को झंखाड़ कर दिया और लू की लपटों ने लताओं को जला दिया। ऐसे ग्रीष्म काल में पति-स्त्रियों के कुचों का सेवन करते हैं परन्तु स्त्री-हीन पुरुष पर्वतीय झरनों का सेवन करते हैं।

प्रकृति को मानवीय भावनाओं और क्रियाकलापों से प्रेरित नायिका के रूप में चित्रित कर कवि ने उसका शृङ्गारिक वर्णन किया है। जैसे गर्जन सहित घन वर्षा, हरियाली रहित पृथ्वी पर स्थान-स्थान पर जल भरा पड़ा है, जैसे प्रथम सम्मिलन में पद्मिनी स्त्री के वस्त्र उतार लेने पर आभूषण शोभा पाते हैं।

ऐसे ही वर्षा ऋतु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि तरु-लता

---

१. बरसतै दडड नड अनड वाजिया
सघण गजियौ गुहिर सदि।
जलनिधि ही सामाइ नहीं जल
जलवाला न समाइ जलदि॥
× × ×
गोखीर श्रवति रस धारा उदगिरति
सर पोइणिए थइ सुश्री।
वली सरद श्रम लोक वासिए
पितरे ही मृत लोक प्री॥
\+ + +
ऊपड़ी धुड़ो लागी अम्बरि, खेतिए ऊजम भरिया खाड्ड।
मृगशिरा बाजि किया किंकर मृग, आद्रा बरसि कीध घर आद्र॥'
\+ + +

पल्लवित हो गए हैं, तृणों के अंकुर निकल आए हैं, पृथ्वी हरी साड़ी पहने नायिका के समान सुशोभित हो रही है। उसने नदी रूपी हार धारण कर रखा है और पैरों में दादुररूपी नूपुर स्वरित हो रहे हैं[1]।

पिछले पृष्ठों में संयोग पक्ष की आलोचना करते समय श्री कृष्ण और रुक्मिणी के प्रथम-मिलन के पूर्व के भावोद्रेक को प्रकृति के कार्य-कारण रूप में उपस्थित किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति के एक कार्य से दूसरा कार्य सम्बन्धित अङ्कित किया गया है, जैसे सूर्य के डूबने के साथ चन्द्रमा की किरणें प्रसरित होने लगीं, लेकिन कमल सकुचने लगे इसे हम आलङ्कारिक शैली भी कह सकते हैं। प्रकृति चित्रण की यह प्रवृत्ति बेलि के आगामी अंशों में विशेष रूप से प्रस्फुटित दिखाई पड़ती है। चक्रवाक के मन में हुआ कवि एक स्थान पर कहता है कि प्रभात होते ही चक्रवाक के मन में रमण करने की इच्छा पूर्ण हुई किन्तु कोकशास्त्रानुसार रमण करने वालों के मन की इच्छा निवृत्त हुई, प्रफुल्लित फूलों ने अपनी सुगन्ध छोड़ी और आभूषणों ने शीतल ग्रहण की तथा सूर्य ने उदय होकर संयोगिनी स्त्रियों के वस्त्र, मथन-दण्ड (मथानी) तथा कुमुदिनी की शोभा को बन्धन दे दिया और घर, हाट, ताल, भ्रमर और गोशालाएँ इतनी बन्द वस्तुओं को मुक्त कर दिया[2]।

---

१. नैरन्ति प्रसरि गिरि नीझर,
धणी भजै धण पयोधर।
झोले वाइ किया तरु झंखर,
लवली दहन की लू लहर।

\+ \+ \+

निहसे वूठौ घण विण नी लाणी,
वसुधा थलि-थलि जल वसइ।
प्रथम समागम वस्त्र पद्मणी,
लीधे किरि ग्रहण लसइ॥

२. "संयोगिणि चीर रई कैरव श्री
घर हट ताल भमर गोवोख॥
दिण पर उगि पुतला दीधा
मोखियाँ बन्ध बांधियाँ मोख॥"

\+ \+ \+

सन्ध्या-वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि रात्रि और दिन का संयोग हुआ अन्य पक्षी तो अपने जोड़ों से संयुक्त हुए परन्तु चक्रवाक का वियोग हुआ और जलाए हुए दीपकों के मिस कामिनी स्त्रियों और कामी पुरुषों के मनों में कामाग्नि जाग्रत हो उठी[1]।

प्रकृति के दृश्य और व्यापार के आधार पर नीति कथन की शैली की परम्परा का अनुसरण भी बेलि में प्राप्त होता है। कवि कहता है कि आश्विन के व्यतीत होते ही आकाश में बादल, पृथ्वी पर कीचड़ और जल में गंदलापन विलीन हो गया जैसे सतगुरु की ज्ञानाग्नि का प्रकाश प्रकट होते ही मनुष्य के कलिकाल के पाप विलीन हो जाते हैं, इसी प्रकार प्रातःकाल का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि शंख भेरी का शब्द रूपी अनहद् नाद उठा, सूर्योदय रूपी योगाभ्यास हुआ, रात्रि रूपी माया का परदा हटा और प्राणायाम में परम ज्योति का प्रकाश हुआ[2]।

अस्तु बेलि के प्रकृति-चित्रण में हमें शान्त और शृङ्गार रस के साथ-साथ प्रकृति के यथार्थ रूप के भी दर्शन होते हैं।

—:o:—

---

१. मेली तदि साथ सु रमण कोक मनि
  रमण कोक मनि साथ रही ॥
फूले छांडि वास प्रफुले
  ग्रहयो सीतलताइ ग्रही ॥"
× × ×

२. बितए आसोज मिले नभि बादल,
  पृथ्वी पंक जलि गडलपण।
जिमि सतगुरु कलि कलुष तणा तण,
  दीपति ज्ञान प्रगटे दहण ॥
+ + +

रसरतन

—पुहुकर कृत (पौहकर)
रचनाकाल सं० १६७५

कविपरिचय
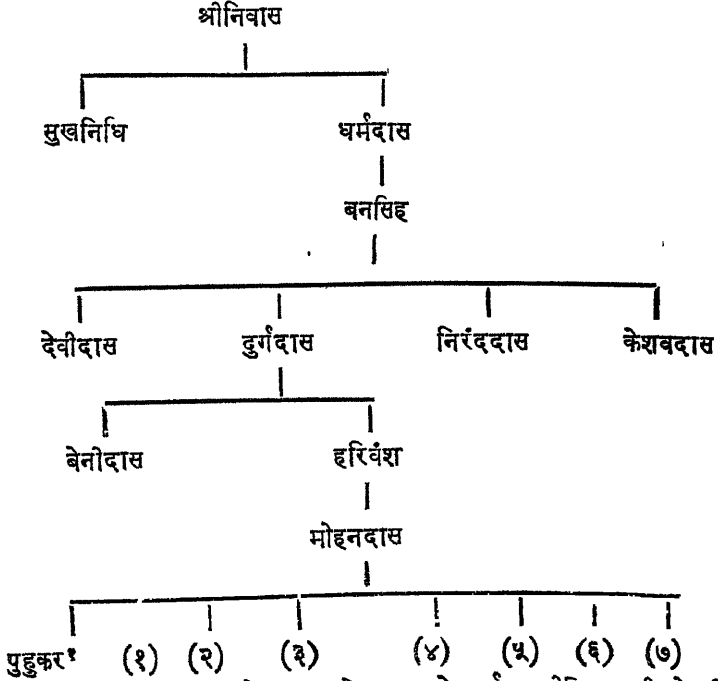
आप कश्यप वंशी खरे कायस्थ थे। आपके पूर्वज श्रीनिवास जी सोमतीर्थ के पास प्रतापपुर में महाराज रुद्रप्रताप के यहाँ रहते थे किन्तु आपके प्रपितामह

---

१. देस राज कायस्थ कुल, श्रीनिवास श्रीवास।
तिन गृह कियौ प्रतापपुर, नृपहित हृदे हुलास॥
तासु तनयविव पुतहुव, सुखनिधि आनन्द कन्द।
धर्मदास निर्मल नवल, मनहुँ सूर अरु चन्द॥

श्री दुर्गादास जी अकबर के दरबार में चले आये थे जो दरबार के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। आपके पिता मोहनदास भी एक प्रतिष्ठित व्यक्तियों में गिने जाते थे। श्री मोहनदास की सात सन्तानों में आप सबसे बड़े थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध नौ वर्ष की अवस्था में सुयोग्य पिता के द्वारा किया गया। एक मौलवी से आपने फारसी की शिक्षा ग्रहण की। आगे चल कर आपने फारसी के काव्यों और शायरों का अच्छा अध्ययन किया। किन्तु अपनी मातृभाषा हिन्दी से आपको उतना ही प्रेम था जितना फारसी से इसीलिए आपने छन्दशास्त्र और पिंगल शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था।

रसरतन के अन्तर्साक्ष्य से आपके जीवन के विषय में इतना ही ज्ञात होता है।

खरे जाति खोटे नहीं तिन मँह खोट न होय।

× × ×

धर्मदास सन्तान बहु सपुरुष सकल बखानि।
तासु पुत्र बनसिंह हुव परम पुरुष विख्यात॥
चारि पुत्र बनसिंह हुव देवी, दुर्ग, निरन्द॥
केशवदास प्रसिद्ध जग प्रेम करन कलिइन्द॥
दुर्गादास पुत्र विव कायथ कुल अवतंस॥
सुजस साह दरबार में बैनीदास हरिवंस॥

× × ×

अति प्रसिद्ध मसहूर साह अकबर दरबारह।
दुर्गादास हुव बहु कुटुम्ब सन्धीर सुब जानत जहान जगत॥

× × ×

एक पुत्र हरिवंश के श्याम सजीवन मूर।
बाला पन ते बहुत विधि जसलियो मोहनदास।
पिता सरस सत पुत्र हूँ किय पर भूमि निवास॥
सप्त पुत्र उर धरिय विदुषी बुधिवंत विनतीय॥
जहां जेष्ठ पोहकर प्रसिद्ध सुरसति मुख बानिय॥
बाल केलि रस खेल मा सब सुवरस व्यतीत॥
पितु प्रतापु बहुलाड पोढ़ आनन्द मँह बीती।

× × ×

कथावस्तु

चम्पावती के राजा विजयपाल के कोई संतान नहीं थी, इसलिये वह बड़े चिंतित रहते थे। एक दिन जब वे बड़े उदास थे, एक सिद्ध उनके यहाँ पहुँचा। राजा ने अपनी खिन्नता का कारण बताया। इस पर सिद्ध ने उन्हे चंडी की उपासना करने के लिये कहा और आशीर्वाद दिया कि तुम्हे संतान लाभ होगा। अतएव नौ महीने के उपरान्त पटरानी पुहुपावती (पुष्पावती) के गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। ज्योतिषियों ने इस कन्या को बड़ी भाग्यशालिनी बताया। उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की कि इस कन्या को ग्यारहवें वर्ष व्याधि उत्पन्न होगी और तेरहवें वर्ष तक इसे मूढ़ता रहेगी किन्तु चौदहवें वर्ष इस वंश में एक युवक का प्रवेश होगा जिससे कुमारी का क्लेश कटेगा और कुटुम्ब की अभिवृद्धि होगी।

एक दिन सुन्दर चांदनी रात में रति और कामदेव विहार कर रहे थे। रति के मन में संसार की सर्वसुन्दरी और सर्वसुन्दर युवक और युवती को जानने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। कामदेव ने उसकी जिज्ञासा शान्त करने के लिये बताया कि बैरागर का राजकुमार 'सोम' और चम्पावती की राजकुमारी 'रम्भा' सर्व सुन्दर युवक और युवती हैं। रति की स्त्री सुलभ जिज्ञासा का इससे शमन न हुआ उसने पति के चरणों पर गिर कर इन दोनों के विवाह की भिक्षा माँगी।

नवम बरस जत नाथ थापि पूजा करवाई।
रखि द्वारा आखून पिता फारसी पढ़ाई॥
पायो प्रसाद सरस्वतीय वह वीह बिलास कंठह धरिय।
भाषा प्रबन्ध उत्ताल गति सबहु विधान विस्तरिय॥
प्रथम वृति कायस्थ लिखन लेखन अवगाहन।
विषम करन नृप सेव तुरत आइस निर्वाहन॥
× × ×
द्वादस विधि अवदान सुनत नव गुण अवराधन।
छुद बन्द पिंगल प्रबन्ध बहुरूप विचारन॥
फारसीय काव्य पुन सैर विधि नजमन सर अवियातक हिय।
प्रत्यक्ष देवी सारद भइ उर निवास मुख वास रहिय॥
× × ×
पौहकर कश्यप के कुल भानु। अचर कौन रघुवंश रघुबीर के।
अकबर शाह जहँगीर जैसे। जैसे शाहजहां जहँगीर के॥
+ + +

कामदेव बड़ा अचकचाया किन्तु त्रियाहठ के आगे ठहर न सका। इसलिये इन दोनों के हृदय में प्रेम जाग्रत कराने के लिये प्रिय-दर्शन के तीन साधनों, स्वप्न, चित्र और प्रत्यक्ष में से उसने स्वप्न को चुना। कामदेव ने सोम का रूप धारण कर रम्भा को स्वप्न में दर्शन दिया और मोहन, सम्मोहन, उन्माद एवं उच्चाटन बाणों का प्रयोग किया। इसी प्रकार रति ने रम्भा का रूप धारण कर सोम को दर्शन दिया और उसे मोहित कर लिया।

दूसरे दिन से राजकुमार और राजकुमारी एक दूसरे के लिये व्याकुल रहने लगे। उनके लिये सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि दोनों को एक दूसरे का कोई पता न था। स्वप्न के उपरान्त रम्भा के शयनगृह में आकाशवाणी हुई कि सूर्य की उपासना करो, वही तुम्हारा क्लेश काटेंगे।

राजकुमारी रम्भावती की दशा दिन प्रतिदिन शोचनीय होने लगी और वह मरणासन्न हो गई। सारा घर परेशान था किन्तु कोई भी कुमारी की व्याधि का पता न पा सका। कुमारी की दासियों में मुदिता बड़ी चतुर थी। मुदिता को शङ्का हुई कि कहीं कुमारी विरह-ज्वर से तो पीड़ित नहीं है। इसलिये सब सखियों को हटाकर, उसने नलदमयन्ती, माधवानल कामकन्दला, उषा अनिरुद्ध आदि की प्रेम कहानियाँ कुमारी को सुनाईं। कुमारी बड़ी उत्सुकता से उन्हें सुनती रही फिर फूट कर रो पड़ी। मुदिता की शंका का समाधान हुआ। कुमारी ने अपने अज्ञात प्रियतम की बात बताई। एक वर्ष के उपरान्त रतिनाथ को रम्भा की फिर याद आई और उन्होंने दुबारा कुंवर के रूप में स्वप्न दर्शन दिया और कुमारी के पूछने पर बताया कि वह इसी लोक का वासी है और अन्तर्ध्यान हो गए।

दूसरे दिन रम्भा कुछ प्रसन्न दिखाई पड़ने लगी। उसने मुदिता से बताया कि मेरे प्रियतम ने मुझे फिर दर्शन दिया और बताया है कि वह इसी लोक के वासी हैं। इस सूचना को पाकर मुदिता ने रानी पुष्पावती के द्वारा चित्रकारों को चारों दिशाओं में सुन्दर पुरुषों और राजकुमारों के चित्र अंकित करने के लिये भेजा।

चम्पावती का चित्रकार बोधविचित्र घूमता-घामता वैरागर पहुँचा और देवदत्त ब्राह्मण का अतिथि हुआ। देवदत्त राजपुरोहित था, इसलिये जिज्ञासावश बोधविचित्र ने राजा और राजकुमार के विषय में पूछना प्रारम्भ किया। देवदत्त ने बताया कि वैरागर में सूरसेन का राज्य है उनके एक बड़ा यशस्वी, ज्ञानी और सुन्दर पुत्र है किन्तु एक वर्ष आठ महीने से उसे न जाने क्या हो गया है कि वह उन्मादित अवस्था में रहता है। सुना जाता है कि स्वप्न में किसी

सुन्दरी को देखा है तबसे उसके लिए व्याकुल रहता है। कठिनाई यह है कि इस स्त्री का पता आदि कुछ भी ज्ञात नहीं।

बोधविचित्र को अपनी राजकुमारी की दशा स्मरण हो आई और उसने देवदत्त से प्रार्थना की कि वह राजदरबार में यह कह दे कि उसके घर एक गुणज्ञ वैद्य आया है जो कुमार की व्याधि को अच्छा करने का बीड़ा उठाता है। बोधविचित्र कुमार के पास ले जाया गया। उसने रम्भा का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित करके कुमार को दिखाया। चित्र देखते ही कुमार अपनी प्रेयसी को पहचान गया और प्रसन्नता से नाच उठा। तदुपरान्त बोधविचित्र कुमार का चित्र लेकर बिदा हुआ। जाते समय वह कुमार से सारी बातें गुप्त रखने के लिये कह गया और यह भी कह गया कि राजकुमारी के स्वयंवर में वह अवश्य आए।

चंपावती में बोधविचित्र का लाया हुआ कुमार का चित्र रंभावती को दिखाया गया। रम्भा प्रसन्न हुई और अपने प्रियतम का परिचय पाकर फूली न समाई। राजकुमारी के स्वयंवर की घोषणा की गई और देश देशान्तर के राजकुमारों को आमंत्रित किया गया।

राजकुमार सोम ने अपने दलबल के साथ चंपावती की ओर प्रयाण किया। एक मास के उपरान्त कुमार एकादशी के दिन मानसरोवर पहुँचा। कुमार ने सरोवर में स्नान किया और फलाहार करने के बाद अपने शिविर मे सो रहा। एकादशी के दिन अप्सराएँ मानसरोवर में स्नान करने आया करती थी। उस रात को भी वे आईं, जल-क्रीड़ा के उपरान्त जिज्ञासावश रंभा अन्य अप्सराओं को लेकर कुमार के शिविर में पहुँची। कुमार के सौन्दर्य को देखकर सभी मुग्ध हो गईं। उन्हें अपनी अभिशप्त सखी कल्पलता की याद आई और उन्होंने सोचा यदि इस सुन्दर युवक का विवाह कल्पलता के साथ हो जाय तो उसका नीरस जीवन सरस हो जायगा। थोड़ी देर विचार के उपरान्त अप्सराएँ सशय्या कुमार को लेकर आकाश मार्ग से कल्पलता के यहाँ पहुँची। कल्पलता ने सुप्त कुमार के सौन्दर्य को देखा और मुग्ध हो गई। नाना शृङ्गार से विभूषित होकर कल्पलता ने कुमार को जगाया। अपने सामने अनन्य सुन्दरी को देखकर कुमार को रंभा की शंका हुई। अन्त में दोनों प्रेमसागर में निमग्न हो गए।

दूसरे दिन कुमार के गले की जंजीर में एक अपूर्व सुन्दरी के चित्र को देखकर कल्पलता को जिज्ञासा हुई और कुमार ने आदि से अन्त तक अपनी कथा बताई। एक दिन सिद्ध-वेश में कल्पलता को छोड़कर कुमार चपावती

की ओर चल पड़ा। इधर कल्पलता कुमार के वियोग में पीड़ित थी, उधर वह अपनी वीणा और दिव्य शक्ति से जंगल के जीव-जन्तुओं और सर्पों को वशीभूत करता हुआ चंपावती नगरी पहुँचा।

चपावती में कुमार की वीणा से मुग्ध होकर नर-नारी अपनी सुध-बुध भूल जाते थे। किसी प्रकार कुमारी रंभा के दर्शन कुमार को न हो पाए। इसलिये उसने एक दिन शिव-मडप के पास सम्मोहन राग बजाना आरम्भ किया जिसके फलस्वरूप नगर की सारी नारियाँ मुग्ध होकर उसके चारों ओर एकत्रित हो गईं। योगी कुमार की दृष्टि रनिवास की दासी और मुदिता की सहेली गुनमंजरी पर पड़ी। कुमार ने एक गाथा पढ़ कर यह प्रकाशित कर दिया कि वह एक बाला के प्रेम में वियोगी होकर योगी हो गया है। गुनमंजरी ने लौटकर मुदिता से सारी बातें बताईं। इसे सुनकर चतुर मुदिता कुमारी के पास पहुँची और उससे कहा कि कल सरोवर पर स्नान कर शिव मंदिर में दर्शन करने चलो वहाँ तुम्हें तुम्हारे प्रियतम के दर्शन सम्भवतः हो जायँगे। माता से आज्ञा लेकर कुमारी शिव-पूजन के लिए गईं। पूजा के उपरान्त कुमार के दर्शन किए, कुमार ने अपनी सिद्धि को सामने देख कर सुध-बुध खो दी। इसके अनन्तर मुदिता के कहने पर कुमार ने अपना योगी वेश बदल दिया। कल्पलता के यहाँ से चले कुमार को एक साल कुछ महीने हो चुके थे उसकी सेना भी चम्पावती पहुँच चुकी थी।

स्वयंवर के दिन रम्भा ने सोम के गले में जयमाल डाली। दोनों का जीवन आनन्द से व्यतीत होने लगा। विरहिणी कल्पलता ने विद्यापति तोते को अपना सन्देश वाहक बनाकर चम्पावती भेजा। विद्यापति रम्भा के पास एक पेड़ की डाल पर जा बैठा। उसे देखते ही रम्भा के मन में इस सुन्दर पक्षी को पाने की लालसा हुई और वह उसके पीछे दौड़ने लगी। थोड़ी देर में वह तोता रम्भावती को बाग के एक एकान्त कोने में ले गया और वहाँ एक गाथा कही।

"बिरहिनी बिरह विकार न जानति नारि संजोगिनी।
धनि धनि जिमि अविकार बिरला बूझत रंक दुख ॥"

रम्भा प्रसन्नवदन तोते को लेकर रङ्गमहल में पहुँची। कुँवर जब तोते को देखने पहुँचा तब उसने दूसरी गाथा पढ़ी।

"नाइक मधुप समान है, मन सुगन्ध रस प्रीत।
पान सौह बिन स्वाति जल त्रिया चरित्र की रीत ॥"

इस दूसरी गाथा को सुन कर रम्भा के हृदय में शङ्का उत्पन्न हुई और उसने कुँवर से पूछना प्रारम्भ किया कि वास्तव में बात क्या है। संभवतः तुम मुझसे कुछ छिपाते हो। कुँवर ने तब कल्पलता से विवाह की बात बताई। इसपर रम्भा

बड़ी दुखी हुई और उसने कुमार को तुरन्त मानसरोवर चलने के लिए विवश किया। अतएव ससैन्य रम्भा के साथ सोम ने मानसरोवर की ओर प्रस्थान किया। कुछ मास चलने के उपरान्त वे लोग मायापुरी नगरी पहुँचे। वहाँ के राजा मदनदेव ने सोम को अपने राज्य से मानसरोवर की ओर जाने की स्वीकृति नहीं दी इसलिए दोनों में घमासान युद्ध हुआ, मदनदेव मारा गया और सोम मानसरोवर पहुँच कर कल्पलता से मिला। रम्भा ने कल्पलता की सेज सँवारी और बधाई गाई।

सूरसेन तीस वर्ष तक राज्य कर गोलोक सिधारे और सोम ने उसके बाद तीस वर्ष तक राज्य किया। इसी बीच इनके ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रसेन को अपने नाना विजयपाल का राज्य मिला जिसकी खुशी में बैरागर में नाटक खेला गया। एक नट ने संसार की असारता और ईश्वर की असीमता को अपनी कला के द्वारा प्रदर्शित किया जिसका प्रभाव सोम पर बहुत अधिक पड़ा और उन्होंने अपने राज्य को अपने चारों पुत्रों में बाँट कर सन्यास ले लिया।

इस काव्य की रचना पुहुकर ने जहाँगीर के समय में की थी। मसनवी शैली में लिखा हुआ यह एक शुद्ध प्रेमाख्यान है। इसमें कवि ने प्रारम्भ में निर्गुण और सगुण दोनों ब्रह्म की उपासना की है। ग्रन्थ-प्रारम्भ के एक छप्पय में कवि ने वर्ण्य विषय भी लिखा है।

'छत्र सिंहासन पौहमि पति धर्म धुरन्धर धीर।
नूरदीन आदिल बदी सबल साहि जहँगीर ॥'
+ + +
सगुन रूप निर्गुन निरूप बहुगुन विस्तारन ॥
अविनासी अवगति अनादि अघ अटक निवारन ॥
घट-घट प्रगट प्रसिद्ध गुप्त निरलेख निरंजन ॥
तुम त्रिरूप तुम त्रिगुन तुमहि त्रैपुर अनुरंजन ॥
तुमहि आदि तुम अन्त हौ तुमहि मध्य माया करन।
यह चरित नाथ कहँ लगि कहौं नारायन असरन सरन ॥

रसरतन का अन्त यद्यपि शान्त रस में हुआ है फिर भी यह काव्य एक लौकिक प्रेमाख्यान है जिसमें शृङ्गार-रस प्रधान है। बैरागर के राजकुमार सोम और चम्पावती की राजकुमारी रम्भा की प्रेम कहानी इसका वर्ण्य विषय है। प्रेम के संयोग और वियोग की दशाओं का विस्तृत वर्णन करने एवं कथानक में आश्चर्य तत्व और लोकोत्तर घटना के सन्निवेश के लिए कवि ने अभिशप्त अप्सरा कल्पलता की कहानी का आयोजन किया है।

वस्तुतः कहानी का प्रारंभ ही कुमार के जन्म की लोकोत्तर घटना से होता है। रंभा और कुमार सोम का प्रेम 'रति और कामदेव' से सम्बन्धित होने के कारण लोकोत्तर घटना पर अवलम्बित है। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कथानक के विकास में सहायक लगभग सभी घटनाएँ आश्चर्य तत्व और लोकोत्तर घटनाओं पर अवलम्बित हैं। कथानक के बीच बीच में आए हुए रसात्मक स्थलों का वर्णन लौकिक हुआ है इस प्रकार प्रस्तुत रचना लौकिक और पारलौकिक तत्वों का एक सुन्दर सामंजस्य उपस्थित करती है।

प्रबन्ध कल्पना और सम्बन्ध निर्वाह

'रसरतन' एक काल्पनिक आख्यान काव्य है इसकी घटनाओं का संगठन और कथा का विकास इतने सुचारु रूप से हुआ है कि कहानी के सौष्ठव के साथ-साथ हमें काव्य-सौंदर्य का भी आनन्द मिलता है, कारण कि मनुष्य जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों जैसे रम्भा और कल्पलता का संयोग-वियोग, प्रेम मार्ग के कष्ट, पुत्र-प्राप्ति के लिए पिता की उलझन, परेशानी और प्रयत्न, विदा होती हुई कन्याको स्वजनों-परिजनों आदि की सीख आदि का वर्णन बड़ा स्वाभाविक मनोहारी एवं मनोवैज्ञानिक हुआ है।

कहने का तात्पर्य यह है कि रसरतन एक शृङ्गाररस प्रधान काव्य है, इसलिये इसके घटनाचक्र से भीतर जीवन दशाओं और मानव सम्बन्धों की अनेक रूपता नहीं मिलती फिर भी पतिव्रत, वीरता, जय-पराजय, आनन्दोत्सव, प्रेम आदि के जो स्थल आए हैं वे कहानी में रसात्मकता के सञ्चार के लिए उपयुक्त हैं। इसलिये हम कह सकते हैं कि प्रबन्ध-काव्य के लिये जिस घटना-चक्र की आवश्यकता होती है, वह हमें इस काव्य में मिलता है।

प्रस्तुत रचना की अधिकारिक कथा के अन्तर्गत रम्भा और कुमार सोम की प्रेम कहानी आती है। प्रासङ्गिक कथा के अन्तर्गत कल्पलता अप्सरा का आख्यान, रति और कामदेव का संवाद एवं उनका रम्भा और कुमार का रूप धारण करना, चम्पावती के चित्रकार बोधविचित्र का वृत्तान्त, कुमार के गले में पड़ी हुई माला में गुथे हुए रम्भा के चित्र को कल्पलता के द्वारा देखे "जाने की घटनाएँ आती हैं।"

जहाँ तक कल्पलता की प्रेम कहानी का सम्बन्ध है वह एक स्वतन्त्र आख्यान है। आधिकारिक कथा से उसका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। कथा की गति के विराम में एक स्वतन्त्र घटना का आयोजन कवि के द्वारा किया गया है किन्तु कथानक के अन्त में कवि ने उसे मूल घटना से "विद्यापति" तोते द्वारा मिला दिया है। अस्तु हम यह कह सकते हैं कि

कुमार के प्रेम की दृढ़ता को अङ्कित करने के लिए एवं कथावस्तु में रोचकता लाने के लिए ही कवि ने इसका आयोजन किया है। जहाँ तक अन्य घटनाओं का सम्बन्ध है सब किसी न किसी रूप में मूल घटना की गति में सहायक होती हैं। रति और कामदेव के सम्वाद एवं उनके द्वारा रम्भा और कुमार के रूप धारण करने की घटना मे ही वास्तविक कुमार और कुमारी में प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। बोध विचित्र के द्वारा अङ्कित कुमार और कुमारी के चित्र से दो अपरिचित प्रेमी एक दूसरे के वंश, निवासस्थान आदि से परिचित हो सके।

कार्यान्विति की दृष्टि से यह कथानक आरम्भ, मध्य और अन्त तीन विभागों में सुगमता से बाँटा जा सकता है। स्वप्न दर्शन से लेकर कुमार के चम्पावती प्रयाण तक कथा का आरम्भ, मानसरोवर से कुमार को अप्सराओं द्वारा ले जाने की घटना से लेकर कल्पलता के मिलन तक कथा का मध्य और स्वयंवर से लेकर नाटक के उत्सव तक कथा का अन्त कहा जा सकता है।

कार्यान्विति के गति के विराम में कल्पलता और रम्भा संयोग और वियोग एवं कुमारी को सखियों द्वारा दी जाने वाली सीख आती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि कार्यान्वय और सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से यह एक सफल रचना है।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख

इस प्रबन्ध में दो नायिकाओं का प्रेम अभिव्यंजित हुआ है, इस कारण शृङ्गार का क्षेत्र बड़ा विस्तृत हो गया है। शृङ्गार के संयोग और वियोग पक्ष एवं रति के वर्णन में विभिन्नता, सौम्य एवं चपलता और प्रगल्भता परिलक्षित होती है। कुमारी रम्भा के संयोग शृङ्गार में कवि ने विशेष मर्यादा का ध्यान रखा है। उसमें प्रगल्भता न होकर शालीनता है, इसके विपरीत अप्सरा कल्पलता के रति विवरण में उद्दाम यौवन की उफान है।

नारी-सौन्दर्य-विधान में प्राचीन परिपाटी में नवीन उद्भावनाएँ विशेष आकर्षक बन पड़ी हैं। यौवन के अंकुरित होने पर वयःसन्धि का वर्णन करता हुआ कवि काव्य-परिपाटी का ही अनुसरण करता है। नेत्रों की चपलता और विशालता, स्वाभाविक लज्जा और संकोच, नारी सौन्दर्य की एक अद्भुत वस्तु है। अस्तु इस कवि ने भी प्राचीन परिपाटी के कवियों के अनुसार उसका वर्णन किया है।

"तन लज्जा मुख मधुरता लोचन लोल विसाल।
देखत जोवन अङ्कुरित रीझत रसिक रसाल॥"
भौंह चक्र पच्छिम अनियारे। मद खञ्जन जनु बान सँवारे॥
श्रवन सींव लोचन अनियारे। पद्म पत्र पर भमर बिचारे॥
कुण्डल किरन कपोलन भाई। छवि कवि पै कछु बरन न जाई
मन्द हास दसनन छवि देखी। सुधा सींचि दारौ दुति लेखी॥

अधरों की लालिमा की उपमा अनेकों कवियों ने बिम्बाफल तथा मूंगे आदि से दी है, किन्तु इस कवि की कल्पना ने बड़ी दूर की कौड़ी लाई है। किसी कार्य को करने के लिए बीड़ा लेना बड़ी प्राचीन कहावत है इस कहावत का सुन्दर प्रयोग अधरों की लालिमा पर बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया गया है।

'पौहकर अधरन अरुनता केहि गुन भई अचान।
जनु जीतन कौ मदन पै लिये पैज कर पान॥'

'पैज कर पान' में अनूठा लालित्य है, मदन को जीतने के लिये जैसे इन अधरो ने बीड़ा उठाया हो इसीलिये वे इतने लाल हैं।

इसी प्रकार कटि क्षीणता पर कवि की 'नाजुक खयाली' देखने योग्य है। कुमारी की कटि इतनी क्षीण है कि भौतिक शक्ति से तो उसका अवलोकन हो ही नहीं सकता, उसे तो केवल वही देख सकता है जिसे दिव्य ज्ञान प्राप्त हो चुका हो—

"नैननि न आवै अरु मन में न आवै लंक।
चित हू न आवै जाते चित अवरेखिए॥
बिरहौ को बल बिरहनी को बिलास हास।
दुखित ह्वै के जीवहि ते छीनता बिसेखिए॥
जोगि की जुगनि जप जोति के ज्ञान जोई,
""तब तेरी कटि देखिए।'

इसी प्रकार त्रिवली की रोमावलो के वर्णन में कवि ने सन्देहालंकार की झड़ी सी लगा दी है जिसमें चक्रवाक चंचु (कुच) से गिरी हुई शैवाल मंजरी (सिवार की लट) की उपमा बड़ी अनूठी बन पड़ी है।

'अमल कमल कुच कमल के नाल।
किधौं बिमल बिराजमान बैनी कैसी झाई है॥
चक्रवाक चंचु ते छुटी सिवाल मंजरी, कि।
नागिन निकसि नाभि कूप ते आई है॥

जमुना की धार तम धरि कि खान धरि।
किधौं अलि सावक की पंगति सुहाई है ॥
पुहकर कहै रोम राजि यों विराजी आइ।
बरनी न जाइ कवि उपमा न पाई है ॥'

कदली खम्भ से रम्भा के युग जंघों की उपमा कवि की दृष्टि में खोटी जँचती है वे तो प्राणनिधान हैं यौवन को चुनौती देने वाले हैं भला उनसे इस कठोर निर्जीव कदली खम्भ से क्या तुलना हो सकती है।

कञ्चन के खंभ रम्भ उपमा कहत कवि,
मेरे जान उभय सुभट नृप काम के।
कहैं कवि पुहुकर कि रम्भ करो लागे,
ये तो अति कोमल है मनि अभिराम के ॥
चित्त वित्त धूत किधौं दूत सम आगम के,
प्रान निधान किधौं जंघ जुग बामा के ॥

उन्नत उरोजों पर झीनी निर्मल चोली की शोभा और उसके नीचे झलकता हुआ कुछ स्पष्ट कुछ अस्पष्ट स्वस्थ मासल प्रदेश कवि की कोमल कल्पना को जाग्रत करने में बड़ा सफल हुआ है। उसकी उपमाएँ अनूठी और कल्पना अद्भुत बन गई है।

चुपरि चुनाई चोली सेत श्री साफ छवि
छाजत कवीन मन उकति को धायो है।
मेरे जान हेम गिरि सिखरि उतंग विव,
तापर तुषार परि पतरो सो छायो है ॥

झीने जल जलज कमल कली सी मानो,
अमल अनूप रूप रतन लजायो है।
महा मनि छटा पट अमित विराज मान,
किंधो पूजि पट जुग ईसनि चढ़ायो है ॥

मेरु की चोटी पर झीना तुषारपात, स्वच्छ-जल की चादर में उभरती हुई कमल कली अथवा शिव पर चढ़ाया हुआ पटाम्बर की उपमा इस प्रसङ्ग में कितनी अनूठी और हृदयग्राही हैं। ऐसे ही वक्षस्थल पर पड़ी हुई मणिमाला का सौन्दर्य भी बड़ा प्यारा बन पड़ा है।

जैसे कामिनी के वक्षस्थल पर यह मोतियों की माला नहीं है वरन् सुमेरु पर्वत के दो शृंगों के बीच चंद्रमा ने झूला डाल रक्खा है अथवा कामदेव से रक्षा करने के लिये नवग्रह एकत्रित हो गए हैं। या काली केशराशि के बीच मोतियों से भरी मांग ऐसी प्रतीत होती है मानों यमुना को फाड़ कर गंगा की स्वच्छधार बह रही हो[१]।

जहाँ हमें एक ओर कवि की उर्वरा कल्पना शक्ति का परिचय उसके उपमानों के नए-नए प्रयोग में मिलता है वहीं इस कवि ने परंपरागत कवि-समय-सिद्ध उपमानों का भी प्रयोग किया है। जैसे नायिका के अधर विद्रुम के समान लाल, दाँत बिजली के समान चमकते हुए अथवा अनार के दानों के समान सुन्दर हैं।

संयोग शृङ्गार,

इन्द्रलोक की अप्सरा के नीरस जीवन में कुमार के आकस्मिक प्रवेश ने एक हलचल उत्पन्न कर दी। कुछ ही क्षणों के उपरान्त उसने कुमार को आत्मसमर्पण कर दिया। रंभा के संयोग-वर्णन में कवि मर्यादा का अतिक्रमण कर गया। संभोग शृंगार के चित्र कहीं कहीं पर बड़े अश्लील हो गए हैं, फिर भी सर्वथा ऐसा नहीं कहा जा सकता। कुछ उक्तियाँ बड़ी मार्मिक और स्वाभाविक हैं, जैसे पति के प्रथम मिलन पर लज्जित और त्रसित नायिका का यह चित्र बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

'नैन लाज डर त्रास बढ़ि मदन दुरै तन माँहि।
डुलति नारि नाहीं करै सकत छुड़ावत बाँहि ॥'

कल्पलता के संयोग-वर्णन में रम्भा के संयोग से बड़ा अन्तर है। रम्भावती के सम्बन्ध में कही गई कवि की उक्तियाँ, बड़ी मर्यादित और शालीन हैं। उसमें अश्लीलता अथवा अमर्यादित वर्णन नहीं प्राप्त होते।

---

१. 'नगन की जोति उर लसै लर मोतिन की
चक चौंधहि होत मनि गन जाल जू।
कैधौं मखतूल झूल, झूलत हैं हिंडोरा,
मानो सिखर सुमेरु बीच वारिधि को बाल जू ॥
कैधौं नवग्रह संग मिलि संकर सहाइ होत,
समर समर काज आए तिहि काल जू।
पुहुकर कहै पीय प्रान तिय परम मोद,
रीझत निहारै छबि रसिक रसाल जू ॥'

—रस रतन

विप्रलम्भ शृङ्गार

कुमार को स्वप्न में देखने के उपरान्त रम्भावती विरह की व्याकुलता से पीड़ित हो चुकी थी। विरह की ज्वाला में दग्ध रम्भावती की शारीरिक दशा का ऊहात्मक वर्णन जो सम्भवतः उर्दू की शैली से विशेषरूप में प्रभावित है, कवि ने प्रारम्भ में किया है। जैसे, उसकी विरह-ज्वाला इतनी तीव्र थी कि बातें करने पर भी जीभ जलती थी, या तन की ताप से कमल के पत्र सूख जाते थे अथवा चन्दन जलकर क्षार हो जाता था या कपूर की शीतलता तलवार की धार के समान लगती थी।

जहाँ इन्होंने एक ओर फारसी शायरी से प्रभावित होकर रम्भा की वियोगावस्था का वर्णन किया है, वहीं रम्भा की वियोगावस्था का वर्णन भारतीय पद्धति के अनुसार वियोग की दसों अवस्थाओं का शास्त्रीय वर्णन भी प्राप्त होता है। इस वियोग वर्णन में काव्यत्व की उतनी कुशलता नहीं दिखाई पड़ती जितना उनका पांडित्य प्रदर्शित होता है। उन्होंने रीतिबद्ध कवियों की तरह प्रत्येक अवस्था का गुण बता कर उसका उदाहरण रम्भा की वियोग दशा से दिया है। उदाहरणार्थ—

"विप्रलम्भ जिमि मूल है क्रम क्रम विस्तर साख।
दस अवस्था कवि कहत हैं तहाँ प्रथम अभिलाख॥"

अभिलाषा का गुण वर्णन करता कवि कहता है—

"सदा रहत मन चित्त में मनते पड़े न वित्त।
ताहि कहत अभिलाष कवि इत उत चलहि न चित्त॥"

रम्भा इन्हीं अवस्थाओं में कभी प्रिय का चिन्तन करती, कभी उसकी अभिलाषा करती, कभी उसकी स्मृति में संलग्न दिखाई गई है। प्रियतम से मिलने की चिंता में विचार करती है—

"किहि विधि मिलै प्रान अधिकारी
फिरि देखहुँ वह मूरति मैना
सुधा सरोवर सीचौं नैना॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्रीय ढंग पर कवि ने एक-एक अवस्थाओं का नाम गिना कर विरह वर्णन किया है, जिसके कारण इस विरह वर्णन में कोई सरसता नहीं रह जाती वरन् काव्य शास्त्र का वह एक अंग-सा बन जाता है। किन्तु सर्वत्र हमें इसी शैली का अनुकरण नहीं मिलता। सूरसेन, कल्पलता और कहीं-कहीं पर रम्भा के वियोग-वर्णन में हमें सरलता तथा हृदय पक्ष के भी दर्शन होते हैं। कल्पलता को सोती छोड़ कर कुमार चल दिया था। प्रातःकाल

कुमार को अपने पास न पाकर कल्पलता अवाक सी रह गई। हमारे हृदय को जब अकस्मात गहरी चोट पहुँचती है, तब हम किंकर्तव्य विमूढ़ होकर चित्रवत् हो जाते हैं। कल्पलता की इसी मानसिक दशा का वर्णन कवि ने बड़ी कुशलता से किया है।

"कल्पलता जिय जानि कै प्रान नाथ पति गौन।
चित्र लिखी पुतरी मनौ लचिकि रही मुख मौन॥"

कल्पलता के इस 'मौन' में अनन्त हाहाकार और असीम वेदना छिपी है। केवल एक ही शब्द के द्वारा कवि ने कल्पलता की वेदना को महान और सजीव बना दिया है। इसी प्रकार प्रिय के चले जाने पर एक-एक बात की स्मृति आती है और उसके साथ बीते हुए क्षणों के क्रिया-व्यापार हृदय में उथल-पुथल मचाया करते हैं। इसीलिये सन्ध्या होते ही उसे याद आती है—

"रजनी भई चरन लिपटाती
सेवा करत संग लगि जाती।
जानी मैं न कपट की प्रीती
भई पतंग दीपक की रीती॥"

इम मनोदशा में झूठ का अथवा ऊहात्मकता का अंश मात्र भी नहीं मिल सकता। प्रियतम की याद जहाँ दुखदाई होती है वहाँ विरह के क्षण को काटने के लिये उससे सरल साधन भी कोई उपलब्ध नहीं हो सकता। दूसरी बड़े महत्व की बात कवि ने दीपक और पतंग के प्रेम की समानता देखकर उत्पन्न कर दी है, जहाँ विरहिणी को रात्रि में दीपक पर मंडरा-मंडरा कर जलने वाले पतंगों को देखकर अपनी दशा की याद आती है, वहाँ प्रियतम की कठोरता और छल भरे स्नेह की अनुभूति भी होती है। जिस प्रकार दीपक पतंग को अपने पास आने से नहीं रोकता और पतंग उससे लिपट कर क्षार हो जाता है, उसी प्रकार रंभा ने भी रात्रि में उसकी सेवा कर अपने जीवन को क्षार स्वरूप कर लिया। इस वर्णन में कल्पलता के हृदय की गहरी वेदना मुखर हो उठी है।

प्रियतम कितना ही निष्ठुर क्यों न हो किन्तु वह प्रिय पात्र सदैव बना रहता है, उसके दाष दोष नहीं दिखाई पड़ते। इस विरह से सौत का दुख कहीं श्रेयस्कर जान पड़ता है, इसीलिए विलख कर कल्पलता कह उठती है—

"जो तुहि और नारि मन भाई। हमही क्यों न लियो सग लाई॥
जब ताईं जीवन जग जीजै। निरमोही सों मोह न कीजै॥"

प्रेमी के लिये प्रियतम के अतिरिक्त संसार की कोई वस्तु आकर्षक नहीं रह जाती, वह तो प्रेम की पीर और प्रियतम की स्मृति में सब कुछ भूल जाता है।

संसार की प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व ही निर्मूल हो जाता है, यही कारण है कि सूरसेन को कुछ भी नही भाता था ।

''न लोभं न माया न चिता न चैनं न सुद्धं न बुद्धं न विद्या न बैनं ॥
न चालं न ख्यालं न खानं न पानं न चैनं न हेतं न अस्नानं न दानं ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि हमें पुहुकर के वियोग में कलापक्ष और हृदयपक्ष दोनों का सामंजस्य दिखाई पड़ता है।

भाषा

रसरतन की भाषा चलती हुई अवधी है किन्तु कहीं-कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों के पुट से वह बहुत परिमार्जित हो गई है। जैसे—

"सगुण रूप निर्गुण निरूप बहु गुन बिस्तारन ।
अविनासी अवगत अनादि अघ अटक निवारन ।
घट-घट प्रगट प्रसिद्ध गुप्त निरलेख निरञ्जन ॥"

सेना के सञ्चालन एवं युद्ध के वर्णन में कवि ने भाषा में डिंगल का पुट देकर उसे ओजस्विनी बना दिया है।

"पय पताल उच्छलिय रैन अम्बर ह्वै छ्चिय ।
दिग-दिग्गज थरहरिय दिव दिनकर रथ खिच्चिय ।
फन-फनिन्द फरहरिय सप्त सहर जल मुक्खिय ।
दंत पंति गज पूरि चूरि पव्वय दिसांन किय ॥"

अनुस्वारान्त भाषा लिखने की परिपाटी को भी कवि ने अपनाया है।

''नमो देवां दिवानाथ सूरं। महां तेज सोमं तिहूँ लोक रूपं ॥
उदै जासु दीसं प्रदीसं प्रकासं। हियौ कोक सोकं तमं जाखु नासं ॥"

छन्द

इस काव्य का प्रणयन दोहा और चौपाई की शैली में हुआ है किन्तु इस छन्द के अतिरिक्त छप्पय, सोमक्रांति, घटक सारदूल, त्रोटक, पद्धरि, भुजङ्गी, सोरठा, कवित्त, मोतीदाम, मालती, भुजङ्ग-प्रयात, प्रवनिका, दुमिला और सवैया छन्दों का प्रयोग भी बहुतायत से किया गया है।

अलङ्कार

इस कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलङ्कार ही अधिक प्रयुक्त किए हैं।

लोकपक्ष

जहाँ हमें इस काव्य में संयोग-वियोग की नाना दशाओं का चित्रण मिलता है, वहीं हमें गार्हस्थिक जीवन को सुन्दर और सफल बनाने की शिक्षा प्राप्त होती है।

नारी गृह लक्ष्मी है, उसी के सद्व्यवहार और कार्यकुशलता से दांपत्य जीवन सुखी हो सकता है, इसलिए रम्भावती को स्वयंवर के पूर्व जो सीख दी गई है वह आज भी हमारे लिये उतनी ही उपयोगी है, जितनी की कवि के समय में या उसके पूर्व रही होगी।

कुलवधू को बड़ों का आदर और कुलदेवता की पूजा करनी चाहिए इससे उसका सौंदर्य और भी निखर उठता है। कुलवधू के लिए जहाँ बड़ों के सामने लज्जा की आवश्यकता है, वहीं पति के सामने उसे वशीभूत करने के लिये लज्जा का परिहार उतना ही आवश्यक है। यही नहीं, उसे सदैव पति के लिये आकर्षक बना रहना चाहिए, इसलिए पति के पास जाने के पूर्व, पत्नी को सर्वशृङ्गारों से अलंकृत और इत्रादि लगाकर सुगन्धित होकर जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त जहाँ स्त्री को उपर्युक्त बातों का ज्ञान आवश्यक है वहीं उसे रतिक्रीड़ा करने की विधि का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिए, इसके बिना वह अपने पति को वशीभूत नहीं कर सकती[1]।

इतना होते हुए भी अगर वह पढ़ी-लिखी, मृदु-भाषी एवं गुणज्ञ नहीं है तो वह अपने पति को वश में नहीं कर सकती। इसलिये नारी को संस्कृत प्राकृत भाषाओं के ज्ञान के साथ-साथ उसे छन्द, अलंकार एवं काव्य-शास्त्र के अन्य अङ्गों का भी ज्ञान आवश्यक है। स्त्री के ये सारे गुण उस समय तक बेकार हैं जब तक वह मृदुभाषी न हो। जिह्वा ही उसके पास एक ऐसी वस्तु है जिससे वह दूसरों को अपने वश में कर सकती है। अस्तु एक सफल गृहिणी

---

१. प्रथम सिखावहि सुर गुर पूजा। सील सुभाव सिखावहिं दूजा॥

× × ×

डिठ कर लाज सिखावहि नारी। सुरति समय परिहरिये प्यारी॥

× × ×

प्रतिदिन मज्जन करि सुकुमारी। अधिक बोध उपजहिं रुचिकारी॥
तन सोभित सिंगार बनावहु। विधि-विधि अंग सुगंध लगावहु॥

× × ×

कोक कला जनु पुन्य कला। कहै वचन मोहै सुभकारी॥
दच्छिन अंग पुरिष कै बाढ़ै। बायों अंग त्रिया कै चढ़ै॥

(रसरतन)

× × ×

के लिये सुन्दर, सुशील, विदुषी, रति-सहस्यज्ञ एवं पतिपरायणा होना परम आवश्यक[१] है ।

---

१. काव्य संस्कृत प्राकृत जानो । अरु बहु रूपक छंद बखानों ॥
सीषति नागर चतुर सुजाना । जो कछुभेद संगीत बखाना ॥

× × ×

गुन मंजरि कहे सुनि प्यारी । गुन गाहक गुन जान निहारी ॥
गुरु ते गुरु व पुरिख अरु नारी । बिनु गुन ससियों बिनु अधिकारी ॥

× × ×

मन वच क्रम कीजै पति सेवा । पति ते और वियो नहिं देवा ॥

× × ×

वस्य करन रसना रस वाणी । और सकल वस कहीं कहानी ॥
मधुर वचन मधुरे सु बोलहु । मृदु विहँसत घूँघट पट खोलहु ॥

—रसरतन

छिताई वार्ता

—नारायणदास कृत

रचनाकाल (अज्ञात)

लिपिकाल सं० १६४७

कवि-परिचय

कवि का जीवन-वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

देवगिरि में राजा रामदेव यादव बड़ा प्रतापी नरेश हुआ। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन ने उसे लूटने की इच्छा से अपने सेनापति निसुरत खाँ को दक्षिण भेजा। निसुरत खां दल-बल सहित बीच के देशों को लूटता हुआ देवगिरि पहुँचा। आक्रमण से त्रस्त हो राजा रामदेव से प्रजा ने रक्षा की प्रार्थना की। राजा ने तुरन्त मन्त्रियों को बुला कर इस आसन्न संकट से बचने का उपाय पूछा। मन्त्रियों ने बताया कि या तो वह सुल्तान को कन्या देकर सम्बन्ध स्थापित कर लें या जाकर स्वयं उसकी सेवा में उपस्थित हों। राजा रामदेव निसुरत खां के अधीनस्थ राजाओं से मिला और मार्ग में बिना रुके सीधे दिल्ली पहुँचा। वहाँ उसने सुलतान के भाई उलू खां की मध्यस्थता से एक लाख (टंका) भेंट कर उससे मित्रता जोड़ ली। अलाउद्दीन ने भी बहुत सत्कार किया और उसे 'गयर' महल में बहुत सम्मान से टिकाया।

राजा तीन वर्ष तक दिल्ली में रहा। उधर देवगिरि में उसकी कन्या व्याहने योग्य हो गई। रानी ने मन्त्रियों से परामर्श कर दिल्ली में रामदेव के पास सन्देश

१—इस रचना की एक प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के पास और दूसरी इलाहाबाद म्यूजियम में सुरक्षित है। नाहटा जी की प्रति आरम्भ में खण्डित है और म्यूजियम की बीच में, दोनों प्रतियों की कहानी एक ही है। नाम के सम्बन्ध में दोनों प्रतियों में कुछ अन्तर है। जैसे एक का शीर्षक है छिताई वार्ता तो दूसरे में छिताई कथा। ऐसे ही सुरसी और सौरसी दो नाम मिलते हैं। दोनों प्रतियों के आधार पर उक्त कथावस्तु प्रस्तुत की गई है।

भेजा। सन्देश पाकर राजा ने चलने की इच्छा प्रकट की। सुलतान से आज्ञा लेना आवश्यक था। लोगों ने राजा को मना किया कि अलाउद्दीन से कन्या के विवाह की बात मत कहना, पर रामदेव ने सत्यरक्षा की दृष्टि से विश्वास करके अलाउद्दीन से सारी बातें कह दीं। बादशाह ने मनोनुकूल आज्ञा दे दी तथा उपहार स्वरूप एक अच्छा चित्रकार भी उसके साथ कर दिया।

राजा को लौटा देख देवगिरि की प्रजा फूली न समाई। आते ही राजा ने चित्रकार को महल में चित्रों के निर्माण के लिए आज्ञा दे दी। महल देखकर चित्रकार ने उसे अनुपयुक्त ठहराया। अतः एक नवीन प्रासाद का निर्माण किया गया। चित्रकार ने इसमें चित्र अंकित करने प्रारम्भ किये। संयोग से एक दिन राजा की कन्या छिताई उसकी चित्रकारी देखने आयी। चित्रशालामें प्रवेश करते ही उसका रूप देखकर चित्रकार अवाक हो गया। वैसा अलौकिक रूप उसने कभी न देखा था। उसने चुपचाप छिताई की छवि अङ्कित कर ली और अपने पास रख छोड़ी।

इसी बीच राजा ने योग्य वर ढूंढ़ने के लिए ब्राह्मण को भेजा। उस ब्राह्मण ने ढोल समुद्रगढ़ (द्वार समुद्र) के राजा भगवान नारायण के पुत्र सुरसी को योग्य वर समझा और सम्बन्ध स्थिर कर लिया। विवाह धूमधाम से हुआ। ढोल समुद्र में छिताई और सौरसी सानन्द रहने लगे।

एक बार राजा ने दोनों को देवगिरि बुलाया। यहाँ आनेपर सुरसी को मृगया का चस्का लग गया। कभी-कभी उसके साथ छिताई भी जाती थी। रामदेव ने मृगया की बुराई समझा सुरसी को मना किया किन्तु वह न माना। एक दिन मृग के पीछे दौड़ते-दौड़ते वह राजा भर्तृहरि की तपोभूमि में जा पहुँचा। कोलाहल से भर्तृहरि की समाधि टूटी। उन्होंने अहेरी को हिंसा कार्य से विरत होने का उपदेश दिया। सुरसी उन्हें उलटे मारने चला। भर्तृहरि ने तपोबल से मृग की रक्षा कर ली और सुरसी की स्त्री को दूसरे के हाथ पड़ने का शाप दिया। शाप से सुरसी इतना व्याकुल हुआ कि मार्ग ही भूल गया। किसी प्रकार दूसरे दिन वह घर पहुँचा।

चित्रकार अपना कार्य समाप्त कर चुका था। देवगिरि आए उसे चार वर्ष हो गए थे। देवगिरि की शान-शौकत से वह भली भाँति परिचित था। छिताई और सुरसी का विलास देखकर उसे ईर्ष्या हो रही थी। वह दिल्ली जाना चाहता था। उसने राजा से आज्ञा माँग ली और देवगिरि से अलाउद्दीन के लिए बहुत सी भेंट की वस्तुएं लेकर दिल्ली पहुँचा।

दिल्ली पहुँचकर उसने समस्त वस्तुएँ राजा को भेंट की। देवगिरि का भीमसेनी कपूर राजा को बहुत पसन्द आया। बादशाह द्वारा कपूर की प्रशंसा सुनकर देवगिरि की दो दासियाँ, जो उसके यहाँ पहले से थीं, हंसने लगीं। राजा ने इसका कारण पूछा। उन्होंने बताया कि रामदेव के उपयोग में आने वाले कपूर के सामने यह तुच्छातितुच्छ है। चित्रकार ने भी इसका समर्थन किया। इसपर अलाउद्दीन को बड़ा विस्मय हुआ। सभा-विसर्जन के बाद राजा चित्रकार को लेकर 'गहर महल' गया, जहाँ चित्रकार ने देवगिरि का सारा हाल बताया तथा छिताई के स्वरूप की भूरि-भूरि प्रशंसा की। बादशाह का मन डोल गया। चित्रकार ने छिताई का चित्र भी बादशाह को दिया, जिसने आग में घी का काम किया। छिताई को देखने की उत्कट लालसा बादशाह को सताने लगी और उसने तुरन्त सरदारों को बुलाकर सैन्य संघटन की आज्ञा दी। 'ललू खा' के हाथ शासन-प्रबन्ध देकर वह छः महीने में देवगिरि पहुँचा और समस्त देश को ध्वस्त कर डाला।

राजा ने मन्त्री पीपा को भेजकर आक्रमण का पूरा-पूरा विवरण प्राप्त किया। दक्षिणी सेना ने डटकर मुसलमानों का मुकाबला किया, किन्तु मुसलमान बढ़ते ही आये और उन्होंने किले के चारों ओर घेरा डाल दिया। छःमहीने तक घेरे की स्थिति बनी रही। अन्त में रामदेव ने मन्त्रियों से परामर्श कर निश्चय किया कि सुरसी के साथ छिताई सुरक्षित रूपमें ढोला समुद्र भेज दी जाय। सुरसी इसपर तैयार न हुआ अन्त में यह तय पाया कि सुरसी अकेले ढोला समुद्र जाकर सैन्य-संघटन कर देवगिरि लौट आये। सुरसी ने इसे स्वीकार कर लिया।

सुरसी दरबार से बिदा होकर रनिवास में छिताई से मिलने गया। छिताई पति का प्रवास सुन बहुत दुखी हुई। सुरसी ने उसे बहुत समझाया-बुझाया और चिन्ह स्वरूप कंठमाला और वस्त्र दिए। वह पति के दिए वस्त्रालंकार लिए रात्रि में कुश की चटाई पर ही सोती और पास में कृपाण भी रखती थी दिन में शिव का पूजन करती। इस प्रकार सात्विक रूप से वह काल-यापन करने लगी।

इधर सुरसी के चले जाने पर मुसलमानी सेना में विशेष दौड़धूप होने लगी। अलाउद्दीन को संदेह हुआ कि छिताई सुरसी के साथ रणथम्भौर भेज दी गयी है। राघवचेतन तुरन्त बुलवाया गया। अलाउद्दीन ने उसे बहुत डाँटा कि चित्तौड़ की पद्मिनी वाली घटना यहाँ न होने पाए। न तो रामदेव मुसलमान होता है और न अपनी पुत्री ही मुझे देता है। यदि किसी भाँति वह निकल गई तो सब बिगड़ जायगा। जाओ, पता लगाओ कि छिताई गढ़ में है या नहीं। यदि चली

गई है तो तुरन्त समुद्र पार कर उसका पीछा करो। यदि गढ़ में हो तो किले को ढहा दो।

राघवचेतन बड़े संकट में पड़ा। चिंता के मारे उसे रात भर नींद नहीं आई। रात भर वह हंसारूढ़ पद्मावती का ध्यान करता और मंत्र जपता रहा। एकाएक झपकी लगने पर उसे देवी के दर्शन हुए और उन्होंने गढ़ का भेद लगाने का उपाय बता दिया। प्रातःकाल राघव प्रसन्न वदन अलाउद्दीन के पास गया और किले में दूत भेजने का विचार सामने रखा। सुल्तान उसकी सूझ पर बड़ा प्रसन्न हुआ। छिताई का पता लगाने के लिए धनश्री नाइन और मनमोहिनी मालिन बुलाई गई। पहले इन्हीं दोनों को भेजा गया, किन्तु दुर्ग अभेद्य होने के कारण वे न जा सकीं। इसपर राघवचेतन संधिवार्ता के लिए दूत नियुक्त किया गया और उसी के साथ इन दोनों स्त्रियों के प्रवेश की भी योजना बनी। सुल्तान भी देवगिरि का किला देखने के लिए मचल गया। राघवचेतन के लाख मना करने पर भी उसने न माना और काला वस्त्र धारण कर राघवचेतन की पालकी के आगे वह पैदल ही चला।

किले में पहुँच कर राघवचेतन ने दूतियों को छिताई का पता लगाने के लिए भेज दिया और वह स्वयं राजा के पास गया। अलाउद्दीन किले की सैर करने चला गया। उसने बड़े-बड़े घुड़साल देखे और बहुत-सी उत्तमोत्तम वस्तुओं से अपने नेत्र तृप्त किये। घूमते-घूमते वह राम सरोवर पर पहुँचा। इस सरोवर के दूसरे तट पर शिव और विष्णु के विशाल मन्दिर थे, जहाँ छिताई देवपूजन के निमित्त सखियों के साथ नित्य आती थी। संयोग से छिताई वहीं थी। पेड़ों पर फलों और पक्षियों की शोभा देखते हुए बादशाह को शिकार की सनक सवार हुई। कमर से गुलेल निकाल कर उसने दो-तीन पक्षी मार दिए। आवाज सुन कर छिताई के भी कान खड़े हुए और उसने अपनी सखी मैनरेह को भेद लेने भेजा और स्वयं मन्दिर में चली गई।

मैनरेह अलक्षित रूप से सुल्तान के पीछे पहुँची और उसकी गतिविधि देखने लगी। एक बार सुल्तान ने पीछे हाथ करके अभ्यासवश खवास से गोली माँगी। मैनरेह ने क्षण भर में सारी बातें ताड़ ली वह प्रत्यक्ष होकर उसे डाटने लगी और वास्तविक परिचय पूछा। बादशाह ने डर कर सारी बातें साफ-साफ बता दीं और वहाँ से चले जाने के विचार को लिखित रूप में दे दिया। किले से छूटते ही वह कलारी हाट गया, जहाँ उसने राघवचेतन से मिलने का वादा किया था।

राजसभा में राघवचेतन ने राजा से सारी संपत्ति सुल्तानको सौंपने, गढ़

त्यागने और छिताई को समर्पित करने की बात कही। राजा इस पर बहुत बिगड़ा किन्तु 'बैरीसाल' के कहने पर दूत को अवध्य समझ छोड़ दिया। राघव चेतन किसी प्रकार जान बचाकर किले के बाहर पहुँचा।

अलाउद्दीन के साथ जो दूतियाँ किले में आई थीं वे सन्यासिनी के वेश में सिंहद्वार पर पहुँची और युक्ति से छिताई के पास तक चली गईं। उनको सन्यासिनी समझकर छिताई ने यथोचित सत्कार किया। बहुत-सी बातों के बाद सन्यासिनियों ने छिताई का म्लान मुख और कृशगात देखकर यौवन का पूर्ण लाभ उठाने की सलाह दी। छिताई को संत रूप में रहस्य का भान होने लगा। उन दोनों ने इसे ताड़ लिया और बातें बनाकर विश्वास बनाए रखा। छिताई के साथ जाकर उन्होंने वह स्थान भी देख लिया जहाँ वह नित्य-प्रति जाया करती थी। इस प्रकार किले का सारा भेद लेकर वह भी नीचे उतर गईं।

दूसरे दिन दक्षिण की ओर शिवजी के स्थान पर सुल्तान कुछ सैनिकों को लेकर आया जहाँ छिताई पूजन के हेतु जाती थी और उसे पकड़ ले गया। छिताई के पकड़े जाने की खबर चारों ओर फैली और उधर सुल्तान दिल्ली की ओर लौटा। दिल्ली में उसे समझाने-बुझाने का प्रयत्न किया गया, किन्तु निष्फल। अन्त में सुल्तान ने उसकी ओर से अपनी पापदृष्टि हटा ली और उसे राघवचेतन की निगरानी में रख दिया। उसके दैनिक-जीवन के व्यय के लिए पचास हजार टंका बाँध दिया और नृत्य सिखाने के लिए पचास पातुरें भी रख दीं।

छिताई के पकड़े जाने का समाचार पाकर सुरसी बहुत व्यथित हुआ। वह सब कुछ छोड़ योगी हो गया। चन्द्रगिरि जाकर चन्द्रनाथ से दीक्षा ली और योगसाधना की। फिर वीणा ले राजा गोपीचंद की भाँति विरक्त होकर घूमने लगा। घूमते-घूमते उसकी भेंट जटाशंकर साधुओं से हुई जिनसे छिताई की तात्कालिक स्थिति का पता चला। उसकी खोज में चलते-चलते वह जमुना के तट पर स्थित चन्दवार नगर पहुँचा। उसकी वीणा से पशु-पक्षी भी मोहित हो जाते थे। स्त्रियाँ काम-विह्वला हो जाती थीं।

वह वहाँ से दिल्ली की ओर बढ़ा। दिल्ली में उसकी वीणा की विशेष ख्याति फैली।

छिताई को पति के वीणावादन की विशेषता का ज्ञान था ही, उसने "सरसी" का पता लगवाने के लिए ही दिल्ली के प्रसिद्ध संगीतज्ञ जनगोपाल के यहाँ अपनी वीणा रखवा दी।

सरसी जब जनगोपाल के घर की ओर से निकला तो लोगों ने उससे छिताई की वीणा बजाने को कहा। उस वीणा के छूते ही उसे छिताई के मिलन का अनुभव होने लगा। उसने वीणा से ऐसा मधुर स्वर निकाला कि सब मोहित हो गए। छिताई की एक दासी ने सारा हाल स्वामिनी से जा बताया। इसके उपरान्त सरसी की राघवचेतन से मुलाकात हुई। राघव योगी सरसी को लेकर दरबार में आया। उसके चमत्कार से बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने रनिवास में भी सरसी को अपना कौशल दिखाने के लिए भेजा

छिताई भी वहाँ मौजूद थी। उसके नेत्रों से अश्रुधार बहने लगी जो बादशाह के कन्धे पर गिरी। सुलतान ने छान-बीन कर सारा हाल जान लिया और अन्त में सरसी को छिताई सौंप दी।

दिल्ली से चलकर सरसी ने अपने गुरु के चरण स्पर्श किए तदुपरान्त देवगिरि गया। पुत्री और जामाता को पाकर राजा रामदेव बहुत प्रसन्न हुआ। कुछ दिनों तक देवगिरि में रहने के उपरान्त सरसी ढोला समुद सपत्नी लौटा और आनन्द से राज्य करने लगा।

कथा का ऐतिहासिक आधार

छिताईवार्ता प्रेमकाव्य होते हुए भी ऐतिहासिक महत्त्व से पूर्ण है। इसकी सारी प्रमुख घटनाएँ और व्यक्ति इतिहास के विवरण से मिलते हैं।

राघवचेतन जो पद्मावत में भी मिलता है, ऐतिहासिक व्यक्ति जान पड़ता है। कुछ इतिहासकारों ने इसे मलिक नायक काफूर हजार दीनारी से और कुछ गुजरात के रायकर्ण के मन्त्री माधव से सम्बधित किया है। "किंकेड़" और "पारसनीस" के अनुसार, कर्णदेव ने जब माधव की पत्नी पर मोहित होकर, उसे अधिकार में कर लिया तब माधव ने अलाउद्दीन को गुजरात पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया था। जायसी का 'राघवचेतन' द्रव्य लोभ से अलाउद्दीन को प्रेरित करता है। हो सकता है कि 'माधव' ही नाम बदल कर राघव बन बैठा हो।

इतिहास में रामदेव और निसुरत खाँ के नाम भी मिलते हैं तथा अलाउद्दीन की देवगिरि पर चढ़ाई की घटना भी वर्णित है। अलाउद्दीन ने देवगिरि पर दो बार चढ़ाई की थी। यह कथा अनुमानतः अलाउद्दीन की दूसरी चढ़ाई से सम्बन्धित है।

इतिहास को रामदेव की कन्या का ज्ञान नहीं। कथा ने उसे छिताई के नाम से पुकारा है। यही नाम पद्मावत, वीरसिंहदेव चरित आदि में भी है। जान कवि ने इसे छीता के नाम से पुकारा है। इतिहास में छिताई से मिलते-जुलते

'खिताई' नाम के नगर का उल्लेख है। रशीदुद्दीन जामिउत् तवारीख में लिखता है कि 'खिताई' होकर माबार से (इसकी राजधानी द्वार समुद हैं) जो सड़क आई है वह बावल तक जाती है।

कथा में वर्णित नायक गोपाल[1] भी ऐतिहासिक व्यक्ति है।

इस प्रकार वार्ता की सारी घटना अगर ऐतिहासिक नहीं है तो भी चरित्र और मूल घटनाएँ ऐतिहासिक अवश्य ठहरती हैं[2]।

जायसी के पद्मावत की तरह प्रस्तुत रचना भी इतिहास और कल्पना के योग से निर्मित हुई है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इसके पात्र और घटनाएँ ऐतिहासिक हैं किन्तु कथा में आश्चर्य तत्व और कौतूहल का समावेश करने के लिये कवि ने काल्पनिक घटनाओं और ऐतिहासिक घटनाओं को सूत्रबद्ध कर कहानी के सौष्ठव को बढ़ा दिया है। उदाहरण के लिए भर्तृहरि के शाप की घटना कवि की स्वतन्त्र उद्भावना है। ऐसे ही गोपाल के यहाँ वीणा रखवाकर अपने पति के पता लगाने की बात भी कल्पित जान पड़ती है।

रामदेव के यहाँ प्रयुक्त होने वाले 'काफूर' की चर्चा के द्वारा छिताई के सौन्दर्य और रामदेव के ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा की बात को कवि ने ऐसे सुन्दर ढंग से गुंफित किया है कि कथावस्तु में नाटकीय तत्व के समावेश के साथ-साथ अलाउद्दीन का स्वभावचित्रण भी हो जाता है। कामी और लोलुप अलाउद्दीन को अन्त में सहृदय और निष्काम अङ्कित कर कवि ने प्रस्तुत रचना में स्वभाव चित्रण का भी समावेश किया है। साथ ही यह रचना मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं में सद्भावना जगाने और अंकित करने का प्रयत्न करती है कि अलाउद्दीन जैसे 'कट्टर और क्रूर' मुसलमान के हृदय में भी जब कोमलता पाई जा सकती है तब हम अन्य मुसलमानों को भी प्रेम से अपना बना सकते हैं। इस प्रकार यह रचना सांस्कृतिक सामञ्जस्य के प्रयत्नों का भी प्रतीक है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

छिताई के नख-शिख वर्णन में कवि ने कवि-समय-सिद्ध परम्परागत उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का ही संयोजन किया है। जैसे बालों के लिये भौंरों की उपमा, मुख के लिये चन्द्रमा से तुलना आदि।

---

१. यह अलाउद्दीन के समय में बहुत बड़ा गवैया हो गया है।

२. विशेष जानकारी के लिए देखिए (नागरी प्रचारिणी पत्रिका) में प्रकाशित बटे कृष्ण जी का लेख—सं० २००३ व ५१ पृ. १३७ से १४७ तक।

"कुटिल केस सिर सोहइ बाल, कच कंवरि जनि मधुकर माल।
मोती मांग मदन की बाट, राज नीक सम तिलक लिलाट।
सरद सोम ससि बदन प्रकाश, मदन चाप समभुइइ तासु।
मृग सावक सोइइ लोल, उपइ कंचन तिसा कपोल।
धन धन तेरी ये अँखि, भरही जाके जिउ की साहि।
बूकी हेम जन अमृत सांन, काक बकरो ने कोन बानि।"

वय:सन्धि का वर्णन भी इस काव्य में प्राप्त होता है किन्तु इस वर्णन में भी उरोजों आदि के लिए कवि ने शंभु और श्रीफल आदि से तथा नारी के अन्य अङ्गों की उपमा परम्परागत ही दी है जैसे—

"कुच कठोर जीव कर बढ़े, जानहुँ नृप संधि हरन जै चढ़े।।
सुवन सुढार सुकंचन खंभ, श्रीफल सम सोहक सुथंभ।।
रहेत कुच कंचकी उचाइ, मनहु गूड़रीदई तनाइ।।
गहिरी नाभि बखानइ कुन, मानहु काम सरोवर भुवन।।"

संयोग-शृङ्गार

संयोग पक्ष में 'भोग-विलास' और 'केलि' का वर्णन मिलता है। प्रथम समागम के समय कवि ने सात्विक भाव और 'किलकिंचित हाव' का संयोजन किया है।

"छारत कंचुकी लजाइ। फूकइ द्रिष्ट दिया बुझाइ।।
भौ विमान मुखि कंपइ देह। चल्यो प्रसैद प्रथम मितनेह।।
अधर प्रकार कुच गहन देइ। छुवन न अङ्ग छिताई देइ।।
घूँघट वदन तर हंडी कीउ। दोउ हाथ लगावत हीउ।।
कठिन गांठि दृढ़ विधना दइ। छोरत जवहि सुरंसी लइ।।
नाना नाभि नारि उचरइ। तब चित्त चउप चत्रगनी करइ।।
संकइ सकुचइ वीरी न खाइ। रही पीठ दे हाथ छुड़ाइ।।"

उपर्युक्त हावों के वर्णन के उपरान्त कवि ने प्रेमाख्यानों में मिलने वाले संभोग शृङ्गार का परम्परागत वर्णन किया है जो अनावृत होते हुए भी कहीं-कहीं अमर्यादित भी हो गया है।

"चउरासी आसन की खांनि। दुलइ चतुर चतुर मनि गयान।।
जहाँ वार तिथि अङ्ग अनङ्ग। छुवत सुप्रवइ छिताइ अङ्ग।।
आसन सब नौ कमल विध बंध। विपरीत रति न चोज अति संघ।।
कोकिल बयनि कोक गुन गनो। कछु बुधि सखिन पइ सुनी।।
दोउ चतुर सुरत रस रंग। बहुत उपजावइ अनंग।।"

वियोग-पक्ष

जहाँ तक विप्रलंभ शृङ्गार का सम्बन्ध है वह नहीं के बराबर मिलता है। 'सुरसी' के बिछोह के उपरान्त भी विरहणी छिताई की नाना मानसिक अवस्थाओं का वर्णन न करके कवि कहानी के सूत्र को लेकर आगे बढ़ जाता है। इस प्रकार इस काव्य में वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक अंश अधिक मिलते हैं। मृगया में 'सुरसी' के एक दिन के लिए रास्ता भूल जाने के समय छिताई की विह्वलता और विरह जनित दुख की एक झांकी मिलती अवश्य है—

"भू कीन्हो सेज भोग को साज। रह्यौ नाह बाहरि निसि आज॥
उझकि झरोखे लेहि उसासु। बिख चन्दन चन्दन को आसु॥"

उपर्युक्त अंश में अपने पति के लिये व्याकुल एक पति-परायणा नारी का चित्रण और क्षणिक बिछोह से उत्पन्न बिरह-व्यथा का चित्रण बड़ा सुन्दर और हृदयग्राही बन पड़ा है। खेद की बात है कि कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार वर्णन की इस कुशलता का प्रयोग वियोग के दीर्घकाल के बीच नहीं किया है। इसके स्थान पर उसने 'सुरसी' के चले जाने के उपरान्त उसे एक धर्मपरायणा सती साध्वी के रूप में अङ्कित किया है। उसके ऐसे चित्रण काव्य में अगर सौष्ठव नहीं लाते तो तत्कालीन स्त्रियों की सामाजिक अवस्था, कर्तव्यनिष्ठा और पतिपरायणता के दृश्य अवश्य उपस्थित करते हैं। यही कारण है कि विप्रलम्भ शृङ्गार की न्यूनता होते हुए भी यह काव्य ऐसे स्थलों पर सरस बना रहता है और हृदय को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। कौन ऐसा है जो छिताई के प्रेमयोगिनी रूप पर मुग्ध न हो जायगा। छिताई की एक ऐसी पवित्र झांकी देखने योग्य है—

"कंठ माल जपमाली करी। पिउ पिउ जपत रहइ सुंदरी॥
सचल सीस सीलइ जलन्हाई। दिव धसि सिव की पूजा जाई॥
कुंअन पांन रांनो परहर्‌यौ। कुस साथरौ छिताई कर्‌यौ॥"

छंद

प्रस्तुत रचना दोहा चौपाई के अतिरिक्त दूहा, दूहरा, वस्तु आदि छंदों में भी प्रणीत है।

दूहा—चेतन होइ विचारीत, कीउ आंनु गढ़ सुधि।
कि सुरखुरु सुरितांन सु, कि हीय आसुधि॥

दूहरा—आसा बैरी न कीजिय, ठाकुर न कीज मीत।
खिन तातौ खिन सीयरौ, खिन वयर खिन मीत॥

वस्तु—कहइ जोगी सुनहि रे मूढ़, तोहि बुधि विधना हरी।
करहि पापु बन जीव मरइ, भलौ बुरौ जानंइ नहीं॥

जीउ अदेस चित्त मांहि विचारूं
इउ मोपहि सुनि गयांनु चउरासी लख जीवा जोनि ।।
तेगिन आप समांन ।।

अलंकार

हम ऊपर कह आये हैं कि नखशिख वर्णन आदि में कवि ने कवि-समय-सिद्ध उपमानों, उत्प्रेक्षाओं आदि का ही प्रयोग किया है, इसलिए इस रचना में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार ही प्रधानतः मिलते हैं ।

भाषा

इसकी भाषा राजस्थानी है, पर कहीं-कहीं डिंगल का पुट भी मिलता है । यहाँ यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि नाहटा जी से प्राप्त प्रतिलिपि उतनी ही अशुद्ध है जितनी इलाहाबाद म्यूज़ियम की । शब्दों का तोड़-मरोड़ भी कुछ ऐसा है कि वास्तविक भाषा संबंधी निष्कर्ष देना दुस्तर कार्य है ।

लोकपक्ष

छिताई वार्ता में लोकपक्ष शृङ्गार से अधिक मुखर है । भारत में कन्या का विवाह करना चिरकाल से पुण्य समझा जाता है किन्तु जिसके घर में कुंवारी कन्या ब्याहने योग्य हो वह चाहे राजा हो या रंक चिन्ता के कारण सो नहीं सकता, जब तक कन्या के उपयुक्त वर न मिल जाय—

"घर मांहि कन्या ब्याहन जोग । अरु भ्रम करइ मीड़ीआ लोग ।।
जाकै कन्या कुआरी होइ । निस भरि नींद कि सुई सोई ।।
कन्या रिन व्यापै पीर । तिनकै चिन्ता होई सरीर ।।"

किन्तु यह विवाह सम्बन्ध अपने बराबर के स्तर वाले के साथ न करना चाहिए वरन् जिस घर में सज्जन बसते हों और पुरखों का नाम हो वहीं करना चाहिए ।

"पुरखा गति सजनाइ जिहां । निनचइ कन्या दोजइ तिहां ।।
ब्याह वैर मित्री या प्रमान । एंत न चाहीइ आप समान ।।"

विवाह के समय में गाई जाने वाली गाली को प्रथा भी उस समय पाई जाती है ।

"परदानी जरनगर के सोजउ, दीजइ गारि गारि के चौज ।।
कोकिल वचन रतन जे नारि । सुधा समानि सुनावइ गारि ।।"

इसके अतिरिक्त साधारण लौकिक व्यवहार से सम्बन्धित दो तीन सूक्तियाँ बड़े काम की मिलती हैं जैसे प्रत्येक चीज की अधिकता आगे चल कर सदैव दुखदाई बन जाती है ।

"अति सनेह थी होइ बिउङ्ग । अधिक भोग थी बाढ़इ रोग ॥
अति हांसी थे होइ बिगारु । जि कुअर पंडव विवहार ॥
अति सरूप सीता को हरण । अधिक विखइ रावण को मरण ॥"

उस युग की सबसे बड़ी एक प्रथा का इस काव्य में पता चलता है और वह है मकानों को चित्र से सजाने की प्रथा । इसी के कारण ही 'वार्ता' की सारी घटनाएँ हुई । इसमें सबसे विशेष बात है घर की चित्रसारी में अंकित किए जाने वाले भोगासनों की प्रथा । छिताई जब महल को देखने आई तब उसकी सखियों ने उसे ऐसे चित्रों को दिखाया । अगर ऐसी प्रथा उस समय प्रचलित न होती तो कवि कभी भी इसका वर्णन न करता ।

"देखी कोक कला खांति । चउरासी आसन की भांति ॥
आसन चित्र विविध प्रकार । सुभ विपरीत रंग रस सार ॥
आसन देखत खरी लजाइ । अञ्चल मुँह महि दीन्हइ मुस्क्याइ ॥
सखी दिखावहि पसारि । कहौ आहि अहु कहा विचार ॥"

इस प्रकार गार्हस्थिक जीवन, लोक व्यवहार, आचार, नीति, लोकप्रवृत्ति से सम्बन्धित उक्तियाँ इस काव्य के सौष्ठव और उपयोगिता को बढ़ाने में सहायक हुई हैं । अस्तु छिताई-वार्ता साहित्य के अतिरिक्त सांस्कृतिक महत्व की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण रचना है ।

———

"'माधवानल कामकन्दला"

कथा का स्रोत

माधवानल कामकन्दला की प्रेम-कहानी आर्य-गाथाओं में बड़ी प्रसिद्ध रही है, कितने ही संस्कृत और अपभ्रंश के कवियों ने इसे अपनी उत्कृष्ट रचनाओं का आधार बनाया है।

इसका मूल स्रोत क्या है, अब तक निश्चित रूप से पता नहीं चल सका। श्री कृष्ण सेवक कटनी के अनुसार माधवानल की रचना सर्वप्रथम कवि आनंदधर ने संस्कृत में की थी। गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज से प्रकाशित माधवानल कामकन्दला की भूमिका में श्री मजूमदार जी भी इसके रचनाकाल को निश्चित नहीं कर सके हैं। उन्होंने इस कथानक की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "यह कहानी पश्चिमी भारत में बहुत प्रसिद्ध थी। बहुत दिनों के उपरान्त इस कथानक के आधार पर मराठी में रचनाएँ प्रारम्भ हुईं। हिन्दी में सबसे पहले आलम ने इसकी रचना हिजरी संवत् ६६१ में की[1]।"

आलम ने भी किसी संस्कृत की कथा को सुना था और उसी के आधार पर इसकी रचना की थी कवि इस कथानक की भूमिका में स्पष्ट लिखता है कि—

"कछु अपनी कछु पर कृति चौरों। जथा सक्ति करि अच्छर जोरौं॥
सकल सिगार बिरह की रीति। माधो कामकन्दला प्रीति॥
कथा संस्कृत सुनि कछु थोरी। भाषा बांचि चौपई जोरी॥

क्या यह कथा आनन्दधर विरचित थी अथवा किसी अन्य कवि की? कुछ कहा नहीं जा सकता। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (काशी विश्वविद्यालय) से इस कथानक के स्रोत पर हमने विचार विनिमय किया था। उनके अनुसार

---

1. "The story appears to have been popular mostly in western India end only at a very late period it came to be adopted in marathi. The version of the story in Hindi by a Muslim poet Alam was composed in Hizri Nine ninty one."

Gaekwad Oriental Series Vol. XCVIII Page 9.

इसका स्रोत विक्रम की पहली शती के लगभग हो सकता है। उनका कहना है कि माधवा और कन्दला की कहानी सम्भवतः 'प्राकृत' और अपभ्रंश के सन्धि काल में रची गई थी 'गाथा' छन्द प्राकृत का छन्द है, और यह छन्द सभी आख्यानो में प्राप्त होता है किन्तु इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता। उन्हीं के अनुसार सस्कृत की सिहासन बत्तीसी में माधवानल कामकन्दला नहीं मिलती, किन्तु किसी हिन्दी अनुवाद में उन्होंने देखा है। बोधा ने भी सिहासन बत्तीसी का उल्लेख किया है—

"सुन सुभान अब कथा सुहाई। कालीदास बहु रुचि सह गाई॥
सिहासन बत्तीसी माहीं। पुरिन कही भोज नृप पाहीं॥
पिंगल कह बैताल सुनाई। बोधा खेतसिंह सह गाई॥
रुचिर कथा सुन हे दिल माहिर। इश्क हकीकी है जग जाहिर॥"

किन्तु हमें अभी तक कोई सिंहासन बत्तीसी नहीं प्राप्त हो सकी है, जिसमें यह कथा मिलती हो। कन्दला नाम की 'पुतली' अवश्य एक अंगरेजी की सिंहासन बत्तीसी में मिलती है, किन्तु उसके मुख से प्रस्तुत कथानक का परिचय नहीं प्राप्त होता।

श्री मायाशंकर याज्ञिक के संग्रह में एक संस्कृत की गद्य-पद्य-मय प्रति देखने को मिली। इसका लिपिकाल और रचनाकाल अज्ञात है। भाषा में भी स्थान-स्थान पर बड़ा अन्तर मिलता है। कहीं-कहीं इस प्रति की भाषा में वर्तमान खड़ी बोली के शब्द भी मिलते हैं। हिन्दी में सर्वप्रथम आलम रचित माधवानल कामकन्दला प्राप्त होता है, किन्तु रचनाकाल, मूल कथा एवम् शैली में आलम रचित इस ग्रन्थ की प्रतियाँ भिन्न-भिन्न मिलती हैं।

मूल कथा और शैली के अनुसार आलम की रचना दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं। संक्षिप्त और बृहद्।

नागरी प्रचारिणी के आर्य-भाषा पुस्तकालय में दो प्रतियाँ हैं। एक खंडित है जिसका लिपिकाल और रचना काल अज्ञात है, दूसरी पूर्ण है जिसमें रचनाकाल ६९१ (सन् नौ सौ इक्यावनबे) दिया है और प्रतिलिपिकाल १८१७। किन्तु लखनऊ में श्री मायाशकर याज्ञिक की प्रति जो श्री उमाशंकर याज्ञिक के द्वारा देखने को मिली रचनाकाल ६५१ (सन् नौ सौ इक्यावन जबही। कथा आरम्भ कीन्ह यह तबहीं॥) मिलता है। इसका लिपिकाल सम्वत् १६३५ है और लिपिकार हैं भरतपुर निवासी चुन्नी जी। इन्हीं के पास संग्रहीत छोटी प्रति में सन् नौ सौ इक्यावन आही, मिलता है और तीसरी प्रति में 'नौ सै इक्यावन

जबही प्राप्त होता है। पंजाब यूनिवर्सिटी में भी एक प्रति है जिसका रचनाकाल श्री उमाशंकर जी ने मँगवाया था उसमें भी उनके अनुसार नौ सौ इक्यावन दिया है।

तिथियों की इस भिन्नता के साथ बृहद् प्रति में मसनवी शैली में खुदा और पैगम्बरों की वन्दना मिलती है साथ ही जयन्ती अप्सरा के पूर्व जन्म की प्रेम-कथा का वर्णन मिलता है किन्तु छोटी प्रति में यह कथा नहीं है और न पैगम्बरों की ही वन्दना की गई है।

उपर्युक्त विश्लेषण का कारण यह है कि अवान्तर के कवियों ने दोनों कथाओं को अपनाया है कुछ कवियों में पूर्व जन्म की प्रेम कथा नहीं है और कुछ में वह मिलती है। आनन्दधर[1] की संस्कृत वाली रचना में पूर्व जन्म की प्रेम-कथा नहीं मिलती। इसलिये यह सन्देह होता है कि आलम ने किसी अन्य कवि की रचना सुनी थी। या यह भी हो सकता है कि ९५१ में लिखी गई कथा उनके आधार पर हो किन्तु ९९१ में उसने मूल कथा को परिवर्तित कर दिया हो। यह केवल अनुमान ही है।

यह तो निश्चित ही है कि 'माधवानल' के दोनों रूप जनता में प्रचलित थे। गायकवाड़ सीरीज में दोनों प्रकार की रचनाएँ सग्रहीत है। हो सकता है कि वह माधव के जीवन की घटना ने जनता को इतना मुग्ध कर लिया हो कि वह कटला और माधव को दैवी स्त्री पुरुष के रूप में देखने लगी हो। लोक कथानकों में ऐसे परिवर्तन बहुत अधिक मिलते हैं। लोक रुचि इन लोक कथानकों मे समय समय पर परिवर्तन आने लगतो है। यहाँ तक कि कोकशास्त्र में भी माधव का नाम लिया जाने लगा था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय में पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह को उलटते पलटते मुझे कोकशास्त्र से सम्बन्धित एक प्रति मिली थी। इस प्रति में विषय प्रवेश करता हुआ कवि लिखता है कि—"कोकदेव कहते हैं बो ऐते प्रकार जाने, रूप माधव नल सारिषौ, भोग तौ माधवानल के सौ, मुख चन्द्रमा सारिषौ, धन लही अवचल, आसन गरुड़ के सौ, सरस्वती कैसी बानी, बुद्धि तौ गनेस की सी, पराक्रम विक्रमाजीत कै सौ होइ।"

उपर्युक्त अंश से यह स्पष्ट है कि माधव और विक्रमादित्य का नाम देव-पुरुषों के साथ लिया जाने लगा था। साथ ही वह सांसारिक सुख और समृद्धि के प्रतीक बन गए थे। ऐसी अवस्था में जन्मान्तरवाद का समावेश इस कथानक में हो जाना आश्चर्यजनक नहीं है।

---

१. गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज में प्रकाशित।

कवियों ने माधव के प्रेम को आदर्श प्रेम का प्रतीक मान लिया था और विरहिणियों को ढाढ़स बँधाने के लिये नल, तथा उषा-अनिरुद्ध की कथा के साथ माधवानल की कथा भी सुनाने लगे थे। पुहुकर ने रसरतन में मुदिता के द्वारा राजकुमारी को माधवानल कामकन्दला की कथा भी सुनाई।

यह कथा कवियों को इतनी प्रिय रही है कि अब तक हमें आठ छोटे-बड़े प्रकाशित और अप्रकाशित काव्य प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है प्रस्तुत कथानक पौराणिक कथानकों के समान ही जनता में प्रिय था।

ऐतिहासिक आधार

प्रश्न यह उठता है कि क्या माधव से सम्बन्धित घटनाएँ कल्पित है या उनका कोई आधार भी है। प्रबन्ध काव्यों में कथानक कल्पित, ऐतिहासिक या पौराणिक होते हैं। अधिकतर यह देखा गया है कि साधारणत: प्रचलित गाथाएँ या तो पौराणिक होती हैं या ऐतिहासिक जो जनश्रुति के रूप में पूर्वजों की थाथी के रूप में हम तक चली आई हैं। यही दो प्रकार की गाथाएँ ही सर्वसाधारण के मनोरञ्जन एवं शिक्षण का आधार भी कवियों के द्वारा बनती हैं। प्राचीन हिन्दू गाथाओं का श्रोत बृहद्‌कथा कोष और कथासरित्‌सागर एवं महाभारत ही रहा है। सिंहासनबत्तीसी और बैतालपचीसी भी लोक गाथाओं के संग्रह कही जा सकती हैं, किन्तु इनको इतनी मान्यता नहीं दी जा सकती। उक्त प्राचीन संग्रहों में माधवानल की कथा नहीं मिलती।

कल्पित कथानक यह हो सकता है, किन्तु भारत में प्रचलित लोक कथाओं के आगे कल्पित कथानकों को जनता द्वारा इतनी मान्यता नहीं मिलती कि वह शताब्दियों तक जीवित रह सकें। कम से कम जिस युग में इसकी रचना हुई है उस समय की प्रवृत्ति ऐसी ही थी।

श्री कृष्ण सेवक कटनी ने सन् १९३३ की अखिल भारतीय ओरियन्टल कान्फ्रेंस में माधवानल कामकन्दला पर एक लेख पढ़ा था जिसमें उन्होंने माधव और कन्दला को ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध किया है।

---

१. (क) माधवानलाख्यानम्-आनन्दधर (ख) माधवानल कामकन्दला-आलम। (ग) माधवानल कामकन्दला चउपई कुशललाभ (घ) माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध गणपति (च) माधवानल-कथा दामोदर (छ) विरहवारीश (माधवानल कामकंदला) बोधा ज) माधवानल नाटक-राज कवि केलि।

उनका कहना है कि माधवानल का जन्मस्थान पुष्पावती नगरी अथवा वर्तमान बिलहरी है। यह नगरी मध्यप्रदेशान्तर्गत जिले में ८०° से ३०° पूर्व रेषांस तथा २३° से ५०° उत्तर अक्षांश में स्थित एक प्राचीन नगरी है। इसका प्राचीन नाम पुष्पावती नगरी है। राजा कर्ण ने अवनति अवस्था में पाकर इसे फिर बसाया और इसका नाम बिलहरी रखा। राजा कर्ण कलचुरी वंश के थे। ये चेदिराज राजा गंगेयदेव के पुत्र थे। इन्होंने सन् १०४० से १०८० तक राज्य किया। ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में राजा कीर्तिवर्मन ने राजा कर्ण को हराया और बिलहरी उनके हाथ में चली गई। बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में जब गोविन्दचन्द्र कन्नौज के राजा हुए तो वह नगरी (बिलहरी) उनके राज में सम्मिलित हो गई। राजा कर्ण ने जो उन्नति के साधन उत्पन्न कर दिए थे उनके द्वारा क्रमशः इस नगरी की उन्नति हुई। साहित्य संगीत और कलाओं से इसने बहुत ख्याति प्राप्त की। ऐसे वातावरण में थोड़े ही काल में अर्थात् १२ वीं शताब्दी के आदि में वहाँ अति सुन्दर गुणवान तथा संगीत और वाद्यकला में अतिशय निपुण माधवानल नामक एक ब्राह्मण ने जन्म लिया। इनके पिता का नाम शंकरदास था। ये गोविन्दचन्द राजा के पुरोहित थे। छोटी अवस्था में ही माधवानल सारी विद्याओं में पारङ्गत हो गए। इसकी वीणा-वादन की कला पर नगर के नर-नारी मुग्ध हो जाते थे। एक दिन अपने पति को खाना परोसते समय एक ब्राह्मणी माधव की वीणा पर मुग्ध होकर विचलित हो गई और उसके हाथ से भोजन सामग्री गिर पड़ी। ब्राह्मण ने राजा को यह वृत्तांत सुनाया और राजा ने माधव को स्त्रियों को विचलित करने के अभियोग में निर्वासित कर दिया।"

वहाँ से चल कर माधवानल राजा कामसेन की कामावती नगरी में पहुँचे। इसका पता खैरागढ़ राज्य के डोंगरगढ़ नगर के समीप जो बिलहरी से लगभग २०० मील है लगता है। सम्भवतः डोंगरगढ़ ही प्राचीन कामावती नगरी है। कामकन्दला का भवन बिलहरी में उजाड़ दशा में अब भी देखा जा सकता है। वहां पत्थर के खम्भे आदि पुरानी शिल्पकला का नमूना दिखाते हैं। एक ऐसा पत्थर गायकुण्ड के घाट पर जो उसका जीर्णोद्धार करते समय लगाया गया है कन्दला के भवन का मालूम होता है। इस पर मरम्मत की तिथि पूस बदी ७ सम्वत् १३५५ खुदी है। उससे भी कामकन्दला के भवन की वय का कुछ आधार मिलता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि माधवानल का मुख्य स्थान पुष्पावती नगरी अर्थात् बिलहरी था। तथा कामकन्दला का स्थान वर्तमान खैरागढ़ रियासत के

डोंगरगढ़ नामक नगर के समीप स्थित कामसेनपुरी (कामावती) नगरी था। डोंगरगढ़ के पहाड पर एक महल नष्टप्राय अवस्था में कामकन्दला के महल के नाम से प्रसिद्ध है जो अति जीर्ण अवस्था में अब भी स्थित है। इस नाम के दूसरे महल का ध्वंसावशेष बिलहरी में भी है। बिलहरी के राजा मकरध्वज के बीजक से परिज्ञात होता है कि बिलहरी और डोंगरगढ़ के बीच में आवागमन का सिल-सिला था। कथाकारो ने लिखा भी है कि माघ १०० कोस चलकर कामसेन पुरी दस दिन में पहुँचा।

इन सब बातों से पाया जाता है कि डोंगरगढ़ कामावती नगरी के नाम से प्रसिद्ध था और माधवानल यहां से अपनी प्रियतमा कामकन्दला के साथ बिलहरी गए। यह दोनों स्थान ऐतिहासिक महत्व के है[1]।

प्रश्न यह उठता है कि यह राजा विक्रमादित्य कौन थे? इसलिए कि विक्र-मादित्य के विषय में भी इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है। फिर क्या विक्रमादित्य ने पुहुपावती में कभी प्रवेश किया था? कामकन्दला के लगभग सभी आख्यानों में माधव का थुहुपावती लौटना मिलता है। बोधा के विरहवारीश में कन्दला के मिलने के उपरांत राजा विक्रमादित्य का माधव को बनारस का राज्य देना लिखा गया है। साथ ही साथ यह भी लिखा है कि कंदला के कहने पर विक्रमादित्य ने लीलावती के लिये ससैन्य पुष्पावती की ओर प्रयाण किया था। राजा गोविंदचंद का विक्रमादित्य से मिलना भी बताया गया है।

दूसरी बात विक्रमादित्य का शैव होना है। प्रत्येक आख्यान में शिव के मंदिर में माधव के द्वारा गाथा लिखने की घटना मिलती है। शिव पूजन के लिये आए हुए विक्रमादित्य उसे ही पढ़ कर माधव की पीड़ा को मिटाने के लिये उत्सुक होते है।

बोधा के विरहवारीश से विक्रमादित्य का बनारस से सम्बंध स्थापित होता है। उनके शैव होने में कोई संदेह नहीं है।

इन दोनों बातों पर श्री कटनी जी ने कोई प्रकाश नहीं डाला है। लेकिन पुहुपावती के पुनः बसाने वाले राजा कर्ण के सम्बन्ध में जिन्होंने सन् १०४० से १०८० तक राज्य किया था एक लेख देखने को मिला है जिसके अनुसार राजा कर्ण 'गांगेयदेव, के पुत्र थे। गांगेयदेव ने अपने को विक्रमादित्य की उपाधि से आभूषित किया था और इनका राज्य तेज भुक्ति (बुन्देलखंड) में था। तथा

---

1. Proceedings and Transactions of the seventh All India Oriental Conference, Baroda, December, 1913.

यह वामदेव (शिव) अनन्य भक्त एवं पुजारी थे। इनका सम्बन्ध बनारस से भी था[1]।

उपर्युक्त बातों का कटनी जी के पुहुपावती से सम्बन्धित कथनों से साम्य बैठता हैं। साथ ही विरहवारीश में माधव को काशी का राज्य देने की घटना भी इस आधार पर सत्य प्रतीत होती है। बोधा स्वयं बुंदेलखंड निवासी थे, इसलिये इन्हें तत्कालीन इतिहास का ज्ञान था, ऐसी आशा की जा सकती है।

माधव के समय पुहुपावती पर राजा कर्णदेव के वंशजों का अधिकार नहीं था। कटनी जी के अनुसार ग्यारहवीं शती में कीर्तिवर्मन ने उसे राजा कर्ण से छीन लिया था। हो सकता है कि १२ वीं शती में राजा कर्ण के वंशज अपने को गंगेयदेव की विक्रमादित्य की उपाधि से आभूषित किए रहे हों और माधव कामवती से निकाले जाने के उपरान्त इनके राज्य में पहुँचा हो और उनकी सहायता से कन्दला को पाया हो। यह तीनों राज्य मध्यप्रान्त के अन्तर्गत ही पड़ते हैं।

इस ऐतिहासिक घटना को जनश्रुति ने विक्रम सवत् चलाने वाले विक्रमादित्य से सम्बन्धित कर दिया है, ऐसा अनुमान करने मे कोई विशेष त्रुटि की सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती।

अस्तु माधवानल कामकन्दला को ऐतिहासिक घटना पर आधारित कथा मानने में हमें कोई सन्देह नहीं होता है।

---

1. "In the land of Tej-Bhukti now knhwn as Bundelkhand, there once ruled a king named Gangeyadeva Vikramaditya. His only inscription that of Pivan, which mentions the name of Maheshvar seems to have been a Saiva record. But what appears to be exclusive evidence on the point is the statement of his son's Benares grant that the latter [medit-ated on the feet of Parama Bhattarak Maharajadhiraj-Paramesnvara Shri Vamdeva......From A. D. 1042 the date of this record, several successors of karna also refer to thems-elves in their records as meditating on the feet of Vamdev."
   —Some Aspects of Indian Belief :
   By Dr. Hemchand Ray, M. A. Ph.D. (London), Page 355.
   —The Seventh All India oriental Conference, Baroda, Dece mber, 1133.

[माधवानल आख्यान की प्रतियों में प्रयुक्त सामान्य मूल घटनाएँ,

माधवानल कामकन्दला आख्यान विविध कवियों के द्वारा लिखा गया है, इसलिये लोकरुचि अथवा कविरुचि के अनुसार कथानक में परिवर्धन और संशोधन भी मिलता है किन्तु प्रत्येक काव्य में आधार, मूल बातें और घटनाएँ एक सी ही हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) माधवानल एक रूपवान सर्वगुण सम्पन्न-पुहुपावती नगरी का ब्राह्मण है।
(२) अपनी रूप यौवन और संगीत कला की मोहनी शक्ति के कारण ही उसे पुहुपावती छोड़ना पड़ा है।
(३) पुहुपावती के अनन्तर वह कामावती नगरी जाता है।
(४) कामावती में राजा कामसेन के दरबार में संगीत पारखी होने के कारण ही वह प्रवेश पा सका है।
(५) दंशन करते हुए भ्रमर को उरोज पर से उड़ाने की कला पर मुग्ध होकर उसने कन्दला पर राजा कामसेन द्वारा प्रदत्त उपहारों को न्यौछावर कर दिया है।
(६) इस व्यवहार पर अपने को अपमानित समझ राजा ने उसे कामावती से भी निकाल दिया।
(७) इस घटना के बाद कन्दला और माधव का प्रेमालाप और कन्दला का आत्मसमर्पण।
(८) कन्दला को राजाज्ञा के भय से छोड़ माधव का उज्जैनी जाना।
(९) विक्रमादित्य का शिव-मन्दिर में माधव लिखित गाथा पढ़ना।
(१०) विक्रमादित्य का कन्दला को दिलाने का प्रण और प्रयास।
(११) कन्दला और माधव की विक्रमादित्य द्वारा परीक्षा और दोनों की मृत्यु।
(१२) बैताल द्वारा विक्रमादित्य का अमृत प्राप्त करना और दोनों को पुनः जीवित करना।
(१३) कामावती में पहुँच कर विक्रमादित्य का कन्दला को दिलाना और दोनों का मिलन।

कुछ आख्यानों में इन तेरह घटनाओं के अतिरिक्त पूर्व जन्म की कहानी भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के रूप में चलती है। यह पूर्व जन्म की कहानी जयन्ती नामक अप्सरा से सम्बन्धित है, जिसकी मूल घटनाएं निम्नांकित हैं :—

(१) जयन्ती का इन्द्र से अभिशप्त होना।
(२) मृत्युलोक में पुहुपावती का बन में शिला रूप में पड़ा रहना।

(३) माघव द्वारा शिलारूपिणी जयन्ती से विवाह और उसका उद्धार ।

(४) जयन्ती और माघव का प्रेम ।

(५) जयन्ती का पुनः अभिशप्त होकर मृत्युलोक में नर्तकी कन्दला के रूप में जन्म ।

उपर्युक्त घटनाएं ही माघवानल कामकन्दला आख्यान के मेरुदण्ड हैं । इन्हीं घटनाओं के ढांचे को काव्य से परिवेष्ठित कर कवियों ने उसे कल्पना के सुन्दर चित्रों से सजाया है ।

विरहवारीश

(माधवानल कामकंदला)

—बोधा (बुंदेलखंडी) कृत ।

रचनाकाल सं० १८०६ से १५ के बीच ।

कवि-परिचय

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में स्वच्छन्द काव्य प्रवृत्ति वाले कवियों की अत्यंत विशिष्ट काव्यधारा प्रवाहित होती रही। किन्तु उस धारा और उस प्रवृत्ति के कवियों पर इतिहासकारों ने बहुत कम ध्यान दिया, जिसके परिणाम स्वरूप, वाह्य वेश-भूषा पर ही दृष्टि रखकर इन कवियों को रीति काल के अन्तर्गत रख दिया गया है। काल-विभाजन की इस गड़बड़ी ने, एक ही नाम वाले कवियों के अध्ययन में बड़ी द्विविधा उत्पन्न कर दी है। 'आलम' के सम्बन्ध में काफी वाद-विवाद हो चुका है। 'बोधा' के सम्बन्ध में भी ऐसी ही अनेक शंकाएँ उत्पन्न होती हैं। किन्तु अन्य अनुसन्धायकों के लिये यह कार्य छोड़कर हम विरहवारीश में मिलने वाली सामग्री के अन्तर्साक्ष्य एवम् 'बोधा' के विषय में अबतक जो सामग्री उपलब्ध हो चुकी है उसके आधार पर इस कवि के जीवनवृत्त का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

शिवसिंह सरोज में एक बोधा कवि सं० १८०४ में और दूसरे बोधा कवि बुन्देलखण्डी सं० १८५५ में मिलते हैं। श्री विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र के अनुसार "शिवसिंह सरोज" के सन् संवत् उत्पत्ति के नहीं, उपस्थिति के समय के हैं। मिश्र-बन्धु विनोद में संवतों को जन्म काल माना गया है, श्री मिश्रबन्धु लिखते हैं कि "ठाकुर शिवसिंह जी ने इनका जन्म संवत् १८०४ लिखा है, जो अनुमान से ठीक जान पड़ता है। बोधा एक बड़े प्रशसनीय और जग-द्विख्यात कवि थे। अतः यदि ये संवत् १७७५ के पहले के होते तो कालिदास जी इनको छन्दहजारा में अवश्य लिखते। इधर सूदन कवि ने सं० १८१५ के लगभग "सुजान चरित्र" बनाया, जिसमें उन्होंने १७५ कवियों के नाम लिखे

हैं। इस नामावली में प्रायः कोई भी तत्कालीन वर्तमान अथवा पुराना आदरणीय कवि छूटा नहीं रहा है, परन्तु इसमें बोधा का नाम नहीं है। इससे विदित होता है कि सं० १८१५ तक ये महाशय प्रसिद्ध नहीं हुए थे। फिर पद्माकर आदि की भाँति बोधा का अर्वाचीन कवि होना भी प्रसिद्ध है, अतः शिवसिंह जी का संवत् प्रामाणिक जान पडता है। जान पड़ता है कि बोधा ने लगभग सं० १८६० तक कविता की[१]।"

शाहाबाद के पंडित नकछेद तिवारी के द्वारा प्रकाशित "इश्कनामा" में सबसे प्रथम बोधा का कुछ वृत्त दिया गया है। उनके अनुसार बोधा कवि (बुद्धिसेन) सरवरिया ब्राह्मण, राजापुर प्रयाग के रहने वाले थे। किसी घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण बाल्यावस्था ही में निज भवन को छोड़ बुन्देलखण्ड की राजधानी पन्ना में जा पहुँचे। इन्हें पन्ना महाराज बहुत मानने लगे और प्यार में इनका नाम बुद्धिसेन से बोधा हो गया।

इसके अनन्तर 'सुभान' नामक दरबार की "यामनी वेश्या" से उनके प्रेम की प्रख्यात कथा देकर उन्होंने बताया है कि इस अपराध पर इन्हें छ महीने के लिये देश निकाला दे दिया गया। इन्होंने सुभान के 'वियोगानल' में अपना तन-मन जलाते जङ्गल, पहाड़, दरिया और अनेक शहरों की खाक छानी और इश्कनामा तथा माधवानल का आशय लेकर इन्होंने 'विरहवारीश' की रचना की।

नियमित समय व्यतीत होने के उपरान्त आप पन्ना पहुँचे। उस समय उनके अनुसार 'सुभान' भी उपस्थित थी। महाराज के कुशल-क्षेम पूछने पर इन्होंने 'विरहवारीश' तरङ्गित किया। इस काव्य पर प्रसन्न होकर महाराज ने बोधा से कुछ माँगने को कहा। अन्त में महाराज को इस बात पर दृढ़ देखकर इन्होंने 'सुभान अल्लाह' कहा। महाराज ने इस पर सुभान को इनके साथ रहने की आज्ञा दे दी।

नागरीप्रचारिणी सभा की खोज में बोधा के नाम पर अब तक इतने ग्रन्थ मिले हैं।

१. विरही सुभान—दम्पति विलास
२. बाग वर्णन
३. बारहमासी
४. फूल माला
५. पञ्छी मञ्जरी

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय संस्करण, द्वितीय भाग पृ० ७५८।

संख्या २ से पाँच तक के ग्रन्थ फिरोजाबादी बोधा के कहे जाते हैं और पहला "इश्कनामा" का दूसरा नाम है[१]।

विरहवारीश के रचयिता बुन्देलखण्डी बोधा हैं। अस्तु बुन्देलखण्डी बोधा की खोज में विरही सुभान दम्पतिविलास या इश्कनामा की जो प्रति सन् १९१७ की त्रिवर्षी में मिली है, उसका पहला दोहा है—

'खेतसिह नरनाह हुकुम चित्त हित पाइ।
ग्रन्थ इस्कनामा कियो बोधा सुकवि बनाइ॥'

इससे स्पष्ट है कि यह खेतसिंह के दरबारी थे। विरहवारीश में भी इन्हीं खेतसिंह की प्रशस्ति मिलती है, उसमें दरबार से देशनिकाले का दण्ड भी कथित है, कवि का पूरा नाम भी है और यह भी बतलाया गया है कि ग्रन्थ के निर्माण का कारण क्या है।

'बिछुरन परी महाजन कावा। तब बिरही यह ग्रन्थ बनावा॥
पंती छत्र बुन्देल को छेत्रसिंह भुवमान।
दिल माहिर जाहि जगत दान युद्ध सनमान॥
सिंह अमान समर्थ के भैया लहुरे आहिं।
बुद्धिसैन चित चैन युत सेवौं तिन्हैं सदाहिं॥'
कछु मोतें खोटी भई छोटी यही विचार।
उर मान्यौं-मान्यौं मनै तज्यों देख निरधार॥
इतराजी नरनाह की बिछुरि गयो महबूब।
विरह सिन्धु विरही सुकवि गोता खायो खूब।
वर्ष एक परखत फिरो हर्षवंत महराज।
लह्यो दान सनमान पै चित्त न चह्यो सुखसाज।
यह चिन्ता चित में बढ़ी चित मोहित घटकीन।
भौन ऐन मृगछौन सों तौन कह परबीन॥

इससे ज्ञात होता है कि छेत्रसिंह (खेतसिंह) पन्ना नरेश महाराज छत्रसाल के पंती अर्थात् पनाती (प्रपौत्र) थे और अमानसिंह के छोटे भाई थे। इतिहास में वंशवृक्ष इस प्रकार मिलता है।

---

१. फिरोजाबादी बोधा के विषय में देखिए श्री पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र का लेख 'बोधा का वृत्त' नागरीप्रचारिणी पत्रिका सं० २००४ वर्ष ५२ पृष्ठ १६ से २०।
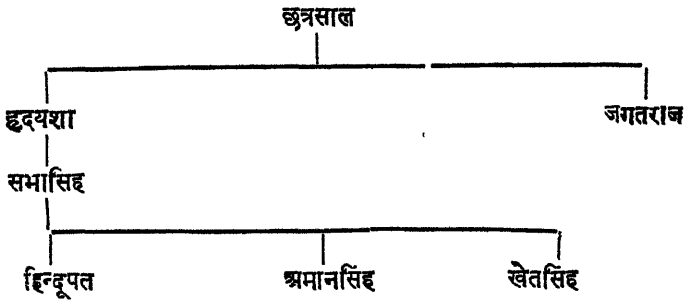
इससे यह भी पता चलता है कि कवि का नाम बुद्धिसैन अर्थात् 'बुद्धिसेन' था। तीसरा यह भी प्रकट होता है कि कुछ खोटी हो जाने से राजा अप्रसन्न थे और इन्हें एक वर्ष तक उनकी 'सुमुखता' की प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। वियोग का कारण नरनाह की 'इतराजी' थी। अपडर के कारण यह राजा के सन्मुख वर्ष भर नहीं गए। छः महीने देश निकाले की किंवदंती निराधार नहीं, हाँ उसे एक वर्ष होना चाहिए था।

यही नहीं, इसका भी पता चलता है कि अनेक दरबारों में टक्कर खा लेने के अनन्तर खेतसिंह जी के दरबार में बोधा गए थे।

"बड़ि दाता बड़ कुल सबै देखे नृपति अनेक।
त्याग पाय त्यागे तिन्हैं चित में चुभे न एक॥

कहां-कहां चक्कर काटा था, उन स्थानों की भी सूची एक कवित्त में दी गई है।

"देवगढ़ चाँदा गढ़ा मंडला उजैन रीवाँ,
साम्हर सिरोज अजमेर लौंनिहारो जोइ।
पटना कुमाउं पैंधि कुर्रा औ जहानाबाद,
सांकरी गली लौं वारे भूप देखि आयो सोइ॥
बोधा कवि प्राग औ बनारस सुहागपुर,
खुरदा निहारि फिरि मुरक्यो उदास होइ॥
बड़े-बड़े दाता ते अड़े न चित्त मांहि कहूँ,
ठाकुर प्रवीन खेतसिंह सो लखो न कोइ॥"

खेत सिंह कौन थे, इसका पता भी बोधा ने दिया है।

"बुन्देला बुन्देलखण्ड कासी कुल मंडन।
गहरिवार पंचम नरेस अरि दल बल खंडन।

तासु बंस छत्ता समर्थ परनापत बुझिए।
तासु सुवन हिरदेस कुल्ल आलम जस सुझिए॥
पुनी सभासिह नरनाथ लखि वीर धीर हिरदेस सुव।
तिहि पुत्र प्रबल कवि कल्पतरु खेहसिह चिरजीव हुव॥"

'बोधा' को बाला (प्रेयसी) कैसे मिली इसका भी विरहवारीश में उल्लेख है।

"जिकिर लगी महबूब सो फिर गुस्सा महराज।
बिन प्यारी होवे सो क्यों मों मन को सुख साज।
सो सुनि गुनि निज चित्त में लिखि दिये बाला एक।
रहिए खेत नरेस के चरन सरन तजि टेक।
तब हौं अपने चित्त में सकुचौं सोच बनाय।
मेरी ऐसी वस्तु कह काहि मिलौं लै जाय।
बचन यहै बनिता कही वे राजा तुम दीन।
भाषा करि माधो कथा सो लै मिलौ प्रवीन।
यों सुनि थिर हो हो कथी बिरही कथा रसाल।
सुनि रीझे खीझें तजें खेतसिह छितिपाल॥"

इस बाला के नाम और गुण का परिचय भी कवि ने दिया है।

"नवयौवन बनिता सुभ गुन सदन 'सुभान'।
बूँद न रस चसके बहुत प्रिय वे प्रीति विधान॥
अतन कथन के कथन यों केलि कथन परवीन।
विरह गिरह प्रेरित तहाँ बिरही पति रसलीन॥
बाला बूझत बालमें सुन बालम सज्ञान।
कहा प्रीति की रीति है कीजै कत उनमान॥"

विरही सुभान, दम्पति विलास, था इश्कनामा और बिरहवारीश के निर्माण-काल का समय नहीं मिलता किन्तु पं० विश्वनाथप्रसाद जी ने विरहवारीश की रचना सं० १८०६ के बाद मानो है। जो हमारे विचार से ठीक जान पड़ता है[1]।

---

१. खेतसिंह की वंशावली पर अपने विचार प्रकट करते हुए पं० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र लिखते हैं—"श्री सभासिंह की मृत्यु सं० १८०६ में हुई इनके तीन पुत्र थे। हिन्दूपत, अमानसिंह और खेतसिंह बड़े दानी थे। इनकी दान प्रशंसा में पराग कवि ने लिखा है—

"कलि में अमान सिंह कर्यो अवतार जानो,
जाको जस छाजत छबीले छपाकर सो।"

कथावस्तु

कृष्ण के गोकुल से द्वारिका चले जाने पर गोपिकाएँ विरह से व्याकुल होकर उन्मादिनी की भाँति भ्रमती घूमती थीं उसी समय रति के साथ कामदेव ने प्रकट होकर उन्हें काम पीड़ा से उद्विग्न कर दिया। उस दशा से व्याकुल होकर गोपिकाओं ने मदन को शाप दिया कि कलियुग में तुम भी अपनी प्रियतमा के वियोग में इस प्रकार दुखी होकर तड़पते फिरोगे जिस प्रकार आजकल हमारी दशा है।

इस शाप के अनुकूल कामदेव माधव के रूप में पुष्पावती नगरी के राज-पुरोहित के यहाँ अवतरित हुआ और रति रेवती तट पर अवस्थित परभावती नगरी में राजा रुक्मराय की कन्या के रूप में अवतरित हुई।

राजकन्या के लक्षणों को देखकर ज्योतिषियों ने बताया कि इसमें वेश्या के भी सभी गुण उपस्थित हैं इसलिये राजा ने इसे एक कटहरे में बन्द कर नदी में बहा दिया। इस बहती हुई बालिका को एक नट ने नदी से निकाला और अपने घर ले गया तथा उसे पाल-पोस कर बड़ा किया। और नादविद्या और नृत्य में पारङ्गत कर वह इस बालिका को कामसेन राजा के दरबार में ले गया। राजा ने इस बालिका को अपने राज्य की नर्तकी के रूप में अपने पास रख लिया और नट को बहुत धन धान्य देकर बिदा किया। कामकंदला वेश्या कामावती नगरी की अति प्रसिद्ध रूपवती नर्तकी थी।

गणितशास्त्र की प्रसिद्ध लीलावती ने एक दिन काशी में आए हुए ब्राह्मण से जो काशी के अन्य पंडितों को हरा चुका था शास्त्रार्थ किया और उसे पराजित किया। स्त्री द्वारा पराजित होने और नगर निवासियों द्वारा हँसी उड़ाए जाने

'सभासिंह जी अमानसिंह को बहुत चाहते थे। उनकी सुशीलता और उनके विशिष्ट गुणों के कारण प्रजा भी उनके दैवी गुणों से प्रसन्न थी। इस लिये हिन्दूपत से छोटे होने पर भी राज्य के अधिकारी ये ही बनाए गए, पर सं० १८१५ में राज्य के लोभ से हिन्दूपत ने इन्हें मरवा डाला और वह स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया। बोधा ने हिन्दूपत का नाम नहीं लिया, 'अमानसिंह' को समर्थ अवश्य लिखा, पर महाराज नहीं लिखा। खेतसिंह को महाराज, नरेश आदि विशेषण बराबर दिए हैं। इस सम्बन्ध में चाहे जो भी अनुमान लगाया जाय, सरोज में जो सं० १८०४ बोधा कवि का काल दिया है, वह ठीक बैठ जाता है।'

—नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० २००४ वर्ष ५२ पृ० २२-२३।

पर इस ब्राह्मण ने लीलावती को वैधव्य का 'दुख भोगने का शाप दिया। शाप से दुखित होकर लीलावती ने बारहवर्ष तक कठिन तपस्या की और महादेव के प्रसन्न होने पर उसने महादेव से कामदेव के समान पति पाने का वरदान माँगा। महादेव ने एवमस्तु कह कर विदा ली।

लीलावती का दूसरा जन्म पुष्पावती नगरी में रघुदत्त नामक ब्राह्मण के घर हुआ। एक दिन यह कन्या अपनी सखियों के साथ दुर्गा मन्दिर में देवी के पूजनार्थ पहुँची। पूजा के उपरान्त वाटिका में टहलती हुई वह उस स्थान पर अकस्मात् पहुँची जहाँ माधव वाटिका में वीणा बजा रहा था। दोनों ने एक दूसरे को देखा और मुग्ध हो गए। सखियाँ लीलावती को अलग हटा कर ले गईं माधव इधर मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। जब उन्हें होश आया तो बड़ी अव्यवस्थित अवस्था में घर पहुँचे। उस दिन से लीलावती और माधव एक दूसरे के लिये चिन्तित और व्याकुल रहने लगे।

एक दिन लीलावती की अवस्था को देखकर उसकी सखी सुमुखी बड़ी चिंतित हुई और लीलावती से इस दुख का कारण पूछने लगी। लीलावती ने अपने हृदय की वेदना और माधव के प्रति अपने अनुराग को उस पर प्रकट किया और उससे मिलने की उत्कट अभिलाषा बताई। पहले तो सुमुखी ने उसे बहुत मना किया लेकिन अन्त में वह माधव के पास लीलावती का संदेश ले जाने के लिए तैयार हो गई।

अतएव एक रात सुमुखी के प्रयास से लीलावतो और माधव ने एक साथ आनंद से व्यतीत की और दूसरे दिन प्रातःकाल लीलावती को समझा कर घर लौट आया तथा उसके ध्यान में मग्न रहने लगा।

माधव का सौंदर्य और उसका वीणावादन इतना आकर्षक और हृदयग्राही था कि नगर की सारी स्त्रियाँ अपने गृह-कार्य को छोड़कर उसकी ओर दौड़ पड़ती थीं तथा अपनी सुध बुध खो देती थीं। स्त्रियों की इस दशा को देखकर पुरुषों में बड़ा असन्तोष फैल रहा था और एक दिन सबने एकत्रित होकर राजदरबार में माधव पर अभियोग लगाया कि वह अपनी संमोहिनी शक्ति से स्त्रियों को वशीभूत करता है इसलिये नगर की स्त्रियाँ कुलटा होती जा रही हैं।

राजा ने माधव की सम्मोहिनी शक्ति और वीणावादन की परीक्षा लेने के लिये उसे अपने दरबार में आमंत्रित किया। माधव के पंचम राग ने रनिवास की रानियों को मदन से पीड़ित कर दिया। राजा स्वयं उस नाद पर अपनी सुधिबुधि खो बैठा। अन्त में इस परीक्षा के उपरान्त राजा ने माधव के निष्कासन की आज्ञा दे दी।

पुष्पावती को छोड़कर माधव लीलावती के वियोग में दुःखी होकर बाँधोगढ़ पहुँचा और एक पेड के नीचे बैठकर विश्राम करने लगा। इस वृक्षपर एक सुआ रहता था जो बड़ा विद्वान् था। यह सुआ माधव को उपदेश और आश्वासन देकर उसके दुख का शमन किया करता था। इस प्रकार बाधोगढ़ में माधव ने चतुर्मास व्यतीत किया जिसके अनन्तर उसने कामावती की राह ली। सुआ भी उसी नगरी में एक तमोली के घर जाकर रहने लगा।

एक दिन माधव अपनी वीणा लिये राजा की ड्योढ़ी में पहुचा किन्तु दौवारिक ने उसे अन्दर नहीं जाने दिया। अन्दर मृदंग बज रहे थे और एक नर्तकी नृत्य कर रही थी। मृदङ्ग की धुन एव नर्तकी के ताल को सुनकर माधवने कहा कि स्वर भंग हो रहा है इसलिए नर्तकी का नृत्य ठीक नहीं हो पाता है। और बताया कि पूर्वाभिमुखी मृदगी का अगूठा मोम का है इसलिए स्वर भंग हो रहा है।

दौवारिक ने इस अद्भुत ब्राह्मण की बात राजा को बताई। राजा ने इसकी परीक्षा की और फिर इसकी सच्चाई को देखकर उसने माधव को अन्दर बुलवा भेजा। माधव को वस्त्रों के अतिरिक्त गजमुक्ता की माला उपहार स्वरूप भेंट की। माधव और कामकन्दला की चार आंखे हुईं और कन्दला माधव पर मोहित हो गई। इसके उपरान्त कन्दला का नृत्य प्रारम्भ हुआ। जिस समय कन्दला तन्मयता से नृत्य कर रही थी उसी समय एक भ्रमर आकर उसके कुच के अग्र भाग पर बैठ गया और दंशन करने लगा। कन्दला ने नृत्य में बिना किसी भी प्रकार का व्यतिक्रम उत्पन्न किए हुए अपने शरीर की सारी वायु को बटोर कर कुच के अग्रभाग से छोड़ा जिससे भ्रमर उड़ गया किन्तु कन्दला की इस कला को माधव के अतिरिक्त कोई नहीं समझ सका। उसपर माधव ने राजा के द्वारा प्रदत्त गजमुक्ता की माला को कन्दला के गले में डाल दिया।

तदनन्तर कन्दला ने माधव की वीणा और गान सुनने की अभिलाषा प्रकट की। माधव ने भूल से अपना पञ्चम राग फिर अलापा और तान छेड़ दी। इस तान पर सारी सभा तथा राजा और कन्दला चित्रवत होकर सुधि-बुधि खो बैठे। फिर उसने ऐसा राग गाया की सारी मशालें बुझ गईं। इस पर कन्दला ने दीपक राग गाकर मशालें जला दीं। माधव ने घननाद गाया और बादल घिर आए कन्दला ने सारंग गाकर बादल को तितर-बितर कर दिया। माधव ने क्रुद्ध होकर ऐसा राग गाया कि कंदला सारे राग-रागिनी भूल कर डर से थर-थर कांपने लगी। कदला की इस दशा को देख कर राजा बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने माधव को अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। कन्दला ने घर आकर अपनी चेरी गोविन्दा के

द्वारा माधव को अपने घर बुलवा भेजा और फिर दोनों ने सुखमय जीवन के क्षण विहार और प्रमोद में व्यतीत करने प्रारम्भ कर दिए। इस प्रकार भोग-विलास में तेरह दिन व्यतीत करने के उपरात माधव राजाज्ञा के डर से कंदला को सोती छोड़ एक रात में चल दिया। जाते समय माधव कंदला के हाथ में एक संदेश लिखकर रख गया था। प्रातःकाल माधव को अपने पास न पा कर कंदला बड़ी दुखी हुई और विलाप करने लगी। उस दिन से माधव के वियोग में कंदला के दिन बड़ी कठिनाई से व्यतीत होते थे।

कन्दला के पास से आकर माधव ने कामावती से तीन कोस की दूरी पर विश्राम किया। सुआ भी माधव के साथ हो लिया था। सुआ ने माधव को बताया कि उज्जैन नगरी के राजा विक्रमादित्य ही तुम्हारा क्लेश दूर कर सकते हैं इसलिये माधव सुआ की बात को मान कर उज्जैनी पहुँचा और महाकालेश्वर के मन्दिर में डेरा डाल दिया दूसरी ओर सुआ माधव का सन्देश लेकर कन्दला के पास पाँच दिन के पश्चात् पहुँचा और फिर उसी प्रकार कन्दला का सन्देश लेकर लौट आया।

सुआ के कहने पर माधव ने महाकालेश्वर के मन्दिर की दीवार पर मिट्टी से एक गाथा लिखी।

"धन गुण विद्या रूप के हैती लोग अनेक।
जो गराब पर हित करैं ते नाहि लहियतु एक॥"

विक्रमादित्य ने पूजन के उपरान्त इस दोहे को पढ़ा और प्रत्युत्तर लिख दिया।

"दोहा को पलटो लिखो दर्द भरे नरईश।
देत एक विक्रम सुन्यों काज पराए शीश॥"

दूसरे दिन माधव ने इस प्रत्युत्तर को पढ़ा और दूसरी गाथा लिख कर चला गया।

"कू ताकि अङ्ग पुकार। जौन राम अवधेश पुकारं।
विधुर दर्द अपारं। सहि जानत माधव विरही॥"

दूसरे दिन राजा फिर आया और अपने बल की वीरता लिख कर चला गया। फिर राजा ने दरबार में आकर घोषणा की कि जब तक मै इस विरही ब्राह्मण से न मिल लूँगा तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगा। राजा की इस प्रतिज्ञा को सुन कर गोगविलासिनी वेश्या ने सोलहो शृङ्गार किया और वीणा बजाती हुई महाकालेश्वर के मन्दिर की ओर चली। वह गौरी राग के समय भैरवी राग अलापती हुई मन्दिर के पास से चली जा रही थी। इस राग के व्यतिक्रम को सुनकर

माधव को कंदला का धोखा हुआ और वह भाग कर इस वेश्या के पास पहुँचा तथा उसे देखकर मूर्छित होकर गिर पड़ा और कंदला का नाम लेकर पुकारने लगा। गोगविलासनी समझ गई कि यही वह विरही है जिसके लिये राजा उद्विग्न है, इसलिये उसने राजा को जाकर इसकी खबर दी। राजा ने माधव को बुलवा भेजा और बड़ा आदर सत्कार किया। फिर उसकी कहानी सुनने के उपरान्त राजा ने माधव से वेश्या के प्रेम को त्यागने के लिये बिनती की और कहा कि इस नगरी अथवा रनिवास में जो भी सुन्दरी तुम्हे अच्छी लगे उसे तुम ले लो किन्तु माधव के अडिग रहने पर विक्रमादित्य ने शुभ मुहूर्त मे कामावती नगरी को ससैन्य प्रयाण किया और कामावती के पास मदनावती में अपना शिविर डाला तथा छद्मवेषी वैद्य का रूप धारण कर कामावती में कंदला की परीक्षा लेने गया। कंदला के विरह रोग की राजा ने ठीक-ठीक परीक्षा की। कंदला की सखियों ने इस वैद्य से माधव और कंदला की प्रेम कहानी सविस्तार वर्णित की। इसके उपरान्त छद्मवेषी वैद्य ने बताया कि उज्जैनी में इसी नाम का ब्राह्मण कुछ दिन हुए विरह की पीड़ा से मर चुका है। माधव की मृत्यु का समाचार पाते ही कंदला ने प्राण त्याग दिये। राजा को कंदला की मृत्यु पर बड़ा दुख हुआ और उसने कहा कि मेरे पास ऐसी औषधि है कि आठ दिन का मृत प्राणी जीवित हो जाता है इसलिये आठ दिन कंदला का दाह-संस्कार न किया जाय।

कंदला के यहाँ से लौटकर राजा ने कंदला की मृत्यु का समाचार माधव को सुनाया जिसे सुनकर माधव की भी मृत्यु हो गई। दोनों प्राणियों की मृत्यु से राजा को बड़ा दुख हुआ और अपने को दोनों की अकाल मृत्यु का दोषी समझकर राजा ने आत्महत्या का विचार किया।

आत्महत्या के हेतु राजा ने चन्दन की चिता जलवाई और माधव का शव रखकर स्वयं जलने के लिए चिता में अग्नि लगाने ही जा रहा था कि बैताल ने प्रकट होकर राजा को रोका और इस असाधारण व्यवहार का कारण पूछा। विक्रमादित्य ने बैताल को सारी बात बताई। इस बात को सुनने के उपरान्त बैताल ने शेषसुत को बुलाया और उससे अमृत मागा। शेषसुत पाताल लोक से दो बूँद अमृत ले आया जिससे पुनः कन्दला और माधव जीवित किये गये।

कन्दला के जीवित हो जाने के उपरान्त विक्रमादित्य ने उसके गले में बाहें डाल कर अपना प्रेम प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया। इस पर कन्दला ने उसे रोका और बताया कि वह वैसी वेश्या नहीं है जो हर एक से शरीर का सौदा करती है, वरन् वह पतिपरायणा स्त्री है। माधव के अतिरिक्त वह किसी से भी प्रेम नहीं कर सकती। अपनी बात की सत्यता प्रकट करने के लिये कन्दला ने अपने

दाहिने हाथ में अग्नि ले ली और राजा से कहा कि अपने शिविर में जाकर देखो माधव के बाएँ हाथ में छाले पड़ गये होंगे। शिविर में लौटकर राजा ने माधव के बाएँ हाथ में छाले देखे इस पर उसे माधव और कन्दला के सच्चे प्रेम पर विश्वास हो गया।

दूसरे दिन विक्रमादित्य ने कामसेन के पास दूत भेजकर कन्दला को देने या युद्ध करने का सन्देश भेजा। कामसेन ने युद्ध की घोषणा की। दोनों पक्षों में घोर युद्ध हुआ, जिससे दोनों ओर के अनेक योद्धा मारे गये। इस पर कामसेन ने राजा के पास सन्देश भिजवाया कि मेरे मल्ल मोढ़ामल्ल से अपने किसी योद्धा से मल्ल-युद्ध करा दो। अगर मै विजयी हुआ तो तुम उज्जैनी का राज्य मुझे देकर चले जाओगे अन्यथा मैं तुम्हे अपना राज्य और कन्दला दे दूँगा। इसपर विक्रमादित्य राजी हो गया और उसने अपने मल्ल रनजोर सिंह को मोढामल्ल से युद्ध के लिए भेजा। रनजीरसिंह विजयी हुआ और कामसेन ने कन्दला को विक्रमादित्य को सौंप दिया। विक्रमादित्य ने माधव को बनारस का राज्य दिया एवं हय, रथ आदि दिए। इस प्रकार कन्दला और माधव का पुनर्मिलन हुआ और दोनों आनन्द-सागर में निमग्न हो गये।

माधव को एक रात लीलावती स्वप्न में दिखाई पड़ी। उसे देखते ही माधव लीलावती, लीलावती चिल्लाकर मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। माधव की इस दशा को देखकर कंदला बड़ी चिन्तित हुई। उसके पूछने पर माधव ने लीलावती के प्रेम की कहानी कंदला को बताई। इसे सुनने के उपरान्त कंदला विक्रमादित्य के पास पहुँची और उससे माधव की दशा बताकर लीलावती को माधव के लिए प्राप्त करने की भिक्षा माँगी।

कामकंदला के कहने पर विक्रमादित्य और कामसेन ने ससैन्य पुष्पावती की ओर प्रयाण किया।

राजा गोविन्दचन्द विक्रमादित्य से मिलने आए। गोविन्दचन्द ने लीलावती का स्वयंवर सहर्ष स्वीकार कर लिया और रघुदत्त ने अपनी कन्या माधव को ब्याह दी। इसके बाद दोनों राजे अपने देश को लौट गए और माधव लीलावती और कन्दला के साथ आनन्द से रहने लगा।

प्रेम-व्यञ्जना

विरहवारीश की कथा विरही और बाला के संवाद के रूप में अंकित की गई है जिसमें कवि ने प्रारम्भ में प्रेमपथ और उसकी कठिनाइयों बीच-बीच में प्रेमी के धर्म का प्रतिपादन किया है। जैसे प्रेम कोई स्थूल वस्तु नहीं, वह मृणाल के तार से भी झीना तार है जिस पर होकर प्रेमी को चलना पड़ता

है, इसलिये इस पंथ के पथिक को बड़ी कठिनाइयों एवं मानसिक सतुलन की आवश्यकता पड़ती है।

अति छीन मृणाल के तारहु ते तेहि ऊपर पांव दे आवनो है।
सुई बेह कै द्वार सकै न तहाँ परतीत को टांड़ो लदावनो है॥
कवि बोधा अनी घनी नेजहुतें चढ़ि तापै न चित डुलावनो हैं।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवार की धार पै धावनो है॥

ईश्वर न करे किसी से किसी का प्रेम हो जाय। यदि प्रेम हो तो फिर किसी से उसके प्रियतम का विछोह न हो। अन्यथा उसको राम के अतिरिक्त संसार में कोई सहारा नही रह जाता। संसार के सारे काम छूट जाते हैं। मृत्यु प्रियतम के बिछुडने से कही भली है।

"जासो नातो नेह को सो जिन बिछुरै राम।
तासों बिछुरन परत ही परत राम सो काम।
परे राम सो काम संसारी छूटै।
छूटै न वह प्रीति देह छूटै जो टूटै।
कहै बोधा कवि कठिन पीर यह कहिये कासों।
सो जिन बिछूरै राम नेह नातो है जासों॥"

एक बार प्रेम कर उसे तोड़ना क्या? बोधा के अनुसार उस नर देह को धिक्कार है जिसने एक बार प्रेम किया और उसे निबाहा नहीं।

"साधब विषय सनेह निबहै तो निबहै सही।
धरै रहै नर देह नातो का संसार मे॥"

किन्तु प्रेम की अग्नि में बिना कुछ कहे, बिना उसे प्रकट किए ही घुट-घुट मरने में ही आनन्द है। वे मनुष्य मूर्ख है जो अपने प्रेम को किसी पर प्रकट कर देते है।

"दान मन्त्र अभियान काम कामा संग त्रिय पगि।
पुनि प्रीत रीति बोधा सुकवि प्रकट करत जे मन्दमति॥
कीजै इकन्त ये मन्त्र सब भये प्रगट उपजत विपति।"

प्रेम का दूसरों पर प्रकट होना ही विपत्ति का कारण बनता है किन्तु उस पंथ में पड़कर लोकलाज, इहलोक-परलोक, घर और गाँव एवं शरीर तक न्यौछावर कर देना पड़ता है। जो यह कर सकता है, वही सच्चा प्रेमी है।

"लोक की लाज शोक परलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोई।
गाँव को गेह को देह को नातो सो नेह मै हतो करै पुनि सोई॥

बोधा सो प्रीतिको निबाह करै घर ऊपर जाके नहीं शिर होई ।
लोक की भीत धरा तजौ मीत तौ प्रीत को पैड़े परै जिन कोई ॥"

संसार के प्राणी इस प्रेम की पीर को नहीं समझ सकते । वे केवल मास की जीभ ही चलाना जानते हैं ।

'कोऊ कहा कहिहै सुनि है काहू की कौन मनै नहि भावत ।
बोधा कहै को परेवो करै दुनियाँ सब मांस को जीभ चलावत ॥'

और सुखमय जीवन को व्यतीत करने वाले प्रेम की पीर को जान ही क्या सकते हैं, विरही की पीर को तो केवल विरही पहचान सकता है ।

'व्याउर की पीर कैसे बांझ पहिचानै ।
कैसे ज्ञानिन को बात कोऊ नर मानिहैं ॥
कैसै कोऊ ज्ञानी काम कथन प्रमान करै,
गुर को स्वाद कैसे बाउरे बखानि है ॥
कैसे मृग नैनी भावै पुरुष नपुंसक को ।
कविको कवित्त कैसे शठ पहिचानि है ।
जाने कहा कोऊ जापै बीत्यो न वियोग,
बोधा विरही की पीर कोई विरही पहिचानि है ।'

इसलिए विरही को कभी भी अपनी व्यथा किसी पर भी प्रकट न करना चाहिए ।

'बोधा किसूसों कहा कहिये जो विथा सुन फेर रहै अरगाइ कै ।
या तो भलो मुख मौन धरो के करो उपचार हिये थिर धाइ कै ॥
ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहूँ जो कहै रंच दया उर लाइकै ॥
आवत हौं मुख लौं बढ़ि के पुनि पीर रहै हिय में ही समाइ कै ॥

वास्तव में विरही के लिए घुट-घुट कर मरना ही शेष रह जाता है । मृत्यु से कोई भी नहीं बच सकता । संसार में प्रत्येक रोग की औषधि है किन्तु कटाक्षों से घायल मनुष्य का कोई भी उपचार सम्भव नहीं है ।

'सिखी को जार्यो जियै सिह को विदार्यो जियै,
बरछी को मार्यो जियै वाको भेद पाइये ।
गरल को खायो जियै नीर को बहायो जियै,
सापहूँ को काटो जियै यम हूँ को डाटो जियै ॥

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

नारी का रूप और यौवन ही प्रेम का प्रथम सोपान है, इसलिये साहित्य में चाहे जिस देश का भी हो उसके अङ्गों, उपाङ्गों का वर्णन प्रत्येक काव्य में प्रधान रहता है। किन्तु इस वर्णन की परम्परा हिन्दी साहित्य में लगभग एक सी है, क्षीण कटि, बड़ी आँखे उन्नत उरोज, त्रिवली और उसकी रोमावली का वर्णन और उपमानों की परम्परा लगभग प्रत्येक काव्य में एक सी ही मिलती है। हिन्दी की इस परम्परा को बोधा ने भी अपने नखशिख वर्णन मे परम्परागत अपनाया है। अज्ञात यौवना और प्रौढ़ा का चित्रण भी इनमें परम्परागत मिलता है। उनकी उपमाएँ भी पुरानी परिपाटी की हैं। जैसे, नायिका का मुख चन्द्रमा के समान है, उसकी चाल मस्तानी है, आँखें हिरनी के समान काली हैं, बालों की श्यामता सर्प के बच्चों के समान काली है। मुग्धा नायिका अज्ञात यौवना के रूप में अपने से ही खिलवाड़ करती दिखाई पड़ती है।

'है द्विजराज मुखी सुमुखी पीन कुचाह गरूरी गररी गति।
'है हिरनाक्षय बाल प्रवीनिय ज्यों द्युति दामिनि की करि छानिय॥'
+ + +
हैन बड़ी अति प्रीति भरी त्रिय तीक्ष्ण भौंहहैं कटाक्ष कर्योविय॥'
खेलति-सी उलती मग डोलहि कंचुकि आप कसै अरु खोलहि।
हार उतारि हिये पहिरै पुन पाव धरै लहित्यौं न उराधन॥'

कुचों के सौन्दर्य-वर्णन में भी कवि ने परम्परा को ही अपनाया है।

'हाटक वरन कठिन -अत कुच गोल-गोल गद कारे।
कमल बेल गेंद नारंगी चक्र ।क युग वारे॥'

परम्परा से बद्ध इस कवि की कल्पना भृकुटी और कटि के वर्णन में नवीन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं को लेकर प्राचीन में भी नवीन का रस संचार करती हुई दिखाई पड़ती है। ठोढ़ी पर पड़े हुए गड्ढे को देखकर कवि की कल्पना जागरूक हो उठती है और वह कहता है कि क्या राहु ने अमृत के लाभ के लिये चन्द्रमा के धोखे में नायिका के मुँह को दबाया है जिसके कारण उसकी ऊँगली का निशान पड़ गया है।

"मुकुर कपोल गोल गद कारे, गाड़ेन परी नवीनी।
जनु शशि ग्रसत राहु रस कारण गरुड़ आंगुरी दीनी॥"

किसी कोमल वस्तु को हाथों से पकड़ कर दबोचने में ऊँगली का चिह्न पड़ जाना स्वाभाविक ही है, केवल एक ही शब्द से कवि ने कपोलों की कोमलता और उनके सौंदर्य को अद्भुत बना दिया है।

सुन्दर चांद के समान लाल बिन्दी ऐसी प्रतीत होती है मानों चन्द्रमा में बीरबहूटी सुशोभित हो रही हो।

"लसत बाल के भाल मे रोरी बिन्दु रसाल।
मनो शरद शाश में बसो बीर बहूटी लाल॥"

इसी प्रकार कटि की क्षीणता भी बड़ी सुन्दर बन पड़ी है।

"कमल मृणालहू ते छीन योगी कैसी आशा याई रूप मानियतु है।
सुमन सुगंध कवि अङ्क न अरथ जैसे गणित को भेद सखियों बखानियतु है॥
बोधा कवि सूत के प्रमान ब्रह्मज्ञान जैसे चलत हलत यों प्रमानियतु है।
दृष्टिमें परे ना यों अदृष्टि कटि तेरी प्यारी है वै है तो विशेष उनमान जानियतु है

संयोग-शृङ्गार

जिस प्रकार ग्रीष्म में तप्त भूमि के वक्षस्थल पर वर्षा की प्रथम बूंदे पड़ते ही पृथ्वी एक ठंढी सोंधी उसास ले उठती है, उसी प्रकार विरह-वियोग से पीड़ित दो हृदय जब भाग्य अथवा परिस्थिति की अनुकूलता के कारण सन्निकट हो जाते हैं तब उनसे फूट पड़ने वाला आनन्द-प्रवाह मर्यादा और सामाजिक बंधनों का अतिक्रमण कर नैसर्गिक रूप में अपनी गति से बह निकलता है। वह रुक नहीं सकता, रोका नहीं जा सकता। प्रेयसी और प्रियतम का प्रथम मिलन उससे उत्पन्न आनन्द और साथ ही साथ नारी के आत्मसमर्पण के पूर्व की स्वाभाविक लज्जा, झिझक, झुझलाहट और उल्लास संयोग शृंगार का एक पक्ष इनकी रचना में बड़े स्वाभाविक ढंग से चित्रित हुआ है। प्रियतम के आलिंगन से उसके नोक-झोंक से झिझक कर भागने तथा दूर हटने की क्रिया, किलकिंचित हाव के रूप में कवि ने संयोजित किया है।

"तिय चाहत बांह छुड़ाय भजो। पिय चाहत है कबहूँ न तजो।
कसि कै सिसकै रिस चित्त धरै। ननकार विकारन ओर करै।
जबही पिय की बांहु पियनाथ गहै। तबहीं तिय वासों छोड़ कहै!
पग के छुवतै अकुलात खरी। मुख ये निकसै सखि हाय मरी।
कर छूटत बाल उठ धाय चलै। तब माधव पीन उरोज मलै॥"

किन्तु उद्धत प्रियतम मानता ही नहीं और नारी घर और बाहर के लोगों के संकोचवश शोर भी नहीं मचा सकती।

"पुर लोगन को डर बाल हिये। बिगरै सो रंचक शोर किये।
पिय सों बिनवै जिन बांह गहो। तज और सबै हठ सोय रहो।
हंसिये खेलिये करिये बतियां। रतिनाथ न हाथ धरौं छतियाँ ॥

किन्तु मदन ज्वर से पीड़ित मानव भय और लाज एवं संकोच को तिलाजलि दे देता है। उसके भीतर जाग्रत पशु किसी प्रकार शमन होना जानता ही नहीं। उसकी इस मुद्रा पर भयभीत होकर विवश नारी काप उठती है।

'अति कोपित कन्थ भयो तबही थहरान लगी वनिता तबही।

फिर भी वह अपनी लज्जा-रूपी कोष की रक्षा करने के लिये सभी प्रयत्न करती है।

'पटुचाप रही कसि जंघ दुवो। पिय सों विनवै जिन अङ्क छुवो।
बलकै करसों कुच चाप रही। पिय तब घंघरा की फूद गही।
झकझोरत छोरत छोर किये। लपटी भय लाजत बाल हिये।
कर मे पारद जोर किये। नवढ़ा तिथ को रस ज्यों चखिये।'

किन्तु आत्मसमर्पण की अवस्था पहुँच ही जाती है नारी में भी तो वासना की भूख होती है। लज्जा के आवरण में छिपी हुई चिनगारी, पुरुष की उद्धतता से कुरेदी जाने पर अपनी स्वाभाविक चमक से निखर उठती है।

'घुंघरू घायल से विहरैं। जांन श्रोणित स्वेद प्रवाह ढरैं।
कुच शूर भले रणमाह लरैं। दोउ जंघ सुजानहुँ ते न टरैं ॥'

सोहागरात का यह चित्रण जितना ही सजीव बन पड़ा है, उतना ही सजीव प्रेमी और प्रेयसि के बीच होने वाले 'प्रेम संग्राम' को भी कवि ने माघ मास के उमड़े हुए बादलों के रूपक में बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है।

'घन घोर घुंघरुन के शोर छाए। घटा से चटा के उमड़ मैन आए ॥
खुले केश चारों दिशा श्यामता सी। दिये देह दीपत तामें छटता सी ॥
परे मोतियाँ ज्यौं गिरैं बूँद भारी। मची स्वेद की कीच यों देहसारी ॥
तहाँ इन्द्र पिनाक सी बांके भौंहें। तिन्हों के परे खौर त्रै रेख सोहैं ॥
परै पांयते ओर से वज्र भारी। धरा सी तहाँ जोर धरकै हैं नारी ॥
कपै शैल से दोउ उरोजै। बली सों चली है दुर्यो तो मनोजै ॥
तहाँ भूरिआ चूड़ियाँ चारु बोलै। मनों कोकिला मेघ झिल्ली किलोलैं ॥
हते प्रेम संग्राम बोधा बखानों। माघ मास कैसो तमाशो बखानो।

और फिर इस संग्राम के योद्धा और घायलों की आवाज पर भी कवि का ध्यान जाने से नहीं छूटा है।

"क्वारें जैत वारे के वरै या कुच
मल्लयुद्ध के करैया कहूँ टारे न टरत हैं।

सुभट विकट 'जुरे जंघे बलवान
तै भुजान सो लपटि ना नेकु विहरत है ॥
बोधा कवि भृकुटि कमान नैना,
बानदार तीक्ष्ण कटाक्ष सर शैल से परतु है।
दम्पति सों रति विहार विहरत तहाँ,
घायल से पायल गरीब बिहरतु हैं ॥

प्रथम मिलन की झिझक मिट जाने के उपरान्त नारी का खिलवाड़, रति के लिए झूठी झुंझलाहट दिखलाना एवं मान करना तथा 'खुट्टी' करने की धमकी आदि देने की स्वाभाविक क्रीड़ा और प्रियतम का इस पर रूठ कर चल देना और फिर कामनी का मनाना आदि नाना मन:स्थिति का चित्रण भी बड़े ललित और मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित हुआ।

अति अनखोहैं लोचन कीन्हें। चरन खैंच कन्धन से लीन्हें।
चरन उठाय अतिहि अनखाई। पिय को सौंह अनेक दिवाई।
उझकत झझकत कही नहिं मानत। बरबट मान तमासो ठानत।
छुटी जात नहि बसन सम्हारत। टुटी प्रीति मुखते उचारत।

× × ×

कही न बात बालम की मानी। चली रूस अतिहि खिसियानी ॥
तब माधव बीणा लीना। चल्यो रिसाय हिये रस भीना ॥
'जय श्री राम' विप्र उच्चारी। कृपा करत रहिये सुन प्यारी ॥
सुनके बाल मन्द मुसक्यानी। डगर चल्यो माधो द्विज ज्ञानी ॥
झपट बाल बहियाँ गहि लीन्हीं। बूझी कितको यात्रा कीन्हीं ॥
अब यह गुसा माफ कर दीजे। चलिये बहुरि अमायस कीजे ॥

विप्रलम्भ शृङ्गार

इस कवि ने जहाँ सम्भोग-शृङ्गार का कोना-कोना छान डाला है, वहाँ इसके विरह वर्णन में भी बड़ी सजीवता दिखाई पड़ती है। संयोग में जो वस्तुएँ सुखकर होती हैं, वही वियोग में दुखदाई बन जाती हैं। प्रकृति के नाना दृश्यों का प्रभाव जहाँ संयोग में सुख की सृष्टि करता है वहाँ वही दृश्य वियोग में दुख को और भी प्रगाढ़ और स्थाई बना देते हैं। बसन्त ऋतु के आने पर वियोगिनी कितनी दुखी होती है, वह 'बटपारन' शब्द से पूर्ण व्यञ्जित हो जाता है।

'बटपारन बैठि रसालन पै कोयली दुख दाय करे ररिहै।
बन फूले हैं फूल पलाशन के तिनको लखि धीरज को धरिहै ॥

कवि बोधा मनोज के ओजन सों बिरही तन तूल भयो जरिहैं।
कछु तन्त नहीं बिनु कंत भटू अबकी धौं बसन्त कहा करिहैं ॥"

कोकिल की काकली से विकल होकर नायिका ब्रह्मा की मूर्खता पर क्रुद्ध होकर अपनी झुंझलाहट व्यक्त करती है।

'मुख चार भुजा पुनि चार सुनैं हद बांधत बेद पुरानन की।
तिनकी कछु रीझ कही न परै, इहि रूप या कोकिल तानन की ॥
कवि बोधा सुजान वियोगी किये, छबि खोई कलानिधि आननकी।
हम तौ तबही पहिचानी हती चतुराई सबै चतुरानन की ॥

कलमुही कोकिल को इतना सुन्दर कंठ दिया। सुजान प्रियतम को वियोगी किया। ब्रह्मा के सारे कार्य ही खोटे हैं, परिस्थितियों के वश होकर जब मनुष्य हतबुद्धि हो जाता है, तब उसे ईश्वर के विधान में ही कमी प्रतीत होने लगती है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है, जो कन्दला के द्वारा कवि ने व्यक्त किया है। इसी प्रकार बाग-तड़ाग में खिले हुए कमल और पलाश के फल वियोगिनी के लिये अङ्गारे जैसे जान पड़ते हैं।

"प्रफुलित कञ्ज फुले जल माहीं। मनहुँ पुत्र बड़वा के आंहीं ॥
देखत दहत बियागी लोचन। बिनु सहाय ब्रजपति दुख मोचन ॥
दशहुँ दिशि पलाश छबि छाई। मनहुँ सकल बन लाइ लगाई ॥
यह निर्धूम दवागिनि सोई। पान कीन्ह गिरधारी सोई ॥"

इसी प्रकार जिस पक्षी को बड़े प्यार से पाला था वही अब वियोग में बैरी बन गया है।

"पाली हती मयूर अली हौं चाहि के
सौत भई अब क्रूर बिरह बस पावस निशा।'

बादलों की घुमड़ पर जब मोर प्रसन्न होकर नाच उठता है, तब वियोगिनी का हृदय प्रसन्न न होकर दुख से भर जाता है। ऐसे ही पावस की काली रात काटे नहीं कटती। उसे वह प्रलय की घटा के समान अनन्त जान पड़ती है।

'महाकाल कैंधों महाकाल कूटै। महाकालिका के कैंधों केश छूटै ॥
कैंधों धूम धारा प्रलय काल वारी। कैंधों राहु रूप रैन कारी ॥'

सावन के दिनों में जब संयोगिनी नारियाँ प्रसन्न बदन गलबाही डाले हुए घूमती फिरती हैं अथवा प्रियतम के साथ हिंडोला झूलती हैं तब वियोगिनी का हृदय दुख और ईर्षा से कराह उठता है।

'गल बांही डोलैं डगराती। नवल नारि जोबन मदमाती ॥
दंपति मिलै हिंडोरा झूलहि। मोहि बिरहा की शूल न भूलहि ॥"

मनुष्य की पीड़ा की अधिकता में अपनी सुध-बुधि खो देता है। उसे जड़ और चेतन का ध्यान नहीं रह जाता। वह पशु-पक्षी पेड़ पौदों से अपने मन के प्रश्न का उत्तर चाहता है और उनके न बोलने पर झुँझला उठता है।

"बिछुड़े का दिल मन में आवे। अरे नीम तू क्यों न बतावे॥
क्यों पीपल तू थल इल डोलै। इमली क्यों न बाउली बोलै॥"

प्रेम की रीति कुछ विचित्र है प्राणों का घातक बहेलिया भी मृग को मार कर उसे अपने सर पर चढ़ा कर ले चलता है, किन्तु प्रियतम इतना निष्ठुर है कि घायल कर के सुध भी नही लेता।

"बध कुरंग को बहेलिया लावत शीश चढ़ाय।
मेरी सुधि लीन्हीं न तू हिये नैन शर लाय॥"

केवल प्रियतम की आशा और उसके नाम पर ही विरहिणी बाला जीवित रहती है। वियोग में भी प्रियतम का संयोग अग्निशिखा के रूप में उसके जीवन दीपक को प्रज्वलित किए रहता है।

माधौनल तुव नाम दीपक राग समान तिन।
जगत दिया लौ बाम इहि संयोग जीवत रहत॥

वह जीवित रहते हुए भी मृतक के समान रहती है। इसलिए उसे चाँदनी रात और ऐश्वर्य के सारे सामान दुख ही देते रहते हैं।

"चाँदनी रात जरी की जरी तकिया अरु गेडुआ देखि रिसाती।
राती हरी पियरी लगी झालरैं केसर धरी बिरी नहि खाती॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरहवारीश में संयोग और वियोग का चित्रण बड़ा स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हुआ है। उसमें प्रेम के मानसिक और शारीरिक पक्ष का सन्तुलन इतनी कुशलता से किया गया है कि कहीं अनौचित्य की छाया भी नहीं पड़ने पाती, वरन् कवि द्वारा निर्मित 'शब्द चित्र' सजीव और मनोहारी बन पड़े हैं।

भाषा-शैली

इस काव्य की रचना विरही और बाला के संवाद के रूप में की गई है, जो नौ खण्डों में वर्णित है। कवि ने स्वयं एक छप्पय में कथा और उसके खण्डों का वर्णन प्रारम्भ में दे दिया है।

'प्रथम शाप कन बाल द्वितीय अरुण्ड खण्ड गन।
पुनि कामावत देश बेस उज्जैन गवन मन॥
युद्धखण्ड पुनि गाह रुचिर शृङ्गार बखानो।
पुनि बहुधा बन देश न उम वर ज्ञान बखानो॥

कही प्रीति रीति गुन की सिपत नृप विक्रम को सरस यश।
नौ खण्ड माधवा कथा में नौ रस विद्या चतुदश॥"

कथा के पूर्व गणेश की वन्दना है। गणेश की वन्दना के उपरान्त श्रीकृष्ण की वन्दना कवि ने की है। तदन्तर कवि ने राजा छत्रसिंह का परिचय तथा अपने देश को छोड़ने तथा स्थान-स्थान पर भ्रमण करने का उल्लेख किया है। इसके उपरान्त प्रेम तथा उसके पथ की कठिनाइयों का वर्णन करने के अनन्तर कवि ने कथा का प्रारम्भ किया है।

भाषा चलती हुई व्रज है, जिसके बीच-बीच में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे कुलिश, व्रज, धृक, अमृत, पिनाक, उन्नत, विष, वल्लभा, द्रुम, करषत, आदि। इसके साथ ही उरदू और फारसी शब्दावली की छटा भी दिखाई पड़ती है। जैसे, महबूबा, दिल-माहिर, जाहिर, एतराजी, गुस्सा, इश्क, आशिक, दगा, दगादार, शहर आदि।

भाषा भाव के अनुकूल कोमल एवं कठोर, गम्भीर एवं चञ्चल होती चलती है। शब्द-चयन बड़ा लालित्यपूर्ण एवं भावव्यंजक है, जैसे—

'सरकि-सरकि सारी सरखि सरखि चूरा मुरकि मुरकि कटि जाय यो नबेली की।
बोधा कवि छहर-छहर मोती छहरात थहर-थहर देह कम्पित नवेली की॥'

यही कोमल पदावली युद्ध वर्णन में कठोर और भावानुकूल बन जाती है। जैसे—

इतहि वीर हम्मीर हंकित। हूँक सुनत पुरहूत कम्पित॥
धराधर-धराधर धर धरखत धर। भूमि शैल दिग्गीश धर॥
बजत तरपड़ मुन्ड भटं-भट। शूल खड्ग कृपान खट्ट-खट्ट॥
झरत शोणित बुन्द झल्लन। पड़े शोड़ित कुण्ड रुन्डहि॥
भक-भक भभकन्त सुंडह। सरासर सरसंत सरवर॥'

इसी प्रकार नृत्य करते समय तबले के थाप और घूँघरू से निकले हुए बोल शब्द-चयन के द्वारा बड़ी सुन्दरता से व्यक्त हो सके हैं।

'था-था-था थुगादिक थुकन्त थुङ्गी थुनि थुगिरट॥
फं-फं-फं फुगादिक फुकंत बोलत संगीनट॥

साधारण चलती हुई भाषा का भी एक नमूना देखिए—

'तिय की गही पियने बाँह। तब तिय कही नाहीं नाँह॥
मोंको दरद दोइहै मित्त। ऐसी आनिये नहि चित्त॥
नहीं कहत बारम्बार। टूटत जलज मणिय हार॥
कुच के छुवत झुकि झहरात। तकिया ओर टरकत जात॥'

नित्यप्रति की कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी हमें इनमें मिलता है। जैसे—

'धोबिन सों जीतैं नहीं मलत खरी के कान।
× × ×
परखाइयों को खोट का घर को खोटो दाम।
× × ×
उगलत बात बनै ना सांप छछूंदर की कथा।

दक्खिनी हिन्दी का परिचय भी इनकी भाषा में प्राप्त होता है।

"नशा कभी न खाते हैं। अये हम इश्क मदमाते हैं॥
गए थे बाग के ताईं। उतै वे छोकरी आईं॥"
उन्हीं जादू कुछ कीन्हा। हमारा दिल कैद कर लीन्हा॥

अथवा

इश्क दिलदार सो लागा। हमने दिल दर्द अनुरागा॥
खड़ी फुलवारियाँ खेलै। जम्हीरी हाँथ सों झेलै॥

अलङ्कार

इस कवि ने समय की परिपाटी के अनुकूल सादृश्यमूलक अर्थालङ्कारों का योग किया है, जिसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और सन्देह, तथा लोकोक्ति विशेषरूप से पाए जाते हैं।

उपमा—है द्विजराज मुखी सुमुखी अति पीन कुचाह गरूरी गररी गति।
× × ×
'नीबी के छुवत प्यारी उलथि पलथि जात
जैसे पवन लगे लोट जात बेली ज्यों चमेली की॥'

उत्प्रेक्षा—'कनक कुलिश से चारु कुच गहे मरोरत कन्त।
मनहुँ लङ्क को शीश गहि हिलरावत हनुमंत॥'
'लसत बाल के भाल में रोरी बिन्दु रसाल।
मनो शरद शशि में बसी बीर बहूटी लाल॥'

लोकोक्ति—"लीलावती के बैन सुन माधो चुप हो रह्यो।
उगलत बात बनै न साँप छछूंदर को कथा॥"

सन्देह—'महा काल कैंधों महाकाल कूटै।
महाकालिका के कैधों केश छूटै॥
कैंधों धूम धारा प्रलय काल बारी।
कैंधों राहुरूप कैनों रैन कारी॥'

शब्दालंकारों में छेक और वृत्यनुप्रास बहुतायत से प्रयुक्त हुआ है।

'सुमन सुगंध कवि अंक न अरथ जैसे
गणित को भेद सबियो बखानियतु है।'

× × ×

'तै तो हेरी हरिण और हरिण हर्यो हरि ओर
हरि हेरो विधि और गुसा यो विचार्यो है।'

छन्द.

इस काव्य में दोहा और चौपाई प्रधान है, किन्तु अन्य छन्दों का प्रयोग भी किया गया है। जिसमें त्रोटक, सोरठा संधारका, दुविला, दंडक, छप्पय, सुमुखी, कुंडलिया, तोमर, गाथा, हरिगीतिका और मोतीदाम प्रधान हैं।

त्रोटक—'सुरभी फिरना उरभी जबतें। हरि ही अनुराग रही जियतें॥
बिलखै सिगरी न लखैं पिय को। कलपैं तलफैं न लखैं पिय को॥
हरि हो हार हो हरी हा रटतीं। दम ऊरध लैं दमसी भरती॥
निशिवासर वो करुणा करती। मूर्च्छा लहि हा कहि भू परती॥
कबहूँ बन कुञ्जन में बिहरैं। लखि केलि सहेट बिलाप करैं॥
कबहूँ गज भूडन देखि हरैं। हरिजू बिन को वन मांह बसैं॥'

सोरठा—'हिय ते बिछुरें नाह हिम ऋतु इमि आगत जगत।
उलटो एक पनाह शीत दिवस दाहैं करत॥'

सधार का छन्द—'शिर जर्द पाग बिलसत सुवंश।
रहि जुल्फ जुल्फ घुँघरारि वेश॥
उर सुमन हार तुर्रा जरीन।
कुम कुम त्रिपुण्ड भृकुटो परीन॥

दुविला छन्द—कटि पीत पटु शुभ देख। कछनी सुरंग विशेख॥
कल बीच मुक्तमाल पग पउड़ी लही लाज।

दडक—चौखटा नवेली जहाँ पौन को न गौन ऐसो,
ठौर मन भावती सो हेत को निवाहिये।
चाहिये मिलाप बिसारिये न एको बेर,
मिलवे को कोटि कोटि बाते अवगाहिये॥
बोधा कवि अपने उपाय में न कमी कीजै,
दुसतुबरेलन की दुष्ट पै न चाहिए॥
समय पाय बन जाय कीजै सौ उपाय आली,
दूसरों न जानै तो इश्क सराहिये॥

छप्पय—'कह चकोर सुख लहत भीत कीन्हा रजनी पति ।
कह कमलन कह देत भान सह हेत कीन्ह अति ॥
घुन कहं कहाँ मिठास लकुट भूरी टकटोरत ।
दीपन संग पतंग आय नाहक शिर फोरत ॥
नहि तजत दुसह यद्यपि प्रगट बोधा कवि पूरी पगन ।
है लगी जाहि जानत वही अजब एक मन की लगन ॥'

छन्द सुमुखी—लीलावती ने यह सुधपाई । माधव को निकरावत राई ॥
जग भय छोड़ के कुल कान । नृप पै चली अतिहि रिसान ॥
कर गहि माधव लीन्ह । इह विधि तिह ठां कीन्ह ॥
को समरत्थ लखि इहिबार । दैहै माधवाहि निकार ॥

छन्द नराच—गहै सुबांह विप्र की सकोप बात यों कहै ।
बताव मीति मोहि तोहि काढ़ि देन को कहै ॥
शाप देउ तासको सुनु सो हाल ही करौ ।
उतार शीश देहते हजूर राइ के धरौ ॥

दुविलका—वह को विद्या जो बाल ।
तिहि रची सेज विशाल ।
पुनि सजे भूषणवेश ।
विलसू जवार सुदेश ।
तितद्पति हिये उठाइ ।
वह गई झट पगलाय ।
तब माधव उनमान ।
रति करी तजि के कान ॥

तोमर—द्विज पूछ्यो शुक काहि । टिकिए कहाँ पुरमांहि ।
तब यों कह्यो परवीन । नृप बाग चाह नवीन ॥

गाथा—हो कन्दला परवीनं । तुव वियोग मय दुख लीनं ॥
छिना-छिना छिन दीन । वुद्धि रटत माधव योगी ॥

मोतीदाम—चल्यो दल दीरघ बिक्रम समाज । उठै बढ़ि मत्त मतंग राज ।
ररै रण मार वढ़ा हिय जोर । कवित्तन मंडित भाटन शोर ॥
कंपै जिमि भूमि चलै दलपात । लखै दिशि चार ध्वजा फहरात ॥
रिग्यो सिगरे दिन तापुर मांझ । भई पुर बाहिर आवत सांझ ॥

हरिगीतिका—गुण ग्राम बधिक सुजान आशिक पायके सुख पाय हैं ।
मृगछाल हाल बिछाय तापर राग सुन्दर गाय हैं ।

यह समुझि कै मजबूत दोनों देह भिक्षा देत हैं।
न समान तिनके आन धन मृगउ यहै गति लेत हैं ॥

इस प्रकार स्वच्छन्द प्रेमाख्यानों की परम्परा में बोधा का विरहवारीश भाव, भाषा, छन्द, अलंकार-योजना, घटना के संविधान, हृदयग्राही शाब्दिक चित्र, मनोवैज्ञानिक भावाभिव्यक्ति और काव्य सौष्ठव की दृष्टि से एक सफल रचना है। स्वच्छन्द प्रेमाख्यान होने के कारण तथा तत्कालीन काव्य में रीति-बद्ध काव्यों की शृङ्गारमयी रचना के प्रभाव से हमें विरहवारीश के संयोग-पक्ष में रति विषयक कुछ ऐसे वर्णन मिलते हैं जो आजकल की दृष्टि से अश्लील या अमर्यादित कहे जा सकते हैं।

श्लील और अश्लील का प्रश्न उठता अवश्य है किन्तु किसी भी कवि की आलोचना करते समय हमें तत्कालीन काव्य-प्रवृत्तियों एवं कवि के क्षेत्र को न भूल जाना चाहिये। प्रेम-काव्यों में प्रेम का संयोग और वियोग अवस्था का चित्रण ही मुख्य रहता है। हमें देखना यह है कि कवि अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है। हमारा अपना विचार है कि बोधा ने अपने काव्य में इस दृष्टि से असाधारण सफलता पाई है और प्रेम काव्यों की कोटि में यह किसी भी काव्य से कम महत्व का नहीं कहा जा सकता। वरन् यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि स्वच्छन्द प्रेम काव्यों में विरहवारीश सर्वोत्कृष्ट रचना है।

—:०:—

माधवानल कामकन्दला

गणपतिकृत

रचना काल सं० १५८४

कवि-परिचय

कविवर गणपति के पिता का नाम 'नरसा'[1] था। आप जाति के कायस्थ थे। आपका निवास स्थान नर्मदा तट पर 'आम्र पद' में था। इनकी रचना के अन्तर्साक्ष्य से केवल इतना ही पता चलता है। कवि का पूर्ण जीवन-वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

एक समय सरस्वती के तट पर शुकदेव जी शिव की कठिन तपस्या में रत थे। वेदव्यास ने कामदेव को बुला कर उससे शुकदेव जी को तपस्या से डिगाने की प्रार्थना की, इसलिए कि गार्हस्थ जीवन में वह शुकदेव जी को रत देखना चाहते थे ताकि उनका वंश आगे चल सके। कामदेव ने अपने दल-बल के साथ शुकदेव पर चढ़ाई की किन्तु तमाम प्रयत्न करने के उपरान्त भी वह असफल रहा। अपने पति को इस प्रयास में विफल देखकर रति ने उसे ढाढ़स बँधाया

---

१. 'कवि कायस्थ कथा कहइ, नरसा सुत गुणपति।
ढाढर कंठइ ढुकड, आम्रद्रि अधिवास।
मध्यपंथि मही नर्मदा, जल कूखि जलरासि ॥ १६ ॥
प्रथम अंग।

'नरसा सुत गणपति कहइ अंग थयां ए आठ।
सुधइ स्वामिनी शारदा, पोतइ दीधु पाठ ॥ २१६ ॥
दीसइ दस गाऊ मही, दस गाऊ सरथान।
दश गाऊ पखि नर्मदा, आम्रपद्र स्वस्थान ॥ २१७ ॥
कवि न्याति कायस्थ बड़, वार्लिमि विख्यात।
पूरू ऐ पद बन्धतां, दीह थया दह सात ॥ २२१ ॥
'अष्टम सर्ग'

और कामदेव तथा रति ब्राह्मण तथा वेश्या के रूप में उस स्थान पर पहुँचे जहाँ शुकदेव जी तपस्या कर रहे थे। उन्होंने शुकदेव जी के सामने ही विहार प्रारम्भ कर दिया। शुकदेव एक ब्राह्मण को वेश्या में रत देख कर बड़े क्रुद्ध हुए। इस पर उन्होंने कामदेव और रति से वादविवाद किया। ब्राह्मणरूपी कामदेव ने कामी प्रसङ्ग को ही जीवन की अमूल्य निधि घोषित किया। शुकदेव ने अन्त में दोनो को मृत्यु लोक में जन्म लेने का शाप दे दिया और यह भी कहा कि तुम लोग अपने माता-पिता से सर्वदा अलग रहोगे। एक स्थान पर न ठहर कर भटकते फिरोगे। तथा कामपीड़ा से पीड़ित और व्याकुल रहोगे।

इस शाप के फलस्वरूप कामदेव का जन्म कुरंगदत्त ब्राह्मण के यहाँ हुआ। एक दिन मृग के रूप में एक यक्षिणी ब्राह्मण की कुटिया के पास घूम रही थी। पञ्चवर्षीय माधव को अकेला देख कर वह उसे उठाकर लङ्का की ओर भागी। राजा गोविन्द चन्द उसी समय आखेट के लिए गये थे। उन्होंने इस हिरणी के पीछे घोड़ा डाल दिया और उसे मार डाला। एक पञ्चवर्षीय बालक को हिरणी के पास देखकर वे बड़े चकित हुए। बालक ने रो कर अपना हाल बताया। किन्तु वह अपने पिता का नाम और स्थान न बता सका। गोविन्द चन्द इस बालक को पुष्पावती ले गये और अपने पुरोहित रुद्रदत्त को उसे सौंप दिया। बालक का नाम माधव रखा गया। उसने थोड़े ही समय में सारी विद्याएँ जान लीं। युवक होने पर वह नित्य प्रति महल में पूजा कराने जाया करता था। महाराज गोविन्द चन्द की पट्ट महाराज्ञी रुद्र देवी उस पर आसक्त हो गयीं। उन्होंने एक दिन अपना प्रेम उस पर प्रकट किया किन्तु माधव ने उन्हें माँ सम्बोधित कर इस प्रेम को वर्जित एवं कृतघ्न बताया।

रुद्र देवी ने माधव के इस व्यवहार पर क्रुद्ध होकर उससे प्रतिशोध लेने की ठानी। और कोप भवन में जा पहुँचीं। राजा के पूछने पर उन्होंने बताया कि माधव बड़ा कामी है उसकी कुदृष्टि रनिवास की प्रत्येक नारी पर पड़ती है। आज उसने हमारे साथ भी कुत्सित व्यवहार करना चाहा था। राजा इसे सुनकर बड़ा क्रुद्ध हुआ और माधव को अपने राज्य से निकाल दिया।

पुष्पावती को छोड़ कर माधव अम्रावती नगरी पहुँचा जहाँ रामचन्द्र राज्य करता था। इस नगरी की सारी प्रौढ़ाएँ एवं नवयौवनाएँ उस पर आसक्त हो गईं। उसे देख कर स्त्रियों के गर्भपात हो जाते थे तथा अपने पति के पास जाना पसन्द नहीं करती थीं। इस कारण से दुखी होकर प्रजा ने राजदरबार में माधव को देश से निकाल देने की प्रार्थना की। अकारण ही किसी विप्र को देश निकाला देने में राजा को बड़ा संकोच होता था। इसलिए प्रजा की बात

सत्यता की परख करने के लिए माधव को दरबार में बुलाया गया और काला तिल बिछा कर पटरानी के साथ बीस स्त्रियों के साथ बैठाया गया। माधव के सामने आते ही ये स्त्रियाँ कामान्ध हो गईं और अपने को सम्हाल न सकीं। जब वे उठीं तो उनके पीछे तिल चपके हुए थे। इसको देखकर राजा को जनता की बातों पर विश्वास हो गया और उन्होंने माधव को अपने राज्य से चले जाने की आज्ञा दी। माधव इस प्रकार पुष्पावती नगरी पहुँचा जहाँ कामसेन राज्य करता था।

इधर रति का जन्म 'पातीशाह' सेठ के यहाँ हुआ। सेठ जी के चार पुत्र थे। पुत्री जन्म पर उन्होंने बड़ा समारोह किया। इस समारोह में 'बीझू' वेश्या उसके यहाँ नाचने आई। यह वेश्या सामुद्रिक विज्ञान की ज्ञाता थी। बालिका के लक्षणों को देख कर उसने जान लिया कि यह बालिका वेश्या होगी। निःसन्तान होने के कारण इस बालिका को चुरा ले जाने की अभिलाषा उसमें जाग उठी और वह एक दिन उसे चुरा कर कामावती नगरी भाग खड़ी हुई। इस बालिका को नृत्य, गान आदि चौदहों विद्याओं में पारंगत कराकर बीझू ने कामकन्दला को राजा कामसेन के दरबार की प्रमुख नर्तकी बना दिया।

कामावती नगरी में एक दिन राजदरबार में सङ्गीत सभा हो रही थी जहाँ से मृदङ्गों की गम्भीर ध्वनि आ रही थी वहीं माधव भी पहुँचा किन्तु द्वारपाल ने उसे अन्दर नहीं जाने दिया। थोड़ी देर के बाद माधव द्वार पर खड़ा ही खड़ा सारी सभा को मूर्ख कहने लगा। द्वारपाल के पूछने पर माधव ने बताया कि मृदङ्ग बजाने वाला बहरा है इसलिए नर्तकी के नृत्य पर स्वर भंग हो रहा है और दक्षिण की ओर जो तुरही बजा रहा है उसके अंगूठा नहीं है और वीणाकार के दो दाँत नहीं हैं। इस कारण स्वर भंग होने से नर्तकी का नृत्य ताल सुर से मिल नहीं रहा है। द्वारपाल ने यह बात राजा से बताई। परीक्षा कर लेने के उपरान्त राजा कामसेन ने माधव को बुलवा भेजा और बड़ा आदर सत्कार किया। इसके अनन्तर कामकन्दला का नृत्य प्रारम्भ हुआ कन्दला बड़ी तन्मयता से नृत्य कर रही थी अकस्मात एक भ्रमर आ कर उसके कुच पर बैठ गया उसके दंशन से नर्तकी को पीड़ा होने लगी। कन्दला ने नृत्य में किसी भी प्रकार की बाधा आये दिन बिना उसे 'न्यास पवन' प्रकट कर उड़ा दिया।

"शिर चलाइ शोणित घणउँ प्रमदा पीड़ी अपार।
न्यास पवन प्रगड्ड करी ऊडाडिउ तिणि वारि॥"

इस कला पर प्रसन्न होकर माधव ने राजा-द्वारा प्रदत्त सारे आभूषणों

आदि को कन्दला पर न्योछावर कर दिया। माधव के इस व्यवहार को राजा ने अपना अपमान समझा और उसे निष्कासित कर दिया।

इसके उपरान्त माधव उज्जैनी में राजा विक्रमादित्य के यहाँ पहुँचा और शिव-मन्दिर में गाथा लिखा जिसे पढ़ कर विक्रमादित्य बड़ा चिन्तित हुआ और उसने माधव को ढुंढवाया। माधव का वृतान्त सुनने के पश्चात् अपने दल बल सहित विक्रम ने कामावती पर चढ़ाई कर दी और कामसेन को युद्ध में हरा काम-कन्दला को माधव को दे दिया। इस प्रकार माधव और कन्दला फिर सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु प्रारम्भ में अन्य रचनाओं से भिन्न है। कवि ने माधव और कन्दला के पुनर्जन्म को शुकदेव के शाप से सम्बन्धित किया है। बीभू वेश्या का प्रसंग भी कवि की स्वतन्त्र उद्भावना है। काव्य के अष्टम अंग में माधव और कामकन्दला के विलास का संयोजन कर रचयिता ने एक नवीन परिपाटी का अनुसरण किया है। हिन्दी साहित्य में बारह मासे का आयोजन केवल विरह-पक्ष में ही पाया जाता है। किन्तु इस कवि ने संयोग और वियोग दोनों के सम्बन्ध में 'बारह मासा' लिखा है जिसके कारण इस काव्य में प्रकृति-चित्रण अन्य काव्यों से अधिक प्राप्त होता है। कवि ने बीच-बीच में अन्य प्रसङ्ग जैसे वामाचार प्रयोग, तांत्रिक प्रयोग, वेश्या व्यवसाय, द्रव्य महात्म, तिथि विधि निषेध, ब्राह्मण निन्दा, परपुरुष भोग प्रशंसा, तीर्थ गणना, नर्मदा स्तुति, आदि का संयोजन कर तत्कालीन धार्मिक विश्वासों एं नीति का प्रतिपादन किया है। कतिपय उपर्युक्त प्रसङ्गों की पुष्टि के लिए पौराणिक दृष्टान्त भी स्थान-स्थान पर दिए गये हैं। इसके अतिरिक्त समस्या विनोद की प्रथा का वर्णन तीन स्थानों पर लगभग दो सौ दोहों में किया है। इस प्रकार प्रबन्ध में प्रेम की तीव्रता और अनन्यता के साथ-साथ यह काव्य जन साधारण के जीवन पर भी प्रकाश डालता है। इसमें कहानी के सौष्ठव के साथ-साथ सौन्दर्य का सामञ्जस्य मिलता है।

इस काव्य की विशेषता प्रारम्भ की स्तुतिमें भी लक्षित होती है। साधारणतः हिन्दू कवि सरस्वती या गणेश की वन्दना के उपरान्त अपने काव्य का प्रारम्भ किया करते थे, किन्तु इस कवि ने इसके स्थान पर कामदेव की स्तुति की है जो वर्ण्य विषय की सूचना प्रारम्भ में ही दे देती है।

इस प्रकार गणपति का माधवानल कामकन्दला प्रबन्ध लोकगीतों और सिद्धहस्त आलङ्कारिक वर्णनात्मक काव्यों की शैली का मिला जुला रूप उपस्थित करता है।

सम्बन्ध निर्वाह और कल्पना

कथानक के सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से आलोच्य कथानक दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहला आधिकारिक और दूसरा प्रासङ्गिक।

आधिकारिक कथा के अन्तर्गत माधव और कामकंदला की प्रेम कहानी आती है जो उनके पूर्व जन्म से सम्बन्धित है। कामदेव और रति के शाप की घटना, रूद्र देवी की प्रेम याचना, माधव का निष्कासन, कामावती में माधव और कंदला का मिलन, तथा माधव का कंदला को पाने का प्रयत्न इसी मूल कथा के अन्तर्गत आती हैं।

बीझू वेश्या से सम्बन्धित घटना, कुरंगदत्त के यहाँ बालक माधव का पहुँचना, मृदङ्गियों का बहरा होना, भ्रमर के दंशन की घटना, विक्रमादित्य की प्रतिज्ञा एवं वैताल द्वारा अमृत लाभ प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत आते हैं।

जहाँ तक आधिकारिक और प्रासङ्गिक कथाओं का सम्बन्ध है कवि ने बड़ी कुशलता स दोनों का गुम्फन किया है। कोई भी घटना आवश्यकता से अधिक वर्णित नहीं है। उदाहरणार्थ रुद्र देवी को ही लीजिये। कवि ने उसके रूप और प्रेम चेष्टाओं का वर्णन केवल माधव के प्रति उसकी भावना को प्रदर्शित करने के लिए ही किया है। माधव के पुष्पावती से चले जाने के उपरान्त उसका उल्लेख आगे कहीं-नहीं मिलता, कामावती में कंदला को राजदरबार में सौंप देने के उपरान्त वेश्या का वृत्तान्त समाप्त हो जाता है ऐसे ही अन्य घटनाओं के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। प्रबन्ध-निपुणता यही है कि जिस घटना का सन्निवेश हो वह ऐसी हो कि कार्य से दूर या निकट का सम्बन्ध भी रखती हो और नए-नए विशद भावों की व्यञ्जना का अवसर भी देती हो[1]।

कार्यान्वय की दृष्टि से शुक के शाप से लेकर कामावती में माधव और कंदला के मिलन तक कथा का प्रारम्भ, माधव के कामावती से प्रयाण से लेकर विक्रमादित्यके प्रण तक मध्य और अमृतलाभ से लेकर दोनों के विवाह और आनन्दमय जीवन तक का वर्णन कथानक का अन्त कहा जा सकता है। आदि अंश की सब घटनाएँ मध्य अर्थात् माधव और कंदला के प्रेम की अनन्यता की ओर उन्मुख है, इसी के बीच आए हुए वेश्या व्यवसाय, बन आदि के वर्णन विरह के बारहमासे, पौराणिक दृष्टान्त, नारी चरित्र वर्णन, नर्मदा स्तुति, तीर्थ स्थानों आदि की गणना मध्य का विराम कहा जा सकता है। अमृतलाभ के उपरान्त घटना का प्रवाह फिर कार्य की ओर मुड़ जाता है। इस प्रकार कार्यान्वय के सभी अवयव इस काव्य में मिलते हैं।

सम्बन्ध-निर्वाह के अन्तर्गत गति के विराम का भी विचार कर लेना आवश्यक है। यह कहना पड़ता है कि इस प्रबन्ध में कथा को गति के बीच-बीच में अनावश्यक विराम बहुत हं जो प्रबन्ध की रसात्मकता में सहायक नहीं होते जैसे स्वरों और व्यञ्जनों के अनुसार पेड़ों की गणना, विषधरों के नाम, तीर्थाटन से लाभ, और उनकी गणना, पौराणिक दृष्टान्त आदि। कन्दला के शृङ्गार-वर्णन में आभूषणों के नामादि भी अनावश्यक से जान पड़ते हैं फिर भी सन्तुलित दृष्टि से देखा जाय तो इन आवश्यक अंशो के होते हुए भी कथा की रसात्मकता में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि गणपति का माधवानल प्रबन्ध सम्बन्ध-निर्वाह की दृष्टि से अच्छा है।

काव्य-सौंदर्य

नख-शिख-वर्णन

कामकन्दला के नखशिख वर्णन में [कवि ने परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है जैसे—

'जंघा कदली' थम्भसम, अमर तणइ मनि आस।
स्मर मन्दिर सिउ मिढीई नयण तणउ तहाँ वास।
तुम्ब नितुम्ब रह्यां ग्रही, संचरतां सम शृङ्ग।
कटि जाणइ कुली करी, ऊठण धरइ अनङ्ग।
नाभि विवर अति रूयडू, उपरी त्रिणि प्रवाह।
मुनिवर माघ प्रयाग मांहां, जे नाहिउ ते नाहि।

इस प्रकार नासिका की उपमा कवि ने दीपक की लौ से दी है, जिसे कवियों ने अधिकतर नहीं अपनाया है। इस प्रकार गणपति के लिए हम कह सकते हैं कि वह नवीन उपमानों के प्रयोग में भी सिद्धहस्त थे।

'दीप शिखा सोविन सली, तेल तणह ते धार।
निरखी निरखी नासिका, जग सहि करइ विचार॥'

इस कवि ने जहाँ नायिका का नख-शिख-वर्णन किया है वहीं नायक का नख-शिख वर्णन भी किया है जो साधारणतः अन्य काव्यों में नहीं पाया जाता। माधव के रूप-वर्णन में भी कवि ने परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है जैसे—

"कदली गर्भ जिसीकया, यंत्रकला सी जेम।
मूरति को मोहन कला, विश्व वधारण प्रेम।

नाभि विवर अति रूअडं, घण नली आरइ पेटि।
उन्नत उर विशाल पण भेल तह सकइ न भेटि।

कामकंदला के नख-शिख वर्णन के पूर्व कवि ने मुग्धा अज्ञात यौवना नायिका का भी वर्णन किया है? नित्यप्रति होने वाले अपने शारीरिक परिवर्तनों को देखकर बालिका कन्दला चकित और चिंतित हो गई। उसने समझा कि उसे कोई बीमारी हो गई है जिसके कारण उनका शरीर और मन ठीक नहीं रहता। अस्तु वह अपनी माँ के पास पहुँची और कहने लगी—

"माई मझनइ ऊपनी, अैक असम्भम व्याधि।
रिदयंइ रसोली विइ थइ, मन नहीं मोरि साधि॥
चंचल चखी ठमि न रहइ भमहि भमंति न भग्ग।
कर सरला, कटि पातली, मंद थया मोरा पग्ग॥
पेट थयुं पणि पातलुं, त्रिवली वलइ सुलीह।
राति जाइ तु तिम वली, अधिक थाइ दीह॥
तुंबा अहियां विहु गंभा, सभा न चालिउं जाई।
नाभि अम्हारी निति नित, आई ऊंडी थाई॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने नायक-नायिका के सौन्दर्य-वर्णन में कवि परम्परा का ही अनुसरण किया है जिसमें वय:सन्धि आदि के वर्णन भी प्राप्त होते हैं।

संयोग-शृङ्गार

संयोग-पक्ष में कवि ने समस्या विनोद का ही वर्णन किया है[1]। पहेलियों के रूप में प्रश्नोत्तर छपे हुए दस-बारह पृष्ठों तक चले जाते हैं। ऐसे स्थल पुस्तक में तीन स्थान पर आए हैं, किन्तु समय की परिपाटी के अनुसार 'केलि-युद्ध' आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है।

'बूंब देऊं छऊं बंमणा, मुकी दिइ मुझ मीत।
कर जोड़ी निलवटि करइ, चतुर चोरती चित्त॥

अथवा

कुच मर्दन, कप्पइ अधर, लिइ चुरासी लाग।
सुहड़ यथा समरंगणि, भड़ता को इन भाग॥

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त इस काव्य में प्रेम का मानसिक-पक्ष अधिक निखरा है। जैसे प्रथम मिलन की रात्रि में कन्दला कहती है कि हे प्रियतम,

---

१. माधवानल कामकन्दला, गणपति। पृ० १०८।

विधाता ने मेरे साथ बड़ी खोट की है। अगर उसने मुझे कोटि बाँहें दी होतीं तो मैं उन सबसे जी भर आलिंगन करती।

'माधव मुझ माही कर, खरी विधाता खोड़ि।
आलिंगन अति भीड़ती, जउ कर सरजत कोड़ि॥'

अथवा

अगर दैव ने कृपा कर सहस्रों नेत्र दिए होते तो तुम्हारे रूप को देख कर परम सुख पाती।

'देतउ दैव कृपा करी, सहस नयन मुझ सार।
पेखी पेखी पामती, हुँ त्रपति लगार॥

किन्तु इनसे अधिक मार्मिक उक्तियां उस रात्रि के प्रति हैं जिस रात्रि को उसका प्रियतम उसे मिला है। संयोगिनी कन्दला चाहती है कि यह रात्रि कभी भी समाप्त न हो अन्यथा उसका प्रियतम उससे बिछुड़ जायगा। इसलिए वह रात्रि से प्रार्थना करती हुई कहती है कि मेरी सखी तू चार युग तक इसी प्रकार बनी रह। अन्यथा सूर्य के निकलते ही मेरी आखों से अश्रु बहने लगेंगे।

'रजनी सजनी माहरी तु रहिजे जुग चियारि।
दिण्यर दीसन्तु रखै, नीसत नयणां वारि।'

उसकी मनोकामना है कि अरुण वरुण मुर्ग आदि सभी मर जाएं और सूर्य का रथ बन में पड़ा रहे कोई उसे निकालने वाला न मिले।

'आज मिटै उच्चैश्रवा, वरुण अरुण पणि दोइ।
रवि रथ रहिउ वनि पड़िउ, च्ढ़ि मर्करि सिउ कोइ।'

इसी प्रकार विन्ध्याचल से प्रार्थना करती है कि तुम आज आकाश में इस प्रकार अड़ जाओ कि सूर्य न निकल सके और हमारा काम बन जाए।

'विन्ध्याचल वाधे तुं घणुं अम्बर अड़के आज।
आदित्य नहं ऊगी सकइ, सरइ अम्हारा काज॥'

पुस्तक के अन्त में कवि ने 'सुख का बारहमासा' माधव-विलास के रूप में वर्णित किया है। फागुन में माधव और कन्दला होली खेलते और आनन्द मनाते हैं, सावन में ये लोग झूला झूलते रहते हैं। इस 'बारहमासे' में प्रकृति चित्रण तो उतना नहीं मिलता जितना कि स्त्रियों की वेश-भूषा हाव-भाव एवं शैया को फूलों से सजाने का वर्णन मिलता है[1]।

---

1. 'फागुण केरा फणगन्टा, फिरि फिरि गाइ फाग।
चङ्ग बजवइ चङ्ग परि आनवइ पञ्चम राग।
हरखि रमइ हुताशनी निरखी निर्मल चन्द।

विप्रलंभ-शृङ्गार

संयोग-पक्ष की तरह प्रस्तुत रचना का वियोग-पक्ष भी बड़ा मार्मिक, सुन्दर और हृदयग्राही बन पड़ा है। कन्दला की मानसिक स्थिति के चित्रण में कवि ने प्रकृति के सारे क्रिया व्यापार एवं नित्य प्रति के जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं का संयोजन करके उनके प्रति नायिका की मानसिक प्रतिक्रिया का आयोजन किया है जैसे दीपक, चन्द्रमा और सूर्य। दीपक के प्रकाश को देखते ही नायिका की अपने प्रियतम के साथ बीते हुए सुखद क्षणों की स्मृति हरी हो उठती है और व्याकुल होकर वह कह उठती है कि ऐ दीपक ! तू मुझे क्यों जला रहा है, तू तो स्वयं जलता है तेरा स्नेह जलता है और तेरी बत्ती तक जलती है फिर भी तू दूसरों को जलाने में नहीं चूकता। तू क्यों मुझे दग्ध कर रहा है मै तुझ पर पानी डाल दूँगी नहीं तो हवा से तुझे बुझा दूँगी।

"दाखिन राखूं दीवड़ा का दहइ मुझ शरीर।
पवन करी पर हो कहूँ उपरि नामूं नीर।
तेल बलइ बाती बलइ आपि बलइ अपार।
बलनु बल अधिकुं करइ, मुझनइ मार खहार।"

पृष्ठ १६० ।

इसी प्रकार सूर्य से प्रार्थना करती हुई वह कहती है कि ऐ सूर्य, अबलाओं को दुखी करने का काम किसी शूरवीर का नहीं है तू मुझे क्यों और दग्ध कर रहा है मैं तो स्वयं ही ज्वाला से जली जा रही हूँ।

'सहस किरण सर सुधि करि, देही वधारिसि दाहि।
शूर धरइ नहीं सूर को, अबला ऊपरि आहि।'

पृष्ठ १८०।

इसी प्रकार वह चन्द्रमा से कहती है—

'पापी तूं प्रीछइ नहीं परमेश्वर परतक्ष।
पूनिम निशि पीड़ियां आहे, बलतु करिउ विपक्ष।'

पृष्ठ १८३ ।

विरह में विरहिणी को कोयल, पपीहा, मोर आदि किसी का भी स्वर अच्छा

साधइ सुरता तयां सुवच वाधइ अति आनन्द।
हींडोला हरखइं चढ़ी, हीचण लगी हेलि।
उछालइ अंबर भवनि, माधव दीठइ ढेलि॥'

पृष्ठ ३१८ व ३१६ ।

नहीं लगता। कोयल की बोली पर वह चिहुँक कर कहती है कि ऐ कोयल, तूँ काली तो है ही पर तेरा स्वर भी काल के समान है :

'कोइल तू काली सही, स्वबर पणि ताहरु काल।
प्रिउ पाखइ पेखी प्रिया, प्राण हरइ तत्काल।'

इसी प्रकार वह पपीहे से कहती है कि ऐ पापी पपीहे तू क्यों पी पी की रट लगाए है। मै अपने 'पी' को जपती हूँ तू अपने जगदाधार को जप और पुकार—

'पंखी हूँ पीउ पीउ जपुं, तू जपि जगदाधार।
जपतां जपतां आपणी स्वामि करस्इ सार।'

पृष्ठ १८८।

शीतल मन्द समीर का स्पर्श 'कन्दला' के विरह को उद्दीप्त करता रहता है इसलिए वह पवन को अपना दूत बनाकर माधव के पास सन्देश भेजते हुए कहती है कि हे पवन प्रियतम से जाकर कहो कि तुम अपनी प्रियतमा को छोड़ कर चले आए हो वह तुम्हारे विरह में तड़प रही है—

पवन सन्देस पठावउं, माहरू माधव रेसि।
तपन लगाड़ी ते गयु, मुझ मूकी परदेसि।

पवन तुम अन्तर्यामी हो मेरे मन की बात समझ सकते हो अगर मैं कुछ कहती हूँ तो वह भला नहीं लगता चुप रहती हूँ तो मृत्यु के समान कष्ट होता है।

'कहिता दीसइ कारियूं, मौन्य करू तु मृत्यु।
अन्तरयामी तूं थई, गिरुया कीजइ गत्य।'

कवि ने 'बारहमासे' में प्रकृति के उद्दीपन-रूप का संयोजन किया है। संयोगिनी नारियों के हर्ष और उल्लास एवं प्रकृति के सौंदर्य को देख कर विरहिणी दुख से व्याकुल होकर कह उठती है कि हे 'फागुन' के महीने तू नष्ट हो जाता तो अच्छा था जिस समय मेरा प्रियतम मेरे पास नही है उस समय तुम्हारे आने का क्या काम था :—

'कालि ज बहु क्रीड़ा करी, आज तिजनी आस।
माधव मुझ मूकी गय, फटि रे फागुन मास।
तरु-तरु त्रटइ पन्नड़ा, गिरि-गिरि त्रुटइ बाहु।
फागुन कागुण ताहरू, नीगमिउ मांरू नाह।'

इसी प्रकार सावन की झड़ी से व्याकुल होकर वह कह उठती है ऐ श्रावण तू श्रावण नहीं वरन् रावण के समान है, परनारी चोर मालूम होता है,

रात्रि में तारों के दर्शन नहीं होते, दिन में सूर्य नहीं दिखाई पड़ता और विरहिणी की वेदना दिन-दिन तीव्र होती जाती है :—

'श्रावण नहीं रावण सही तूँ परनारी चोर।
मुझ नइ जोवा, मोकलिउ, मृगला नइ मशि मोर।
दिशि न दिणयर दीशीइ, निशि तारा शशि हीण।
वेदन बाधइ विरहिणी, खिणि-खिणि थाइ खीण'।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस काव्य में संयोग और वियोग-पक्ष का सुन्दर संतुलन मिलता है। कवि की भावव्यंजना की शैली में मार्मिकता है एवं ऊहात्मक वर्णनों का आश्रय न लेकर कवि ने प्रकृति के संवेदनात्मक रूप का आयोजन किया है एवं सीधी-सादी भाषा में कवि ने संयोगिनी और वियोगिनी नारी की मानसिक और शारीरिक अवस्थाओं के चित्रण में असाधारण सफलता पाई है।

प्रकृति-चित्रण

प्रस्तुत रचना में प्रकृति-चित्रण अन्य काव्यों से सबसे अधिक मिलता है कारण कि इसमें कवि ने तीन बारहमासों के संयोजन के अतिरिक्त जंगल, पेड़ों और पौदों एवं विषधरों तथा पर्वतों का वर्णन किया है।

यह प्रकृति-चित्रण तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है पहला वह जिसमें कवि ने अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए पेड़ों, विषधरों आदि के नाम गिनाए हैं और दूसरा वह जिसमें संयोग और वियोग में प्रकृति के उद्दीपन रूप का अङ्कन किया गया है। 'आलम्बन' रूप में प्रकृति का चित्रण तीसरी कोटि में आता है।

प्रथम प्रकार के वर्णन में लालित्य की सर्वथा शून्यता है उदाहरण के लिए पेड़ों की गणना ही लीजिए कवि ने अड़तालीस स्वरों और व्यञ्जनों के आधार पर पेड़ों की एक नामावली लगभग चौदह पृष्ठों में दी है[1]। ऐसे ही गैरिक धातु

1. 'आंबा अरलू आंवली, उंवर नइ अखोड़।
आसो पल्लव अतिभला, अंवरि अड़ता छोड़।
आउलि अरणी अगथीआ, अंकुलि अरही आक।
एलचि अर्जुन आमली, अमृत फल ऊणाक।
कल्पद्रुम नइ केतकी, कठल बठल कुकुष्ट।
कमरख अनइ कालुवरी केसर सुर सन्तुष्ट।
कतक कलक का भाईउ, केलि किरांतु कग्ग।
काली चित्रा काकड़ा, शींग समाड़ी शग्ग।'
पृष्ठ २४३—२५६।

वर्णन में केवल उनकी गणना ही मिलती है[1]

माधव के पथ में पड़ने वाले वन की भयानकता का चित्रण इतिवृत्तात्मक होते हुए भी प्रभावोत्पादक है जैसे कहीं वन की गहनता के कारण सूर्य नहीं दिखाई पड़ता, कहीं काँटों की झंखाड़ है, कहीं पर दावाग्नि पेड़ों के ऊपर दौड़ती हुई दिखाई पड़ती है, रात्रि में न चाँद दिखाई पड़ता है और न दिन में सूर्य[2]। कहीं पर वर्षा हो रही है तो कहीं पर रीछ, बाघ, भालू आदि घूम रहे हैं कहीं विषधर नागों की फूत्कार से बनस्पति जली जाती है कहीं अजगर, धामिण, आदि सर्पों की जातियाँ दिखाई पड़ती हैं[3]।

वन की इस भयानकता के अतिरिक्त कवि की दृष्टि वहाँ की रम्यस्थली पर भी पड़ी है जैसे पहाड़ों से निर्भर फूट कर बह रहे हैं जिनमें कछुए, मछलियाँ तैरती हुई दिखाई पड़ती हैं और मोर चातक आदि नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे हैं। एक पर्वत की श्रेणी आकाश को चूमती है तो दूसरी की खोह

---

१. 'वाटइ वारू विविधरस, बेधक बली पवाण
पाणी टीपी पर्वतु, हुइ हेम प्रमाण।
कमठ कया पारा तणा, कन्या कैडि धाइ।
मणि मोटेरी ऊमटइ, जेणि अमर पद काइ।'

पृष्ठ २५६—२५७।

२. किहिं दिणयर दीसइ नहीं, कोही कोलूरी जाय।
किहिं किहिं काटे कप्पड़ा, भाल भालन्ता भराय।
किहिं किहिं तरु, उपरि चढ़ी, उतरन्तु जइ अग्नि।
किहिं किहिं चढि कोलेवड़े, बाड़व परिपरि विग्न।
दिवस नवि रमणी दीसइ, आभि न इन्दु अदीस।
काई चालइ कौतुक गणी, काई चालइ भयभीत।

पृष्ठ २५६।

३. 'किहिं-किहिं दव दीसइ बलया, किहिं-किहिं बरसइ मेह।
किहि-किहिं रमता पारधी, किहि नाणइ तेह।
किहिं-किहिं बाघ वरु घण, रोझ रीझवा जाय।
किहिं-किहिं रमता मोगला, केड़ि केसरि धाय।
किहिं-किहिं कालीनागना रात्ति उमटइ राफ।
वनस्पति प्रज्वलि पड़इ, तेहना मुंहनी बाफ।

पृष्ठ २५७—२५८

पाताल को छूती हुई मालूम होती है[1]।

उपर्युक्त उद्धरण में कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय प्राप्त होता है।

उद्दीपन विभाव के रूप में प्राकृतिक व्यापारों का चित्रण संयोग और वियोग पक्ष के अन्तर्गत मिलता है जिसका परिचय पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी कुछ स्थल मिलते हैं जिनमें कवि ने पात्रों की रागात्मिका वृत्ति का साम्य प्राकृतिक व्यापारों से स्थापित किया है जैसे ग्रीष्म ऋतु में आकाश पृथ्वी और घास जल रही है, विरहिणी की तपन भी उसी प्रकार की है जिस प्रकार वैशाख' में बालू दग्ध होती रहती है[2]। ऐसे ही जिस प्रकार पानी के बिना पृथ्वी सूखी और नीरस रहती है या चन्द्रमा के बिना रात्रि श्रीहीन प्रतीत होती है उसी प्रकार 'पूस' के दिनों में माधव के बिना कन्दला शुष्क नीरस और श्रीहीन दिखाई पड़ती है[3]।

भादों के दिनों में गंगा-यमुना की तरह नेत्र निरन्तर जलप्लावित रहते हैं। फिर भी विरहिणी की शरीर रूपी नाव तिरती नहीं दिखाई पड़ती। उसके लिए तो

---

१. 'नगि-नगि नीभरण बहइ, माहि जलूका मच्छ।
कातरिया नइ कच्छिवा, आड़ा अवइ लच्छ।
मोर कलाइ मंडता चातक चोरइ चीत।
किन्नरवासी कोकिला, चाव न चूकइ मीति।
कील्हा वायण विभला, आगलि ऊड़ी जाय।
वाटइ दीसइ बागली, ते उंघि टगांय।
सोचाणा समली बली, गृधुणि गयणि भमंति।
सारसड़ी साचर परि खिणि-खिणि जाइ खंति।

पृष्ठ २४८।

एक पर्वत अंबरि अड्या, खोहिणि खोह पताल।
शृंग सिखर सोहमणां, जाने जिमपुर पालि।
एक पर्वत उपरि चढ़इ, एक उतरइ हेठि।
काम क्रोध मद मरतु जिम राउ रमइ आखेटि।

पृष्ठ २६०।

२. 'आम जलइ, धरणी जलइ दिनि दिनि जलती धाख।
भायग माहरइ भेट्यु, बारू भई वैशाख।

३. 'मेह बिना जिम मही श्रली शशिहर बिना प्रदोष।
हिम माहरइ माधव बिना, पासइ पाखइ पोस।

चारों ओर जैसे सूखा ही सूखा है[1]।

इस प्रकार प्रस्तुत रचना में वस्तुओं के बीच सादृश्यभावना भी अत्यन्त माधुर्यपूर्ण और स्वाभाविक मिलती है।

भाषा

इस ग्रंथ की भाषा नागरिका, अपभ्रंश तथा शौरसेनी उपनागरिका, पश्चिमी अपभ्रंश है। वैय्याकरणों ने अपभ्रंश के तीन भेद नागरिका, उपनागरिका और ब्राचड़ किए हैं। इस रचना की भाषा में श, ष, स, न, ण स्वर मध्यमवर्ती व्यञ्जन के लोप और उसके स्थान पर य श्रुति का विकास जैसे दिनकर, दिणयर आदि तथा प्रत्यय डा, ड़ा और पुलिंग तथा स्त्रीलिंग में ड डी के प्रयोग जैसे हियड़ा, बेलडी, णाइ, नई आदि नागरिका के ही उदाहरण कहे जा सकते हैं परन्तु कहीं-कहीं पर श, न आदि ध्वनियों के प्रयोग से भाषा पर उपनागरिका का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

अलंकार

अलंकार के क्षेत्र में कवि ने परम्परागत सादृश्यमूलक उपमा अलंकार का ही प्रयोग किया है।

छंद

संपूर्ण रचना दोहा छन्द में प्रणीत है।

लोकपक्ष

प्रस्तुत रचना अपने काव्य-सौष्ठव के अतिरिक्त तत्कालीन कतिपय धार्मिक रीति-रिवाजों, वेश-भूषा एवं वेश्या समुदाय के जीवन से सम्बन्धित उक्तियों के कारण लोकपक्ष की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

हिन्दू प्रेमाख्यानों पर पड़ने वाले प्रभाव शीर्षक अध्याय में यह इंगित किया जा चुका है कि इन प्रेमाख्यानों पर तांत्रिकों और वाममार्गियों का प्रभाव भी पड़ा था। प्रस्तुत रचना इस कथन का सबसे पुष्ट प्रमाण है। माधव के रूप और लावण्य ने कामावती की सारी स्त्रियों को वश में कर लिया था। वे उसे पाने के लिये बड़ी व्याकुल रहती थीं। कुछ स्त्रियों ने तन्त्र और मन्त्र के द्वारा उसे वशीभूत करने का प्रयत्न किया था। उसके इस प्रयास का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि कोई स्त्री अभिमन्त्रित सूत्र को अपने घर पर बांधती थी कोई सूखीमुण्डी याग नवल की जड़ को लेकर चावलों के साथ फेंकती थी। कोई

---

१. गंग यमुना परितयनदां बहइ निरन्तर पूरि।
तरइ नहीं तन नावड़ी, करती झूरिम झूरि।

मन्त्रों का जाप करती थी। कोई शंकर की आराधना सखी सहेलियों के साथ करती थी[1]।

उपर्युक्त वाममार्गीय और तांत्रिक विश्वासों के अतिरिक्त पौराणिक और सनातनी धार्मिक विश्वासों पर जन साधारण की जो आस्था थी उसका परिचय भी प्राप्त होता है। जब विरह से व्याकुल माधव तपस्वी के पास गया तब उसने माधव से अपने पूर्वजन्म के पापों के निवारण के लिए 'अड़सठ' तीर्थों का भ्रमण करने के लिए कहा और हर एक की दशा एवं उनका माहात्म्य बताया[2]। इस अंश में भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं। तीर्थ स्थानों में भ्रमण करने और वहाँ के ऋषि-मुनियों से सतसंग करने में भारतीय सदैव मोक्ष का सीधा मार्ग मानते आए हैं। इस रचना में कवि के भौगोलिक ज्ञान का भी परिचय प्राप्त होता है।

भारत वर्ष में नदियों का माहात्म्य सदा से रहा है। गंगा-यमुना सरस्वती गोमती जिस प्रकार उत्तर भारत में अपनी पवित्रता एवं अध्यात्मसुख प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार दक्षिण 'भारत में नर्मदा का माहात्म्य कहा जाता है। कवि नर्मदा तट का निवासी था इस कारण उसने बड़ी तन्मयता से नर्मदा की स्तुति माधव के द्वारा कराई है[3]। यह स्तुति भारतीय पौराणिक विश्वास का सुन्दर उदाहरण है।

---

१. 'शंकर पूठइ संचरी, गही सहेली साथ।
पेखि रिखि रीसाविया, ज्योखिम जु जुगनाथ।
प्रमदा जे पोतातणी, भग भोगवइ न एह।
अवला-अवला अबरनी, साधि सकइ किम तेह।
वेद भणइ ते वरणना, अक्षरि-अक्षरि मन्त्र।
जंम लगइ जे जिउड़ी, जाणइ ज्योतिष जंत्र।
सूकी सुण्डी सणगइ; सुणज्यों तेह विचार।
याग नवल कि जब लगइ, अक्षत मूकत वारि।'
पृष्ठ १४६....१५० ।

२. वीर बडी वाराणसी, तीरथ राज प्रयाग।
निरखे नैमुष नइ गया, करि कुरुखेत्रिह सुहाग।
पुष्कर पेखि प्रयास पथ, कालिञ्जर कास्मीर।
विमलेश्वर वरजा वली, गंगा सागर तीर।
पृष्ठ १३६।

३. 'नमो नमो तूं नर्मदे जल कैवल्य कल्लोल।
चौद काश्प चासन थयां, भोगवता भूगोल।

आज भी जनसाधारण विशेष तिथियों पर किसी कार्य के करने अथवा न करने पर विश्वास करता है। यह भावना कवि के युग में विशेष दृढ़ थी ऐसा जान पड़ता है क्योंकि उसने तिथि के विधि-निषेध के अन्तर्गत १३ दोहों में विभिन्न तिथियों के माहात्म्य का उल्लेख किया है जैसे देव, दशमी, एकादशी के दिन विष्णु का विशेष महात्म्य होता है, कलियुग में त्रयोदशी चतुर्दशी देवताओं के दिन है, अमावस्या और पूर्णिमा को पति-पत्नी का संसर्ग न होना चाहिए आदि[1]। यह अंश कवि के ज्योतिष ज्ञान के भी परिचायक हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के समय में ब्राह्मणों की दशा आज कल की भांति बड़ी शोचनीय हो गई थी। वे लोभी तथा निर्दय हो गये थे, ब्राह्मण-निन्दा के अन्तर्गत कवि के यही विचार मिलते हैं। उसने अपनी बात की पुष्टि के लिए नारद विश्वामित्र, भृगुऋषि, दुर्वासा आदि ऋषियों के पौराणिक दृष्टान्त भी दिए हैं[2]। इसका यह तात्पर्य नहीं कि कवि ब्राह्मण समुदाय का विरोधी था। दूसरे स्थान पर उसने ब्रह्मजीवन के कर्म का निर्देश किया है। वह कहता है कि ब्राह्मण का कर्म है कि वह लालची न हो, स्त्री के प्रति उसे आसक्ति न हो। शील और सदाचार से वह रत रहे, संसार से उदासीन रहे, तिथियों दिनों और नक्षत्रों पर वह सदैव मनन करता रहे एवं ६ मास में कभी एक बार चारपाई पर शयन करे[3]।

इस अंश में सामाजिक कुरीतियों के प्रति कटु आलोचना करने की निर्भीकता

शंकर स्वेद थिकी सरी, स्वर्ग मृत्यु पातालि।
चारि पदारथ पूरवइ, कामधेनु कलि कालि।
तिल तिल मारग तिर्थनु पढ़त न लब्भइ पार।
ब्रह्मा हरि हर शारदा, यद्यपि करइ विचार।'

पृष्ठ २६०–२६१।

१. देव दसमी एकादशी, हरि वासर जे होइ।
पुण्य प्रथम ते पारयह, द्वादसवी दिनि जोइ।
कलियुग आदि त्रयोदशी, चौदशी ईश अनंत।
आमा नइ पुनिम प्रगट नारि न देखइ कंत।

पृष्ठ १४७–१४८।

२. 'माधवानल काम कन्दला 'गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज'

पृष्ठ १४३–१४४।

३. वही पृष्ठ १४४–१४६।

एवं समाज सुधार के लिए सदैव तत्पर रहने की प्रवृत्ति का परिचय हमें प्राप्त होता है। इस अंश में कवि का व्यक्तित्व निखर उठा है।

कामी पुरुषों की जीवनचर्या उनके स्वभाव एवं विलासप्रियता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि यह नित्य ऐसे मनुष्यों का साथ करते हैं जो बने-ठने रहते हैं, भोजन में मांस-मदिरा आदि का प्रयोग करते हैं, धतूरा आदि नशीली वस्तुओं में रत रहते हैं। घोड़ाचोली, मदनरस, अभ्रक और पारे के भस्म का सेवन कर भोग-विलास में रत रहते है, अपनी स्त्री को छोड़ कर पर स्त्री गमन करते हैं[1]।

माधव के चले जाने के उपरान्त कन्दला को व्याकुल देखकर उसकी परिचिता वेश्याओं ने उसे समझाने का प्रयत्न किया। इस अंश में कवि ने वेश्या-जीवन, उनके विचारों और उनके रहन-सहन का यथार्थ चित्रण किया है। वे कहती हैं हमारा कार्य है कि हम राजाओं के राज्य को मिटा दें धनपतियों के धन को धूल में मिला दें। हम आनन्द से सुन्दर भोजन अनार अंगूर आदि खायें और अपनी बगल में लखपतियों को दबाये रहें। हमें किसी एक पुरुष से क्या काम, सात पुरुषों को तो हमने एक ही दिन घर में रखा है और आठवें के साथ वृक्ष के नीचे रमण किया है। सहस्त्रों पुरुषों के साथ रमण करना हमारा काम है। योगीश्वर अपने योग को त्याग कर और पुरुष अपनी स्त्रियों को छोड़ कर तथा धनी अपने धन को छोड़ कर हमारे पैर दबाते रहते हैं। वास्तव में हमें तो धन से काम है वही हमारा सर्वस्व है। नीच हो अथवा ऊंच, दरिद्र हो अथवा धनी, ब्राह्मण हो अथवा अछूत। हमें इससे क्या जो हमें धन देता है वही हमारा है[2]।

जहां वेश्या जीवन का सविस्तार चित्रण मिलता है वहीं इस जीवन की कटु निन्दा की गई है जैसे वेश्या जीवन अग्नि के समान है। कामी पुरुष का तन धन और यौवन इस 'अग्नि में पड़कर भस्म हो जाता है अथवा वेश्या भी विष की बेलि है तथा पुरुष कुंकुम के वृक्ष के समान है जो उसे छोटी सी अवस्था में ही सुखा देती है[3]।

भारतवर्ष में नारी प्राचीन काल से माया और मोह की प्रतीक मानी जाती है। उसका चरित्र पुरुषों के लिए पहेली ही रहा है। कवि गणपति ने प्रेमाख्यान

---

१. वही पृष्ठ १४६—१४७।

२. 'गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़' पृष्ठ १४०. १४३।

३. वही। पृष्ठ २७६. २७७।

की रचना तो की है किन्तु वे भी नारी को कुतूहल और मानव के लिए समस्या की दृष्टि से देखते हैं।

उनका कहना है कि नारी चरित्र को समझा नहीं जा सकता। हमारे यहाँ जो स्त्रियाँ कुलवन्ती कही जाती हैं उनका चरित्र भी सदोष है। अपने इस कथन की पुष्टि के लिए कवि ने पौराणिक दृष्टान्त दिए हैं जैसे गङ्गा जिनकी जगत वन्दना करता है और जो सती समझी जाती हैं उन्होंने भी शान्तनु के साथ रमण किया था। मन्दोदरी, तारा आदि ने पति के मरने के उपरान्त वैधव्य धारण नहीं किया। अहिल्या के घर देवता और राजा आया करते थे। कुन्ती से कर्ण का जन्म हुआ। ऐसे ही देव सुयानी के कारण शुक्र को कठिनाई उठानी पड़ी थी। स्त्रियों का चरित्र अजीब है वे ऊपर से तो कोमल किन्तु अन्दर कठोर होती हैं और कठिन से कठिन आश्चर्यजनक कार्य करने की सामर्थ्य रखती हैं। उनकी एक आँख में आँसू तो दूसरी आँख से कटाक्ष चलते रहते हैं; वे सीधे चल ही नहीं सकतीं चाहे विधाता स्वयं इसका प्रयत्न क्यों न करे। स्त्री में शङ्कर से भी अधिक शक्ति है[1]।

कहने का तात्पर्य यह है कि कवि ने स्त्री समाज के प्रति रूढिगत भावना का ही पोषण किया है। उनके सामाजिक स्तर में कोई भी परिवर्तन नहीं लक्षित होता। वह स्त्री को पुरुष पर अवलम्बित देखना चाहता है नारी का पुरुषहीन जीवन निरस है। जिस प्रकार सोने के बिना स्त्रियाँ पीतल के जेवर हाथ में पहनती हैं किन्तु उन्हें उनसे तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार पुरुष के बिना उनके मन को सन्तोष नहीं होता। वह चाहे पानी के स्थान पर दूध पीयें अन्न के स्थान पर फल खाँय किन्तु पुरुष के बिना उनकी रात्रि व्यतीत नहीं होती। माता-पिता और बन्धु-बान्धव के बिना उनका जीवन चल सकता है किन्तु पुरुष के बिना क्षण भर भी वर्ष के समान मालूम होता है[2]। जिस प्रकार बिना तरुवर के बेल और बिना माला के कण्ठ नहीं सुशोभित होता उसी प्रकार स्त्री की शोभा नहीं होती[3]। परपुरुष से भोग-लाभ' भी स्त्रियों का एक गुण है। जिस प्रकार वे नित्य नया-नया अन्न खाती हैं और पानी पीती हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ नए-नए पति का

---

१. 'गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज' गणपति पृष्ठ २८१–२८४।

२. वही। पृष्ठ १५६।

३. वही। पृष्ठ १५१।

सेवन भी करती हैं। पुराणों में अहिल्या, इन्द्राणी, मन्दोदरी, तारा आदि इसका प्रमाण हैं[1]।

यहाँ यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि पुरुष-भोग की प्रशंसा वेश्याओं से कराई गई है और उन्हीं के द्वारा पौराणिक दृष्टान्त भी दिए गए हैं अस्तु सामाजिक दृष्टि से यह हानिकर नहीं है किन्तु स्त्रियों के प्रति कवि के विचारों के रूप में यह प्रमाण उपस्थित किए जा सकते हैं, फिर भी इस कथा को युग के सामाजिक आदर्श के रूप में न ग्रहण करना चाहिए।

कवि ने एक स्थान पर होली के उत्सव का भी वर्णन किया है। जो आज भी उसी प्रकार मनाया जाता है जिस प्रकार कवि के समय में मनाया जाता था। जैसे चावर के समय लोग गाते बजाते निकलते थे। रंग-बिरंगे कपड़े पहनते थे एवं अबीर गुलाल की धूल उड़ती थी। ऐसे ही सावन में झूला-झूलने की प्रथा का भी संकेत मिलता है[2]।

इस प्रकार गणपति के माधवानल प्रबन्ध में बौद्धों की वाममार्गी साधना, सनातनियों की पूजा, अर्चना, आराधना एवं तीर्थाटन का माहात्म्य पौराणिक दृष्टान्त के साथ-साथ नीति का प्रतिपादन, गणिकाओं का जीवन और उनके व्यवसाय का विशद वर्णन तथा उस समय की स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और साधारण जीवन का चित्रण मिलता है। इसके साथ ही साथ तत्कालीन वेश-भूषा और होली के उत्सव का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसलिए प्रस्तुत रचना भाव-व्यंजना की दृष्टि से ही नहीं वरन् तत्कालीन सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्त्व-पूर्ण है।

—:o—

---

१. वही। पृष्ठ १९८।

२. वही। पृष्ठ ३१३।

माधवानल कथा

—दामोदर कृत

—रचनाकाल...

लिपिकाल सं० १७३७

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथा-वस्तु

पुष्पावती नगरी के राजा गोविदचंद की साम्राज्ञी रुद्र महादेवी अपने परम रूपवान पुरोहित माधवानल पर आसक्त हो गईं और उन्होंने एक दिन अपने हृदय के भाव उसपर प्रकट किए किन्तु माधव ने इस ओर ध्यान न दिया। रुद्रदेवी की ही तरह पुष्पावती की सारी नारियाँ उसपर मोहित थीं। वे माधव के लिए इतनी विकल रहती थीं कि कोई भी गर्भवती नहीं होती थीं एवं गर्भवती नारियों के गर्भपात हो जाते थे। नगर के पुरुषों को इस पर बड़ी चिन्ता हुई और सबने मिलकर राजा से माधव को देश से निकाल देने का अनुरोध किया। राजा ने माधव के इस असाधारण प्रभाव की परीक्षा कर लेने के उपरान्त ही कुछ करने का सोचा। इसलिए उन्होंने काला तिल फैलाकर उसपर रानियों को लाल रंग की साड़ियाँ पहना कर बैठाया और माधव को निमंत्रित कर अपने रनिवास में ले गया। माधव को देखते ही सारी रानियाँ स्खलित हो गईं और काले तिल उनके पृष्ठ में चिपक गए। इसे देखकर राजा ने माधव को तुरन्त निष्कासित कर दिया।

पुष्पावती को छोड़कर माधव अमरावती नगरी पहुँचा और अपनी वीणा बजाते हुए राजदरबार में पहुँचा। राजा जैचन्द उसकी वीणी पर मोहित हो गए और उसे बड़े आदर सत्कार से अपने यहाँ रखा।

राजा का मन्त्री मगवेगी माधव को अपने घर ले गया। मन्त्री की स्त्री गर्भवती थी माधव को देखते ही वह स्त्री इतनी मोहित हो गई कि उसका गर्भपात हो गया। अपनी स्त्री की इस दुर्दशा को देख कर मन्त्री मनवेगी बड़ा

चिन्तित हुआ साथ ही साथ नगर की अन्य स्त्रियों की भी यही दशा हो रही थी इसलिए मन्त्री राजा के पास पहुँचा और उसने अपना तथा प्रजा का दुख राजा के सामने प्रकट किया। इस पर राजा ने माधव को तीन बीड़े भेज दिए। अस्तु माधव अमरावती को छोड़ कर कामावती नगरी पहुँचा जहाँ राजा कामसेन राज्य करता था।

एक दिन राजा कामसेन के यहां कामकन्दला नर्तकी का नृत्य हो रहा था। नाना प्रकार के बाजे बज रहे थे। माधव भी राजद्वार पर पहुँचा किन्तु दौवारिक ने उसे अन्दर नहीं जाने दिया। थोड़ी देर बाद माधव सारी सभा को मूर्ख सम्बोधित करने लगा। इस पर दौवारिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा के पास उसने इसकी सूचना पहुँचाई। राजा ने जब इसका कारण पुछवाया तब माधव ने कहलवा भेजा कि जो बारह मृदंग बज रहे हैं उनमें से एक के अगूंठा नहीं है इस कारण स्वर टूट रहा है।

राजा ने इस बात को परख की और उसकी सच्चाई ज्ञात होने पर उसने माधव को अन्दर बुलवा भेजा। माधव नाना प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित होकर दरबार में आ बैठा। तदनन्तर कन्दला का नृत्य प्रारम्भ हुआ जिस समय कन्दला बड़ी तन्मयता से नृत्य कर रही थी उसी समय एक भ्रमर आकर उसके कुच के अग्र भाग पर जा बैठा। उसके दर्शन से कन्दला को पीड़ा होने लगी किन्तु नृत्य में किसी भी प्रकार का व्याघात उत्पन्न किये बिना ही कन्दला ने अपने कुचों को हिला कर उस भ्रमर को उड़ा दिया।

कन्दला की इस कला को माधव के अतिरिक्त कोई भी नहीं समझ सका इसलिए माधव ने राजा द्वारा प्रदत्त सारे आभूषणों मुद्राओं आदि को कन्दला की प्रशंसा करते हुए उसे उपहार रूप में दे दिया। विप्र के इस व्यवहार ने राजा को क्रुद्ध कर दिया और उसने माधव को देश से निकल जाने की आज्ञा दी।

माधव को पथ से कंदला अपने घर ले गई वहां एक रात व्यतीत करने के उपरान्त माधव कंदला के वियोग में भटकता इधर-उधर घूमता था। एक दिन रास्ते में माधव को एक ब्राह्मण मिला। इस ब्राह्मण ने माधव की दशा देखकर उसे बताया कि तुम उज्जैनी जाओ उज्जैनी के राजा विक्रमादित्य तुम्हारे दुख दूर करेंगे।

अस्तु माधव उज्जैनी पहुँचा और शिव मन्दिर में उसने 'गाथा' लिखी जिसे पूजा के उपरान्त विक्रमादित्य ने पढ़ा और बड़ा दुखी हुआ तथा इस दुखी विरही ब्राह्मण के दुख को दूर करने के लिए उसने व्रत लिया। भोग विलासिनी

वेश्या ने शिव-मण्डप में इसका पता लगाया। तदुपरान्त माधव की कहानी सुनने के बाद विक्रम ने कामावती पर चढ़ाई कर दी। कामावती में जाकर विक्रम ने कन्दला की परीक्षा ली और बताया कि माधव नाम का विप्र विरह में मर चुका है। इसे सुनकर कंदला की मृत्यु हो गई। माधव की मृत्यु भी कंदला की मृत्यु सुनकर हो गई। तदुपरान्त विक्रम ने आत्महत्या का विचार किया। बैताल ने प्रकट होकर राजा को इस कर्म से रोका और पाताल लोक से लाकर अमृत दिया। दोनों को फिर जीवित किया गया।

इसके बाद कामसेन से युद्ध हुआ। कामसेन हारा। माधव को कंदला मिली और दोनों फिर सुख से रहने लगे।

दामोदर रचित माधवानल कामकंदला में पुनर्जन्म की कहानी नहीं मिलती। माधव और कंदला का प्रेम इहलोक सम्बन्धित अङ्कित किया गया है। कुशल-लाभ, आनन्दधर और गणपति की तरह इन्होंने भी रुद्रदेवी की आसक्ति का वर्णन किया है। पुष्पावती से आने के उपरान्त कवि ने माधव का अमरावती में रुकने एवं 'मनोवेगी' मंत्री पत्नी के गर्भपात की घटना का आयोजन कर माधव की मोहिनी शक्ति का अधिक विस्तार से वर्णन किया है।

उपर्युक्त परिवर्तन के अतिरिक्त कथानक की सारी घटनाएँ प्रचलित कथा-नुसार ही हैं।

इस प्रति के रचनाकाल का पता नहीं चलता इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी रचना 'कुशललाभ' की रचना के पूर्व हुई है या बाद। किन्तु दोनों प्रतियों में कुछ अंश समान मिलते हैं। जैसे—

अति रूपइ सीता गही, रावण गर्वइ पमाण।
अति दानंइ बली चांपीउ, भूपति ऐह निर्वाण॥

ऐसे ही संस्कृत का निम्नांकित मालिनी शब्द भी जैसा का तैसा उद्धृत मिलता है।

सुखिनः सुखनिधानं, दुःखितानां विनोदः।
श्रवणहृदयहारी, मन्मथस्याग्रदूतः॥
अति चतुर स्वभावः वल्लभः कामिनीनाम्।
जयति जयति नादः पंचमश्चोपवेदः॥

प्रचलित लोककथा होने के कारण एक ही रचना में दूसरे की रचना के अंशों का समावेश हो जाना संभाव्य है। यह बातें इस बात का प्रमाण हैं कि हिन्दुओं के प्रेमाख्यानों की कथाएँ लोकगीतों में साहित्यिक रचनाओं के पूर्व बहुत अधिक प्रचलित थीं।

कुशललाभ की तरह दामोदर ने भी नीति और उपदेशात्मक उक्तियों का आयोजन किया है। यह उक्तियाँ कथानक की घटनाओं से ऐसी गुम्फित हैं कि पाठक कथा के रसात्मक स्थलों में आनन्दलाभ के साथ-साथ ज्ञानार्जन भी कर सकता है। जैसे माधव के राजा द्वारा निष्काशित किए जाने पर कवि का यह कथन कि 'राजा यदि प्रजा का सर्वस्व हर ले या माँ अपने पुत्र को विष दे तो इसमें दुख और वेदना की कोई बात नहीं होती। नीति और उपदेशात्मक कथनों के उदाहरण निम्नाङ्कित हैं।

अपने गुणों का बखान करना मनुष्य को उसी प्रकार शोभा नहीं देता जिस प्रकार नारी की 'स्वान्त: काम चेष्टाएँ अशोभनीय प्रतीत होती हैं।'

निज मुख खोलि आप गुण, बुधजन नवि बोलंत।
कामनी आप पओधरा, ग्रहइ ए नवि शोभंत।

अथवा जिस मनुष्य को नारी का सौन्दर्य संगीत और मधुर वचन अच्छे नहीं लगते वह या तो पशु है या योगी।

गीत सुभाषित नारिनी लीला भावइ जेह।
चीत नवि भेदइ ते पंसु अथवा जोगी तेह॥

प्रबन्ध-कल्पना

इस रचना की आधिकारिक कथा का उद्देश्य कामकन्दला और माधव का विवाह कराना है। पुहुपावती से माधव के निष्कासन से लेकर कामावती तक इस कथा का प्रारम्भ, कामावती से विक्रमादित्य के प्रण तक मध्य और प्रण से लेकर दोनों के मिलन तक कथा का अन्त कहा जा सकता है। मध्य में गति के विराम के अन्तर्गत कवि ने संयोग-वियोग की नाना दशाओं का रसात्मक वर्णन किया है।

प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत भ्रमर के दंशन की घटना, अमृतलाभ, कामावती में नृत्य समारोह आदि आते हैं। प्रत्येक प्रासंगिक घटना कथावस्तु को कार्य की ओर ले जाने में सहायक हुई है जैसे भ्रमर के दंशन की घटना के कारण ही माधव और कन्दला में प्रेम उत्पन्न हुआ, अमृतलाभ के द्वारा ही दोनों प्रेमी पुनर्जीवित होकर मिल सके।

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि प्रबन्ध-कल्पना, सम्बन्ध-निर्वाह और कार्यान्वय के अवयवों के सन्तुलित सामंजस्य की दृष्टि से यह एक सफल काव्य है।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख-वर्णन

रूप वर्णन के अन्तर्गत कवि ने नायिका के सौन्दर्य-चित्रण में परम्परागत उपमानों का ही संयोजन किया है जैसे कंदला के अधर प्रवाल की तरह लाल हैं वह चन्द्रवदनी एवं मृगनयनी है, उसके दाँत अनार के दानों की तरह हैं और जंघा कदली के खम्भ के समान हैं।

अगर करीर के पेड़ में पत्ते नहीं निकलते, चातक के मुख में स्वाति का बूँद नहीं गिरता और उल्लू सूर्य को नहीं देख पाता तो इसमें बसन्त सूर्य अथवा स्वाति नक्षत्र का क्या दोष है।

ऐसे मनुष्य का भाग्य नहीं बदल सकता चाहे सूर्य पश्चिम में उगे और अग्नि शीतलता प्रदान करने लगे[1]।

नीति और उपदेशात्मक उक्तियों के सामाजिक राजनैतिक और नैतिक-पक्ष पर कुशललाभ की रचना में विवेचन किया जा चुका है यहाँ यह कह देना काफी होगा कि इन रचनाओं में मिलने वाली ऐसी उक्तियाँ तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक भावनाओं एवं प्रवृत्तियों का अंकन करती हैं जो इन काव्यों के लोकपक्ष के मूल्यांकन की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

संयोग-शृङ्गार

संयोग शृङ्गार में कवि ने प्रेमी और प्रेमिका के मिलन का बड़ा शालीन वर्णन किया है उसमें न तो कहीं अश्लीलता की छाया है और न मर्यादा का उल्लंघन, जैसे—

कामा ते रङ्गइ भरी, आवी माधव सेज।
नाना विधि रङ्गइ रमइ, हइडर अति घणउ हेज।
ऐक ऐकनइ वीड़ली। हाथे हाथ दैयेत॥
अवर पुरुष सुं वापड़ो। ऐहवा भोग करेत॥

विप्रलम्भ-शृङ्गार

इस रचना में विप्रलम्भ शृङ्गार का वर्णन दो स्थानों पर मिलता है एक माधव के पुष्पावती से चले जाने पर वहाँ की नारियों का दूसरे प्रोषितपतिका नायिका के रूप में कन्दला का। दोनों वर्णन बड़े सरस और हृदय ग्राही बन पड़े हैं। जैसे एक स्त्री के आंगन में, दूसरी कमरे में, तीसरी चौखट पर माधव की

---

१. 'करमइ लखींउ जो टलइ। पैर चलइ जो ठाह।
पच्छिम दपीअल ऊगमें। सीतल होई दाह॥'

स्मृति में आँसू बहा रही थी[१]। अथवा इन स्त्रियों के लिए रात्रि वर्ष के समान और दिन दस महीनों के समान लम्बा मालूम होता था[२]।

ऐसे ही कन्दला अपनी सखियों से कहती है कि सखी मेरा प्रियतम सौ योजन दूर रहने पर भी क्षण में मेरे पास और क्षण में मुझसे दूर चला जाता है[३]। जागते सोते प्रियतम के ही ध्यान में डूबी रहने वाली नायिका का इतना सुन्दर शब्दचित्र अन्य रचनाओं में कठिनाई से ढूंढे मिलेगा। ऐसे ही कंदला माधव का दर्शन करना चाहती है किन्तु सशरीर उसका मिलना कन्दला को असंभव जान पड़ता है अस्तु वह सोचती है कि अपने शरीर को जला कर वह राख कर दे और उसी राख से प्रियतम को पत्र लिख भेजें। माधव के नेत्र उन अक्षरों को देखेंगे और वह उनकी दृष्टि के स्पर्श का सुख लाभ करेगी[४]।

प्रियतम कंकरीले और कंटीले रास्ते पर भटकता फिरे और कंदला घर में चारपाई पर आराम से सोए यह उसे सहन नहीं हो सकता....।

माधव चाल्यो रे सखी। कंकरीआली वाट ॥
माधव सुयइ साथरइ। हुँ किम सुँउ खाट ॥

वियोगिनी के लिए चाँदनी रात्रि, शीतल मन्द समीर और चन्दनादि शीतल वस्तुएँ शीतलता प्रदान कर उसके दुख को और भी बढ़ाती रहती हैं[५]।

कहने का तात्पर्य यह है कि कंदला के वियोग-वर्णन में कवि ने परम्परा का अनुसरण तो किया है किन्तु उसके वर्णन-प्राचीन होते हुए भी नवीन प्रतीत होते हैं।

---

१. एक रुवइ घर आंगणइ। एक रुवइ आवास।
एक रुवइ घर मेड़ीइ। देइवइ पाछीउ तास ॥

२. रमणी वरसां सौ हुइ। दिवस हुआ दस मास।
सूनी काया ढढार हुइ। नवि जमिइ कन्थ विलास ॥

३. जब सूती तब जागवे। जब जागूं तब जाइ।
जोजन सोते प्रीआ वसइ। खिणि आवइ खिणि जाइ ॥

४. ईइहु वाली मसि करु। अक्षर लखावुं सोइ।
ते कागल पीउ वाचस्यइ। दृष्ट मेलावउ होइ ॥

५. चन्दा चन्दन, केली वन, पवन सुसीतल नीर।
देख सखी! मुज्ञ पीउ विना, पाँचइ दहइ सरीर ॥

माधवानल नाटक

—राजकवि केस कृत

रचनाकाल सं० १७१७

कवि-परिचय

कवि का जीवनवृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु आलम की छोटी प्रति के अनुकूल है[1]।

कथा के प्रारम्भ में मंगलाचरण है जिसमें शिव की वन्दना की गई है। शिव की वन्दना के उपरान्त कवि ने दुर्गा की वन्दना की है और गुरु माहात्म्य पर अपने विचार दिए हैं।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख

कवि ने रूप सौन्दर्य वर्णन में परम्परागत उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का संयोजन किया है किन्तु वे स्वतःसिद्ध से जान पड़ते हैं, ऊपर से लादे हुए नहीं।

काले-काले बालों के बीच सजी हुई सुमनराशि पर उत्प्रेक्षा करता हुआ कवि कहता है कि नायिका के इस शृङ्गार में ऐसा प्रतीत होता है मानों काले बादलों में पानी की बूँदें चमक रही हों बालों के बीच चमकता हुआ बेंदा ऐसा प्रतीत होता है मानों बादलों में बिजली चमक रही हो[2]।

---

१. देखिए परिशिष्ट—माधवानल कामकंदला—'आलम'।

२. चीकने चिहुर वार वारिन सुमन पुञ्ज
मानों मेघ माल जलबुन्द उमहति है।

× × ×

चौका की चमक चक चौंधतु चतुर चित्ति
दामिनि कौंधत कछुक बिहंसाई॥

संयोग-शृङ्गार

यद्यपि कवि ने रति का सीधा वर्णन नहीं किया है तथापि उसके सुरतान्त वर्णन में शृङ्गारिकता की कमी नहीं। रति के उपरान्त नारी के वस्त्रों की अस्त-व्यस्त अवस्था का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

'टूट गई लर मोतिन की सब सारी सलोट परी अधिकाई।
छूटी लटै अंगिया वर वंदन अंगनि अंग महा सिथलाई॥
राति रमी पति के संग सुन्दरि फूलनि माँग लरी बिथुराई।
फूली लता मकरध्वज की फार फूल गये मनु पौन फुलाई॥"

किन्तु इस काव्य में इतिवृत्तात्मक वर्णनों की अधिकता है, यही कारण है। कि इसमें संयोग और वियोग की नाना दशाओं का चित्रण नहीं प्राप्त होता। वियोगावस्था के चित्रण का तो नितान्त अभाव प्राप्त होता है। यहाँ यह बात और कह देनी आवश्यक प्रतीत होती है, कि कवि ने इसका शीर्षक नाटक रखा है, लेकिन इसमें नाटकीय तत्व का लेश मात्र भी नहीं प्राप्त होता। इसे एक वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक पद्यबद्ध काव्य कहना अधिक उपयुक्त होगा।

भाषा

प्रस्तुत रचना की भाषा ब्रज है जिसमें उसका चलता हुआ रूप प्राप्त होता है।

कहीं-कहीं पर इस कवि की भाषा बड़ी ओजपूर्ण प्राप्त होती है। उज्जैन नरेश विक्रमादित्य की सेना के चलने का प्रभाव डिङ्गल मिश्रित भाषा में बड़ा प्रभावोत्पादक बन पड़ा है।

'दब्बी कनु-कनु दब्बि संक सकुरिग उरग थल।
कमठ पिट्ठ कल मलिग दलिग बाराह दाढ़ बल॥'

छंद

प्रस्तुत रचना में दोहा-चौपाई छन्द के अतिरिक्त भुजंगी, त्रोटक, सवैया, दण्डक, भुजंगप्रयात, सोरठा, मोतीदाम, नागस्वरूपिनी छन्द भी प्राप्त होते हैं।

हमारे विचार से अगर कवि ने कथा के विकास में नाटकीय शैली का प्रयोग कर इतिवृत्तात्मक अंशों की कमी की होती तो यह काव्य एक सुन्दर प्रभावोत्पादक काव्य होता।

—:o:—

माधवानल कामकन्दला

(संस्कृत और हिन्दी मिश्रित)

रचयिता—

रचनाकाल १६०० वि० के पूर्व।

यह प्रति हमें याज्ञिक जी के संग्रह में श्री उमाशंकर याज्ञिक द्वारा देखने को मिली थी। प्रस्तुत प्रति उनके अनुसार लालचदास के भागवत दशम् स्कन्ध की प्रति के साथ थी और उसी का एक भाग है। दोनों लिपिकार एक ही हैं। मिश्रबन्धु विनोद पृष्ठ २८६ पर लालचदास हलवाई का नाम मिलता है जो रायबरेली निवासी बताया गया है। इस कवि का कविता काल १५८७ है।

'पन्द्रह सो सत्तासी पहियाँ। समे विलम्बित कहनो तहियाँ॥
मास असाढ़ कथा अनुसारी। हरि बासर रजनी उजियारी॥
सकल सन्त वह नावईं माथा। बलि-बलि जैहों जादव नाथा॥
राय बरेली करनि अवासा। लालच राम नाम कै आसा॥'

किन्तु पं० मायाशंकर जी की प्रति में सम्वत् पन्द्रह सौ मिलता है—

'संवत पन्द्रह सौ भौ जहियाँ। समय विलंब काम भा तहियां॥
मास असाढ़ कथा अनुसारी। हरि वासर रजनी उजियारी॥
सोनित नग्र सुधमें निवासा। लालच तुअ नाम को आसा॥'

इस प्रकार लालचदास श्रोनितपुर नगर का निवासी मालूम होता है। श्रोनितपुर नगर के सम्बन्ध में श्रीनन्दलाल डे एम० ए० बी० एल० लिखते हैं कि 'कुमांयूं में केदारगंगा के पास श्रोणित नगर अवस्थित है जो ऊकीमठ और गुप्त काशी से छ मील दूर है। इसी श्रोणितपुर के बारे में श्रीपण्डित शालिकराम वैष्णव ने उत्तराखण्ड रहस्य के पृष्ठ १७२ पर लिखा है, 'भीरी रुद्र प्रयाग केदारनाथ में गुप्त काशी के पास दो मील पश्चिम की ओर मुख्य सड़क से बाहर फेगू नाम के ग्राम में एक दुर्गा जी का मन्दिर है। इस स्थान का नाम स्कन्दपुराण में फेतकारिण पर्वत लिखा है। उपर्युक्त फेगू ग्राम से एक मील आगे उसी पर्वत पर वामसू नामक ग्राम है। यह स्थान वाणासुर के तप का स्थान था। यहीं पर उसने अजेयत्व प्राप्त करने के लिए महादेवी की तपस्या की थी। इस

कारण उसका नाम वामसू हुआ। इस स्थान पर यादवों से युद्ध हुआ था उस युद्ध में रक्त की नदियाँ बहीं थीं, इसी से वह अब तक शोणितपुर[1] नाम से विख्यात है।

रायबरेली और शोणितपुर वाले लालचदास में तिथि के अनुसार ८७ वर्ष का अन्तर पड़ता है दोनों का निवास स्थान भी भिन्न है। यह तो याज्ञिक जी से पता नहीं चल सका कि किस लालचदास की पोथी से उन्हें यह रचना प्राप्त हुई थी किन्तु यदि दो लालचदास मान लिये जाएँ तो प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना सं० १५०० से लेकर संवत् १६०० के बीच कहीं ठहरती है।

कथावस्तु

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु आलम की छोटी प्रति के अनुकूल है, केवल दो परिवर्तन मिलते हैं। कामावती से निष्कासित माधव जब भटक रहा था, तब उसे एक पथिक मिला जो विक्रमादित्य की एक समस्या लेकर कामावती में, कामसेन के पास जा रहा था। माधव ने उसकी समस्यापूर्ति कर दी। यही ब्राह्मण उसे उज्जैनी ले गया।

माधव को ढूंढने के लिये भोग-विलासिनी वेश्या मन्दिर में गई और उसने सोते हुए माधव पर पैर रखा माधव ने कहा कन्दला अपना पैर मेरे गात्र से हटाओ। भोग-विलासिनी ने माधव को इस प्रकार पहचाना और विक्रमादित्य से बताया।

प्रस्तुत रचना संस्कृत में है किन्तु बीच-बीच में अपभ्रंश और हिन्दी के दोहे भी मिलते हैं जिनकी भाषा परिमार्जित है। संस्कृत के अंश कहीं-कहीं आनन्दधर की पुस्तक से मिलते हैं। जैसे,

'उदयति यदि भानुः पश्चिमायां दिशायां,
विकसति यदि पद्म पर्वताग्रे शिलायां।
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति।
वह्निः..............भावनी कर्मरेखा॥

---

1. "The ancient Sonitpur is still called by that name and is situated in Kumaon on the bank of the river Kedar Ganga or Mandakini about 6 miles from Ookimath and Guptakashi. Guptakashi is said to have been founded by Bana Raja within Sonitpur."

—Indian Antiquary, November, 1924.

अथवा

कि करोमि कि गच्छामि रामो नास्ति महीतले ।
कान्ता विरहजन्दुष्काए को जानाति माधवाः ॥

स्वतन्त्र रूप से संस्कृत के गद्य का प्रयोग भी इसमें मिलता है ।

'स्त्री संभोगांतरं लोकेन सौख्यं न रसायन कारणानां कृतेत्वर्थः युग पद्मानागांतरे । धृत सारं रसनां भुञ्छताः साहंतस्ययत् ।'

डिंगल भाषा का भी रूप इस काव्य में देखने को मिलता है ।

'हियड़ा फटि पशाउ करि केता दुख सहेसि ।
पिय माणस विछोहड़े तू जी विकाइ करेसि ॥'

इस संस्कृत, डिंगल अपभ्रंश मिश्रित भाषा के बीच हिन्दी के दोहरों में ब्रजभाषा के भी दर्शन होते हैं । जैसे,

'एहि जनि जानहु प्रीति गइ दूरप्पन के वास ।
दिन दिन होइ चउग्गनि जोलहि घट मह श्वास ॥'

× × • ×

नासा कीर सुहावनी सुकउदैजनु कीन्ह ।
देषत बेसरी मन हरै गजमुक्ता फल दीन्ह ॥
कटि सोहै केसरि सरसि जंघ जो कदली आहि ।
चलन गयन्दह जीतियो कंठ्यो कोकिल ताहि ॥

यह रचना वर्णनात्मक शैली में प्रणीत है, कन्दला के सौन्दर्य-वर्णन के अतिरिक्त और कोई सरस-स्थल नहीं मिलता ।

वीसलदेवरासो

नरपति नाल्ह कृत

रचनाकाल सं० १२१२

कवि-परिचय

कवि नरपति नाल्ह कौन था, यह जानने के लिए हमें अन्यत्र कोई सामग्री अभी तक हस्तगत नहीं हुई है। कुछ लोगों का यह अनुमान है कि यह कोई राजा था, ठीक नहीं जान पड़ता। उसने स्वयम् अपना परिचय कहीं कहीं 'व्यास', रसायण आदि लिख कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कवि कोई भांट था। 'नरपति' इसका नाम है तथा नाल्ह उसका कौटुम्बिक नाम जान पड़ता है। राजपूतों में अभी तक नरपति महीपति आदि नाम मिलते है जिन्हें अब 'नापा' या 'महपा' कहते हैं[1]। अस्तु यह कहा जा सकता है कि नरपति नाल्ह राजा न होकर भांट थे।

रचना-काल

कवि नरपति नाल्ह के वीसलदेवरासो का निर्माण काल 'बारह से बहोत्तराहां मझारि' लिखा है। बाबू श्यामसुन्दर दास जी ने सन् १९०० की हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज में इसे १२२० शक संवत् माना है। लाला सीताराम ने अपने 'वारडिक सेलेक्शन' नामक पुस्तक में इसे १२७२ विक्रम संवत् माना है जो ठीक नहीं जान पड़ता। क्योंकि गणना करने पर विक्रम संवत् के १२७२ में जेठ वदी नवमी बुधवार को नहीं पड़ती। कवि ने स्पष्ट शब्दों में 'बारह सौ बहोत्तराहां मझारि' के उपरान्त 'जेठ वदी नवमी बुद्धवार' भी कहा है। अस्तु हमारे विचार से शुक्ल जी का कहना कि इसकी रचना संवत् १२१२ में हुई ठीक जान पड़ती है[2]।

---

१. सत्यजीवन वर्मा के अनुसार।

२. विशेष जानकारी के लिए देखिये वीसलदेवरासो सत्यजीवन वर्मा द्वारा संपादित।

कथावस्तु

धार नामक नगरी में भोज परमार राज्य करते थे। भोज की पुत्री राजमती बड़ी रूपवती थी। एक दिन भोज की रानी ने रूपवती के विवाह के लिए राजा से प्रार्थना की। राजा ने अपने पुरोहितों को रूपमती के लिए योग्य वर ढूँढने के लिए आज्ञा दी। पुरोहितों ने बहुत खोज करने के उपरान्त अजमेरराज वीसलदेव उसके योग्य पाया और राजमती का विवाह उससे तै कर दिया।

वीसलदेव की बारात चित्तौरगढ़ होते हुए धार पहुँची। माघ पंडित ने अगुवानी की। बड़े समारोह से विवाह कार्य सम्पन्न हुआ और वीसलदेव को बहुत से हय, गयन्द, धन आदि के अतिरिक्त आलोसर, कुड़ाल, मड़ोवर, सौराष्ट्र, गुजरात, साम्भर, तोड़ा, टोंक, एवं चित्तौड़ देश दहेज में प्राप्त हुए।

कुछ दिनों वीसलदेव और राजमती बड़े आनन्द से रहे। एक दिन वीसलदेव ने बड़े गर्व से कहा कि उसके समान कोई दूसरा राजा इस पृथ्वी पर विद्यमान नहीं है। राजमती ने उत्तर दिया 'गर्व न करो स्वामी गर्व करने वाले का गर्व सदैव खर्व होता है।' वास्तव में इस संसार में तुम्हारे समान कितने ही राजा निवास करते हैं। एक उड़ीसा के राजा को लो उसके यहाँ हीरे की खान है। इसे सुनकर वीसलदेव बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने प्रण किया कि जब तक वह इस हीरे की खान पर अधिकार न कर लेगा तब तक उसे चैन न आयेगा। राजमती ने उसे इस प्रण से विचलित करने का बड़ा प्रयत्न किया किन्तु वह न माना।

राजमती के द्वारा उड़ीसा के जगन्नाथ के विषय में सुन कर वीसलदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ इसीलिए उसने राजमती के पूर्व जन्म की बातें पूछीं। राजमती ने बताया कि पूर्वजन्म में वह हिरणी थी और जङ्गल में रहते हुए एकादशी का व्रत किया करती थी। एक दिन एक अहेरी ने उसे मार डाला और फिर उसका जन्म जगन्नाथपुरी में हुआ। जगन्नाथपुरी में मृत्यु के समय उसने विष्णु का ध्यान किया और उनके प्रसन्न होने पर पूर्व दिशा में पूर्वजन्म न पाने का वरदान माँगा। इस प्रकार वह इस जन्म में मारवाड़ में जनमी है।

वीसलदेव को उसकी भौजाई ने भी बहुत रोकने का प्रयास किया किन्तु उसने इनकी भी न सुनी और उत्तर दिया 'हम बारह वर्ष तक जगन्नाथ का पूजन करेंगे या विष खाकर मर जायँगे'। मुझे राजमती ने ताना दिया है मैं उड़ीसा अवश्य जीतूँगा'। इसके बाद अपने भतीजे को राज्य सौंप कर वह उड़ीसा की ओर चल दिया। राजा के वियोग में रानी ने दस वर्ष व्यतीत किए।

ग्यारहवें वर्ष राजमती ने पण्डित को पत्र देकर उड़ीसा भेजा। पत्र पाकर वीसल-देव उड़ीसाराज देवराज से विदा होकर अजमेर लौटे।

अजमेर में राजा के लौटने पर बड़ा आनन्द मनाया गया और राजमती के साथ वीसलदेव पुनः आनन्द से रहने लगे।

प्रस्तुत रचना के शीर्षक के साथ रासो शब्द के लगे रहने, एवं वीरगाथा कालीन साहित्य के बीच रचित होने के कारण विद्वानों तथा इतिहासकारों ने वीसलदेव रासो को वीरकाव्य की कोटि में रख दिया है। पृथ्वीराज रासो की तरह वीसलदेव रासो भी अब तक वीरगाथा कालीन साहित्य के बीच इतिहासों में पाया जाता है, परन्तु सम्पूर्ण रचना में वीररस की छाया भी नहीं मिलती और न कोई युद्ध वर्णन ही प्राप्त होता है। इसके प्रतिकूल इस रचना के तृतीय खण्ड में (सम्भवतः) जिसकी रचना के लिए ही कवि ने प्रथम दो खण्डों की भूमिका बाँधी है, करुणरस प्रधान है। एक प्रोषितपतिका के विरह का वर्णन 'बारहमासा' आदि के द्वारा प्रेमाख्यानक काव्यों की परिपाटी के अनुकूल पाया जाता है।

वस्तुतः इस आख्यान के कथावस्तु पर विचार किया जाय तो हम यह कह सकते हैं कि कवि राजमती के ताने का आश्रय लेकर वीसलदेव को बारहवर्ष के लिए विदेश यात्रा कराने का बहाना ढूँढ़ रहा है।

वस्तुतः यह आख्यान उन प्रेमाख्यानों की कोटि में आता है जिसमें प्रेम का विकास विवाह के उपरान्त पति-पत्नी के सम्पर्क से विकसित हुआ है।

कुतबन, मंझन, जायसी आदि के प्रेमाख्यानों की परम्परा के कारण हिन्दी साहित्य में प्रेमाख्यान शब्द रूढ़ि के रूप में उन्हीं आख्यानों के लिए प्रयुक्त होने लगा था जिनमें 'पूर्वराग' का अङ्कन कर कवि प्रयत्नावस्था में संयोग वियोग की नाना दशाओं का वर्णन एवं प्रेम की कठिनाइयों का चित्रण किया करते थे और उनका पर्यवसान विवाह के उपरान्त हो जाया करता था। अवश्य ही इस प्रकार के काव्यों का बाहुल्य हिन्दी के प्रेमाख्यानों में मिलता है किन्तु हम पहले ही कह आए हैं कि हिन्दू कवियों गुण-श्रवण, चित्रदर्शन एवं प्रत्यक्ष-दर्शन आदि से प्रारम्भ होने वाले प्रेम का चित्रण तो किया ही है किन्तु इसके साथ-साथ विवाह के उपरात विकसित होने वाले हिन्दू गार्हस्थिक जीवन में मिलने वाले प्रेम को भी इन काव्यों में आधार बनाया गया है।

'ढोला मारू रा दूहा' एक ऐसा ही काव्य है। उसमें भी नायिका के पिता के साल्ह कुमार से उसका विवाह करा दिया था। यौवना होने पर नायिका ने अपने पति के वियोग का अनुभव किया और अपने प्रयास के द्वारा उस तक

अपना सन्देश भी पहुँचाया। 'ढोला मारू' में विप्रलम्भ शृङ्गार प्रधान है ठीक उसी प्रकार वीसलदेव रासो में भी उसकी प्रधानता मिलती है अन्तर केवल इतना है कि एक में बाल्यकाल में विवाह हो जाने के उपरान्त ही पति-पत्नी बिछुड़ जाते हैं और दूसरे में यौवनावस्था में दोनों कुछ दिन साथ रह कर दुर्भाग्यवश एक छोटी सी बात पर विलग हो जाते हैं अन्यथा दोनों की कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं मिलता है।

इसके अतिरिक्त बारहमासों का वर्णन, पूर्वजन्म की कथाएँ, दूत के द्वारा बिछुड़े हुए प्रीतम को सन्देश पहुँचाने उसका सन्देश पाकर नायक के लौट आने तथा माहात्म्य का वर्णन आदि सभी बातें हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों के अनुकूल प्राप्त होती हैं।

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि 'वीसलदेव रासो' को वीर-रस के काव्यों की परम्परा में रखना भूल होगी। इसका वास्तविक स्थान हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों में ही है।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख-वर्णन

प्रस्तुत रचना में नायिका का नखशिख-वर्णन परम्परागत है। हिन्दी के कवि स्त्रियों के दाँतों के लिए अनार के दानों से, स्वर के लिए वीणा और कोकिल से तथा गति के लिए गयन्द की गति से तुलना करते आए हैं। इस रचना में भी वही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

'दन्त दाड़िम कुली जी सी।
मुखी अमृत जांणो वाजै कै वीण।
ससि वदनी जी ज्यों मा गयंद।
अखड़ियाँ..............रतनालियाँ।
मोहरा जांणे भमर भमाय।'

संयोग-शृङ्गार

प्रस्तुत रचना में संयोग की नाना दशाओं का वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

विप्रलंभ-शृङ्गार

वीसलदेव के दक्षिण देश में चले जाने के उपरान्त कवि ने तृतीय खण्ड में नायिका की विरह जनित पीड़ा का वर्णन किया है जो बड़ा हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक है। इस अंश में कवि ने बारहमासा का वर्णन कवि परम्परा के अनुकूल ही किया है।

प्रिय के चले जाने पर वियोगिनी को अपना जीवन शून्य, नीरस एवं बोझ सा प्रतीत होता है। उसे धूप-छाँह तथा अन्य प्राकृतिक व्यापार अच्छे नहीं लगते ऐसी अवस्था में उसे कवियों के काल्पनिक महल भी श्मशानभूमि की तरह प्रतीत होते हैं।

'श्रो दुख मीनी पंजर हुई।
धन हू नू भावई तिण्या परिन्हाण।
छाहणी धूप नू आगलई।
कवि यक भूपड़ा होइ मसान।'

उपर्युक्त उद्धरण का अन्तिम चरण भावव्यंजना की दृष्टि से बड़ा मार्मिक है कवियों के काल्पनिक महल सुन्दरता, सौख्य और ऐहिक जीवन की सुन्दरतम् वस्तुओं के प्रतीक कहे जाते हैं। कवि का तात्पर्य इस स्थान पर संसार की सारी भोगविलास की सामग्री से है जो विरहिणी को वियोग में श्मशान भूमि के समान नीरस, निर्मूल, और चिता पर पड़ी हुई मुट्ठी भर राख के समान मूल्यहीन प्रतीत होती हैं।

विरह के अतिरेक में वियोगिनी को जीवन भार स्वरूप प्रतीत होता है और वह अपने भाग्य को कोसते हुए कहती है कि हे हृदय तुम निर्लज्ज हो, क्या तुम पत्थर से निर्मित हो अथवा लोहे से। प्रिय के चले जाने के बाद भी तुम फटकर टुकड़े-टुकड़े नहीं हो गये आश्चर्य होता है—तुम फट क्यों नहीं जाते।

'फटी रे हिया नीवालूं बा निर्लज्ज।
पाथरी घड़ीयो के श्रीघट लोह।
झस्यझलीयो फूटइ नहीं।
सगुणा प्रीतम तणो विछोह।

प्रिय के ध्यान में अहर्निश मग्न रहने वाली नायिका ने एक दिन प्रियतम को स्वप्न में देखा। बिछुड़े हुए प्रियतम को इतने दिनों बाद अपने पास पाकर वह प्रसन्नता से भर उठी। किन्तु दूसरे ही क्षण उसका स्वप्न तिरोहित हो गया। वास्तविक स्थिति का अनुभव कर बेचारी नायिका के लिए पछताने के अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया।

आज सखी सपनान्तर दीठ।
राग चूरे राजा पल्यगें बईठ।
इसो हो झंझारा मइ मंषीयो।

दुखित हुई जो हूँ सो हीणांइ जाणती साँच।
हठि कर जातो राखती।
जब जागु जीव पड़ी गयो दाह।

कहने का तात्पर्य यह है कि वीसलदेव रासो एक विप्रलंभ-शृंगार-प्रधान काव्य है इसलिए इसमें विप्रलम्भ शृङ्गार का प्रस्फुटन स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक हुआ है।

भाषा

प्रस्तुत रचना की भाषा राजस्थानी है जो साहित्यिक नहीं कही जा सकती। इसमें महल, ईनाम, नेजा, ताजनो आदि फारसी शब्द भी पाए जाते हैं। गेय होने के कारण इसमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं इसलिए हो सकता है कि अन्य भाषाओं के शब्द समय के साथ इसमें आ गये हों। फिर भी हिन्दी की प्राचीन भाषा का यह एक सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है।

लोकपक्ष

लोकगीत होने के कारण प्रस्तुत रचना में तत्कालीन सामाजिक रीति-रिवाज और जनसाधारण के जीवन की झाँकी भी इस काव्य में प्राप्त होती है जैसे लोगों को उस समय ज्योतिष पर बड़ा विश्वास था कहीं जाने के पूर्व वह लोग 'साइत' विचरवा कर ही चलते थे। वीसलदेव ने दक्षिण की ओर गमन करने के पूर्व पुरोहित को बुलवा कर साइत पूछी। उसने बताया कि अभी एक महीने आपको यात्रा नहीं करनी चाहिये कारण कि चन्द्रमा ग्यारहवें स्थान मे है और खोड़िला जोग पड़ता है—

'वाचइ पड़तो बोलइ छइ साँच।
मास एक लगी दिन नहीं।
तिथि तेरस वार सोमवार।
चन्द्रई ग्यारमों देव है।
तीसरो चन्द कह होवीला जोगि।'

इस कवि को भूगोल के ज्ञान के साथ-साथ अन्य प्रदेशों में रहने वाले साधारण जनजीवन की चर्या का भी ज्ञान था। राजमती पूर्व देश के लोगों के विषय में कहती है कि पूर्व देश के लोग पान-फूल आदि बहुत खाते हैं (खाने के शौकीन होते हैं), और भोगी होते हैं। भक्ष्य और अभक्ष्य का ध्यान नहीं करते।

ग्वालियर के रहने वाले तथा 'जैसलमेर' की स्त्रियाँ चतुर होती हैं और दक्षिण देश के रहने वाले व्यसनी होते हैं।

'पूरब देस को पूरव्या लोग।
पान फूलां तणउ तु' लहइ भोग।
कण सखइ कु कस भखइ।
अति चतुराई राजा गढ़ ग्वालेर।
गोरड़ी जेसलमेर की।
भोगी लोक दखण को देस।'

इसके प्रतिकूल मारवाड़ देश की स्त्रियाँ बड़ी रूपवती होती हैं उनकी कटि बड़ी क्षीण होती है। और दाँत स्वच्छ और चमकदार होते हैं कहना न होगा कि इस अंश में कवि ने अपने देश की तारीफ की है।

'जनम हुवउ थारउ मारू कइ देस।
राजकु'वरि अति रूप असेस।
रूप नीरोपमी भेदनी
आधा कापड़ झीणइ लंक।
ललयांगी धन कूबली।
अहिरध बाला निर्मल दन्त।'

अस्तु वीसलदेव रासो काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से अगर महत्वपूर्ण रचना नहीं है तो हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की परम्परा के स्वरूप एवं भाषा की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

—:o:—

प्रेमविलास प्रेमलता कथा

जटमल नाहर कृत
रचनाकाल सं० १६९३
प्रतिलिपि काल सं० १८०६

कवि-परिचय

यह नाहर गोत्रीय ओरावल जैन श्रावक थे। रचना का प्रारम्भ भी ओम् जैनाय नमः से होता है आपके पिता का नाम धर्मसी था। लाहौर आप का निवासस्थान था जो उस समय 'साहिबाज खाँ बड़री' के राज्य मे था[1] आपकी अन्य रचनाएँ गोरा बादल की बात, जटमल बावनी, लाहौर गजल, सुन्दर स्त्री गजल, झिगोरा गजल, फुटकर सवैय्यादि का पता चला है जो श्री अगरचन्द नाहटा के पास हैं।

कथावस्तु

"योतनपुर" नगर में प्रेमविजय राजा राज्य करता था उसके यहाँ एक परम रूपवती कन्या प्रमलता का जन्म हुआ। बड़ी होने पर राजा ने उसे अपने राज्य पुरोहित "सुरसत" ब्राह्मण के यहाँ पढ़ने भेजा। इसी ब्राह्मण के पास राजा के मंत्री मदनविलास का पुत्र भी पढ़ने जाया करता था। नवयुवक कुमार और राजकुमारी एक दूसरे के प्रति आकर्षित न होने पाएँ, इसलिए इस पुरोहित ने कुमारी को पर्दे के पीछे बैठाया और उससे कहा कि कुमार कुष्ठ रोग से पीड़ित है अतएव उससे दूर रहना। इधर उसने कुमार को कुमारी

---

१. "सिंध नदी के कठ पइ भैवासी चाफेर।
राजा वली पराक्रमी कोऊ न सकै घेर।
"बसै अडोल जलालपुर। राजा थिरु सहि बाज॥
रइयत सकल बसै सुखी। जब लग थिरहु राज॥
तहाँ बसै जटमल्ल लाहोरी। करने कथा सुमति तसु दोरी॥
नाहर वसन कछु सो जानै जो सरसती कहै सो आनै॥

का अन्धा होना बताया। इस योजना के अनुसार दोनों की पढ़ाई कुछ दिन चलती रही। एक दिन पुरोहित किसी कार्य वश बाहर गया हुआ था। उसकी अनुपस्थिति में प्रेमलता ने व्याकरण का अशुद्ध पाठ किया इस कुमार ने उसे टोकते हुए कहा अन्धी एक सन्धि खण्डित पाठ क्यों पढ़ती है? कुमारी अभद्र व्यवहार से चिढ़कर बोली कोढ़ी मृगनयनी को अन्धी क्यों कहता है। कुमार को कोढ़ी सम्बोधन खला उसने प्रत्युत्तर दिया कञ्चन शरीर कुमार को तू कोढ़ी क्यों कहती है। इस पर पर्दे से झाँककर कुमारी ने उसे देखा दोनों एक दूसरे को देखकर मुग्ध हो गए और उन्हे गुरु के आने का भी अनुभव न हुआ। इस दशा में दोनों को देखकर गुरु बड़ा चिन्तित हुआ और कुमारी को समझाया कि तुम लोगों की यह चेष्टा बड़ी अहितकर होगी इसलिए कुमार का ध्यान अपने हृदय से हटा दो। गुरु के चरणों में लोटकर कुमार ने प्रेम की भीख माँगी और कहा कुमारी के बिना उसका जीवित रहना असम्भव है। गुरु ने कुमारी को भी समझाया किन्तु वह भी न मानी। दोनों के प्रगाढ़ प्रेम को देखकर गुरु ने उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम्हारा प्रेम मेरु और ध्रुव की तरह अटल रहे। दोनों गुरु का आशीर्वाद पाकर सप्रेम साथ साथ पढ़ते रहे।

एक दिन कुमारी ने प्रेमविलास से कहा कि उसके पिता उसका विवाह ढूँढ़ रहे हैं ऐसी अवस्था में दोनों का कहीं भाग चलना श्रेयस्कर होगा अन्यथा विवाह तय हो जाने पर बात बिगड़ जायेगी।

दोनों ने अमावस की रात्रि को महाकाली के मन्दिर में पूजा के उपरान्त अन्य देश की यात्रा करने का निश्चय किया। इसी बीच उस नगर में एक बड़ी तेजस्विनी आई जिसकी वीणा पर लोग मुग्ध हो जाते थे। राजा ने उसे अपने यहाँ कुमारी को वीणा सिखाने के लिए रख लिया जब योगिनी कुमारी को वीणा सिखाती और करुण तान छोड़ती तब कुमारी उसासें भरने लगती थी। कुमारी की मानसिक पीड़ा जानने की अभिलाषा योगिनी ने प्रकट की। कुमारी ने अपने प्रेम की बात बताई, योगिनी इसे सुनकर प्रसन्न हुई और उसने कुमारी को उड़ने, रूप बदलने एवं अंजन के द्वारा दिव्य-दृष्टि प्राप्त करने की शक्तियाँ प्रदान कीं।

अमावस्या की रात्रि को कुमार और कुमारी महाकाली के मन्दिर में मिले। पूजा के उपरान्त उन्होंने महाकाली से अपने प्रेम के अडिग रहने का वर माँगा, काली ने प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद दिया और योगिनी ने दोनों का विवाह काली के सामने करा दिया। फिर दोनों आकाश मार्ग से उड़कर रतनपुर पहुँचे।

प्रातःकाल रतनपुर के राजा की मृत्यु हो गई। राजा के निःसन्तान होने के कारण मन्त्रियों से मन्त्रणा द्वारा यह निश्चय हुआ कि 'देवदत्त' हाथी जिसके सिर पर मङ्गल कलश का जल उड़ेल देगा वही राजा घोषित कर दिया जाय। नगर की वाटिका में पहुँचकर देवदत्त ने मङ्गल-कलश प्रेमविलास के सिर पर उलट दिया और प्रेमविलास तथा प्रेमलता को उसकी सखी चम्पक के साथ अपने मस्तक पर बिठा लिया। इस प्रकार दोनों रतनपुर में अपना जीवन सानन्द व्यतीत करने लगे।

प्रेमलता को घर न पाकर उसके पिता बड़े चिन्तित हुए किन्तु योगिनी से सारा हाल जान कर उनकी चिन्ता जाती रही।

पाटण का राजा चन्द्रपुरी विद्रोही और उद्दण्ड हो गया था। उसका दमन करने के लिए प्रेमविलास ने चढाई की और विजयी होकर घर लौटा। युद्ध से लौटने के बाद प्रेमविलास सपत्नीक अपने पिता के घर गया जहाँ बड़ा आदर सत्कार हुआ। कुछ दिनों वहाँ रहकर वह फिर रतनपुर लौट आया। कुछ दिनों के उपरान्त प्रेमलता ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया जिसका नाम प्रेमसिन्धु रखा गया। प्रेमसिन्धु के बड़े होने पर सारा राज्यभार उसी को सौंप प्रेमविलास-प्रेमलता ने वानप्रस्थ ले लिया।

प्रस्तुत रचना में लोकोत्तर घटनाओं का संगठन अन्य काव्यों से अधिक मिलता है। नायक-नायिका में प्रेम के प्रादुर्भाव के उपरान्त ये घटनाएँ जहाँ उसके विकास और पूर्ण परिपाक मे सहायक होती हैं वहीं प्रेम की अलौकिकता का भी प्रतिपादन करती हैं। उदाहरणार्थ योगिनी की सहायता, काली का आशीर्वाद एवं उसी देवी के सामने दोनों का विवाह लौकिक प्रेम को अलौकिक में परिणित कर देता है। प्रेम की यह रहस्यात्मक अभिव्यंजना इस बात का प्रमाण उपस्थित करती है कि जैनियों ने लौकिक प्रेमाख्यानों के बीच अलौकिक-कता के संकेतों का संयोजन सूफियों के अनुसार ही करना प्रारम्भ कर दिया था। केवल काव्य-प्रणयन की शैली में ही दोनों में भेद लक्षित होता है। सूफियों का प्रेम आरम्भ में विषम है तो इनका आरम्भ से ही सम। सूफियों ने प्रेम की पीर को महत्व प्रदान किया है तो इन्होंने संयोग के सुख को। कथा का शमन दोनों में अधिकतर शान्त रस ही में हुआ है।

इसके अतिरिक्त प्रिय को 'परमात्मा' का प्रतीक मानने की जो कवि परम्परा इन प्रेम काव्यों में चल पड़ी थी उसकी अभिव्यंजना प्रेमलता के द्वारा कवि ने गुरु के समान कराई है। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है कि जब से उसने प्रेमविलास को देखा है तबसे उसका सारा ज्ञान, जप, ध्यान, भूख नींद

आदि भूल गये हैं और वह निरन्तर योगिनी की तरह उसी का ध्यान करती रहती है।

जोगन ज्यु ध्यावुं तस ध्याना।
बिसर गए सभ मोसो ज्ञाना।
निसि दिन लंउ मन ताको लागी।
भूख नींद मन ते सब भागी॥

यही नहीं प्रेमविलास उसके लिए 'राम' की तरह देवता एवं 'धर्म ग्रन्थों के समान पवित्र है। उसका स्मरण ही उसके लिए सब कुछ है।

प्रेम विलास हमारे रामा, परम ग्रन्थ सुख ताको नामा।
रसना अवर ग्रन्थ नहि, बूझै दूजो राम न कौ मुहि सूझै॥

लोग पाषाण की मूर्ति का पूजन करते हैं किन्तु मेरे लिए राम का निवास प्रेमविलास के शरीर में ही है। वास्तव में कुमार ही ब्रह्म की मूर्ति है अन्य ब्रह्म तो झूठ हैं।

पाषान अष्ट धात कौ रामा। इह मूरत घड़ राख्यों धामा।
अपनी मड़ी सो मूरख मानै। हर की मूरत को न पिछानै॥
दो०—ब्रह्म रूप मूरत कुँवर अवर ब्रह्म सब झूठ।
मुहि मस्तक धरि अदारयौ विधना दीवौ तूठ॥

जहाँ उपयुक्त अंशों में सगुण ब्रह्म की उपासना की छाया मिलती है वहीं सिद्धों के गुह्य मन्त्र का भी उल्लेख हुआ है। कुमारी महाकाली के मन्दिर में प्रवेश पाने के लिए कुमार से गुह्य मन्त्र का स्मरण करने को कहती है जो किसी अन्य को नहीं बताया जाता[1]।

अस्तु कथानक के मध्य में अथवा यों कहा जाए कि गति के विराम में कवि ने घटनाओं के संयोजन एवं पात्रों के उद्गारों द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। कथानक का अन्त भी जीवन के प्रति भारतीय धार्मिक दृष्टिकोण उपस्थित करता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमविलास प्रेमलता कथा हिन्दू प्रेमाख्यानों में मिलने वाली 'धर्म अर्थ काम मोक्ष' के समन्वय की प्रवृत्ति का जहाँ एक ओर पोषण करती है वहीं सूफियों के प्रभाव से इतर हिन्दू प्रेम काव्यों की परम्परा का प्रतिपादन करती है जिसमें निर्गुण के स्थान पर सगुण ब्रह्म की उपासना मुखरित हुई है।

---

१. गुहज मन्त्र काहु न बताथो॥

काव्य-सौंदर्य

नख-शिख-वर्णन

प्रेमलता के रूप-सौंदर्य वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानों का ही आयोजन किया है जैसे उसकी नासिका तोते के समान है, ग्रीवा कम्बु के समान, भुजाएँ मृणाल के तुल्य हैं।

प्रेमलता पुत्री तसु सोहै,
रूपवंत सुर नर मुज मोहै।
चन्द्रमुखी मनुहर मृग नयनी,
सुन नासा चंचल पिक बयनी॥
उस पर नारि नकल कुच निकसै,
कली कमोदनहिसों विकसै।
कुच मुख स्याम अधिक अति सोहैं,
उड़ तिन भृङ्ग बास को मोहै॥

संयोग-शृङ्गार

संयोग-शृङ्गार में कवि ने केलि, विलास, हाव आदि का वर्णन नहीं किया है और न दाम्पत्य जीवन की क्रीड़ाओं का ही वर्णन इसमें प्राप्त होता है।

विप्रलंभ-शृङ्गार

पाटण के राजा 'चन्द्रपुरी' पर चढ़ाई के लिए गये हुए कुमार के बिछोह में प्रेमलता का विरह व्यंजित किया गया है। इस विप्रलंभ शृङ्गार में कवि-परम्परा का ही अनुसरण दिखाई पड़ता है। जैसे प्रेमलता उसके वियोग में जड़ और संज्ञा शून्य हो गई है।

हलत न चलत न उचरत बैना।
साल लगाय चले तन सैना।

अथवा उसे रात में नींद नहीं आती उठ उठकर इधर-उधर भागती फिरती है—

लागै पलक न उठि उठि भागै।
विरह अगनि उर अंतर जागै॥

प्रिय के बिछोह में भी अपने को जीवित देखकर वह अपने को कोसती हुई कहती है।

वज्र समान हमारी छाती। प्रिय वियोग कर फाट न जाती।
नेह रहित नैना मेरे होहू। निकसत नीर न निकसत लोहू॥

यह भूमि में जाते हुए कुमार का वियोग वर्णन मिलता है जो 'प्रेमलता' के सम्बन्ध में कही हुई उक्तियों से अधिक ऊहात्मक है। जैसे प्रेमविलास प्रयाण की पहली मञ्जिल पर प्रेमलता का स्मरण कर मूर्छित हो गए। उनकी मूर्छा के निवारण के लिए किसी ने पंखा झलना प्रारम्भ किया किसी ने उनके वस्त्र के बन्धन ढीले किए और कोई उन पर गुलाब जल के छींटे देने लगा।

एक पवन बिजुना कर झलै। एक चोलणे की कस खालै।
एक गुलाब जल सीसा ढालै। एक खवास लौंग मुख घालै॥

मूर्छा के उपरान्त कुमार ने प्रेमलता की कागज की मूर्ति बनाई जिसे वह सदैव हृदय से लगाए रहता था।

कागद ले पुतली सवारी। प्रेमलता की रूप सभारी॥
देख-देख दिन हरखत नैना। छाती पर धर सोवत रैना॥

वैसे तो यह वर्णन ठीक है किन्तु हमारे विचार से कुमार का यह वियोग-वर्णन अपनी परिस्थिति के वातावरण में बड़ा उपाहासास्पद लगता है। युद्ध-भूमि में जाते हुए एक वीर की इस विफलता के स्थान पर कवि ने उसकी प्रसन्नता और उत्साह का वर्णन किया होता तो अधिक उपयुक्त होता।

सम्भवतः प्रेमकाव्य में वियोगादि का चित्रण करने की परिपाटी का अनुसरण ही कवि को अभीष्ट था। इसलिए इस स्थान पर उसने इसकी पूर्ति की है।

कवि का युद्ध वर्णन अधिक सजीव हुआ है जैसे सावन की झड़ी के समान बाणों की वर्षा हो रही थी, अश्वादि के सिर कट-कट कर गिर रहे थे। योगिनियाँ युद्ध भूमि में जुट आई थीं। गीध, श्वान, सियार आदि मास के लोथड़े ले-लेकर भाग रहे थे।

सावन घन-घट जुड़ी अपारा। बरखत बान जानु जल धारा॥
गड़ा जानु गोले तंह पड़ही। गर्जत अंभु हसत गड़ अड़ही॥
काट सीस सिरटा खल डारै। फिरै अश्व विचगाह सुधारै॥
धड़-धड़ काटि पासु जन गेरे। उड़हि केस जनु कभुस ढेरे॥
वीर सकल जोगड़ मिल आई। पीवहि रगत मांस फुनि खाई॥
चीलै स्याल गिरज सिवाना। पल मुख लेइ उड़ै असमाना॥

भाषा

इसकी भाषा चलती हुई नित्यप्रति की बोलचाल की अवधी है जिसमें स्थान-स्थान पर राजस्थानी का पुट मिलता है।

छन्द

यह रचना एक दोहा एक चौपाई के क्रम में प्रणीत है।

अलङ्कार

अलङ्कार में उपमा, उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलङ्कार का प्रयोग किया गया है।

—:०:—

चन्द्र कंवर री बात

—हंस कवि कृत

रचनाकाल—सं० १७४०

लिपिकाल—

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त-अज्ञात

कथावस्तु

अमरा पुरी नाम की नगरी में अमरसेन राजा था। उसका पुत्र चन्दकुँवर कामदेव के समान सुन्दर था। एक दिन मृगया में कुमार एक सुअर के पीछे बत्तीस कोस तक पीछा करता चला गया, साथी बिछुड़ गए। लौटते समय कुमार रास्ता भूल गया, जङ्गल में भटकते हुए उसने एक तपस्वी का आश्रम देखा। वहाँ पहुँचकर उसने विश्राम किया और ऋषि को अपने आने का कारण बताया। ऋषि ने कहा कि तुम' तंवापुरी' चले जाओ रास्ता भी बता दिया। कुमार 'तंवापुरी' पहुँचा। उस दिन कजली तीज का त्यौहार था। युवतियाँ सुन्दर आभूषणों से सुसज्जित होकर आनन्द मना रही थीं। कुमार सुन्दरियों के पास पहुँचा, उन्होंने उसके आने का कारण पूछा। रास्ता भूलने की बात जानकर वे कुमार को अपने साथ नगर में ले गईं। कुमार रात को नगर के एक चतुष्पथ पर लेट रहा।

उसी नगर में एक सेठानी रहती थी। जिसका पति विदेश चला गया था। बारह वर्ष से लौटा नहीं था। सेठानी काम पीड़ा से व्याकुल रहती थी। कजली तीज के दिन वह बहुत व्याकुल हो उठी। उसने सखी से कहा कि वास्तव में यदि तुम मेरी सखी हो तो मुझे मृत्यु से बचा लो। मुझसे मदनज्वर सहा नहीं जाता कोई प्रियतम मुझे ढूँढ़कर ला दो। सखी इस बात पर तैयार हो गई और किसी सुन्दर युवक की खोज में निकल पड़ी। चतुष्पथ पर उसने कुमार को देखा

उसके रूप और यौवन को देखकर सेठानी के लिए उसे उपयुक्त पात्र समझा। कुमार से बातें की और उसने सेठानी के पास चलने को कहा। कुमार पहले तो इस बात पर झिझका किन्तु सखी ने उसे मना लिया। सेठानी के यहाँ कुमार इस प्रकार आनन्दमय जीवन व्यतीत करता हुआ एक वर्ष तक रहा। कुमार के पिता आदि उसकी खोज में बड़े परेशान रहे। एक दिन राजा के प्रधान 'त्रंबक' ने बजाज के वेश में कुमार को ढूँढ़ने के लिए यात्रा की और तवांपुरी पहुँचा। कुमार को सेठानी के यहाँ पहचाना। उसे आना वास्तविक परिचय देकर घर चलने को कहा और यह भी बताया कि तंवापुरी के राजा 'अजीदेन' अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करना चाहते हैं। कुंवर ने इसे स्वीकार किया और विवाह करके अपने पिता के घर लौट आया।

यह रचना कवि ने अपने आश्रय दाता परतापसिंह खुमाण को प्रसन्न करने के लिए उनकी आज्ञा से लिखी थी[1]। इसकी हस्तलिखित प्रति प्रो० भोगीलाल जी के सं० १६३२ ई० में पारण (उत्तरी गुजरात) में प्राचीन लिखित प्रतिय के संग्रह एवं व्यवस्थापक जैन मुनि श्री जशविजय के पास प्राप्त हुई। उनके अनुसार इस प्रति में लेखन संवत् नहीं है। फिर भी वह दो सौ वर्ष पुरानी अनुमानित की जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसकी चार पाँच प्रतियाँ अभय जैन ग्रन्थालय मे हैं। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में कुँवर मोतीचन्द जी खजान्ची उदयपुर के संग्रहालय मे भी इसकी प्रतियाँ मिलती है। लोकवार्ता होने के कारण इसमें समय-समय पर लेखकों ने एवं कहानीकारों ने बहुत कुछ घटाया बढ़ाया है उदयपुर की प्रति में रचना काल के पद्य में सं० १५०४ लिखा है। अभय जैन ग्रन्थालय की प्रति में सं० १७४० पाठ है। प्रो० साहब के अनुसार यही बात ठीक है। ग्रन्थकार के नाम के सम्बन्ध में भी विभिन्न प्रतियों में मतभेद है। पंडित मोतीलाल जी मोनारिया ने इसका रचयिता प्रतापसिंह को बताया है किन्तु वह प्रतिलिपिकार है ग्रन्थकार नहीं। अभय जैन ग्रन्थालय की एक प्रति में हंस कवि का निर्देश है। तो दूसरी में 'कसल' का। पाठ भेद भी है किसी में वार्ता कम है किसि में अधिक। हमें जो प्रति प्राप्त हुई उसका

---

१. समरूं सरसत मांय गणपति देव के लागूं पाय।
प्रताप सिंह की आग्या जा कीनी कथा रस कवि राय।
प्रताप सिंह खुम्भाण ने हुकुम किया करठाय।
हंस कवि सु ऐसो कह्यो। कतुयक बात सुणाय॥

रचनाकाल सं० १७४० है[1] ।

'चन्द्र कुँवर री बात' अन्य रचनाओं से दो बातों में भिन्न पहली यह कि इसमें स्वकीया के स्थान पर परस्त्री-प्रेम का वर्णन किया गया है। कृष्णकाव्य में परकीया प्रेम को महत्ता मिलती है। रूपमंजरी में, रूपमंजरी दूसरे की पत्नी होते हुए कृष्ण से प्रेम करती है। आन्यापदेशिक काव्यों में जो कि कृष्ण से सम्बन्धित हैं ऐसे आख्यान का मिलना तो ठीक है। लेकिन शुद्ध प्रेमाख्यानो में ऐसे वर्णन प्रधानतः नहीं लक्षित होते। प्रस्तुत रचना समाज के एक ऐसे प्रश्न की ओर इंगित करती है जिसे हिन्दू कवियों में अधिकतर नही पाया जाता। इसलिए यह काव्य अपनी कोटि का नवीन काव्य है।

सम्पूर्ण रचना गद्य-पद्य मिश्रित एक चम्पू काव्य है। जिसमें इतिवृत्तात्मकता की अधिकता होते हुए भी संयोग और वियोग के रचनात्मक स्थलो का वर्णन मिलता है। बीच-बीच में प्रेम सम्बन्धी कुछ नीति के दोहों का संयोजन कवि ने किया है जैसे किसी को दूसरे की स्त्री से प्रेम नहीं करना चाहिए क्योंकि उससे बिछुड़ने पर दुख होता है। प्रेम के फन्दे में पड़कर मनुष्य जंजाल में फंस जाता है और एक बार प्रेम होने के उपरान्त हे सखी वह टूटता नही[2] । इसी प्रकार कुंवर के लौटने पर माता-पिता और बहन की प्रसन्नता का वर्णन जो काव्य के अन्त में किया गया है, वह वात्सल्य-रस के साथ-साथ तत्कालीन घरेलू टटकों का भी परिचय देता है जो आज भी शहरों और गाँवों में प्रचलित है, जैसे कुंवर के लौटने पर पिता ने उसे गले से लगाया बहन ने उस पर लोन उतारा और माँ ने बुकवा लगाकर अपनी उँगली चटकाई एवं सिर झुकाकर अपनी लटें तोड़ीं[3] । बहन के द्वारा राई लोन उतारने और उँगली चटकाने की प्रथा भारतवर्ष में बड़ी प्राचीन है। शृङ्गार-प्रधान-काव्य होने के कारण कवि ने नखशिख वर्णन और संयोग में हावों आदि का चित्रण

---

१. सबकु लगे सुहावणी। रचे सुजोभ सीणगार ॥
मरखहुँ को मन हरे। सब कू लगसुँ सार ॥
सतरह से चलीस में। तेरस पोसज मास ॥
गुण कियो कर चाहने। भोगी पूरण आस ॥

२. प्रीत करां वहीं काय पराए वारखो। विछुणत दुख होय के प्रीत के कारने ॥
जीवड़ों पड़े जंजाल सुणोरी सखींया। काया श्रुटे नेह लगे जब अखियाँ ॥

३. बाप तणो गले भेट मिल्यो मायस्युं। बहन उतारे लंण भयो सुख दायस्यु।
कर तोड़े बुकवा करे लट तोड़े सिरनाय। इण विध करे कल्पना चंद कुंवर की माय।

अधिक किया है। कुमार के चले जाने के उपरान्त सेठानी के विरह का वर्णन केवल पांच छः पंक्तियों में ही मिलता है।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख-वर्णन

नखशिख वर्णन में कवि ने समय सिद्ध परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है, जैसे नायिका की गति हंस के समान मंथर है वह चंपकवर्णी है, उसके नेत्र खंजन पक्षी के समान चंचल है। घूंघट के बीच कजरारे नेत्र ऐसे सुशोभित होते हैं मानो जल के बीच मछली[1]।

संयोग-शृङ्गार

संयोग-शृङ्गार में कवि ने किलकिञ्चित हाव का संयोजन किया है और उसके बाद रति का सीधा वर्णन मिलता है। सुरतान्त का चित्रण भी किया गया है[2]।

विप्रलंभ-शृङ्गार

वियोग-शृङ्गार में कवि का हृदय पक्ष नहीं दिखाई पड़ता। उसने सेठानी के वियोग-वर्णन में पाँच छः पंक्तियाँ लिखी हैं लेकिन उनमें कोई सरसता नहीं प्राप्त होती।

भाषा

इस काव्य के पद्यात्मक अंशों की भाषा चलती हुई बोल चाल की राजस्थानी है जिसमें एक प्रवाह है। जैसे—

रहीये प्राणाधार आज की रतियां।
नयणां वरखे नीर के फाटे छतियां॥

बीच-बीच में आई हुई गद्य-वार्ता राजस्थानी गद्य में है लेकिन कहीं-कहीं क्रियापद खड़ी बोली के प्राप्त होते हैं जैसे—

---

१. चम्पा बरणी अंग रंग रहे जसको। हंसा चलण संभाव वखाणु तसको॥
खंजन जहो नेत्र वेण जाणुं कोकिला। त्यानु दीजे सुख कुंवर जी मोकला॥

२. हासी होट विचकर ऊँचे कीयेन नीचे नैन।
अरे! अरे! पिय को पिया लागै वीरी मुख दैन॥
दोउ कुच कर संग्रहे रहै जंग जुग जोर।
नाना उचरत नायिका ना..र करत निहोर॥

'गौरी उठ सिणगार कर जो देखो सो दूसरी कुँवर आयो छै, माहा काम देवरो अवतार छै। मै तो ठीक देह सुपना मांहि देख्यो नहीं उसड़ो आयो छै।'

राजस्थानी में अछैइ और छइ का प्रयोग मध्यम पुरुष एक वचन में होता है वही अछैइ का सन्धि रूप इस वार्ता में छै हो गया है। एक बात और ध्यान देने की है वह यह कि गौरी उठ, बारह बरस हुआ, शहर मांहि आया, प्रयोगों में खड़ी बोली के क्रियापद मिलते हैं।

इस प्रकार कथानक की नूतनता और भाषा की दृष्टि से यह कथा महत्व पूर्ण है।

राजा चित्रमुकुट रानी चन्द्रकिरन की कथा

नागरी प्रचारिणी के आर्यभाषा पुस्तकालय में संग्रहीत याज्ञिक संग्रह में इस प्रेमप्रबन्ध की दो हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ मिलती हैं। पहली 'राजा चित्र मुकट रानो चन्द्र किरन की कथा' है जिसके लेखक और लिपिकाल का पता नही है दूसरी 'छत्र मुकुट तथा रानी चन्द्र किरन की कथा' है जिसको लिपिकाल का सं० १९०८ है किन्तु इसमें भी लेखक अज्ञात है—

इन दोनों प्रतियों के आधार पर मूल कथा इस प्रकार है :—

चतुरमुकुट नाम का एक राजा था जो बड़ा ज्ञानी किन्तु बड़ा विलासप्रिय था। उसके रनिवास में बाइस हजार रानियाँ, एक से एक सुन्दर रहती थीं। हर समय वह सुन्दरियों के बीच घिरा हुआ जीवन का आनन्द लाभ किया करता था। एक दिन उसके मन में शिकार खेलने की इच्छा जाग्रत हुई इस लिए अपने सैनिकों की टोली लेकर वह जङ्गल में पहुँचा। एक हिरन का पीछा करते हुए वह बहुत दूर निकल गया और शिविर का रास्ता भूल कर इधर उधर भटकने लगा। थोड़ी दूर और जाने पर उसने देखा कि बन के पक्षी और मोर व्याकुल होकर इधर-उधर भाग रहे हैं। इन पक्षियों को पीड़ित करने वाले प्राणी को दण्ड देने के लिए राजा चित्रमुकुट धनुषबाण लेकर उसकी खोज में चल पड़ा और उस स्थान पर पहुँचा जहाँ एक बहेलिया एक हंस को पकड़ कर अपनी झोली में डालने जा रहा था। राजा को आते देखकर उस हंस ने बहेलिये से अपनी जान बचा कर भाग जाने को कहा। इतने में राजा उस स्थान पर पहुँच गया और हंस को जाल से मुक्त कर बहेलिये को भगा दिया। बन्धन से मुक्त होने पर हंस ने राजा को आशीर्वाद देकर उसकी सेवा करने की कामना की—

जव फंदा राजा ने खोला
हंस आसिरबाद दै बोला
तौ असतुति कहा कीजिये
धन जननि धन बाप ॥

राजा ने प्रसन्न होकर उस हंस को अपने साथ ले लिया और एक सुन्दर पिंजरे में बन्द कर अपने महल में ला रखा।

उसी रात को रनिवास की सुन्दरियां शृङ्गार कर के राजा के सम्मुख आने लगीं और उसे रिझाने का प्रयत्न करने लगीं। किन्तु किसी की ओर भी राजा आकृष्ट न हुआ। इतने में एक सर्वसुन्दरी राजदुलारी राजा के सामने आकर हाव-भाव दिखाने लगी। राजा उसपर रीझ गया और उसे अपने बाहुपाश में आबद्ध कर आवेश में कहने लगा कि ए सुन्दरी तुम मेरी स्वामिनी हो और मैं तुम्हारा दास हूँ। राजा के इस कथन पर हंस ने हँस कर राजा की ओर देखा—

"तिन महिं एक राज दुलारी, सुन्दर सुघर त्रिचितर नारी।
गति गयंद ज्यों ठमकति आवै, रहसि कलोल कुंवर दिखरावै।
सब कामिन मैं वह रङ्ग भीनी, कुंवर दौरि अङ्क भरि लीनी।
प्रेम उमगउ नहीं पतिआई, कह्यो कुंवर तुही मन भाई।
हे प्यारी मैं तेरा चेरा, हंस हंसा राजा मुख हेरा"॥

हंस के हसने का कारण पूछने पर उसने राजा से बताया कि जिसे आप इतनी सुन्दरी समझते हैं, उसके हाथ का तो पानी मै नही ग्रहण कर सकता। आपने सम्भवतः सौंदर्य अभी देखा ही नहीं है। राजा इस पर उस सुन्दरी का निवास स्थान जानने के लिए बहुत लालायित हो उठा। हस ने बताया कि अनूप नगर की कुमारी चन्द्र किरन संसार की सबसे श्रेष्ठ सुन्दरी है। हंस से चन्द्रकिरन के सौन्दर्य की बात सुन कर राजा चित्रमुकुट बड़ा विकल हो गया और उसे देखने के लिए योगी के रूप में एक सहस्त्र राजकुमारों को लेकर हंस के साथ अनूप नगर की ओर चल पड़ा।

एक वर्ष की यात्रा के बाद वह एक निर्जन समुद्र तट पर पहुँचे, वहाँ से बाहर जाने के लिए किसी प्रकार का साधन नहीं था—हंस के कहने पर राजकुमार ने अपने साथियों को उसी स्थान पर छोड़कर हंस की पीठ पर आरुढ़ हो आगे की यात्रा प्रारम्भ की और बहुत दूर उड़ने के उपरान्त हंस चन्द्रकिरन के महल के उद्यान में उतरा।

राजा को वहीं छोड़कर हंस कुमारी चन्द्रकिरन के पास पहुँचा। बहुत दिनों के पश्चात् हंस को आया हुआ देखकर चन्द्रकिरन बड़ी प्रसन्न हुई। तदुपरान्त राजा चित्रमुकुट की प्रेम की कथा को सुनकर चन्द्रकिरन भी मोहित होकर उससे मिलने के लिए लालायित हो उठी। अर्द्ध-रात्रि को हंस ने चतुरमुकुट को राजकुमारी के शयनगृह में पहुँचा दिया। चन्द्रकिरन को सोती देखकर

राजा ने उसे जगाया नहीं वरन् उसका रूपपान करता रहा और अन्त में अपनी अंगूठी उसे पहना कर लौट आया—

प्रातःकाल अपने हाथ में दूसरे की अँगूठी देखकर कुमारी बड़ी चकित हुई, अंत में वह सारी बात समझ गई और दूसरी रात को चतुरमुकुट की बाट लेटे-लेटे जोहती रही। जब चतुरमुकुट ने फिर अर्द्ध-रात्रि में आकर उसका अधर पान करना चाहा तो रानी ने उसे पकड़ लिया और आदर के साथ ले गई। दोनों ने 'रति' में रात्रि व्यतीत की। उस दिन से नित्य राजकुमार रानी के पास आने लगा। दाम्पत्य सुख की अधिकता के कारण कुमारी का रूप दिन-प्रतिदिन निखरने लगा और उसके अङ्ग और भी लावण्य-मय होने लगे।

दो ही तीन महीने में राजकुमारी के शरीर में अद्भुत परिवर्तन देखकर दासियाँ बड़ी चकित हुईं और उनके मन में शंका जाग्रत हुई कि कुछ दाल में काला है। अतएव वे एक दिन राजा के पास गईं और अपने प्राणों की भीख माँगकर उससे कहा कि कुमारी पथ-भ्रष्ट हो गई है उसके शयन-गृह में नित्य कोई चोर आता है।

राजा को इस पर बड़ी चिन्ता हुई। राजा का एक मन्त्री 'गडुआ साहु' नाम का था जो जाति का बनियाँ था और बड़ा फितरती था। उसने इस चोर के पकड़ने का बीड़ा उठाया और राजकुमारी के मन्दिर में बहुत-सा अबीर और गुलाल भेज दिया। फिर सारे धोबियों को बुलाकर कहा कि जो किसी पुरुष के रंगे हुए कपड़े मेरे पास उपस्थित करेगा उसे मैं बड़ा इनाम दूँगा—

रात को कुमारी ने चतुमुकुट के साथ खूब होली खेली और प्रातःकाल कुमार ने अपने कपड़े धोबी के यहाँ धुलने भेज दिए। दूसरे दिन राजकुमार उद्यान में पकड़ा गया और राजा ने उसे मृत्युदण्ड की आज्ञा दी।

हंस ने चन्द्रकिरन को जाकर सारा वृत्तांत बताया इस पर वह जीवित ही जल मरने के लिए उद्यत हो गई। कुमारी के इस सङ्कल्प को दासियों ने राजा से जाकर बताया इस पर राजा ने चतुरमुकुट का मृत्युदण्ड एक दिन के लिए स्थगित कर दिया और उसे राजदरबार में बुलवा भेजा। दरबार में आने पर चतुरमुकुट ने अपना परिचय देते हुए बताया कि मैं उज्जैन का राजकुमार हूँ। इस पर राजा ने प्रसन्न होकर चन्द्रकिरन का विवाह चतुरमुकुट से कर दिया।

कुछ दिन ससुराल में व्यतीत करने के उपरान्त राजकुमार ने घर वापस जाने की तैयारी की। वह चन्द्रकिरन को लेकर हंस पर आरूढ़ हो चल दिया। किन्तु आकाश मार्ग में चन्द्र किरन बहुत डरने लगी इसलिए वह लोग बीच समुद्र के एक निर्जन टापू पर उतर पड़े वहीं चन्द्रकिरन को पुत्र उत्पन्न हुआ। उस टापू

से थोड़ी दूर पर कञ्चन नगरी थी। राज कुमार हंस को लेकर उस नगरी में गुड़, सोंठ, आग, घी आदि लेने गया लौटते समय राजकुमार के हाथ से घी गिरकर हंस के पंख पर बिखर गया और आग की चिनगारी के कारण उसमें आग लग गई जिससे हंस जल कर भस्म हो गया।

राजकुमार चन्द्रकिरन के पास न जा सका। इधर कञ्चनपुर के राजा की मृत्यु हो गई और मन्त्रियों ने मन्त्रणा कर यह निश्चित किया कि प्रातःकाल जंगल में जो पहला मनुष्य मिलेगा उसे राजा बनाया जाएगा इसी के फलस्वरूप जनता राजकुमार को जङ्गल से ले आई और उसे सिंहासनारूढ़ किया सिंहासन पर बैठने के उपरान्त राजा ने चन्द्रकिरन को ढूढने के लिए चारों दिशाओं में चर भेजे।

इधर राजकुमार के न लौटने पर राजकुमारी विलाप करती हुई अपने दिन काट रही थी। दैव योग से उस टापू के पास से एक खत्री वणिक का जहाज निकला—उस निर्जन टापू पर स्त्री के रुदन की आवाज सुनकर खत्री ने नौका रुकवाई और टापू पर पहुँचा। चन्द्रकिरन के रूप को देख कर वह उस पर मोहित हो गया और अपने घर ले आया।

अपने घर पर उसने नाना प्रकार के प्रलोभनों द्वारा किरन पर विजय पानी चाही किन्तु उसमें सफल न हो सका। बलात्कार करने के लिए उद्यत खत्री पर चन्द्रकिरन ने पदाघात किया जिससे क्रुद्ध होकर इस खत्री ने चन्द्रकिरन को एक वेश्या के हाथ में बेच दिया।

तेरह वर्ष तक चन्द्रकिरन राजा और राजकुमार के लिए रोती हुई वेश्या के यहाँ जीवन व्यतीत करती रही।

इधर खत्री के यहाँ राजकुमार शिक्षा-दीक्षा पाकर बड़ा हुआ और तेरहवे वर्ष से उसमें विलास की भावना उद्दीत होने लगी। एक दिन वह वेश्याओं के अड्डे से निकला और खिड़की पर बैठी हुई चन्द्रकिरन को देखकर उसके रूप पर मोहित हो गया। जब वह चन्द्रकिरन के सम्मुख पहुँचा तो उसे देखकर रानी का ममत्व जाग्रत हो उठा और वह रो पड़ी। कुमार ने इस रोने का कारण पूछा चन्द्रकिरन ने बताया कि मेरा पुत्र भी तुम्हारे ही समान था किन्तु आज से तेरह वर्ष हुए जब एक खत्री ने उसे शैशव अवस्था ही में मुझसे छीन लिया था और मुझे वेश्या के हाथ बेच दिया।

कुमार घर लौटा और उसने अपनी दासी से अपनी माँ का पता पूछा बहुत धमकाने पर दासी ने पूर्व कथा बताई इस पर कुमार बड़ा क्रुद्ध हुआ और खत्री को जाकर मारने लगा खत्री ने राजदरबार में पुत्र के इस व्यवहार

की शिकायत की। कुँवर ने अपनी सफाई दी कि यह मेरा पिता नहीं है मेरा पिता तो उज्जैन नगर का राजा है मेरी माँ का बहुत बड़ा घराना है और मेरे नाना का नाम चन्द्रभान है।

इसे सुनकर चतुरमुकुट ने कुमार को अपने हृदय से लगा लिया और खत्री को उस वेश्या के साथ हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा देने की आज्ञा दे दी।

तदुपरान्त वह चन्द्रकिरन के पास पहुँचा और उसे सारा वृत्तान्त बताया। हंस के मरने की सूचना पाकर चन्द्रकिरन बहुत रोई। राजा के साथ जाने के पूर्व उसने हंस की समाधि पर जाने की अभिलाषा प्रकट की।

हंस की समाधि पर पहुँच कर चन्द्रकिरन ने हंस के डखने-पखने जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना की कि यदि मैं पतिव्रता रही हूँ तो मेरे प्रताप से हंस पुनः जीवित हो जाए। उसके इतना कहते ही हंस जीवित हो गया। पाँच महीने तक राजा, राजकुमार तथा रानी आनन्दमय जीवन व्यतीत करते रहे।

एक दिन हंस ने राजा को उसके माता पिता एवं नौ सौ कुमारों की याद दिलाई। इस पर सबने नौ सौ जहाजों में सोना रुपया आदि भर कर घर की ओर यात्रा की। रास्ते में नौ सौ कुमारों को साथ लेकर चतुरमुकुट उज्जैन पहुँचे जहाँ उनके माता-पिता ने स्वागत किया और हर्ष मनाया।

प्रस्तुत रचना एक वर्णनात्मक काव्य है जिसमें लोकोत्तर घटनाओं के संयोजन के द्वारा कवि ने कहानी में 'कौतूहल' तत्त्व को अन्त तक बनाए रखा है। भाव-व्यंजना और काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से यह रचना उतने महत्त्व की नहीं जितनी कि लोकगाथाओं की परम्परा और तत्कालीन सामाजिक जीवन के कतिपय चित्र उपस्थित करने के कारण इसको महत्त्व दिया जा सकता है।

किसी भी सन्तानहीन राजा की मृत्यु पर उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिए लोक कथाओं में अधिकतर किसी हाथी के द्वारा उस व्यक्ति के चुने जाने अथवा सूर्य के निकलने के पूर्व नगर में प्रवेश करने वाले किसी भी अपरिचित व्यक्ति को सिंहासनारूढ़ करने की प्रथा मिलती है। ऐसे ही किसी सती नारी के प्रताप से मृतक व्यक्तियों के पुनर्जीवित हो जाने की लोकोत्तर घटनाओं का भी परिचय इन लोककथाओं में पाया जाता है। उपर्युक्त दोनों बातें चतुरमुकुट के कंचनपुर में सिंहासनारूढ होने और मृतक हंस के पुनर्जीवित होने में पाई जाती हैं।

स्त्रियों के क्रय-विक्रय की तत्कालीन प्रथा का भी आभास चन्द्रकिरन को वेश्या के हाथों बेचे जाने की घटना में मिलता है।

अपराधियों को हाथी के पैरों के नीचे राजा द्वारा कुचलवा दिए जाने के प्रचलित राजदंड एवं वेश्यागमन की सामाजिक रीति का भी परिचय इस काव्य में पाया जाता है।

अस्तु, लोक कथाओं की परम्परा एवं सामाजिक परिस्थितियाँ तथा जन साधारण के लोकोत्तर घटनाओं के विश्वास पर अवलम्बित यह रचना साहित्यिक विशेषता न रखते हुए भी प्रेमाख्यानों की परम्परा के क्रमिक विकास के अध्ययन के विचार से महत्वपूर्ण है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख-वर्णन

नारी के रूप-सौन्दर्य वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का ही प्रयोग किया है जैसे उसके अधर 'लाल' के समान हैं, दांत बिजली के समान चमकीले हैं जब वह बोलती है तो फूल झड़ते हैं, रोती है तो मोती—

दसन दामिनि देखि कै दुरी गगन में जाय।
हीरा लाल लजाय कै दुरे भूमि में जाय॥

उपर्युक्त अंश में व्यतिरेक और प्रतीप अलङ्कार के द्वारा कवि ने नायिका के सौन्दर्य का वर्णन बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया है।

जब बोलै तब फूल पखारै।
जब रोवै तब मोती डारै॥

कवि ने जहाँ एक ओर कवि-सिद्ध उपमान और कहावतों का प्रयोग किया है वहीं चन्द्रकिरन के असाधारण रूप की व्यञ्जना भी बड़े सुन्दर ढंग से की है।

संयोग-पक्ष

संयोग-पक्ष में हावों आदि का संयोजन नहीं मिलता वरन् रति का सीधा वर्णन चन्द्रकिरन और कुमार के मिलने पर पाया जाता है। जो तत्कालीन काव्य-परिपाटी का अनुसरण मात्र कहा जा सकता है—

'दोउ विरह के माते, चाव भरे जौवन रंग राते।
कुँवर करै जो मन भावै, कबहूँ हँसे कबहु उर लावै।
ससकी लैलै कामिनि उठि धावै, कंचन कुच पर हाथ चलावै।
फिरि-फिरि चूमत चन्द कपोला, देखै कामिनि कारज उसके'॥

वियोग-पक्ष

संयोग पक्ष की तुलना में इस काव्य का वियोग-पक्ष अधिक हृदयग्राही बन पड़ा है जैसे प्रियतम के बिना विरहिणी को रात काली नागिन के समान प्रतीत होती है किन्तु विवश नारी को सिवा अपने भाग्य को कोसने के और कोई चारा नहीं रह जाता—

रेन भई अति ही अँधियारी, पिय बिन मानो नागिन कारी।
हाय-हाय करि साँस लेवै, फिरि-फिरि दोस दई को देवै॥

वेश्या के यहाँ चन्द्रकिरन ने आठ वर्ष व्यतीत किए। इन आठ वर्षों की लम्बी अवधि में कवि चन्द्रकिरन की वियोगावस्था एवं मानसिक दशा का चित्रण कर सकता था किन्तु ऐसा न कर केवल एक पंक्ति में उसने यह कहा है कि 'घर में जो व्यक्ति हँसता हुआ घुसता था वह चन्द्रकिरन की अवस्था देखकर रोता हुआ जाता था'—

घर भीतर जो बिसनी आवै, हँसता पैठे रोता जावे।

यह अवश्य है कि उपर्युक्त एक पंक्ति में चन्द्रकिरन की दयनीय दशा का परिचय मिल जाता है किन्तु काव्य की दृष्टि से इस स्थल पर कवि को करुणरस एवं विप्रलम्भ शृङ्गार को अङ्कित करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

सम्पूर्ण रचना पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि भाव-व्यंजना के रसात्मक स्थलों को नहीं पहचान सका है इसलिए काव्य-सौष्ठव के स्थान पर इस रचना में इतिवृत्तात्मक वर्णन ही अधिक मिलते हैं।

छंद

इस काव्य का प्रणयन दोहा चौपाई छन्द में हुआ है जिसमें आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम पाया जाता है।

भाषा

इस रचना की भाषा प्रधानतया चलती हुई अवधी है किन्तु बीच-बीच में खड़ी बोली का पुट भी मिलता है जैसे—

जब फन्दा राजा ने खोला।
हंस आसिरबाद दे बोला॥

राजा ने खोला 'दे बोला' आदि क्रियापद आधुनिक खड़ी बोली के प्राप्त होते हैं। अस्तु भाषा की दृष्टि से हिन्दी की खड़ी बोली की कविता के विकास की दृष्टि से यह रचना ऐतिहासिक महत्त्व की ठहरती है।

—:o:—

उषा की कथा

रामदास कृत

रचनाकाल सं० १८६४

कवि-परिचय

आप सिरौनिक के रहने वाले थे। आपके पिता का नाम मनोहर था और आप कृष्ण के अनन्य भक्त थे।

कथावस्तु

एक दिन राजा परीक्षित ने सुखदेव से उषा-अनिरुद्ध की कथा पूछी। सुखदेव जी ने उन्हे बताया कि श्री कृष्ण जी के दो द्वारपाल इज्यै, विज्यै नाम के थे। उन्हें अपने बल का बड़ा गर्व हो गया था। श्री कृष्ण जी को यह बात मालूम हुई और वे इनका गर्व खण्डन करने का विचार करने लगे। एक दिन ब्रह्मा के पुत्र सनकादिक कृष्ण का दर्शन करने आए किन्तु इन द्वारपालों ने उन्हें अन्दर नहीं जाने दिया। इस पर सनकादिक ने इन्हें राक्षस योनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। शाप से व्याकुल होकर इन्होंने क्षमा याचना की। सनकादिक ने कहा जाओ तुम्हारे मोक्ष के लिए भगवान को तीन जन्म लेने पड़ेंगे इसलिए यह लोग प्रथम जन्म में हिरण्यकश्यप हुए। दूसरे में रावण तीसरे में कंस। इसके अनन्तर इन्होंने संक्षेप में प्रहलाद की भक्ति का वर्णन किया फिर इन्द्र की कथा बताई जिसमें अपने गुरु के अपमान करने के कारण ही राजा बलि ने इन्द्रासन इनसे छीन लिया था। फिर गुरु के द्वारा ब्रह्मज्ञान पाने पर इन्द्र ने पुन: अपना इन्द्रासन पाया। तदुपरान्त संक्षेप में समुद्र-मंथन, बलि-छलन और रुक्मिणी-हरण तथा प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के जन्म की कथा बताने के बाद उन्होंने उषा-अनिरुद्ध की कथा प्रारम्भ की है और कहा कि बाणासुर शोणितपुर में रहता था। उसने बारह वर्ष तक कठिन तपस्या की। इस पर शिव ने प्रसन्न होकर उसे मनोवाञ्छित वर माँगने को कहा। बाणासुर ने कहा कि मैं अमर हूँ और पृथ्वी के सारे राजों और सातों लोकों को विजय करना चाहता हूँ।

शिव से वरदान पाकर वह शोणितपुर लौट रहा था कि रास्ते में नारद जी मिल गए। उन्होंने उससे पूछा कि शिव ने तुम्हें क्या वरदान दिया है। बाणासुर से अमरता की बात सुनकर उन्होंने कहा कि तुमने भूल की, मुक्ति क्यों नहीं मांगी। बाणासुर लौटकर शिव से मुक्ति मागने गया और कहा कि मेरे नगर के चारों ओर अग्नि का जो कोटा है उसमें कोई भी शत्रु घुसने न पाए। शिव ने उसे एक ध्वजा दी और कहा कि इसे अपने महल पर बाध दो जिस दिन यह गिरेगी उसी दिन समझ लेना कि तुम्हारा शत्रु नगर में प्रवेश कर गया है।

बाणासुर के एक कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम उषा रखा गया। बड़ी होने पर एक दिन उषा सरोवर तट पर घूमने गई थी। सरोवर तट पर पार्वती की मूर्ति देखकर उसने कमलों की माला उन्हें पहनाई। पार्वती प्रसन्न होकर बोलीं मैं तुम्हारे मन की अभिलाषा समझती हूँ जाओ तुम्हे बहुत सुन्दर पति मिलेगा। जिसे तुम स्वप्न मे देखोगी वही तुम्हारा पति होगा। उषा ने अनिरुद्ध को स्व न में देखा। फिर चित्रलेखा उन्हे उषा के महल में ले आई। अनिरुद्ध के उषा के साथ रमण करते ही ध्वजा गिर पड़ी। कुटनियों को शत्रु का पता लगाने के लिए भेजा गया। एक कुटनी ने उषा के महल की सारी बातें बाणासुर को बताई। अनिरुद्ध और बाणासुर में युद्ध हुआ। और वह नागपाश में बद्ध कर लिया गया। नारद उषा के पास पहुँचे उन्होंने उसे सान्त्वना दी और कृष्ण के नाना अवतारों की कथा सुनाई। उषा ने सारी बातें अपनी मा से कहीं और यह भी बताया कि पार्वती के वरदान से ही उसे यह पति प्राप्त हुआ है। उषा की मां ने बाणासुर को बहुत समझाया किन्तु वह अपने हठ से न डिगा। नारद से सारा हाल सुनकर कृष्ण ने ससैन्य आक्रमण किया, घमासान युद्ध के उपरान्त बाणासुर हारा और उषा-अनिरुद्ध का विवाह हो गया।

कवि ने कथा के आदि में 'इज्यै-विज्यै' की घटना तथा अन्य छोटी-छोटी आख्यायिकाओं को जोड़कर वर्णित विषय को अलौकिक एवं धार्मिक पृष्ठ भूमि देने का प्रयत्न किया साथ ही अपनी कृष्णभक्ति को प्रदर्शित करने का अवसर निकाला है।

प्रस्तुत रचना में वज्रयानियों, सिद्धों और सूफियों में प्रचलित गुरु महिमा का प्रभाव इस कवि पर विशेष पड़ा है। हो सकता है कि कृष्णभक्त होते हुए भी यह कवि किसी पन्थ विशेष का अनुयायी रहा हो। प्रस्तुत रचना में गुरु का नाम या उसकी वन्दना तो नहीं मिलती किन्तु इन्द्र और चित्रलेखा की आख्यायिका के सम्बन्ध में गुरु माहात्म्य पर कवि ने बड़ा जोर दिया है। बृहस्पति का

आदर न करने के कारण ही बलि से इन्द्र को पीड़ित होना पड़ा था कवि कहता है।

गुरु बिनु सिधि ज्ञान नहि होई। गुरु बिनु पार न लागै कोई॥

इसी प्रकार अपनी भूल का अनुभव करने के उपरान्त जब इन्द्र अपने गुरु से मिलने गए और उन्होंने मिलने से इनकार कर दिया तो कवि का वचन है कि—

गुरु बिनु ग्यान न उपजै देवा। घर आए चूके गुरु सेवा।
गुरु करु मात पिता बड़ भ्राता। गुरु है सकल सिधि कै दाता॥
गुरु ते दाता और न कोई। गुरु प्रताप हरि मिलिहै सोई॥

ऐसे ही चित्रलेखा का परिचय देता हुआ कवि कहता है कि चित्रगुप्त की कन्या थी। इंद्र के अखाड़े में जाया करती थी किन्तु किसी गुरु से दीक्षित न होने के कारण उसे आदर और सम्मान प्राप्त नहीं होता था।

चित्र गुपित्र की कन्या आही। नित उठि इन्द्र अखारे जाई॥
देखति इन्द्र अखारे सोई। गुरु बिनु आदरु करै न कोई॥

नारद ने फिर उसे अपनी शिष्या बना लिया।

नारद इन्द्र अखारे आए। चित्र देखि अधिक सुख पाए॥
मैं नित करौं तुम्हारी सेवा। चरन सरन मैं तुम्हरे देवा॥
कहिए जाप मन्त्र को मेवा। तब नारद गुरु सिद्धि बनाई॥

सूफियों का प्रभाव हमें एक स्थल पर और परिलक्षित होता है। जिस समय चित्रलेखा द्वारिका पहुँची और अनिरुद्ध का महल ढूँढ रही थी उस समय परीक्षित ने सुखदेव से पूछा महाराज श्री कृष्ण के सोलह सहस्र रानियाँ और आठ पटरानिया थीं यह बताइए कि भगवान ने अपना महल किस प्रकार बनाया था। इस पर सुखदेव जी उत्तर देते हैं—

अति सोभा सोहति रजधानी। ये कई चौक रहै सब रानी॥
रानी प्रतिमत्ति कियो बिचारा। पंद्रह हाथ महल छः द्वारा॥
पाँच खम्भ इक महल प्रभावा। इहि विधि सर्व रचे भगवाना॥
नील पीत मनि द्वार सम्हारे। मनहु के चमकत तारे॥
बोलत पंछी अति अति ज्ञानी। कमल फूल हुले बहु भाँति॥
बाले मोर हंस सुखदाई। कोकिल कौ हौक मन छबि छाई॥
मधि चौक प्रभु महल बनाए। इक इक खंभन रतन लगाए॥
रवि उगत जे रचे दवारा। तिनिकी सोभा अगम अपारा॥

'पाँच खम्भों का महल' पंदरह हाथ का महल छः द्वार एक ही 'चौक' में रानियों का निवास, मधि चौक में प्रभु का महल और प्रत्येक खम्भ में रत्नों की ज्योति आदि का प्रयोग स्पष्ट रहस्यवादियों की भाँति वर्णित चित्रसारी अथवा 'गढ़' या महल के वर्णन से साम्य खाता दिखाई पड़ता है।

पाँच खंभ पञ्चप्राण के परिचायक हैं, रानियाँ सिद्धियों की परिचायिका एवं रत्नादि ऋद्धियों के प्रतीक तथा ज्ञानी पक्षियों का स्वर खिले हुए कमलों के साथ अष्टकमल-दल और अनहत नाद की ओर इंगित करती हुई जान पड़ती है। इस सम्पूर्ण वर्णन में रहस्यवादी परम्परा की स्पष्ट छाया है। किन्तु ऐसे स्थल आधिकारिक कथा से सम्बद्ध नहीं है।

सम्भवतः इन वर्णनों को लाकर कवि ने अपने काव्य में अलौकिकता को पुष्ट करने का प्रयत्न किया है या परम्परागत परिपाटी का अनुसरण कर निर्गुण और सगुण ब्रह्म के ऐक्य की ओर इंगित करने का प्रयत्न किया है। कवि की यह प्रवृत्ति आगे चलकर प्रस्फुटित नहीं हुई है और न इसकी अन्य रचनाएँ हीं सामने हैं जिनके आधार पर इसके धार्मिक विश्वास पर कुछ कहा जा सके।

काव्य-सौंदर्य

नखशिख-वर्णन

नखशिख-वर्णन के स्थान पर कवि ने वस्त्रों आदि से सुसज्जित उषा का वर्णन किया है ऐसे वर्णन परम्परागत हैं।

> लाल चुनरिया अधिक बिराज्यै। ललित कंचुकी कुच पर सोहै॥
> चलत गअंध चालि मन मोहै। करनफूल करनौटी सोहै॥
> सीस फूल सिर दमकत भारी। वेनी सरिस सुगंधित ढारी॥

इस रचना में संयोग और वियोग पक्ष का चित्रण नहीं मिलता सम्भवतः मर्यादा और आदर्श को ध्यान में रखते हुए कवि ने परम्परागत उत्तान शृंगार को अपनी रचना में प्रश्रय नहीं दिया है। वियोगावस्था का वर्णन कवि अनिरुद्ध के न आने तक कर सकता था; किन्तु इधर भी उसकी अभिरुचि नहीं लक्षित होती।

किन्तु कवि द्वारा युद्ध-वर्णन बड़ा सजीव हुआ है ऐसे स्थलों की भाषा भाव के अनुकूल ओजपूर्ण है। युद्ध भूमि में रुंडमुंडों की भीड़ और आकाश में उड़ते हुए गिद्धों का चित्र देखिए।

रुंड मुंड धरती पर आहीं। सिर बिनु धर भावहि धर माहीं ॥
गगन भई गीधनि की छांही। बही नदी रुधिर की धारा ॥
हाथी हनै घनै रथ टूटै। टूटै मुंड यो मस्तक फूटै ॥

युद्ध भूमि में आए हुए भूत बैताल योगिन आदि का वर्णन करता हुआ कवि वीभत्स-रस की अच्छी सृष्टि कर सका है। जैसे—

फिकरै स्वान. भूत बैताला,
जोगिनि गुहे मुंड की माला।
चरख चील चहुँदिसि तै धाए,
हरखि गीधनी अंग लगाए।
रुधिर भछि सब करै अहारा,
पैरत भैरो फिरत अपारा।

अस्तु यह रचना एक वर्णनात्मक काव्य है जिसमें कवि ने श्रीमद्भागवत की कई छोटी कथाओं को एक में गुम्फित कर दिया है। सम्भवतः श्री कृष्ण की लीलाओं का गुणगान करना ही कवि का उद्देश्य था। किन्तु उषा-अनिरुद्ध की कथा में काव्य-तत्व अन्य कथाओं से अधिक मिलता है युद्ध-भूमि का वर्णन यथेष्ट सुन्दर और यथार्थ बन पड़ा है।

भाषा

इसकी भाषा अन्य उषा-अनिरुद्ध काव्यों की तरह अवधी है।

—:o:—

उषा-चरित

—मुरलीदास कृत
—लिपिकाल-सं० १८८३
—रचनाकाल....

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

प्रस्तुत प्रति की लिपि बड़ी भ्रष्ट और भाषा बड़ी अशुद्ध है इसके अतिरिक्त पानी से भींग जाने के कारण स्याही इतनी फैल गई है कि पढ़ी नहीं जाती।

यह एक छोटा सा वर्णनात्मक काव्य है जिसकी कथा भागवत् के आधार पर ही चलती है। केवल कवि ने एक स्थान पर परिवर्तन कर दिया वह यह कि यौवनागमन पर उषा काम से पीड़ित रहा करती थी। एक दिन वह उमा के मन्दिर में पूजा करने गई। उमा ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा। उषा ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार आपको सुन्दर पति मिला है उसी प्रकार हमें भी प्राप्त हो। उमा ने एवमस्तु कहा और अन्तर्धान हो गई। इसके उपरान्त उषा ने अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा और व्याकुल हो गई। चित्रलेखा की सहायता से अनिरुद्ध उसके मन्दिर में आया। अन्त में बाणासुर तथा कृष्ण के युद्ध के बाद दोनों का विवाह हुआ।

कवि का उद्देश्य इस रचना में भागवत की कथा को केवल भाषा में कविता बद्ध करना जान पड़ता है इसलिए इसमें इतिवृत्तात्मक वर्णनों की ही प्रधानता है। संयोग, वियोग, नख-शिख आदि का वर्णन नहीं मिलता।

इसकी भाषा अवधी है। उदाहरणार्थ कुछ अंश निम्नाकित हैं—

सतगुरु को नाउँ। सबद बिसरि मति जाइ।
....। भूले अच्छर देहु बताई।
... ...
सपने को सुख सत्य न होय। प्रातकाल जागत दुख होय।

—:o:—

उषा-हरण

—जीवन लाल नागर कृत

—रचनाकाल—सं० १८८६

—लिपिकाल...

कवि-परिचय

मिश्रबन्धु विनोद और रामचन्द्र शुक्ल 'रसाल' ने अपने इतिहास में जीवन-लाल नागर के उषा-हरण, दुर्गाचरित्र रामायण, गंगाशतक, अवतारमाला, संगीत भाष्य आदि ग्रन्थों के नाम दिए हैं। किन्तु दोनों ही इतिहासकारों ने उनके जीवन के विषय में कोई भी प्रकाश नहीं डाला है। अस्तु कवि का जीवन-वृत्त अज्ञात ही कहा जा सकता है[1]।

कथावस्तु

बाणासुर ने शिव की तपस्या की जिससे प्रसन्न होकर शिव ने उमा के मना करने पर भी उसे अजेयता का वरदान दिया एवं सहस्रबाहु प्रदान कर दिए। थोड़े ही दिनों में वह शक्ति से घबड़ा उठा और अपनी खुजलाती हुई बाहुओं की खुजली मिटाने के लिए उसने कैलाश पर्वत उठा लिया। सारे प्राणी और पशु-पक्षी एवं पार्वती जी भी इससे घबड़ा उठीं वह समझने लगीं कि कैलाश सागर में डूबा जा रहा है। इसके अन्तर वह शिव के पास पहुँचा और कहने लगा कि संसार में कोई योद्धा ऐसा न मिला जिससे मल्ल युद्ध करके वह अपनी बाहुओं की खुजली मिटा सकता। इसलिए वह बड़ा परेशान रहता है। शिव ने उसे एक पताका दी और कहा कि जिस दिन यह पताका गिरेगी उस दिन समझो तुम्हारा शत्रु आ गया जो तुम्हारी अन्य बाहुएँ काटकर केवल चार छोड़ेगा।

बाणासुर की उदण्डता से सारे देवता तङ्ग आ गये थे। अतएव उन्होंने मंत्रणा के बाद यह निश्चित किया कि शिव की पुत्री बाणासुर की दत्तक पुत्री

१—देखिये विनोद पृ० १२९, और हिन्दी साहित्य का इतिहास

—रामचन्द्र शुक्ल 'रसाल' पृ० ११८।

बनें और कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से उसका विवाह हो जिसके फलस्वरूप बाणासुर का गर्व खर्व हो और उसकी भुजाएँ कट जायँ। एक दिन शिव मधुबन में समाधि के लिए जाने लगे। शिव के वहाँ जाने से पार्वती रोकनी लगीं। उन्होंने कहा कि आपके चले जाने पर हमारा समय भारस्वरूप हो जाएगा मन बहलाने को तो हमारे पास सन्तान भी नहीं है। इस पर शिव ने उत्तर दिया कि तुम जगदम्बा हो तुम्हें सन्तान की क्या आवश्यकता। अगर तुम यह चाहती हो तो जाओ तुम केवल इच्छा मात्र से सन्तान उत्पन्न कर सकती हो और यह वरदान देकर शिव मधुबन में समाधिस्थ हो गए। कुछ समय उपरान्त एक दिन पार्वती जी स्नान करने जा रही थीं कोई आने न पाए इस विचार से उन्होंने अपने दाहिने अङ्ग के मैल से एक सुन्दर पुत्र की मूर्ति बनाकर उसमें प्राण प्रतिष्ठा की और उसका गणपति नामकरण करने के उपरान्त द्वार रक्षा के लिए बैठा दिया, किन्तु अकेला बालक घबड़ा न जाए इस विचार से थोडी देर बाद उन्होंने अपने बाएँ अङ्ग के मैल से एक सुन्दर बालिका की मूर्ति गढ़कर प्राण प्रतिष्ठा कर दी। दोनों भाई बहन पौरी में खेलने लगे और उमा स्नानागार में चली गईं।

इधर नारद मुनि टहलते-टहलते उधर से निकले और पार्वती की दो सन्तानों को देखकर आश्चर्य चकित हो गए। वह सीधे शिव के पास पहुँचे और उन्हें उलहना देते हुए कहा कि यही तुम्हारी तपस्या है तुम यहाँ इतने दिनों से समाधिस्थ हो और वहाँ उमा ने दो सन्तानें जनी हैं। शिव इस समाचार को सुनकर सक्रोध मन्दिर की ओर चले। उनको गृह में प्रवेश करने से गणपति ने रोका। पिता पुत्र का युद्ध हुआ गणेश मारे गए और उषा डरकर 'लौन द्रौन' में जा छिपी। अन्दर पहुँच कर शिव को वस्तुस्थिति का पता चला उन्होंने गणपति को हाथी का सिर लगा कर जीवित कर दिया किन्तु उमा ने उषा की भीरुता से क्रुद्ध होकर एक महीने तक 'लौन द्रौन' में ही रहने का शाप दे दिया।

एक दिन एक डोमिन ने बाणासुर को प्रातःकाल देखते ही मुँह घुमा लिया। बाणासुर इस व्यवहार से क्रुद्ध एव चकित हुआ। पूछने पर डोमिन ने बताया कि प्रातःकाल निःसन्तान का मुख देखने से पाप लगता है इसने उसके हृदय पर चोट की और वह फिर शिव के पास पहुँच कर पुत्र याचना करने लगा। शिव ने कहा कि मैं तुम्हारे कर्म की रेखा को तो नहीं बदल सकता किन्तु 'लौक द्रौन' में उमा से शापित उसकी पुत्री है उसे तुम अपनी संतान की तरह ले जाकर पाल सकते हो। इस प्रकार उषा बाणासुर के घर पहुँची। उसके

पहुँचते ही नगरी में अपशकुन होने लगे पूर्ण यौवन होने पर बाणासुर ने उषा के विवाह के लिए मन्त्रियो में मन्त्रणा प्रारम्भ की। उसी समय आकाशवाणी हुई कि उषा का पति तुम्हारे नाश का कारण बनेगा इसे सुनते ही बाणासुर ने विवाह का विचार छोड़ दिया और उषा को चित्रलेखा के साथ एक अति सुन्दर महल में कड़े पहरे में रख दिया।

बाणासुर के राग-रग और महल के वासनामय वातावरण ने उषा को काम-पीड़ा से विचलित करना प्रारम्भ कर दिया। जब वह बाणासुर को रनिवास में सुन्दरियों के साथ केलि करते, सुरापान करते देखती तो वह बड़ी व्याकुल हो उठती थी। एक दिन उसने अपनी सखी चित्ररेखा रा सारी बातें कहीं और यह भी बताया कि मेरा विवाह करने से तो मेरे पिता रहे, अब तुम मेरे लिए कोई वर ढूंढ दो।

चित्ररेखा ने उषा को पार्वती से मिलने से और उनसे वर मांगने की मंत्रणा दी। एक दिन दोनों पार्वती के पास पहुँची। पार्वती ने पहले तो उषा को उसकी कामुकता के लिए घुडका किन्तु अन्त में कहा जाओ तुम्हें ग्रीष्म पूर्णिमा की रात को स्वप्न में तुम्हारे पति के दशन होगें, गन्धर्व विवाह के उपरान्त शास्त्रानुकूल विवाह होगा। प्रसन्न वदना उषा इस वरदान को पाकर घर लौटी। ग्रीष्म की पूर्णिमा को सजधज कर उषा उमा के वरदान के अनुसार अपने भावी पति की बाट जोहती और कल्पना करती हुई सो गई। उसी रात्रि को उसने अनिरुद्ध का स्वप्न देखा और प्रेमलाप करने लगी किन्तु रति-सुख की पूर्णता प्राप्त करने के पूर्व ही उसकी आँखें खुल गई। विरह और मदनपीड़ा से व्याकुल हो वह प्रलाप करने लगी, पास सोई हुई चित्ररेखा की आंखे खुलीं उसने कुमारी को विक्षिप्तावस्था में पाया। सान्त्वना देने के उपरान्त सारा हाल जानकर उसने चित्रांकन प्रारम्भ किया। अनिरुद्ध के चित्र पर उषा खिल उठी। चित्ररेखा योगबल से पलंग सहित अनिरुद्ध को द्वारिका से उठा लाई। कुछ दिनों दोनों सुख से रहे। उषा के अंग पर पुरुष समागम के चिह्न देखकर द्वारपालों को चिन्ता हुई उन्होंने बाणासुर को बताया। अनिरुद्ध और बाणासुर का युद्ध हुआ। नागपाश में वह अनिरुद्ध की दशा का हाल नारद ने द्वारिका में कृष्ण से जा बताया। ससैन्य कृष्ण ने चढ़ाई की, घोर युद्ध हुआ बाणासुर की सहायता को शिव भी पहुँचे किन्तु उन्होंने भी अन्त में हार मानी। बाणासुर का दम्भ भंग हुआ और उषा-अनिरुद्ध का विधि पूर्वक विवाह हो गया।

प्रस्तुत रचना में कवि ने पौराणिक गाथा की कथा को सर्वाङ्ग स्वीकार

करके भी अपनी मौलिक उद्भावनाओं से अधिक रोचक सरस और स्वाभाविक एवं शिक्षाप्रद बना दिया है।

उषा के जन्म और उसके बाणासुर की पुत्री होने की घटना कवि की स्वतंत्र भावना है। इसके द्वारा उषा को उसने देवांगना का रूप प्रदान किया है साथ ही दुष्टों के नाश के लिए दैवी शक्तियाँ किस प्रकार कार्य करती हैं इसका भी प्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। पौराणिक गाथा में साधारण नारी और पुरुष के वासना जनित प्रेम की गन्ध को इस कवि ने अपनी कल्पना के सुरभित समीर से हृदय ग्राही एवं स-उद्देश्य बना दिया है। कविवर कालिदास के कुमारसम्भव की झलक उषा अनिरुद्ध में दिखाई पड़ती है। जिस प्रकार कुमारसम्भव का उत्तान शृङ्गार जगत्त्राण का प्रतीक है उसी प्रकार यह प्रेम भी।

इस घटना के द्वारा उषा का प्रेम कामुकता के क्षेत्र से हटकर सात्विकता की कोटि में पहुँच गया है। वह स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक भी है साथ ही दैवी प्रेरणा से उद्भूत भी। वासनामय वातावरण में सारी सुख सामग्री से घिरी हुई नव-यौवना उषा अगर काम-रस से पीड़ित रहती है तो इसमें उसका कोई दोष नहीं।

काव्य-सौंदर्य

नख-शिख-वर्णन

उषा के रूप-सौन्दर्य वर्णन में कवि ने कवि समय सिद्ध उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का भी प्रयोग किया है। जैसे—उसकी आँखें कमल के समान हैं, अधर बिंबा के समान, जंघाएँ कदली के समान हैं आदि।

इस कवि ने वयःसन्धि का वर्णन भी किया है। जिसमें यौवन के क्रमिक विकास और नायिका के शरीर पर प्रति दिन बढ़ते हुए लावण्य और आकर्षण का चित्रण बड़ा स्वाभाविक हुआ है। बालिका की चपलता ने गम्भीरता का स्थान धीरे धीरे ग्रहण कर लिया था। उसकी गति मंथर होने लगी थी अधरों पर हँसी के स्थान पर स्मित हास्य दिखाई पड़ने लगा था। और उसकी कटि क्षीण होने लगी थी। उसकी केश-राशि मानो यौवन की पताकाएँ होकर हवा में लहराने लगी थीं।

'दौरन तजिस भई गज गामिनि। हसब छांड़ि मित ज़ि र मनु भामिनि।
कटि तट लूटि उरज गढ़ बांधे। भुव कमान लोचन शर साधे।
यौवन चिकुर पताका लहरत। मनु मुख चंद फंद से फहरत'।

संयोग-शृंगार

कवि परिपाटी के अनुसार प्रेमाख्यानों में संयोग पक्ष के अन्तर्गत अनावृत्त सम्भोग शृङ्गार एक रुढ़ि सा हो गया था वही पति-पत्नी की केलि, वही हाव-भाव आदि का वर्णन इस काव्य में भी मिलता है। इस कवि ने विपरीत रति का वर्णन भी किया है। इसके वर्णन सीधे और आवरण हीन है।

संभोग करत बिपरीत रति, तिय स्वै छातै धरि अमित प्रीति।
कटि लचकि उचकि कुच कठिन कोर, जब मचाके अंक भरियत किसोर।
झंकार होत पायल निसिद्ध। कोकिल रव कूकत केलि नद्ध।

× × ×

कंचुकि दरकि रही चहुधा वर। लहे परिरंभन को ऽम सुंदर।
स्वेद बिंदु विकसत कुच ऊपर। मानो ओस कनक जुक्त कनक गिरी॥

वियोग-शृंगार

प्रस्तुत रचना में वियोग शृङ्गार नहीं प्राप्त होता।

भाषा

प्रस्तुत रचना कथानक की तरह भाषा की दृष्टि से सुन्दर है। इसमें भाषा के ओज एवं प्रसाद गुण के साथ-साथ स्वाभाविकता, सरलता, प्रतिध्वन्यात्मकता मिलती है। शब्द चित्र सुन्दर और आकर्षक बन पड़े हैं। अनावश्यक अलकारो से भाषा को सजाने का प्रयत्न नही किया गया है। वरन् वह स्वाभाविक और अनायास आए हुए से जान पड़ते है। जैसे—यौवनागम के चित्र में कवि ने उत्प्रेक्षाओं और अलंकारों का प्रयोग किया तो है पर वे बड़े स्वाभाविक से लगते हैं।

'दौरन तजिस भई गज गामिनि। हास्य छांडि स्मित लिय मनु भामिनि
कटि तट लूटि उरज गढ़ि बाँधे। भुवन कृपान लोचन शर साधे।
यौवन चिकुर पताका सहरत। मनु मुख छंद फंद से फहरत॥'

इसी प्रकार सेना के चलने से उत्पन्न प्रभाव का चित्रण शब्द विन्यास के कारण बड़ा प्रभावोत्पादक बन गया है।

कसमसत कमठ धस मलित धूम। डिग डिगत अद्रि उठि गगन धूम।
फन सहस सेस सल सलत सेत। नृप वान चढ़ि दिग्विजय हेत॥

इसी उद्धरण में सैन्य संचालन एवं युद्ध-चित्र को अंकित करने के लिए जहाँ कठोर शब्दों एवं अनुप्रास के संयोजन से चित्रात्मकता आ गई है वही घूँघरु और नूपुर की झनकार उषा के नख-शिख वर्णन में सुनाई पड़ती है।

धंम-धंम घूंघर की धमकार। चंम-चंम चारु चंमकत चीर।
तंम-तंम त्यौरि चलै चखतीय। छंम-छंम बज्जुत बिच्छुव साज।
कंन-कंन कंकन चूरि बजंत। खन-खन हार हमेल हलंत।

अनुस्वारान्त भाषा का प्रयोग भी कवि ने यदा-कदा किया है। जैसे—

तमाल तुंग औ अनंग रंग मुंज मंजुरी।
सुवेस कुंच महंतं कदंब अंब यंडुरं।
असोक कुंद चंपकं चमेलि केलि सुंदरं।

प्रकृति-चित्रण

प्रस्तुत रचना में प्रकृति के आलम्बन रूप का भी दो स्थानों पर चित्रण प्राप्त होता है। वर्षा ऋतु का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि वर्षा होने के कारण नदी नाले उमड़ रहे हैं। पुरवाई हवा का शीतल सुगन्धित झोंका चल रहा है। और पृथ्वी सौंधी-सौंधी उसासें ले रही है।

बरखत धरनि धार धाराधर,
कबहुँक मन्द कबहुँ बहुतजल धर।
गंधित सीत चलत पुरवाई,
छित छकि रति लै स्वास सुहाई।
खल खलात चहु दिस नद नारे,
निर्झर भरे ढरत जल धारे।

ऐसे ही ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि सूर्य के तपन से पशु-पक्षी व्याकुल हो रहे हैं। शीतलता प्राप्त करने के लिए वे नदियों में जा घुसे हैं। तरुवरों से पत्ते सूख कर गिर रहे हैं और प्यास से व्याकुल गीदड़ आपस में लड़ रहे हैं। पक्षियों और बन्दरों ने छाया के लिये पेड़ों का आश्रय लिया है—

रवि तन जपत जन्तु दुख पावत,
दौरि-दौरि दरियन दुरि जावत।
तरवर पत्र परत भुव उरि उरि,
गीदड़ मरत बखातुर लरि-लरि।
पंछी तरवर छाँह निहारत,
कपि कदंब अंबन हुँकारत।

इस प्रकार प्रस्तुत रचना भाषा, भाव तथा अलंकार की दृष्टि से सुन्दर है।

———

उषा-चरित्र (बारह खड़ी)

—जनकुंज कवि कृत
—रचना काल—१८३६
—लिपिकाल······

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

प्रस्तुत प्रति में कथावस्तु आरम्भ में भागवत के आधार पर ही है किन्तु बीच-बीच में दो एक स्थान पर कवि ने अपनी इच्छा के अनुकूल परिवर्तन कर दिया है जैसे उषा ने जिस दिन अनिरुद्ध को स्वप्न में देखा उसी दिन अनिरुद्ध ने भी उषा को देखा था। दोनों एक दूसरे के लिए व्याकुल रहने लगे थे किन्तु अभाग्यवश एक दूसरे का परिचय नहीं जानते थे। चित्रलेखा को द्वारिका में जाकर मालूम हुआ कि अनिरुद्ध की दशा बड़ी शोचनीय है किसी वैद्य आदि की औषधि काम नहीं करती, तब वह वैद्य के रूप में श्रीकृष्ण के पास पहुँची और श्रीकृष्ण ने इस नये वैद्य को अनिरुद्ध के पास भिजवा दिया। अनिरुद्ध की नाड़ी देखकर उसने उषा से मिलाने का चुपके से कान में कहा—

'चतुर वैद्य नारी गही, कही श्रवन समझाइ।
अरध रेति उषा कुमरि, तुमकूँ देउ मिलाइ ॥'

इसे सुनकर प्रसन्न हो अनिरुद्ध ने करवट ली। और सब लोग इस वैद्य की प्रशंसा करने लगे। अनिरुद्ध को लेकर चित्रलेखा उषा के पास पहुँची। दोनों आनन्द से रहने लगे। चेरियों से उषा के शरीर पर सहवास चिन्हों को सुनकर उषा की माँ ने उसे समझाया। दोनों में वाद-विवाद हुआ। उषा न मानी। माँ ने बाणासुर से सारा हाल कहा। अन्त में कृष्ण और बाणासुर का युद्ध हुआ। बाणासुर हारा। अनिरुद्ध का उषा से विवाह हुआ।

उक्त दो परिवर्तनों से कवि ने उषा और अनिरुद्ध के प्रेम में स्वाभाविकता उत्पन्न कर दी है कुछ नाटकीय गुण का भी समावेश कर दिया।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख-वर्णन

उषा के सौन्दर्य वर्णन और श्रृङ्गार में कवि ने बड़ी शिष्ट और परिमार्जित अभिरुचि का परिचय दिया है। कही भी मर्यादा का उल्लघन नही होने पाया है। उसकी उपमाएँ परम्परागत होते हुए भी सीधी सादी और हृदयग्राही हैं। नारी के स्थूल अवयवों के चित्रण के सौन्दर्य के स्थान पर कवि ने नायिका की वेश भूषा का वर्णन ही किया है। जैसे—

अति सुन्दर कछु कहन न आवे, थकित भए जब दरस दिखावे ।।
कमल बदन पर अलग सशारे, लोचन मधुप करत गुंजारे ।
अग अंग भूखन बसन बिराजे, रति रंभा छवि अति उति छाजै ।

कहीं-कहीं तो इस कवि की उपमाएँ तुलसी के समान सरस जान पडती हैं। उषा के सौन्दय वर्णन में सीता के प्रति तुलसी के 'रूप सुधा पयोनिधि होई' वाली उक्ति की प्रतिच्छाया निम्नांकित अंश में दिखाई पडती है। जैसे—

मानौ मथि काढ़ी सिंधते विधुवर रूप अपार ।
सुखमा को सरिता सकल रस अमृत धार ।।

ऐसे ही आभूषणो और श्रृङ्गार के उपादानों के वर्णण मे भी कहीं अरुचि का अश भी दिखाई नहीं पड़ता।

थर थरानि बेसर को मोती। अधरन पर तारागन जोती।
चंद बदन पर बेंदी राजे। सीस फूल बना छवि छाजै।
हग अंजन खंजन चित सोहै। बोलन बचन कोकिला कोहै।

उपयुक्त में 'थरथरात' शब्द ने एक अनूठा सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया है। टिमटिमाते हुए तारों और अधरों पर प्रकम्पित मोतियों का गुण-साम्य बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

संयोग-श्रृङ्गार

प्रेम-काव्य होते हुए भी इस कवि ने कवियों में प्रचलित रति, केलि, सुरतान्त, आदि का वर्णन नहीं किया है जो इस बात का द्योतक है कि यह कवि श्रृङ्गारिकता के विलास-पक्ष की ओर विशेष उन्मुख नहीं था।

वियोग-पक्ष

स्वप्न के उपरान्त उषा के वियोग-वर्णन के चित्र सुन्दर और हृदय ग्राही बन पड़े हैं—उषा अपने प्रियतम का स्मरण करती हुई कहती है—कि प्रियतम तुम कहाँ चले गए ऐसा तुमने किया ही क्यों? 'ए पीतम उठि सेज तें कित

गए चतुर सुजान। रस बस करि मनु लै गए मारि बिरह के बान। वह खाना-पीना तज कर रोती बिलखती हुई हर समय योगिनी की तरह अपने प्रियतम का ध्यान करती रहती थी—

'कर मीजै और सिर धुनै गहरे लेत उसास।
नवल कुँवर के दरस बिनु नहीं जीवन की आस।

अथवा

नैनु नींद न आवै, भोजन भूषन भमत न भावै।
उलटि-पलटि कर लेत उसासा। नाहि कुंवरि जीवन को आशा।
एक सखी घिसि चंदन लावै। एक कुवरि के अङ्ग लगावै।
उषा महलन में कियो वियोगी। जैसे ध्यान धरत है जोगी।

भाषा

प्रस्तुत रचना की भाषा अवधी है। बारह खड़ी में होने के कारण वृत्यानु-प्रास की छटा देखने को मिलती है जो कवि के भाषा पर असाधारण अधिकार का द्योतक है। भाषा भाव के साथ चपल और गम्भीर होती चलती है। शिव के रूप का वर्णन करता हुआ कवि कुछ ही शब्दों में एक चित्र-सा अंकित कर देता है—

जटा मुकुट तन भस्म रमाए। कटि लंगोट भंग विष खाए।
कर त्रिसूल झाषा पाँच विराजै। भूत प्रेत रन में मत गाजै।

युद्ध वर्णन में भी शब्दों का चयन विषयानुकूल परुष और प्रभावोत्पादक हुआ है। जैसे—

'हा हे हर हंकार कृस्न पर धाये। पर लै मेघ बान बरसाए।
धरि सर चाप कृस्न हंकारे। शिव के बान वृथाकरि मारे॥'

युद्ध भूमि में उपस्थित वीभत्स दृश्य का चित्रण भी कवि ने उतनी ही चित्रात्मकता के साथ किया है जितने कि उसके अन्य वर्णन प्राप्त होते हैं। जैसे—

भूत प्रेत जोगिनि इतरावै। भरि-भरि रुधिर ईस गुन गावै।
झूम मिलै करताल बजावै। जोगिन भरि-भरि खप्पर धावै।
जंबुक गीध गीधनी गन लावै। भरि-भरि उदर परम सुख पावै।

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि भाषा की सरलता, शब्दों की मधुरता, प्रतिध्वन्यात्मकता, एवं चित्रात्मकता की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना है।

रमणसाह शहजादा व छबीली भठियारी की कथा

रचयिता...

रचनाकाल...

लिपिकाल सं० १६०५

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है। कथा का प्रारम्भ श्री गणेशायनमः से हुआ है इसलिए इसकी रचना किसी हिन्दू कवि के द्वारा की गई जान पड़ती है।

कथावस्तु

दिल्ली में सिकन्दर शाह नाम के बादशाह के कोई सन्तान न थी इसलिए वह बड़ा दुखी रहता था। एक दिन इसी दुख से व्याकुल होकर वह राजपाट छोड़कर बाहर निकल पड़ा और मन्त्रियों के लाख मनाने पर भी नहीं लौटा। दिल्ली से दूर एक सघन वन में एक पेड़ के नीचे उसने आश्रय लिया। उसकी इस मानसिक व्याकुलता को देखकर ईश्वर फकीर के वेश में उसके सामने अवतरित हुए और उसके दुःख का कारण पूछने लगे। थोड़ी देर के वादाविवाद के बाद फकीर ने राजा को पुत्र होने का आशीर्वाद दिया और सिकन्दर प्रसन्नता पूर्वक राजधानी लौट आया। इसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रमणशाह रखा गया। रमणशाह ने हर प्रकार की विद्या पाई और एक दिन बड़े होने पर उसने पिता से आखेट खेलने के लिए आज्ञा मागी। आखेट से लौटते समय शाहजादे ने पनघट पर एक स्त्री को पानी भरते देखा और मुग्ध हो गया। नौकरों से उसे पता चला कि अमुक स्त्री एक भठियारिन है। इस छबीली भठियारी के पास शाहजादा अक्सर आने लगा जब मन्त्रियों को छबीली भठियारी से कुमार के सम्बन्ध का पता लगा तब उन्होंने राजा से कुमार के विवाह कर देने की बात कही। भठियारी से कुमार को विमुख करने के लिए राजा ने चित्रकारों को देश विदेश भेजकर सुन्दर से सुन्दर स्त्रियों के चित्र मँगवाये और वे राजकुमार के मार्ग पर पड़ने वाली अगल बगल की

दीवार पर इसलिए लगवाए गए कि कुमार उनमें से किसी एक को चुन ले। मानसिंह जागीरदार की एक पुत्री विचित्रकुँवर का चित्र कुमार को अच्छा लगा। राजा ने मानसिंह के पास विवाह का सन्देश भेजा पिता ने पुत्री से परामर्श किया और पुत्री ने राजकुमार से विवाह हिन्दू रीति के अनुसार करना स्वीकार कर लिया। बरात में छबीली भठियारी भी एक ऊँट पर सवार होकर गई। छबीली किसी भी प्रकार कुमार को छोड़ना न चाहती थी इसलिए वह कुमार को विचित्र कुँवर से अलग करने का षड्यन्त्र सोचा करती थी। भांवरे पड़ जाने के उपरान्त भठियारिन मालिन के वेश में कुमारी के यहाँ गई और उसके सौन्दर्य को देखकर चकित हो गई। वहाँ से लौटकर उसने कुमार से बताया कि उसकी भावी पत्नी की शक्ल संखिनी की है और उससे आंखे मिलाकर देखने वाला मनुष्य मर जाएगा। इसे सुनकर कुमार बड़ा चिन्तित हुआ और उससे भठियारी से अपनी जीवनरक्षा का तरीका पूंछा। भठियारी ने उससे कहा कि अगर वह आँखों में पट्टी बाँध कर ससुराल जाय और पट्टी बाँधे ही कुमारी के पास जाया करे तो उसकी जान बच सकती है। कुमार ने ऐसा ही किया। विवाह के बहुत दिन बीत जाने के उपरान्त भी जब राजकुमार की आँखों की पट्टी न खुली तब कुमारी विचित्र कुँवर बड़ी चिन्तित रहने लगी। उसने अपनी सास से सारी बातें पूछीं और उसे छबीली भठियारी तथा कुमार का सम्बन्ध ज्ञात हुआ। कुमार को भठियारी के चंगुल से छुड़ाने के लिए विचित्र कुँवर ने गूजरी का भेष धारण किया और दही बेचने के बहाने वहाँ पहुँची जहाँ कुमार भठियारी के पास बैठा था। गूजरी के सौन्दर्य को देखकर कुमार ने उसे अपने पास बुलाया और उससे बातचीत करने लगा। भठियारी कुमार को एक गूजरी के प्रति आकर्षित होते देखकर बड़ी बिगड़ी गूजरी और भठियारी में वादाविवाद हुआ। इस वादविवाद में कुमारी ने अन्योक्ति के द्वारा अपना सारा हाल कुमार को सुनाया लेकिन वह उसे समझ न सका। एक लाख टके के स्थान पर गूजरी कुमार के गले की माला लेकर घर लौट आई। लौटते समय कुमार के पूछने पर उसने बताया कि वह पायत के सराय में रहती है। दूसरे दिन कुमार गूजरी को ढूढ़ने पायत की सराय गया लेकिन न उसे पायत की सराय ही मिली और न गूजरी ही। तीसरे दिन जब कुमार भठियारी के पास बैठा था विचित्रकुँवर ने मरदाने वेश में सराय में प्रवेश किया और नौकर से कुमार को बुलवा भेजा नौकर के आनाकानी करने पर उसने उसे पीटा। मार खाकर नौकर रोता हुआ कुमार के पास गया। अपने विश्वास-पात्र नौकर को मारने वाले को दण्ड देने के लिए शाहजादा बाहर निकला लेकिन अपने सामने

एक सुन्दर राजकुमार को देखकर ठिठक गया। दोनों ने एक दूसरे का परिचय प्राप्त किया और वे जंगल में शिकार खेलने चल दिए। रमणशाह ने एक हिरण मारा जो घायल होकर करील के कुंज में गिर पड़ा। उसे उठाने के लिए विचित्रशाह (विचित्र कुँवर) कुंज में घुसा वहीं उसके पैर में काँटा गड़ जाने के कारण रक्त निकलने लगा। विचित्रशाह के पैर से खून निकलते देख रमणशाह बड़ा दुखी हुआ और अपना साफा फाड़कर उसके पैरों पर पट्टी बाँधी। जब दोनो साथ-साथ लौट रहें थे तब विचित्रशाह ने बताया कि वह पायत की सराय में ठहरा है। पायत की सराय का नाम सुनकर रमणशाह ने गूजरी के विषय में पूछा। विचित्रशाह ने बताया कि गूजरी को वह जानता है और अगर रमणशाह कल वहाँ आये तो वह उसे गुजरी से मिला देगा। थोड़ी दूर जाने के उपरान्त रमणशाह से विचित्रकुँवर ने घोड़ा दौड़ाने को कहा और रमणशाह के आगे जाते ही छद्म वेशी विचित्रकुँवर अपने महल में घोड़ा दौड़ा कर पहुँच गई।

उसी रात को विचित्रकुँवर ने अपने पैर में दर्द होने की बात रमणशाह से कही। रमणशाह इस पर बिगड़ा धीरे-धीरे विचित्रकुँवर ने रमणशाह को सारी बात बताई और कुमार का चिन्ह हार उसके हाथ में दे दिया जो उसने गूजरी के रूप में प्राप्त किया था। कुमार ने डरते-डरते आँख खोली और विचित्र कुँवर देखकर मुग्ध हो गया। दूसरे दिन कुँवर रमणशाह ने छबीली को विचित्र कुँवर की इच्छानुसार आधा जमीन में गड़वाकर कुत्ते छुड़वा दिए जिससे वह मर गई।

प्रस्तुत रचना एक गद्य-पद्य मय चम्पू काव्य है। इसका महत्व दो कारणों से है। पहली बात तो यह है कि इसका नायक मुसलमान है और दो नायिकाओं में एक मुसलमान दूसरी हिन्दू। कुमारी विचित्रकुँवर का विवाह रमणशाह के साथ हिन्दू रीति से कराकर कवि ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो सांस्कृतिक साम्य उपस्थित हो चला था उसका संकेत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर के समय में जो हिन्दू स्त्रियों के मुसलमानों से विवाह होने लगे थे या डोला भेजने की प्रथा चल गई थी उसी के आधार पर इस काव्य की रचना हुई। भाषा की दृष्टि से भी यह रचना महत्वपूर्ण है। इसमें हिन्दी की प्रारम्भिक खड़ी बोली का रूप प्राप्त होता है।

प्रस्तुत रचना वर्णनात्मक और संवादात्मक शैली में लिखी गई है। इस रचना की कहानी कल्पित है किन्तु कहानी का ढंग बड़ा सुन्दर है और आरम्भ से अन्त तक कौतूहल तत्त्व बना रहा है। गूजरी और कुमारी के वादाविवाद में

दो झगड़ालू स्त्रियों की प्रकृति के साथ-साथ स्त्री सुलभ ईर्ष्या और सवतिया डाह का परिचय भी इस काव्य से प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रस्तुत रचना भाषा और कहानी के नूतन प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है और इस बात का प्रमाण उपस्थित करती है कि हिन्दुओं ने मुसलमानों की कथाओं को अथवा मुसलमान नायकों को लेकर अपनी रचनाएँ भी की हैं। प्रस्तुत रचना की भाषा के विषय में पिछले अध्याय में कहा जा चुका है। इसलिए उसी बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

वात सायणी चारणी री

रचयिता ......
रचना काल ...
लिपिकाल ...

कवि परिचय

कवि का जीवनवृत अज्ञात है।

प्रस्तुत वार्ता राजस्थानी के प्राचीन काव्यों में से एक है जो लोकगीतों और लोक-गाथाओं का आधार बनती चली आयी है। इसकी रचना कब हुई? इसका रचयिता कौन है? कुछ पता नहीं चलता। राजस्थानी भारती भाग १ अंक २...३ जुलाई अक्टूबर सन् १९४६ ई० में प्राचीन राजस्थानी साहित्य शीर्षक की खोज के अन्तर्गत यह प्रकाशित हुई है। संपादक ने टिप्पणी में लिखा है 'सायणी को शक्ति का अवतार माना गया है, कई एक अवतारोचित बातें कहानी में जान पड़ती हैं पीछे जोड़ दी गई है, कुछ और भी परिवर्तन हुआ, फलतः कहानी की कई बातें परस्पर मेल खाती हुई नहीं दीख पडतीं।'

यह सामयिक परिवर्तन ही इस कहानी की प्राचीनता के द्योतक हैं।

कथावस्तु

वेदाचरण बेकरै गांव में रहता है जो कच्छ देश में है। वेदा के पास बड़ा धन है उसके एक पुत्री सायणी है जो महाशक्ति योगमाया का अवतार है। वह शिकार खेलती है, नाहर मारती है, मृग मारती है। वीजाणंद साढ़ाइच चारण माछड़ी गांव में रहता है। जब जङ्गल में मृग उसका अलाप सुनकर चले आते हैं तब मृगों के गले में सोने की माला डाल देता है। राग जब रुकता है तब मृग भाग जाते हैं। जब दूसरे दिन अलाप करता है तब मृग फिर आ जाते हैं तब वह सोने की माला गले में से निकाल लेता है। बीजाणंद के पास चालीस पचास घोड़े थे उन्हें बेचने चला है। उसने छपणय के नाला पर डेरा डाला। सायणी खेलती-खेलती मध्याह्न को तालाब पर पहुँची डेरा

देखकर उसे डेरे वाले को जानने की उत्सुकता हुई। मालूम हुआ कि डेरा बीजाणंद माछड़ी वाले का है। वह बीजाणंद से मिलना ही चाहती थी इसलिए उससे मिलने गई। बीजाणंद उसे अपने डेरे में खाने पीने के लिए ले गया। सायणी ने बीजाणंद से गाना सुनने की इच्छा प्रकट की। कई गाने सुनने के उपरान्त उसने मलार सुनने की इच्छा प्रकट की। बीजाणद ने मलार गाया पानी की वर्षा होने लगी। इस पर प्रसन्न होकर बीजाणंद से सायणी ने मनोच्छित वस्तु मांगने को कहा। बीजाणंद ने उससे विवाह की इच्छा प्रकट की। सायणी ने उसे मना किया द्रव्यादि मागने को कहा किन्तु वह न माना। सायणी ने कहा अच्छी बात है पर अगर तुम भीख न मांगो वरन् एक ही सर्दार के यहाँ से सवा सवा करोड के सात गहने छः महीने में ले आओ ता मैं तुमसे विवाह करूंगी। बीजाणद ने उसकी शर्त मान ली फिर महाजनों सरदारों आ.द को बुलवाकर एक पीलू के पेड़ के सामने सौगन्ध खाई कि अगर मैं छः महीने में सायणी की बात न पूरी कर सका तो सायणी अपने वचन से मुक्त हो जायेगी।

बीजाणद ईडर, चन्पारेन, कच्छ आदि सब जगह घूमा किन्तु उसकी मांग पूरी न हुई। गिरनार गढ़ के राजा मंडलीक ने बताया कि भोजराज का पुत्र सुदगल राज जल प्रदेश: (जल से घिरे स्थान) का राजा है। उसके पास अपार धन राशि है। उससे मागो तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। कांकड़े द्वीप तक पहुँचने के दो मार्ग हैं। एक छः महीने का दूसरा डेढ़ महीने का। डेढ़ महीने वाला रास्ता दुस्तर है जहाज टूट जाते हैं मगर आदि लोगों को निगल जाते हैं। बीजाणंद ने डेढ़ महीने के ही रास्ते से जाना पसन्द किया और जहाज पर बैठ कर चल दिया। रास्ता सुगमता से बीता और वह सवा महीने में ही वहां जा पहुँचा।

वह भोजराज के पुत्र भूगल के दरबार में पहुँचा उसके प्रधान मन्त्री से मिला। मन्त्री ने आदर सत्कार किया किन्तु बताया कि राजा तो एक महीने में केवल एक दिन रनिवास से बाहर निकलता है और नया विवाह कर फिर लौट जाता है। कोई रंग महल में जा नहीं सकता। कल वह बाहर था अब तो महीने भर बाद ही मिल सकोगे। किन्तु बीजाणंद ने जिद्द की। मन्त्री ने बहुत समझाया किन्तु वह न माना। सायणी के लिए वह मरने को भी तत्पर हो गया।

भूगल के महल में दस ड्योढ़ियाँ हैं। नौ ड्योढ़ियों पर तो पुरुष चौकीदार बैठते हैं। दसवीं ड्योढ़ी पर स्त्रियाँ बैठती हैं। नौ ड्योढ़ियों को पार कर बीजाणंद दसवीं पर नट के वेश में पहुँचा। भूगल ने उसे मारने के लिए कमान उठायी पर मारा नहीं। पूछा कौन है। उसने उत्तर दिया कि मैं इन्द्र का नट हूँ।

वहां बताया गया है कि भोजराज के पुत्र का अखाड़ा इन्द्रपुरी से भी अच्छा है उसे ही देखने आया हूँ।

भूगल ने बीजाणंद चारण को पहचान लिया। आदर के साथ बैठाया। चार-पाँच दिनो के बाद वह नौ करोड़ का गहना लेकर लौटा। किन्तु छः महीने पूरे हो गए। सायणी बीजाणद के गाँव को पहुँची लोगों को बुलाया और पीलू के पेड़ के सामने खड़े होकर कहा कि बीजाणद नहीं लौटा। अवधि पूरी हो गई। अब मैं हिमालय पर जाकर गलूंगी। दूसरे दिन बीजाणंद पहुँचा उसे सारी बाते ज्ञात हुई पीलू के पेड़ के नीचे सारे गहने पहना कर वह भी हिमालय की ओर चल दिया।

सायणी मूछाले—बड़ी मूछों वाले—मालदेव के यहाँ ठहरी। अलाउद्दीन दिल्ली में राज्य कर रहा था। मालदेव उसी के यहाँ नौकरी करता था। राजा के यहाँ मुजरा था। किन्तु सर्दार वहाँ नहीं गया। दूसरे दिन बादशाह ने न आने का कारण पूछा। सर्दार ने उत्तर दिया कि हमारे यहाँ देव आए थे इसीलिए नहीं आया। बादशाह ने पूछा तुम्हारा देव जिलाता है कि मारता है। उत्तर मिला कि वह जिलाता है। बादशाह ने सायणी को बुलाया कहा कि मरे को जिलाएगी। सायणी ने उत्तर दिया हाँ बादशाह ने अपने घोडे को सांप से कटवा कर मार डाला। सायणी ने जिला दिया। इस पर बादशाह ने उसे डायन बताया और दिल्ली के भूगर्भ में बैठने को कहा। सायणी ने सर्दार के साथ भूगर्भ में प्रवेश किया। दोनो पाताल में पहुँचे। सांपों ने बैठने को दिया। सांपों ने अपने रस से भर कर प्याला दिया। सायणी ने सर्दार को दिया। उसने डर से ओठों से लगाया आंख बचाकर बाकी गिरा दिया। ओठों से लगने के कारण सर्दार के बड़ी बड़ी मूछे निकल आई जो पहले नहीं थी।

इधर अलाउद्दीन ने भूगर्भ का द्वार चुनवा दिया। सायणी ने हाथ से उस भित्त को छुवा और वह दूर जा गिरी। फिर क्रुद्ध होकर अलाउद्दीन को शाप दिया कि पठानों का राज्य नष्ट हो जाएगा।

तदुपरान्त वह हिमालय पर जाकर गल गयी। बीजाणंद भी वहीं जाकर गल गया।

प्रस्तुर रचना गद्य में होने के कारण बड़ी महत्वपूर्ण है। संस्कृत भाषा में प्रेमाख्यान गद्य और पद्य दोनों में लिखे जाते थे। बाण भट्ट की कादम्बरी गद्य में है। प्रस्तुत रचना गद्य में प्राप्त होती है। यह रचना इस बात का प्रमाण है कि गद्य और पद्यबद्ध प्रेमाख्यानों की जो परम्परा संस्कृत साहित्य में थी वही

हिन्दी में परम्परानुकूल अपनाई गई। प्राकृत और अपभ्रंश में गद्य के प्रेमाख्यान सम्भवतः लिखे गये होंगे किन्तु अभी वे अप्राप्य हैं।

अस्तु इस रचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रेमाख्यानों की यह परम्परा मुसलमानों अथवा किसी विदेशी साहित्य के प्रभाव के कारण हिन्दी में नहीं है, वरन् यह परम्परा भारतीय है, जिसे हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमानों ने अपनाया था।

राजस्थानी गद्य के कुछ उद्धरण निम्नलिखित हैं—

'आगे पाताल गया। आगे साप वैसण दिया। अरि प्यालो भरि भरि एक सोनरी दियो। तिये सापांस्यां, आंख्यां, सापास्यां, जीभां, सांपरी लिपली अर रस कढि कढि अर प्याले भरी जेछे।...

कह्यो जी, माहरे तो बांसे घड़ी जावे छै स् बरस बरावर जावे छै। बैठो कुल रहे। कह्यो तूं कांसूं करीस। कह्यो जी गोनूं, राजा नूं मेली। कह्यो बीजाणंद। मरियो जायीसू, कह्यो जी, मरूं तो सायणी निमित्त।

—:०:—

नल दमयन्ती की कथा

—रचयिता - अज्ञात
—रचनाकाल— सं० १६११ के पूर्व
—लिपिकाल—१६११

कवि-परिचय

कवि का जीवन-वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

निखद देश के राजा बीरसेन के पुत्र नल रूप और गुण में अद्वितीय थे। उनका नाम देश-देशान्तर में प्रसरित था। विदर्भ देश के राजा भीमसेन को दमन नामक ऋषिराज की कृपा से एक सुन्दर बालिका का जन्म हुआ था जो रूप और गुण में उस समय की स्त्रियों में अद्वितीय थी। पूर्ण यौवना होने पर सखियों के बीच बैठे हुए उसने एक दिन नल के गुण का श्रवण किया और उन पर आसक्त हो गई। चारणों से नल ने भी दमयन्ती के अद्वितीय सौन्दर्य का परिचय प्राप्त किया और मोहित हो गए। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के प्रेम में व्याकुल रहने लगे। एक दिन मृगया के लिए गए हुए राजा नल ने सरोवर में एक सुन्दर हंस को देखा और पकड़ लिए। हंस विलाप करने लगा उसने राजा से प्रार्थना की और बताया कि उसके माता पिता का देहान्त हो चुका है। पत्नी और बच्चे उसके वियोग में भूखों मर जाएंगे। नल ने उसे छोड़ दिया। इस पर हंस ने राजा की सहायता की प्रशंसा की और दमयन्ती तक उनका संदेश ले जाने को तत्पर हो गया।

सरोवर में नहाती हुई दमयन्ती के पास पहुँचकर उसने नल का सदेश कहा और प्रेम का प्रत्युतर नल को देकर अपने स्थान को चला गया।

सखियों ने राजा से दमयन्ती की दशा बताई इस पर उन्होंने स्वयंवर की घोषणा कर दी। नल स्वयंवर के लिए चले, नारद के कहने पर अग्नि, यम, इन्द्र और वरुण भी चले। नल से इन देवताओं ने दमयन्ती के पास अपना

प्रेम सदेश भिजवाया। दमयन्ती ने अस्वीकृति दे दी और नल को ही चुनने का वचन दिया। नल से सारी बातें मालूम होने पर इन देवताओं ने नल का रूप धारण कर लिया। आश्चर्य चकित दमयन्ती को आकाशवाणी से वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। विवाह के उपरान्त, कलि ने इन्द्र से सारी बात जानकर बदला लेने के लिए सोचा। बहुत दिनों तक इन्तजार करने के बाद एक दिन जब नल आखेट में पानी न मिल सकने के कारण अशौचावस्था में ही सन्ध्या करने लगे तब कलि उनमें प्रवेश कर गया। जिसके फलस्वरूप उन्होंने पुष्कर से जुआ खेला और सब कुछ हार कर उन्हें बनों में भटकना पडा। दमयन्ती के कष्ट को न देख सकने के कारण उन्होंने उसे सोती हुई जगल में छोड़ दिया। दमयन्ती नाना कष्ट सहती हुई चित्तोर पहुँची वहाँ से वह अपने पिता के घर गई। इधर नल ने अयोध्या में राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथी पद पर नौकरी कर ली। दमयन्ती के दूसरे स्वयंवर की घोषणा पर नल निषध देश पहुँचे। वहीं दमयन्ती ने उनके खाना बनाने आदि की परीक्षा ली और दोनों का मिलन हुआ। इसके बाद नल ने पुष्कर को हराकर पुनः राजा प्राप्त किया।

प्रस्तुत रचना के पात्रों के संवाद पौराणिक शैली में मिलते हैं। मङ्गलाचरण के उपरान्त कवि कहता है कि सीता जी के वियोग में घूमते हुए एक दिन रामचन्द्र जी 'अवरषण' बन में श्री वृहदस्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि ने उनका स्वागत किया और बैठने को आसन दिया। रामचन्द्र जी ने ऋषि का कुशल समाचार पूछा। रामचन्द्र जी को सीता के वियोग में कातर देखकर ऋषि ने उत्तर दिया कि महाराज आप इतने दुखी क्यों होते हैं। महाराज नल ने अपनी पत्नी के वियोग में तो बहुत अधिक कष्ट सहे हैं। इस पर रामचन्द्र जी ने नल की कहानी सुनने की अभिलाषा प्रकट की और ऋषि ने उन्हें कथा सुनाई।

प्रस्तुत रचना एक वर्णनात्मक काव्य है किन्तु बीच-बीच में भावव्यञ्जना के सरस स्थल भी मिलते है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

रूप सौन्दर्य और नख-शिख वर्णन में कवि ने दमयन्ती के सौन्दर्य के प्रति अधिकतर परम्परागत उपमानों- उत्प्रेक्षाओं का ही आयोजन किया है जैसे उसकी नाक तोते की टोंट के समान, या 'शंख के समान और नितम्ब नगाड़ों के समान थे —

लई नाक ने छीन सोभा सुश्रा की।
कपोले दुश्रो श्रोप लीनी सुधा की।
चिबु की प्रभा काम क्यारी बनी ती।
तहा कंबु सी ग्रीव सोभा घनी ती।
कुच द्वै बने कोक के से खिलौना।
तहां रोम राजि मनौ सर्प छौना।
कहो पेट की चारुता की सफाई।
जनौ काम ने आसनी सी बिछाई।
वनी नाभि कैसी जनौ कूप सोभा।
जहां ते उठै रूप के चारु गोभा।
नितम्ब हुए काम के से नगारे।
भली भाँति सो जा सयंभू सम्हारे॥

इन परम्परागत उपमानों के द्वारा भावाभिव्यक्ति कहीं-कहीं बड़ी अनूठी बन पड़ी है जैसे एक स्थान पर दमयन्ती की कटि की क्षीणता और उसी प्रदेश पर पड़ी हुई सिकुड़नों तथा रोमावलि से सम्बन्धित खैर की छरी (कत्थे की डली) तथा रस्सी का अप्रस्तुत विधान उर्दू की नाजुक ख्यालों के साथ-साथ कवि की कल्पना शक्ति और दूर की कौड़ी लाने का परिचायक है।

लंक निहार ससंक भए कवि, को बनैं मति ते अधिकाई।
बार सितार को तार कहौं, पुनि होत लखे पर न देत दिखाई।
खैर छरी त्रिवली गुण लाय कै, मैन महीप सो हाथ बनाई।
ब्रह्म की लीख सी देखि परे, नृप है और देति है नाहि दिखाई।

राजा नल के बाह्य रूप के साथ-साथ कवि ने उनके व्यक्तित्व का भी चित्र अङ्कित किया है। जैसे—

गुन कौ गनेस जैसे धन को धनेस,
दूजो बानी-को विमल सुरगुरु सो सयानो है।
कामना को काम कामतरु की सी बानि ऐसी,
सील को समुद्र सबको समानो है॥

अथवा

लोक बनाय प्रजापति जू निज चतुरता देखिवे कौ बिचारो,
चित कै खैंचि करो इकठां नल राज को गात बनाय सम्हारो।
चन्द कलंकि मन्द भयो अरबिंद विचारो महातप ध
देखि कै काम भयो जरि छार सो कोई कहै कि सदा सि।

संयोग-पक्ष

धार्मिक-प्रवृत्ति से प्रेरित होने के कारण कवि ने प्रेम के सयोग पक्ष में केलि, भोग अथवा हाव आदि का संयोजन नही किया है। इस कारण इसमें अन्य काव्यों की तरह सम्भोग शृङ्गार के वर्णन नहीं होते।

विप्रलंभ-शृंगार

वियोग-पक्ष की कतिपय अवस्थाओं के विषय मनोहारी और हृदयग्राही बन पड़े हैं जैसे—वन में भटकती हुई दमयन्ती की अस्तव्यस्त अवस्था का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उसके बाल बिखर गए थे वक्षस्थल खुल गया था और वह विलाप करती हुई इधर उधर भटकती फिरती थी।

मन भावनी यो बिलखाती चली कच छूटि गए उघरी छतिया।
बिल पै वन मांहि जहां जन नाहि तजी फिरै नाह अजानतियां॥

अथवा

छुटो दृग नीर धरै नहि धीर, बढ़ी उर पीर दुखै टरिबे है।
कहा अब नाथ, तजो तिय साथ, विवाहों तुम्हें तुमही भरिबे है।

ऐसे ही अपने पिता के घर पहुँचने के उपरान्त उसे चैन नहीं पडती और चांदनी रात्रि में बेचैन होकर वही अपनी सखी से कहती है कि सखी इस चन्द्रमा से पूंछ कि तुझे तो ब्रह्मा ने शीतलता से गढ़ा था फिर तूने यह दूसरों को दग्ध करने का पाठ कहां से पढ़ा है। तूने यह शंभु के गले में लिपटे हुए विषधरों से अपकीर्ति का पाठ पढ़ा है या तू इसे बड़वानल से सीख कर आया है।

पूछ सखी विधु सैं जह बात तू सीतलता सौं बनाय मढ़ो है।
पै जह जारिबे की गात को कहु कौन गुरु सों कहाँ ते पढ़ो है।
संभु गले विप सों सिषि कै अपकीरति कालिमा पाप पढ़ो है।
कै बड़वानल तै सिषि कै धिक छीर पयाधिते पूछि पढ़ो है॥

भाषा

इस काव्य की भाषा सरल और परिमार्जित ब्रज भाषा है वह भाव के साथ चपल और गम्भीर होती चलती है। नल को सामने देखकर दमयन्ती की भावशबलता का चित्र भाषा के प्रवाह में बड़ा अनूठा बन पड़ा है।

लखे भूप को राज कन्या लुभानी,
बकी सी जकी सी थकी सी भुलानी।

जनौ भूप ने जाय डारी ठगौरी,
लखै रूप सोभा भई जाय बौरी ॥

ऐसे ही दमयन्ती को स्वयम्वर में आई देखकर उपस्थित राजाओं की मनोदशाओं और दमयन्ती को आकृष्ट करने के लिये उनकी चेष्टाओं का चित्र भी सुन्दर और मनोवैज्ञानिक बन पड़ा है।

कोई मूँछ पै हाथ फेरै मुछारे। कोई पास के पेंच छूटी सम्हारे।
कोई भूप देखे बड़ी आरसी कौ। कोई हीर बारी लखै बाँसुरी कौ।
कोई चित्र की पूतरी को निहारै। कोई दीठि बाँकी चहूँ धा घुमावै।

भाषा का प्रवाह और शब्दयोजना का एक उदाहरण भी देखिए। नल के सन्देश पर झुँझला कर दमयन्ती अपने मनोभावों को रोक न सकने के कारण बड़ी तेजी से कहती है—

सब सौं लरौंगी कानि कुल की करौंगी,
मातु पितु सौं दुरौंगी, करि केतिक जंजाल कौ।
आगि में जरौंगी विष खाई के मरौंगी,
या नलै बरौंगी, या बरौंगी दगपाल कौ।

ऐसे ही नल की सेना के चलने के प्रभाव को कवि ने बड़ी ओज पूर्ण भाषा में व्यक्त किया है।

'धनु औ निषंग नल सज्ज चतुरङ्ग चूम,
पुहुकर की फौज के पहार लुनियत हैं।
वज्ज न पटह धीर गज्जन गयंद बीर,
तेज की फतूह अरिजूह भुनियत हैं।
हल सो दबकि धरा धखि धरातल लौं,
और ईस सेसके सीस धुनियत हैं।
गुर्दा सी उड़ी जाति पुहुमि खुंथारन' सौं,
कच्छप की पीठ पै खड़ाके सुनियत हैं॥

छन्द

कवि ने दोहा-चौपाई के अतिरिक्त कुण्डलियाँ, सोरठा, सवइया आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि इस रचना में धार्मिक प्रवृत्ति प्रधान रूप में परिलक्षित होती है। इस कारण कुछ रहस्यमयी उक्तियाँ एवं आध्यात्मिक तत्वों के संकेत भी बीच-बीच में मिलते हैं। जैसे—स्वयम्वर में आई

हुई दमयन्ती पाँच नलों को देखकर अचम्भित हो जाती है। अपने वचन और धर्म को संकट में देखकर वह ईश्वर से वन्दना करती है इस वन्दना में भक्ति की भगवान के प्रति स्तुति और याचना का पूर्ण रूप निखर उठा है। यह धार्मिक विश्वास है कि तर्क से भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। उसे विनती और प्रार्थना से एवं उसकी शक्ति पर विश्वास से पाया जा सकता है। इसी भावना का परिचय हमें निम्नांकित पंक्तियों में मिलता है।

'नलौ पाँच आगे खड़े यों विचारी। लखै तर्क कैकै नहीं भेद पावै।'

अस्तु वह अपनी परेशानी अपनी सखियों पर प्रकट करती है। सखियों ने उत्तर दिया कि देवता सदैव सत्य की रक्षा करने वाले हैं। उनकी वन्दना करो वे तुम्हारे कष्ट दूर करेंगे।

चहूँ सो करौ अँजुली बोध विनती, कहौ बात अपनी सॉची अघिती।
सदा देवता सत्य के हैं पिआरे, करेंगे कृपा काम हयौ है तिहारे।

अस्तु उसने उनकी विनती की और उनसे क्षमा याचना करते हुए अपने धर्म की रक्षा का वरदान माँगा। इसलिये कि भारतीय ललना केवल एक बार ही अपने पति का मनसा वाचा कर्मणा वरण करती है। दूसरे को भूल से भी अपना समझने में उसे पाप लगता है। अस्तु वह कहती है—

जबै आपने दूत नाहीं पठायो, तबै हंस पंछी इहाँ एक आयो।
करी आई वानै नलै की बड़ाई, तहाँ हौ सुनी जू महा मोद छाई।
करी मैं प्रतिज्ञा नलै देह दीनी, करौ नाथ विनती नहीं और चिन्हीं।
करौ जौ दया तो रहै धर्म मेरो, लगो चारिहूँ सों हमारो निबेरो।

इस विनती में एक भक्त की भावना के दर्शन के साथ-साथ भारतीय आदर्श नारी का चित्र भी अंकित किया गया है। अस्तु भाषा, भाव तथा घटना के संविधान और छंद की दृष्टि से यह एक सुन्दर काव्य कहा जा सकता है।

प्रेम पयोनिधि

कवि-परिचय

मृगेन्द्र कृत

रचनाकाल सं० १९१२

कवि का जीवन-वृत्ति अज्ञात है। इन्होंने स्वपरिचय में कुछ नहीं लिखा है। केवल इतना पता चल सका है कि ये सिख संप्रदाय के थे और गुरु गोविन्द सिंह के अनन्य भक्त थे।

कथावस्तु

एक सुन्दर नगर में प्रभाकर नाम के राजा राज्य करते थे। वह बड़े धर्मात्मा और प्रजापालक थे किन्तु निःसंतान होने के कारण बड़े दुखी रहा करते थे। ईश्वर की वन्दना और परम भक्ति के प्रताप से उन्हें एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। राजा और प्रजा ने बड़ा हर्ष मनाया, पण्डित, ज्योतिषी आदि राजकुमार की ग्रह-दशा देखने के हेतु बुलाए गए। ज्योतिषियों ने बताया कि राजकुमार जगत-प्रभाकर बड़ा यशस्वी एवं भाग्यशाली युवक होगा किन्तु पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इसकी ग्रहदशा ठीक नहीं है। इस अवस्था के पहुँचते ही यह प्रेम की पीड़ा से व्याकुल होगा और घर तथा राज्य छोड़ कर निकल जाएगा। रास्ते में इसे बड़ी कठिनाइयां और दुख उठाने पड़ेंगे अन्त में तीन विवाह के उपरान्त घर लौट आयेगा।

पिता ने पुत्र के लिए शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया और तेरह वर्ष की अवस्था में कुमार सभी विषयों में दक्ष हो गया। राजा ने पुत्र को गृहत्याग और विरक्ति से बचाने के लिए उसका विवाह चौदह वर्ष की अवस्था में परम रूपवती कुमारी चन्द्रप्रभा से कर दिया। चन्द्रप्रभा और जगतप्रभाकर बड़े आनन्द से अपना जीवन बिताते थे और साथ-साथ आखेट एवं घूमने के लिए जाया करते थे। एक दिन नगर की सड़कों पर घूमते हुए दोनों 'गुदड़ी' बाजार जा पहुँचे। इस बाजार के एक कोने पर बहुत बड़ी भीड़ देखकर कुमार भी कारण जानने की लालसा से वहाँ पहुँचा। उसने देखा कि एक ब्राह्मण बड़ा सुन्दर 'तोता'

बेचने आया है। वह तोता जितना सुन्दर था, उतना ही ज्ञानी था। तोते के मुख से श्रुति और स्मृति के श्लोक तथा कवित्त आदि सुनकर कुमार बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने तोते का अच्छा मूल्य देकर मोल ले लिया।

राजकुमार तोते से बडा प्रेम करता था और एक सुन्दर पिंजड़े में उसे अपने शयनगृह में रखता था। एक दिन कुमार बाहर गया था। चन्द्रप्रभा ने स्नान किया और फिर सोलहो शृंगार कर दर्पण के सामने खड़ी हुई। अपने रूप को देख कर वह स्वयं मोहित हो गई अपनी चेरियों से भी उसने अपने रूप के विषय में पूँछा। चेरियों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की। चन्द्रप्रभा का मन प्रशंसा से न भरा और वह गर्व से भर कर तोते के सामने पहुँची तथा पूँछा 'कि क्या तुमने मुझ सी सुन्दरी कहीं देखी।' तोता इस प्रश्न पर मौन रहा। इस पर चन्द्रप्रभा ने क्रुद्ध होकर दुबारा प्रश्न किया। तोते ने तब बड़ी विनम्रता से चन्द्रप्रभा को समझाया कि 'मनुष्य को कभी गर्व न करना चाहिए। गर्व के कारण ही रावण जैसा प्रतापी राजा नष्ट हो गया ब्रह्मा का गर्व भी खर्व हुआ फिर तुम्हारा क्या'। इस उत्तर को सुनकर चन्द्रप्रभा बड़ी क्रुद्ध हुई। उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गए ओठ फड़फड़ाने लगे। इतने में कुमार वहाँ आ पहुँचा। चन्द्रप्रभा को क्रुद्ध देखकर उसने इस क्रोध का कारण पूछा किन्तु चन्द्रप्रभा कुछ न बोली। तोते ने राजकुमार के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि चन्द्रप्रभा को अपने रूप पर बड़ा गर्व है इन्होंने मुझसे पूछा था कि क्या तुमने मुझसी सुन्दरी संसार में देखी है।' मैंने इन्हें बताया कि मनुष्य को कभी गर्व न करना चाहिए 'इस पर यह क्रुद्ध हो गई हैं। 'भावी बड़ी बलवान होती है मेरा इसमें कोई दोष नहीं।' हे राजकुमार मैं तुम्हारे सामने कहता हूँ कि उत्तर देश में कंकनपुर एक बड़ा सुन्दर नगर है। जहाँ पहुँचने में एक वर्ष लगेगा। उस नगर की राजकुमारी 'ससिकला' के सौन्दर्य की समता संसार की कोई भी नारी नहीं कर सकती। और चन्द्रप्रभा तो उसके सामने नितान्त हेय दिखायी पड़ेगी। इतना सुनते ही चन्द्रप्रभा पिंजड़े को उठाकर बाहर चली गई किन्तु कुमार ससिकला के प्रेम में विह्वल हो उठा।

उस दिन से कुमार का मन उचटा रहने लगा, अन्दर ही अन्दर वह ससिकला के प्रेम में घुटने लगा अन्त में उससे न रहा गया और एक दिन वह तोते के पास पहुँचा तथा उससे ससिकला को दिखाने की विनती करने लगा।

तोते ने कुमार को प्रेमपथ पर पग रखने के लिए मना किया और समझाया कि इस पथ की कठिनाइयों को तुम सहन न कर सकोगे उसने प्रेम की व्यथा के कितने ही रोमाञ्चकारी चित्र अंकित किए किन्तु कुमार अपने विचार

पर दृढ़ रहा। अस्तु तोता कुमार का पथ प्रदर्शन करने के लिये सहमत हो गया और दूसरे दिन ससैन्य कुमार ने कनकपुर की ओर तोते के साथ प्रस्थान किया।

तीन दिन के उपरान्त यह लोग एक सुन्दर वन में पहुँचे। मृगों को देख कर कुमार को आखेट की सूझी और उसने अपना घोड़ा एक मृग के पीछे डाल दिया। मृग के पीछे दौड़ते-दौड़ते शाम हो गई कुमार अपने साथियों से बिछुड़ गया। मृग भी कहीं अन्तर्ध्यान हो गया। प्यास से व्याकुल कुमार को एक झोपड़ी दिखाई पड़ी वह वहाँ पहुँचा। उसमें एक वृद्ध संन्यासी ध्यानस्थ था। कुमार के पास पहुचने पर उसने आँख खोली तथा उसका परिचय और आने का कारण पूछा। कुमार ने सारी घटना बताई और अपने हृदय की व्याकुलता को भी सन्यासी को बताया। कुमार के हृदय में सच्चे प्रेम का अनुभव कर संन्यासी ने उससे आँख मिलाने को कहा। संन्यासी से आँख मिलते ही कुमार ने उसके नेत्रों में कनकपुर, राजघराना, एवं राजकुमारी ससिकला को देखा। कुमारी के सौन्दर्य को देखते ही कुमार मूछित होकर गिर पड़ा। होश आने पर कुमार ने अपने को जगल के उसी भाग में पाया जहाँ से वह चला था किन्तु उसके साथी वहाँ न मिले। वह वहीं एक पेड़ के नीचे सो गया।

दूसरे दिन कुमार अकेला ही कनकपुर की ओर चला। गर्मी से व्याकुल होकर वह एक सरोवर के तट पर पानी पीने की इच्छा से पहुँचा। जल पीने के लिये ज्योंही वह झुका त्यों ही उसे ससिकला का सुन्दर मुख जल के भीतर दिखाई पड़ा। वह अपनी सुध-बुध खोकर कुमार सरोवर में कूद पड़ा।

सरोवर में प्रवेश करते ही कुमार बड़ी तीव्र गति से नीचे की ओर खिचने लगा। थोड़ी देर के उपरान्त उसके पैर भूमि पर टिके किन्तु सरोवर के स्थान पर उसने अपने को एक सुन्दर फुलवारी में पाया। उस फुलवारी में एक सुन्दर महल बना था। कुमार जिज्ञासावश महल की ओर बढ़ा। सामने उसने परम रूपवती स्त्रियों की एक टोली देखी जिसके मध्य में एक सुन्दरी मणिजटित सिंहासन पर बैठी थी। कुमार के सौन्दर्य को देखकर इस नारी की चेरियाँ बड़ी अचम्भित हुईं। उन्होंने अपनी स्वामिनी से उसका रूप वर्णन किया। सुन्दरी सुन कर प्रसन्न हुई। इतने में कुमार उसके पास आ पहुँचा।

सुन्दरी ने कुमार का स्वागत किया और उसे अपने पास सिंहासन पर स्थान दिया। कुमार के लिये नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन मँगाकर उस सुन्दरी ने कुमार की क्षुधा शान्त की और उसे अपने साथ महल में ले गई। वहाँ उसने कुमार को बताया कि वह जादूगर महिपाल की पुत्री है। उसने यह भी बताया

कि वह बहुत दिनों से उस पर आसक्त है। और उसकी राह देखा करती थी। कुमार ने अपनी विरह दशा बताते हुए ससिकला के प्रति अनुराग प्रकट किया। उस सुन्दरी ने कुमार से एक दिन रुकने की विनती की। कुमार रुक गया। दूसरे दिन वह चलने के लिए प्रस्तुत हुआ किन्तु महिपालसुता ने उसे रोका। किसी प्रकार कुमार को रुकते न देख कर क्रुद्ध होकर महिपाल-सुता ने कनकपुर और उसकी राजकुमारी को मन्त्र से भस्म कर देने की धमकी दी। इस डर से कुमार वहीं रुक गया। महिपालसुता नित्य प्रातःकाल अपने पिता के दरबार में जाया करती थी और रात में लौटती थी। एक दिन जाते समय उसने कुमार से कहा कि तुम्हारा मन अकेले उकताया रहता होगा। इसलिए बाहर घूम आया करो। तुम्हें किसी मन्त्र-तन्त्र का भय न रहे इसलिए यह गुटका लो जो सदैव तुम्हारी रक्षा करती रहेगी। गुटका पाने के बाद कुमार दूसरे दिन चलने का उद्यत हुआ। महिपालसुता ने कुमार को रोकने का प्रयत्न किया किन्तु गुटका क कारण उसका कोई भी मन्त्र काम न आया। कुमार वहाँ से चल कर धरमपुर नगर पहुँचा। इस नगर में उसकी भेंट राज-कुमारी सूरजप्रभा से हुई। सूरजप्रभा कुमार के रूप पर आसक्त हो गई और वह उसे अपने महल में ले गई। ससिकला के प्रति कुमार ने अपने प्रेम का प्रदर्शन किया। राजकुमारी सूरजप्रभा के बहुत विनती करने पर कुमार वहाँ रुका लेकिन दूसरे दिन वह कनकपुर की ओर चल दिया। चौदह दिन के उपरान्त वह कनकपुर पहुँचा और वहाँ के राजा से मिला। कनकपुर में उसे ज्ञात हुआ कि कुमारी ससिकला को कुछ लोग मंत्र बल से उठा ले गये हैं। उसे छुड़ाने का कुमार ने प्रयत्न किया और उसमें सफल भी हुआ। इस प्रकार दोनों मिले और राजा ने दोनों का विवाह कर दिया। कुछ दिन कनकपुर में रहने के उपरान्त कुमार घर को ओर लौटा। रास्ते में उसने सूरजप्रभा को भी साथ ले लिया। सूरजप्रभा के यहाँ से जब वह लौट रहा था तब रास्ते में उसकी भेंट मंत्रीसुत से हुई। मंत्रीसुत दोनों राजकुमारियों को देख कर मोहित हो गया और उन्हें पाने की अभिलाषा से षड्यंत्र की योजना बनाने लगा। एक दिन दोनों मित्र घूमने निकले मार्ग में उन्हे एक मृतक बन्दर का शरीर मिला। कुमार ने अपने मंत्र बल को प्रदर्शित करने के लिए अपना शरीर छोड़ कर इस मृतक बन्दर के शरीर में प्रवेश किया। अवसर अच्छा देखकर मंत्री सुत कुमार के शरीर में प्रवेश कर गया और अपने शरीर को तलवार से काट डाला। छद्मवेशी मन्त्रीसुत इस प्रकार कुमार के रूप में रानियों के पास पहुँचा लेकिन आत्मिक बल न होने के कारण वह उससे कुछ कह न

पाता था। उसकी चेष्टाओं में सूरजप्रभा को कुछ शक हुआ और दोनों उससे सतर्क रहने लगीं। बन्दर के शरीर में कुमार इधर-उधर भटकता फिरता था एक दिन एक बहेलिये ने उसे पकड़ लिया और बाजार में बेचने गया। बन्दर की असाधारण बुद्धि पर लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था। मन्त्रीसुत को जब इस बन्दर का पता लगा तो वह सोचने लगा कि कहीं वह कुमार ही न हो इसलिए उसने उस बहेलिये को बुलवाया। उस बहेलिये की स्त्री से कुमार ने बड़ी प्रार्थना की और कहा कि वह किसी भी प्रकार उसे राजकुमार के पास न जाने दे। सूरजप्रभा को भी इस बन्दर का पता लगा और वह उसे देखने गई। कुमार ने सूरजप्रभा को पहचाना। और संकेत से अपना परिचय दिया। सूरजप्रभा सब कुछ समझ गई। दूसरे दिन वह एक मृत तोते को लेकर वहाँ पहुँची कपि रूपी कुमार ने अपना शरीर त्याग किया और तोते के शरीर में प्रवेश कर गया। तोते को लेकर सूरजप्रभा घर पहुँची तथा उसी दिन से वह कुमार रूपी मंत्रीसुत का आदर करने लगी। एक दिन जब मन्त्रीसुत वहाँ बैठा था वह तोते को वहाँ ले आई, तोते ने मन्त्रीसुत को अपना परिचय दिया। इसे सुनते ही वह डर से काँप उठा। सूरजप्रभा ने मन्त्र बल से मन्त्रीसुत के प्राण निकाल दिए और कुमार अपने शरीर में प्रवेश कर गया। आनन्द से कुमार और दोनों रानियों ने अपने नगर की ओर प्रयाण किया। रास्ते में महिपालसुता का नगर मिला। अपनी पुत्री के अपमान पर महिपाल बड़ा क्रुद्ध था इसलिए उसने कुमार का मार्गावरोधन किया। कुमार और महिपाल में भयंकर युद्ध हुआ महिपाल हारा यहीं कुमार को चन्द्रप्रभा का भेजा एक तोता मिला जिसने चन्द्र-प्रभा का विरह-संदेश कुमार को दिया उसे सुनकर कुमार ने चलने की तैयारी की। जहाज पर चढ़कर जब ये लोग अपने घर आ रहे थे तब समुद्र में भयंकर तूफान आने के कारण जहाज टूट-फूट गए और कुमार तथा रानियाँ अलग-अलग जा पड़ीं। कुमार के विलाप पर सिन्धुपुरुष ने प्रकट होकर उसको सांत्वना दी तथा यक्षराज की सहायता से दोनों रानियों को ढूंढ़ कर कुमार को सौंप दिया। इस प्रकार कुमार अपनी पत्नियों के साथ घर पहुँचा।

इस प्रबन्ध की रचना का कारण बताते हुए कवि ने एक स्थान पर लिखा है कि इसकी रचना दो विचारों से की गई है एक ओर तो कवि 'प्रेम के प्रसंग' को प्रधानता देना चाहता था उसके दिव्य-स्वरूप का अङ्कन करना चाहता था प्रेम की पीर और उसकी कठिनाइयों का वर्णन करना और दूसरी ओर वह जन-साधारण की लोकोत्तर घटनाओं के विश्वास का आश्रय लेकर एक अद्भुत रचना

के द्वारा उनको आनन्द प्रदान करना चाहता था[1]।

उपरोक्त उद्देश्य के कारण ही इसकी कथावस्तु में अन्य प्रबन्धों की अपेक्षा अधिक चमत्कार प्रदर्शन, असाधारण घटना-विधान या लोकोत्तर दृश्यों की योजना की गई है। पाठक के कौतूहल को सजीव रखने के लिए और नायक के चरित्र की दृढ़ता की परीक्षा एवं बुद्धि-कौशल दिखलाने के लिए असाधारण लोकोत्तर तत्व और चमत्कारिकता के प्रदर्शन का इसमें जितना विधान हुआ है उतना अन्य काव्यों में नहीं मिलता, इसमें पग-पग पर तिलिस्म जादू एवं अय्यारी तथा मन्त्र-शक्ति आदि का उल्लेख मिलता है।

इसके अतिरिक्त प्रेम की लोकोत्तर शक्ति, इस मार्ग की कठिनता आदि का वर्णन कथानक के बीच-बीच में आए हुए सवैयों और कवित्तों में किया गया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कवि ने दोहे चौपाई का विधान वस्तुकथन के लिए किया है और जहाँ भावोद्रेक के स्थल आए हैं वहाँ उनकी अभिव्यक्ति के लिए सवैयों और कवित्त छन्द का प्रयोग किया गया है।

काव्य प्रणयन की शैली में कवि ने अपने पूर्व के कवियों की परम्परा का अनुसरण किया है उदाहरणार्थ प्रेम काव्यों की यह एक सामान्य विशेषता रही है कि वे अपने चरित्र नायक को कार्य की ओर उन्मुख करने के लिए नायिका के रूप सौंदर्य का वर्णन किसी विज्ञ तोते या हंस से कराते हैं। होता यह है कि नायक की विवाहिता स्त्री जब सज-धज कर रूपगर्विता नायिका के रूप में उस पक्षी से अपने रूप की प्रशंसा कराना चाहती है तभी वह पक्षी किसी अन्य दूर देश में रहने वाली राजकुमारी के रूप के आगे उसे हीन बताता है। जिसका पता अन्त में राजकुमार को मिलता है और वह अपने घर को छोड़कर उस परम रूपवती को प्राप्त करने के लिए चल पड़ता है। कार्य की गति के बीच-बीच प्रेम-मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन एवं लोकोत्तर घटनाओं का चित्रण किया जाता है। गति के विराम में रस-सिक्त स्थलों का आयोजन करना भी इन प्रेमाख्यानों की परिपाटी रही है।

प्रेम-पयोनिधि का घटना विधान अंशतः इसी परिपाटी का अनुसरण करता

---

१. प्रेम पयोनिधि प्रेम की अद्भुत कथा महान।
कौतुक हित बरनन करौं लख रीझहि गुनमान।
प्रेम प्रसंग प्रधान करि वरनियों राजकुमार।
प्रेम पयोनिधि ग्रंथ को याते नाम सुधार।

है। कथा के संविधान की तरह काव्य के प्रारम्भ में यह कवि सरस्वती, गणेश, अथवा अपने इष्टदेव की स्तुति करते थे, उसके बाद गुरु की बन्दना के उपरान्त अपने को काव्य-गुण से हीन एवं दीन चित्रण किया करते थे। साधारणतः इन प्रबन्धों में प्रबन्ध का सारांश प्रथम तरंग में ही दे दिया जाता था और दूसरे तरंग से कवि मूल कथा का प्रारम्भ करते थे। प्रस्तुत रचना में यह सब बातें पाई जाती है[1]।

मृगेन्द्र ने इस प्रकार कथाबन्ध की रूढ़ि के साथ साथ काव्य प्रणयन की शैली को भी परम्परा के रूप में अपनाया है।

अस्तु इस काव्य के कवित्त और सवैयो में हमें मुक्तक प्रेमकाव्यों की परम्परा मिलती है तो चौपाई और दोहों की शैली में प्रबन्ध काव्यो की, जो हिन्दू प्रेमाख्यानों के कथाबन्ध की परम्परा और काव्य-प्रणयन की परम्परागत शैली से अनुप्राणित है।

प्रबन्ध-तत्व

जगतप्रभाकर और ससिकला की प्रेम कहानी प्रेमपयोनिधि की मूल घटना है किन्तु सूरजप्रभा तथा महिपालसुता के आख्यान आधिकारिक कथा से कम महत्व के नहीं ठहरते। एक नायक जगतप्रभाकर से सम्बन्धित तीन

---

1. 'प्रथम सकल सुत आदि प्रणव, प्रणव प्रणद भवन।
सुमरत परमानंद मंगल संग लगे फिरनहि॥
अच्छर अच्छुत अच्छेद भेद जिहि वेदन पावत।
जग उत पति थिति हेतु नेत नेतहिं करि गावत॥
सवद रूप ह्वै अवद आप पूरन पखरियो।
ओत प्रोत पर चुरियो खेल आपन महिं करियो॥
सुरनर गिरा गनाधिपति जाहि समर मंगल लहति।
वन्दिता त्रिगिंद तिहि बन्द कर प्रणव वरसाधिपति॥'
सोरठा-'पैरत परम सुजान, प्रेम पयोनिधि अपरमित।
तरन चहत अग्यान, मो मति पतित पिपीलका॥'
कवित्त—'प्रेमपयोनिधि के परत पार पेर कौन।
मजनू से मौजी को भजे जग यों मौज सों॥
जिनकी कथान के प्रबन्ध बांध बाढ़े कथित।
कवीन्द्र आज लगे वाही राज सों।
'प्रेमपयोनिधि'

नायिकाओं के चरित्रों के कारण यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि प्रस्तुत रचना में तीन प्रेमाख्यान समानान्तर चलते हैं।

इन तीनों आख्यानों का विकास अलग-अलग हुआ है महिपाल सुता और सूरजप्रभा का प्रेम और संयोग नायिकारब्ध है तो ससिकला और जगत-प्रभाकर का नायकरब्ध।

सम्बन्ध-निर्वाह की दृष्टि से तीनों कथाओं का गुंफन करने में कवि ने बड़ी कुशलता से काम लिया है। महिपाल-सुता के द्वारा प्रेम की परकाष्ठा में प्रदत्त जादू की गुटिका के कारण ही कुमार ससिकला के पास जा सका, और इस जादूगरनी के माया जाल से छुटकारा भी पा सका, एक की भूल दूसरे के लाभ का कारण बन गई। सूरजप्रभा के प्रेम की अनन्यता ने कुमार को ससि-कला की प्राप्ति के बाद, उसे ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया, और इस सम्बन्ध से प्राप्त सेना के द्वारा कुमार 'राजा महिपाल' को युद्ध में परास्त कर सका। अस्तु तीनों कथानक एक दूसरे को कार्य की ओर प्रेरित करने में सहायक दिखाई पड़ते हैं।

कथा के प्रासंगिक रूप में इस रचना की अनेक छोटी-छोटी लोकोत्तर घटनाएँ आती है जैसे तोते की कहानी, जगल में कुमार को ऋषि के मिलने की घटना, सरोवर में ससिकला का प्रतिबिम्ब देखने की बात, महिपाल सुता द्वारा निर्मित अग्नि का परकोटा, समुद्र की दुर्घटना के उपरान्त सिन्धुपुरुष और यक्षराज की सहायता का वृत्तान्त आदि। किन्तु सबसे बड़ी प्रासंगिक कथा मंत्रीसुत की आती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि तीनों प्रेमाख्यान एक दूसरे को कार्य की ओर उन्मुख करने में सहायक हुए हैं अस्तु इन आख्यानों में मिलने वाली छोटी-बड़ी घटनाएँ उसी प्रकार से कथानक की गति को कार्य की ओर मोड़ने में सहायक हुई हैं जिस प्रकार उपरोक्त आख्यान। उदाहरणार्थ, सरोवर में ससिकला के प्रतिबिम्ब को देखकर ही कुमार उसमें कूदा था और इसी घटना के फल-स्वरूप वह महिपालसुता से जादू की गुटिका पा सका, अग्नि के परकोटे के तोड़ने और मृग को मारने के उपरान्त कुमार और ससिकला का प्रथम मिलन सम्भव हो सका। मन्त्रीसुत का विश्वासघात जहाँ एक ओर कथानक के आश्चर्य तत्व को और भी उद्दीप्त करता है वहीं ससिकला और सूरजप्रभा के सतीत्व और उनके चरित्रबल की कसौटी भी उत्पन्न करता है। मन्त्रीसुत का अन्तिम् परिणाम दुश्चरित्र कृतघ्न और विश्वासघाती व्यक्तियों के कुकर्मों का फल कहा जा सकता है।

अस्तु हम यह कह सकते हैं कि सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से यह रचना पूर्ण सफल है।

काव्य-सौन्दर्य

प्रेम-व्यंजना

प्रेम पयोनिधि में संयोग-वियोग का उतना चित्रण नहीं मिलता जितना प्रेम के स्वरूप और इसके पन्थ में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन किया गया है। कवि का कहना है कि प्रेम ही संसार में सार है यही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का दाता है।

'सार विचार जु देखिए, बड़ो प्रेम को नेम।
प्रेमही ते पावत सभै, जगत जोग अरु नेम।
धरम अरथ अरु काम पुनि, मुकति पदारथ चार।
प्रेमहि करि साधित सकल, प्रेम सभन को सार॥'

परमात्मा को पाने के लिये प्रेम ही एक मात्र साधन है जिस प्रकार दीपक के बिना अंधकार नहीं दूर हो सकता उसी प्रकार प्रेम के बिना ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है। जोग, तप, तीर्थ, व्रत स्मृतिपुरान आदि सभी प्रेम के आधीन रहते हैं।

जोग जप तप तीरथ बरत दान,
आसुम वरने वे खखेल से खगे रहे।
सिमृत पुरान सुत सासत सकल सोध,
बोध लै प्रबोध परिपूरन भगे रहे।
मुंडित जटिल ब्रिद रिखि मुनि म्रिगिद,
मारुत अहारी आठौ जाम जे जगे रहे।
साधन के भौर सभै ठौर ठौर थोथर ह्वै,
दौर दौर प्रेम जू के पायन लगे रहे।

प्रेम के द्वारा ही गोप बालाएँ कृष्ण को पा सकीं, सेवरी जैसी अछूत श्री राम को जूठे फल खिला सकी तथा कुबजा जैसी कुरूपा कृष्ण से अपने मन की अभिलाषा पूर्ण करा सकी।

प्रेम की प्रपकता ब्रिज वनितान,
अनत हूँ भोज :भौख ह्वै बना लिए।
चारहुँ पदारथ की भाजन ब्रिजराज जु सों,
मन भाए वातन तौ कुबजा वना लिए।

नीच जात भीली देखो प्रेम की ससीली,
रामचंद्रसो मृगिंद जूठे बेर जो खवा लिए।
छाती यों छवाये काहू वाछरन चराए काहू,
प्रेम कर पाहन ते परमेस पा लिए।

किन्तु प्रेम जितना ही सुन्दर आनन्ददायी एवं चारों पदार्थ का दाता है उतना ही उसका पंथ कठोर और कुटिल तथा दुखदाई है इसका पंथ संसार से उलटा और विरला है। इस पथ पर चलने वाले को सर के बल चलना पड़ता है जितनी ही इसमें कठिनाइयाँ होती हैं उतनी ही इसकी तीव्रता बढ़ती चलती है। वास्तव में इस पथ पर चलनेवाले को अपने हाथ अपने रक्त से रंगने पड़ते हैं इसलिए मनुष्य को प्रेम पथ पर बहुत सोच समझ कर पग रखना चाहिए।[१]

किन्तु प्रेम की यही पीर ही तो प्रेमियों का सर्वस्व है जिसके हृदय में प्रेम की ज्वाला न धधकी उसका शरीर श्मशान के समान शून्य और नीरस है।

'विरहा विरहा आंखिये विरहा तू सुलतान।
जा तन में विरहा नहीं सो तन जान समान॥

\+ \+ \+

संयोग-शृङ्गार

यही कारण है कि वियोग की छटा प्रेमपयोनिधि में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। कवि प्रेम की पीर से भरे सवैये पर सवैये और कवित्त पर कवित्त लिखता चला जाता है। वह विरह की भावना में इतना तल्लीन रहता है कि उसकी दृष्टि संयोग-पक्ष और नारी के स्थूल सौन्दर्य की ओर बहुत कम झुकती है। समय की परिपाटी और काव्य की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर कवि कुछ क्षणों के लिए ससिकला और जगतप्रभाकर के संयोग-शृङ्गार को अंकित करने के लिए रुका है जैसे जगतप्रभाकर प्रियमिलन की लालसा में इतना व्याकुल दिखाई पड़ता है कि उसका समय काटे नहीं कटता और कभी कभी वह इस व्याकुलता में अपने भाग्य को भी कोसने लगता है।

'निस संयोग के आन की लगीय है अवसेर।
छिन छिन वियाकुल होत मन देखि दिवस की देर॥'

× × ×

---

१. "ये हो अजान प्रहार प्रान ये कौन से ठान अठान करै तू।
प्रेम के पंथ मैं पांऊ धरै अपने रकतापने हाथ भरै तू।
हा हा भले जिय राम को मान लै नेह के नाम न हाथ मरै तू।
याह के नफेह में नुकसान सों जान किसान को अंक धरै तू।"

कबहुँ कहत कस भाग हमारे,
घरी बजावत नाहि घरियारे।

कुमार की इस व्याकुलता के अंकन के बाद कवि ने कुमारी के आने का वर्णन नहीं किया है वरन् फौरन उसने संयोग शृंगार का वर्णन प्रारम्भ कर दिया है। इस वर्णन में विव्वोक और किलकिञ्चित हाव के साथ प्रथम समागम में होने वाली स्वाभाविक लज्जा का चित्र भी सुन्दर बन पड़ा है[१]।

विप्रलम्भ-शृंगार

प्रेम के वियोग-पक्ष का चित्रण कवि ने पात्रों द्वारा अभिव्यञ्जित करने का प्रयत्न नहीं किया है यही कारण कि सूरजप्रभा, महिपालसुता आदि नायिकाओं की विरह दशा का विशद वर्णन नहीं मिलता। केवल एक स्थान पर 'सूरजप्रभा' की मानसिक अवस्था का संकेत करता हुआ कवि कहता है कि वह कभी महलों पर चढ़ कर कौए उड़ाती थी और कभी प्रियतम के लौटकर आने के दिन गिना करती थी इस प्रकार उसके दिन जलविहीन मछली की तरह तड़पते बीतते थे।

'कबहुँ महल चढ़ काग उड़ावत,
ऐसी पावन सगुन मनावत।
'अवधि दिवस गन मन अकुलावत।
जल विहून मछरी तरपावत।
आहुट पाय पौर पर आई।
निरखत रहत विफल कर लाई।'

किन्तु ऐसे वर्णन अन्य स्थानों पर नहीं मिलते इसलिए यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कवि ने पात्रों द्वारा वियोगपक्ष की अभिव्यंजना की शैली को इस रचना में नहीं अपनाया है।

प्रकृति-चित्रण

अपनी ही धुन में मस्त रहने वाले एवं महल की चहारदीवारी में बन्द नायिकाओं की प्रेम लीला को चित्रित करने वाले हिन्दू प्रेमाख्यानक कवियों में साधारणतः प्रकृति-चित्रण की प्रवृत्ति कम दिखाई पड़ती है। उनका ध्यान

---

१. 'प्रेम उमग की उत बलकारी।
इहु लज्जा बल रोकन वारी।
गढ़ आलिंगन पर बरजत तहि।
स्वास चढ़ी बरजत तरजत अहि।'

अगर जाता भी तो वह प्रकृति के उद्दीपन विभाव तक ही सीमित रहता या वे इने-गिने पेड़ो-पौदों के नाम गिना दिया करते थे। मृगेन्द्र भी तत्कालीन प्रवृत्ति से अपने को अलग न कर सके इन्होंने एक स्थान पर वसन्त के उद्दीपन रूप का वर्णन किया है[1]।

ऐसे ही प्रभात का वर्णन करता हुआ कवि उषा को संयोगिनी स्त्रियों के रक्तपान के कारण ही लाल देखता है[2]।

कुछ फूलों के नाम गिनाने की प्रवृत्ति का भी अवलोकन कीजिए। फुलवारी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

'सर सुरभित सभ फुलवारी, बेला कहूँ चमेली क्यारी।
कहूँ मोतिया कहूँ मोगरा, जुही केतकी कहूँ केवरा।
मदन बान कहुँ जरद चवेली कहूँ निराली फुलित तरु वेली।
इक दिश फूलत सुमन गुलाबी, चुह चुहात मुख गूड़ी लाली।'

लोक-पक्ष

प्रेम-प्रसंग के बीच जीवन का जितना क्षेत्र आ सका है उसमें कवि ने मानव-जीवन के अन्य अंगों की ओर भी इंगित किया है। गुरु के प्रति श्रद्धा फलित-ज्योतिष और भाग्य के ऊपर विश्वास लगभग प्रत्येक काव्य में मिलता है वह इसमें भी पाया जाता है। जैसे—

'पै भावी सबपर बलवाना, भलो बुरो नहि परत पिछाना।'

ऐसे ही जगतप्रभाकर के जन्म पर पण्डित लोग उसकी कुण्डली बनाकर यह बताते हैं कि बालक तेजस्वी होनहार है किन्तु प्रेम की पीड़ा से व्याकुल होकर

---

१. वहि आइ वसंत बहार 'अरे बन तू बन है गम खाहु नहीं।
लख कोकिल भ्रिंग विहंगन भीरू रे तोहि कछू परवाहु नहीं।
गई रात प्रभाव भई लखदीप तू नैन नीर बहाहु नहीं।
पुन रात अई वहि तेरी सभा में प्रभा बनै छाइ उमाहु नहीं।'

२. सदा प्रभाव संयोग निसा को,
पल कल गत पल अटकत ताको।
अजहुँ पलक सग पलकन भव की,
प्रास पिसाचिनि अति ही भभकी।
रकत पान प्रेमनि को कीनो।
भई प्रात अरुन मुख लीनो।
बोल उठ्यो कुकदा वहि कूरा।
प्रेमिन की परितारिक पूरा।

यह युवावस्था में घर से बाहर चला जायगा और फिर तीन विवाह कर घर लौटेगा।

किन्तु सबसे उल्लेखनीय है स्त्री जाति के प्रति कवि का दृष्टिकोण। उसका विश्वास है कि नारी का त्राण अपने पति के साथ रहने और उसकी सेवा में ही हो सकता है। विदा होती हुई ससिकला को सीख देती हुई माँ कहती है—

यदपि तू अति रूप उजागर। सुन्दर विदित भुवन गुनसागर॥
तउ हूँ तिय जगदीस बनाई। पर अधीन सुति सिम्रित गाई॥
कैसी हू होय सुघर वर नारी। अति रूपवती उजियारी॥
पै पति बिन गति नाहि लहत है। सासतर सिम्रित वेद कहत है॥
वहि नर तन करतार बनायो। सदा सुतंत्र सुर जग गायो॥

विवाह की सनातनी रीति और तेल मैन के समय दी जाने वाली गालियों की प्रथा भी उल्लेखनीय है।

'वेद मंत्र द्विज करत उचारा। सपत सुहागिनि जाकर धारा॥
मलत उबटनो हरख अपारी। देय परस्पर रस की गारी॥
मंगल गान विविध कल गावत। दुलहिन दूलह को उबटावत॥

इसके उपरान्त अग्नि को साक्षी कर सप्तपदी करने की प्रथा का भी अवलोकन कीजिए।

'साखी बीच अगनि भगवाना। भांवर दीन वेद विधाना॥
साखा पढ़ि द्विज परम सयाने। कुल प्रणालि का प्रगट बखाने॥
सपत पदी तब दिज न करा:। वाम अंग तब कुंवरि बिठाई॥
विदनारी किय मंगल गाना। निपत तब कीन कनिक दाना॥

स्त्रियों को शकुनों पर बड़ा विश्वास होता है भले-बुरे का आभास उन्हें अपने अंगों को फड़कने एवं किसी पशु-पक्षी की विशेष चेष्टा से होने लगता है। इसका उल्लेख भी इस काव्य में मिलता है।

सूरजप्रभा ससिकला से कहती है :—

'आन अंग सम दाहिनी ओर ते,
फरकत है अति बड़े भोर ते।
मग महिं म्रिगनी निरस अकेली,
पंथ चीर पुनि खरी दुहेली।
मो मुख ओर निरख आकुल भई,
भरकी लख आपन परछाही।

उतरत जब निवास पग धारयो,
छींक उठ्यो तब दई मारो।'

छंद

जहाँ तक छंदों का सम्बन्ध है हम पहले ही कह आये हैं कि कवि ने इतिवृत्तात्मक वर्णनों के लिए दोहा और चौपाई छंद आठ अर्द्धाली के बाद एक दोहे के क्रम से प्रयोग किया है और कथा के रससिक्त स्थलों पर कवित्त और सवैयों का प्रयोग किया है। नखशिख वर्णनादि के न होने के कारण इस काव्य में अलंकारों का प्रयोग लगभग नहीं सा हुआ है।

भाषा

इसकी भाषा अवधी है किन्तु प्रति बड़ी अस्पष्ट और भ्रष्ट लिखी गई है इसलिए कवि की भाषा पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता।

रुक्मिणी परिणय

—रघुराज सिंह जू देव कृत।
—लिपिकाल...
—रचनाकाल सं० १६०७

कवि-परिचय

श्रीरामचन्द्र शुक्ल 'रसाल' ने इनका नाम राजकुमार रघुबीर सिंह बी० ए० सीतामऊ लिखा है। इसके अतिरिक्त आपका जीवन वृत्त अज्ञात है। आप अच्छे गद्य लेखक और साहित्य सेवी कहे गए हैं। किन्तु 'रसाल' जी ने आपकी रचनाओं का कोई उल्लेख नहीं किया है।

कथावस्तु

प्रथम खंड में रुक्मिणी परिणय की संक्षिप्त कथा का परिचय देने के उपरान्त कवि ने द्वितीय खंड से श्रीकृष्ण जी के जीवन की अनेक कथाओं का वर्णन किया है। जैसे जरासंधवध, कालिवध, द्वारका बसाने की कथा, आदि कई अध्यायों में वर्णित की गई हैं। इसके बाद कवि ने सातवें अध्याय में कृष्ण और बलराम के विवाह के विषय के वार्तालाप को नारद के द्वारा उग्रसेन से कराया है। इस वार्तालाप के उपरान्त रेवती से बलराम के विवाह का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त नारद के रुक्मिणी के पिता भीमसेन के पास जा और रुक्मिणी के सामने कृष्ण के रूप और गुण के विस्तार वर्णन करने की कथा कही गई है जिसके द्वारा रुक्मिणी के हृदय में कृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न किया गया है। नारद ने द्वारका में जाकर रुक्मिणी के रूप का वर्णन भी कृष्ण से किया। उसे सुनकर कृष्ण के हृदय में रुक्मिणी के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ। इसके बाद कथा भागवत के आधार पर ही चलती है। विवाह के उपरान्त रुक्मिणी तथा उसकी नाना सखियों के साथ कृष्ण के रास का सविस्तर वर्णन भी किया गया है।

प्रस्तुत रचना श्रीमद्भागवत के आख्यानों की काव्यबद्ध घटनाएँ ही प्रतीत होती हैं। आख्यानक काव्य में कहानी का जो लालित्य होता है वह इसमें प्राप्त नहीं होता।

---

१. देखिए हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामशंकर शुक्ल 'रसाल') पृ० ६६६।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख-वर्णन

हम पहले कह आए हैं कि प्रस्तुत रचना कई छोटे-छोटे आख्यानों का एक संकलन-सी है। इसलिए इसमें काव्यगुण प्रारम्भ के और मध्य के अध्यायों में नहीं प्राप्त होते। केवल रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह से सम्बन्धित और नारद द्वारा रुक्मिणी के सौन्दर्य-वर्णन में काव्य-सौन्दर्य परिलक्षित होता है।

रुक्मिणी के नख-शिख वर्णन में कवि ने परम्परागत उत्प्रेक्षाओं और उपमानों का भी प्रयोग किया है। जैसे रुक्मिणी के काले काले-लम्बे बाल ऐसे प्रतीत होते हैं कि वे सर्प हों अथवा नील मणि के सूत हों।

'नील मनीन के सूत किधों पंनग पूत लसे छवि बार हैं।
रेसम स्याम समूह किधों, कीधौं काम बटै के बटोह अपार हैं।

ऐसे ही भ्रू-वर्णन भी बड़ा सुन्दर बन पड़ा है—काली काली भौंहें चन्द्र-मुख पर ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानों चन्द्रमा में दो सर्प के बच्चे खेल रहे हों अथवा कमल पर भ्रमरों की अवली सुशोभित हो रही हो।

'खेलहि खेल ससी मैं किधों, अति चंचल सावक द्वै हहि केरे
किधों लसै युग पाँति मिलिंद कि है, अरिविंदन के अति नेरे

युद्ध वर्णन में भाषा बड़ी ओजस्विनी और वीभत्स-रस का चित्रण बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। युद्ध भूमि में रक्त की सरिता का रूपक अवलोकनीय है।

करि भए भीम कगार हैं बहु बाहु व्याल अपार हैं।
कुलि केस बहुत सेवार हैं कर कटे मीन कतार हैं।
कच्छप कितेकहूँ ढाल हैं गज पाय नक्र विशाल है।
मधि दीप अश्वन माल है कंकर विभूषन जाल है।
आवर्त चक्रहि के भए रथ बहहि,ते नौका नए।
बहु फेन भेदहि के छुये काकहि करालुक ह्वै गए।
तह गंध हंस समान है उठती तरंग क्रिपान है।
यह अस्थि के पखान हैं भट काय' घाट महान हैं।

भाषा के प्रवाह और अलंकार की योजना की दृष्टि से रुक्मिणी परिणय का अंश सुन्दर बन पड़ा है। अन्य अंशों में इतिवृत्तात्मकता अधिक मिलती है, काव्य-कौशल कम।

—:०:—

नल-दमयन्ती

—नरपति व्यास कृत
[रचनाकाल सं० १६८२ के पूर्व
लिपिकाल सं० १६८२

कवि-परिचय

इसके लेखक का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथा-वस्तु

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु भागवत में वर्णित कथा के अनुकूल है।

काव्य-सौंदर्य

दमयन्ती के रूप सौंदर्य वर्णन में कवि परम्परागत उपमान, उत्प्रेक्षाएँ आदि भी प्राप्त होती हैं। जैसे—

'कटि मेषला कली कटिजान। झीन लंक केहरि परमान॥
महि दमयन्ती औतरि अपार। सगुन सरूप वहन गुन भार॥
कठिन पयोहर व्यव संजोल। सम सुरंग ले कुम-कुम गोल॥
कोमल बाँह जुगल में डीठ। पउ नल जनु रंगे मंजील॥
नाभि निकट रोमावलि दीठी। भ्रमरावलि जनु कमल पइठी॥'

किन्तु इस सौंदर्य वर्णन में कवि की दृष्टि शुद्ध सात्विक है अतः वह दमयन्ती को साधारण नारी से बहुत ऊपर देवि स्वरूपिणी देखती है। दमयन्ती को साधारण मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता, उसको प्राप्त करने के लिए पूर्व जन्म के उच्च धर्म युक्त पवित्र सस्कारों की आवश्यकता है—

जिहि प्रयाग तनु छाड़यो होई। दमयन्ती त्रिय लाभि सोह।
तिरथ वारानसि सरतीर, निराहार तके होई सरीर।
जिन पूजिय होय त्रिपुरारी, पावइ सो दमयन्ती नारी॥

यही नहीं वह सरस्वती स्वरूपिणी और बुद्धि दायक है। स्वयंवर में सखियों से घिरी हुई दमयन्ती का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

बंक विलोकि रही ससि बेनी।
दमयन्ती सिख बुधि वर देनी॥

देवता तक उसे देखने के लिए लालायित रहते थे। देवताओं को दमयन्ती के सौन्दर्य को देखकर तृप्ति नहीं होती थी। 'वरुण' स्वयंवर में दमयन्ती को देखकर विरह से पीड़ित हो उठे और उन्हें इन्द्र के सहस्र नेत्रों से ईर्ष्या होने लगी। काश वह भी इस सौन्दर्य को सहस्र नेत्रों से देख सकते—

ज्युं ज्युं विरह अगनि पर जरै। वरुण विरह बड़वानल बरई।
सहस्र नयन देखि सुर राया। त्रिपति केन होहिं रूपरस भाई।
कहै अगनि जमु वरणु सुवणि। हमको दुख सवायों जानि।
भागवंतु अति सुर वेराई। सहस नयन देषि त्रिय भाई।

आगे चलकर दमयन्ती का सौन्दर्य रहस्यमय हो जाता है। जैसे कि दमयन्ती को प्राप्त करने के लिए मनुष्य और देवतादि तपस्या करते रहते हैं। वह पंच शब्द (अनहद नाद) से भी सुन्दर है। सारा त्रिभुवन उसी के वशीभूत है जिसके विरह में नल दुःखित रहते हैं—

पंच सवद रचो सुढार। कोटि कन्या न बनी उनहार।
वचन नयन ता चलन सुरङ्ग। भीम कुंवरि सह अमृत अङ्ग।
तासु दृष्टि त्रिभुवन वसु भयो। नर वैलहरि विरहि परि गयो।

नख-शिख वर्णन में मिलने वाले रहस्यात्मक सकेत पूर्ण कथानक में प्रस्फुटित नहीं हो सकते हैं इसलिए यह काव्य लौकिक प्रेमाख्यान ही कहा जायगा।

संयोग और वियोग-पक्ष

नख-शिख वर्णन के उपरान्त कवि ने घटना क्रम के क्रमिक विकास का इतिवृत्तात्मक वर्णन ही अधिकतर किया है यही कारण है कि इस काव्य में संयोग-श्रृंगार की नाना दशाओं का वर्णन तो नितान्त शून्य है। हां वियोग-वर्णन में दमयन्ती की करुणा जनक अवस्था के कतिपय सकेत मिलते हैं जैसे 'हे स्वामी तुम्हारे बिना हमारे लिए यह संसार अंधकारमय है। तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकती—

'तुम बिन राह अन्ध संसारि, तुम्ह स्वामी हम प्रान अधार।
तुम बिनु हियो फाटि मरि जावुं, तो बिनु यह तन दुष लहांउ।
तुम बिन जन्म अकारथ जाय, तुम बिनु स्वामि रहन न जाय।'

उपर्युक्त उद्धरण में पतिपरायण सती नारी की मानसिक दशा के साथ ही साथ भारतीय नारी की अपने पति पर ही आश्रित रहने की सामाजिक व्यवस्था का चित्रण मिलता है।

इस करुणाजनक पुकार के उपरान्त ही कवि की दृष्टि बन में मंथर गति से चलती हुई दमयन्ती पर रुक जाती है और वह स्थिति को भूल कर दमयन्ती की मंथर गति पर शृङ्गारिक उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है कि क्षीण कटि और उरोजों के भार के कारण ही दमयन्ती चल नहीं पा रही है।

'जंघ कुचनि चलि सकै न नारी।
नीचे ह्वै बांधे डिठसारी।
कुच भारी भारु लंक परि खीनु।
दमयन्ती चलि सकै न दीनु।'

अजगर द्वारा दमयन्ती के आधे से अधिक 'लील' लिये जाने पर भी दया और आर्द्रता के स्थान पर कवि उस समय की भयावह स्थिति में भी दमयन्ती के सौन्दर्य पर उत्प्रेक्षा करता हुआ दिखाई पडता है जैसे क्या अजगर के मुख में कमल विकसित हुआ है अथवा उसके मुख में चन्द्रमा उदय हो रहा है—

के विगस्यो कमल अखंड। के उग्यो अजगरि मुख चंद।

काव्य-सौन्दर्य और अलंकार की दृष्टि से ऐसे अंश चाहे कितने ही सुन्दर क्यों न हों किन्तु परिस्थिति विशेष की पृष्ठभूमि में वे उपहासास्पद ही लगते हैं। फिर भी भाषा अलकार, आदि की दृष्टि से यह एक सुन्दर खंड-काव्य कहा जा सकता है।

आन्यापदेशिक-काव्य

पुहुपावती

दुखहरन दास कृत
रचनाकाल सं० १७२६
लिपिकाल सं० २०००

कवि परिचय

आप गाजीपुर के रहने वाले थे और मलूकदास के शिष्य थे। आपके पिता का नाम घाटम दास था। आपका असली नाम 'मन मनोहर' था किन्तु दीक्षित होने के बाद आपने अपना नाम दुखहरन दास रख लिया था आपने अपने तीन मित्रों का नाम पेमराज, बेचन और मुरलीधर बताया है जो एक ही गुरु के द्वारा दीक्षित हुए थे और सदैव आपके साथ रहते थे इसके अतिरिक्त आपका परिचय प्राप्त नहीं है। निम्नांकित पंक्तियों से उपरोक्त कथन का समर्थन होता है।

'दुखहरन कायथ तेही गाऊ। घाटम दास पिता कर नाऊ।।
तीन्हके बंस मही सुत जामा। जेहि के मन मनोहरि नामा।।
अलप वैस वीधी बुधी दीन्हा। नूतन कथा पेम की कीन्हा।।
तीन मित्र हम कइ मालाहा। जोरि मिताहि अन्त निबाहा।।
पेमराज अती सुन्दर कला। पढ़त लिखत नौ सी भला।।
बेचन राम समै गुन लोना। जैसे बारह बानक सोना।।
मुरलीधर अति चतुर विनानी। गायन बली सुरस ग्यानी।।'
दो०-'एक समे हम चारिउ एक जाती एक बरन।
पेमराज औ बेचन मुरलीधर दुखहरन।।'

+ + +

'एकै अच्छर गुरु पढ़ावा। जेहि से वेद भेद किछु पावा।
इह जग जस सपना कै लेखा। भोर भए फिरि कीछु नहीं देखा।।'

कथा-वस्तु

राजपुर में परजापति राजा राज करता था जो बड़ा धार्मिक और सर्व प्रिय राजा था किन्तु इसके कोई सन्तान न थी। इसलिए राजपाट छोड़कर इन्होंने 'भवानी' की बारहवर्ष कठिन साधना की। अपनी आशा पूर्ण न होते देख कर इन्होंने अन्त में अपना मस्तक भवानी पर चढ़ा दिया। राजा की मृत्यु से भवानी काप उठी और इस मृत्यु के पाप के भय से कुंठित होकर उन्होंने शिव की स्तुति की। शिव ने प्रकट होकर भवानी से सारी घटना का हाल जाना तदुपरान्त उन्होंने भवानी को अमृत दिया जिससे राजा जीवित हो उठा और भवानी ने उन्हें पुत्र लाभ का वरदान दिया। इस प्रकार कुंवर का जन्म हुआ। ज्योतिषियों ने कुण्डली देख कर बताया कि कुमार बड़ा यशस्वी होगा किन्तु बीस वर्ष की अवस्था में यह अपनी जन्मभूमि को तज कर दूसरे देश में चला जायगा। और जिसके कारण यह वियोगी होकर योगी होगा उससे विवाह कर फिर लौट आएगा।

पांच वर्ष की अवस्था में कुमार पढ़ने बैठा और युवावस्था तक वह चौदहों विद्या में पण्डित हो गया। एक दिन उसने अपने पिता से दिग्विजय करने की अभिलाषा प्रकट की किन्तु पिता के अस्वीकार कर देने पर वह रूठ कर विदेश चल पडा। जंगलों में भटकता हुआ कुमार अनूपगढ़ पहुँचा।

अनूपगढ़ के राजा अंबरसेन की पुत्री पुहुपावती यौवनावस्था के आगम से बड़ी व्याकुल रहती थी। अपना मन बहलाने के लिए सखियों की आँख बचा कर वह किसी अज्ञात प्रेरणा से खिडकी खोल कर बाहर किसी की राह देखा करती थी। एक दिन उसकी दृष्टि वाटिका में घूमते हुए कुमार पर पड़ी। कुमार के सौन्दर्य को देख कर वह आसक्त हो गई और उससे मिलने के लिए व्याकुल रहने लगी।

उसी वाटिका की मालिन के घर पर कुमार रहता था। मालिन नित्य कुमारी की सेज फूलों से सजाने जाया करती थी। कुमार को देखने के उपरान्त कुमारी ने फूलों की सेज छोड़कर सखियों के साथ सोना प्रारम्भ कर दिया था। मालिन ने कुमारी से एक दिन उसके इस असाधारण व्यवहार का कारण पूछा। कुमारी ने अपनी वेदना बताई। मालिन ने लौटकर कुमार से पुहुपावती का सौन्दर्य वर्णन किया जिसे सुनकर कुमार मुग्ध हो गया। मालिन से पुहुपावती की दशा को जानकर कुमार की व्याकुलता और बढ़ी। दूती ने लौटकर कुमारी से कुमार का सौन्दर्य और उसकी विरहावस्था वर्णित की इस पर कुमारी उससे मिलने के लिए उत्कण्ठातुर हो गई। मालिन के आदेशानुसार अपनी माता से

आज्ञा लेकर पुहुपावती वाटिका में आई। दोनों ने एक दूसरे के दर्शन किए थोड़ी देर प्रेमालाप हुआ और फिर कुमारी अपने महल को लौट आई।

अम्बरसेन एक दिन आखेट खेलने के लिए चले उनके साथ नगर की सभी जनता और राव राजा भी चले। कुमार भी इन्हीं के साथ शिकार खेलने चल दिया राजा का पड़ाव पहले एक सरोवर पर पड़ा जहाँ उन्होंने सैकड़ों पक्षी मारे। जङ्गल में पहुँचकर उन्होंने बहुत से छोटे-बड़े जानवर भी मारे।

अकस्मात उसी जङ्गल में एक भयानक शेर निकला जो राजा के सैनिकों को मारने लगा सैकड़ों के मारने के बाद जब सिह जङ्गल मे जा घुसा तब राजा को बड़ी चिन्ता हुई। उसने सोचा कि इस सिह को बिना मारे लौटने में बडी हँसी होगी, शत्रु भी इमें कमजोर जानकर राज्य पर आक्रमण कर देगे। अस्तु उसने ढिढोरा पिटवाया कि जो भी मनुष्य इस सिह को मारेगा उसे आधा राजपाट मिलेगा।

कुमार ने इसे सुना और राजा के पास पहुँचा। राजा ने कुमार की सौम्य मूर्ति को देखा और उससे परिचय पूछा। कुमार ने अपना वास्तविक परिचय दिया और सिंह को मारने चल दिया।

सोते हुए सिह को जगाकर कुमार ने मार डाला। राजा ने प्रसन्न होकर कुमार को आधा राज्य देकर उसका अभिषेक किया इतने मे सिंहनी प्रकट हुई और उसने कुमार को ललकारा।

कुमार के तीर से घायल होकर सिहनी भागी और उसने उसका पीछा किया। भागते-भागते सिहनी तीस कोस निकल गई और वह उसके पीछे ही दौड़ता चला गया अन्त में सिहनी को मार कर लौटते समय कुमार रास्ता भूल कर भटक गया।

पुहुपावती इस समाचार को सुन कर दुखी रहने लगी। इधर कुमार को रास्ते में एक योगी मिला जो इसके पिता की ओर से उसे ढूँढ़ने के लिए भेजा गया था। कुमार को बांध कर वह राजा के यहाँ ले आया। घर में प्रसन्नता छा गई किन्तु कुमार सदैव दुखी, चिन्तित और बीमार रहने लगा। एक दिन उसके मुँह से प्रेम की बात सुनकर सबों ने उसका विवाह काशीनरेश चित्रसेन की कन्या के साथ कर दिया। किन्तु कुमार इस पर भी विरक्त रहने लगा।

पुहुपावती की दशा देखकर मालिन 'दूती' के रूप में कुमार को खोजने के लिए चली और नाना कठिनाइयों को पार करती हुई जम्बू द्वीप पहुँची।

राजपुर में प्रवेश करने पर उसने सारी जनता को अपनी वीणा से मुग्ध कर लिया। सब उसके दर्शनों से महासुख का लाभ करते थे। राजा ने कुमार को उसके दर्शन के लिए भेजा। दूती ने कुमार को देख कर सारी उपस्थित जनता को संज्ञा शून्य कर दिया और कुमार को पुहुपावती का संदेश देकर उसका पत्र दिया। पत्र पढ़ते ही वह व्याकुल हो उठा और दूती के साथ वैरागी होकर निकल पड़ा।

दोनों चलते-चलते सात समुद्र पार बेगमपुर ग्राम में पहुँचे। जहाँ एक समय बेगमराय राजा का राज्य था किन्तु वह बड़ा गर्वीला था। एक दिन उसके नगर में एक दानव ने प्रवेश कर सबको खा डाला केवल राजा की पुत्री 'रंगीली' बच गई। उसके रूप के कारण दानव ने उसे नहीं मारा। यौवन होने पर रंगीली काम से पीडित रहने लगी। एक दिन उसने झुँझला कर देव से कहा कि पूर्व जन्म के कर्म से तुम्हें यह योनि मिली है। इस जन्म में भी तुम मेरे साथ ऐसा व्यवहार कर रहे हो मैं सदैव काम से पीड़ित रहती हूँ पता नहीं दूसरे जन्म में तुम्हारा क्या हाल होगा।

दैत्य को यह बात सुनकर ज्ञान उपजा उसने उत्तर दिया कि मै तुम्हारे अनुरूप वर खोजा करता था। किन्तु कोई उपर्युक्त पुरुष न होने के कारण मैं तुम्हें खा जाया करता था। आज से जब तक तुम्हें सुन्दर वर न ढूँढ दूँगा तब तक अन्न-जल न ग्रहण करूँगा। दानव उसके लिए वर खोजने को निकल पड़ा। समुद्र-तट पर दूती के साथ कुमार को सोता देखा। कुमार के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर उसे 'रंगीली' के लिए उठा लाया। दोनों का विवाह हुआ। 'रंगीली' बडी प्रसन्न हुई, किन्तु कुमार की उद्विग्नता का कारण पूछा। कुमार ने पुहुपावती के प्रेम की कहानी बताई। रंगीली उत्तर भी नहीं दे पाई कि दानव आ उपस्थित हुआ। कुमार ने बाँसुरी बजाई सब उस बांसुरी से मूर्छित हो गए। जो सुबुद्ध थे उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ और रंगीली भी कुमार के साथ जोगिनी के वेश में पुहुपावती की खोज में निकल पड़ी।

इस प्रकार दोनों सातों द्वीपों और छः समुद्रों को पार करते हुए चले जा रहे थे। सातवें समुद्र पर एक नाविक ने उन्हें पार लगाने के लिए मुद्राएँ मांगी किन्तु लालचवश कुमार ने कहा कि हमारे पास धन नहीं है नाविकों ने उन्हें चढ़ा लिया। थोड़ी दूर जाने के बाद ही एक भयंकर भँवर में पड़कर उनकी नाव टूट गई और दोनों बिछुड़ गए। और अलग-अलग किनारे से जा लगे।

रंगीली समुद्र तट पर विलाप करने लगी उधर से महादेव और पार्वती भ्रमर करने के हेतु निकले। रंगीली का विलाप सुनकर पार्वती को दया आई

और वह शंकर के साथ उसके पास पहुँची। पार्वती ने कहा कि तुम्हारा प्रियतम अभी तुम्हें नहीं मिलेगा इसी जङ्गल में चतुर्भुजदेव की पूजा करो कुछ दिनों के उपरान्त तुम्हारा प्रियतम तुम्हें वहीं मिल जाएगा। रंगीली चतुर्भुज की पूजा में संलग्न हो गई।

इधर कुंवर को अपने झूठ पर बड़ा पछतावा हुआ और वह विलाप करने लगा। उसने दूती और पुहुपावती का स्मरण किया फिर जङ्गलों में भटकता हुआ 'धरमपुर' पहुँचा। किन्तु द्वारपालों ने उसे नगर के बाहर नहीं जाने दिया। उन्होंने कहा कि इस नगर के चार दरवाजे हैं कोई इनमें से उस समय तक बाहर नहीं जा सकता जब तक उसके साथ कोई दूसरा साथी न हो। कुमार को बड़ी चिन्ता होने लगी। उसी नगर में दूती भी कुमार की खोज में पहुँच गई थी। एक ने दूसरे को पहचाना और फिर साथ उस नगर से बाहर हो गए।

पुहुपावती के पिता ने इधर उसके स्वयवर की घोषणा कर दी थी। स्वयंवर के दिन तक दूती कुमार को लेकर नहीं लौटी थी इसलिए वह आत्महत्या करने जा रही थी कि दूती ने उसके पास पहुँचकर कुमार के आने की बात कही।

योगी के वेश में कुमार स्वयंवर में पहुँचा और पुहुपावती ने उसके गले में जयमाला डाल दी। दोनों का विवाह हुआ और वे रागरङ्ग में मस्त रहने लगे।

कुंवर की प्रथम पत्नी रूपवती पूर्ण यौवना होने के उपरान्त कुमार के विरह में रोया करती थी। उसने एक मैना पाल रखी थी। मैना ने एक दिन कुमारी की वेदना का हाल पूछा। कुमारी ने पति के द्वारा त्यक्त होने का हाल बताया और बताया कि वह पुहुपावती की खोज में चले गए हैं। मैना कुमार की खोज में निकल पड़ी। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह पुहुपावती के पास पहुँची उस समय पति-पत्नी रमण कर रहे थे। मैना को देखकर कुमार ने पुहुपावती से उसके काले होने का कारण पूछा, किन्तु यथोचित उत्तर न पाकर उन्होंने उस मैना से प्रश्न किया। मैना ने रूपवती का सारा हाल कह सुनाया और बताया कि उसी के वियोग से मैं काली हो गई हूँ। कुमार को अपने बन्धु-बान्धवों का ध्यान आया और वह पुहुपावती को लेकर ससैन्य अपने देश की ओर चल पड़े।

कुमार की सेना उज्जैन नगर पहुँची जहाँ 'रौठग वर' राज्य करता था। पुहुपावती के साथ कुमार को आया जानकर स्वयंवर में हुए अपमान का

प्रतिशोध लेने के लिए चल पड़ा। दोनों में युद्ध हुआ और रौठग की हार हुई। कुमार आगे बढ़ा।

इधर रूपवती को सदेश देने के लिए आगे जाती हुई मैना ने एक जङ्गल में बहुत से पक्षियों को एक सुन्दरी के दर्शनों के लिए जाते देखा वह भी उनके साथ हो ली। वहाँ पहुँच कर 'रंगीली' के सौन्दर्य को देखकर वह मुग्ध हो गई और ध्यान-मग्न रंगीली के हाथ पर जा बैठी। रंगीली की आँखें खुल गईं। मैना ने अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया और फिर उससे उसके प्रियतम का हाल पूछा। रंगीली ने बताया कि वही कुमार ही तो उसका प्रियतम है। रंगीली के हाथ पर बैठा देखकर और पक्षी भी पास आने लगे। एक गरुड़ जब पास आया तो मैना के इशारे पर रंगीली ने उसे पकड़ लिया। गरुड की स्त्री गरुड़ को बन्धन मुक्त करने की याचना करने लगी।

मैना ने कहा कि गरुड उसी समय छूट सकता है जब तुम अपनी पीठ पर इसके प्रियतम को यहाँ ले आओ। गरुड़ ने स्वीकार किया और मैना गरुड़ की पीठ पर सवार होकर उज्जैन पहुँची। मैना से रंगीली का हाल सुनकर कुँवर गरुड़ पर सवार होकर रंगीली से मिलने चल दिया। किन्तु चतुर्भुज की मूर्ति के पास रंगीली नहीं मिली। कुमार को बड़ा दुख हुआ और उन्होंने रंगीली के लिए चतुर्भुज की मूर्ति पर अपना शीश चढ़ाने का विचार किया। चतुर्भुज इस पर प्रकट हुए और उन्होंने बताया कि रंगीली समुद्र तट पर गई है। वहाँ जाकर दोनों मिले फिर गरुड़ पर चढ़ कर उज्जैनी लौट आए।

वहाँ से पुहुपावती और रंगीली के साथ कुमार ने अपने नगर की यात्रा की कुमार के लौटने पर आनन्द मनाया जाने लगा। रूपवती से उनका समागम हुआ।

इस प्रकार कुमार आनन्द से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। कुमार की धर्मपरायणता को सुनकर धर्मराज उनकी परीक्षा लेने के लिए एक योगी के रूप में पहुँचे और उन्होंने 'पुहुपावती' को दान में मांगा। रंगीली और रूपवती के मना करने पर भी कुमार ने पुहुपावती को दान में दे दिया।

इस पर धर्मराज ने प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद दिया और सदैव सुखी रहने का बरदान देकर अन्तर्ध्यान हो गए।

दुखहरन दास की पुहुपावती सूफियों के परम्परानुकूल एक काल्पनिक आख्यान काव्य है जिसकी रचना-शैली एवं कथा-घटनाओं के संगठन में जायसी के पद्मावत की स्पष्ट छाया मिलती है। जैसे अपनी नायिका पुहुपावती को कवि ने पद्मावती की तरह काम से पीड़ित अंकित किया है अन्तर केवल

इतना है कि पद्मावती अपनी वेदना हीरामन से कहती है किन्तु पुहुपावती किसी से कुछ न कह कर अपने में ही घुटती रहती है और कभी-कभी मन बहलाने के लिए झरोखे से झाँक कर बाहर की ओर अपने अज्ञात प्रियतम की राह देखा करती है[1]।

ऐसे ही हीरामन तोते की तरह जब मालिन ने कुमार से पुहुपावती के अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन किया तब वह उसके प्रेम में व्यथित हो उठा। शिव-मन्दिर में रत्नसेन से मिलने जाने वाली पद्मावती की तरह पुहुपावती भी कुमार से मिलने वाटिका मे गई थी। अन्तर केवल इतना ही है कि रत्नसेन पद्मावती के दर्शन पर उस समय संज्ञाहीन हो गया था यहाँ दोनों प्रेमी एक दूसरे के सामीप्य का सुख लाभ करते अंकित किए गये हैं। जायसी की तरह दुखहरनदास ने भी यात्रा में समुद्रों के नाम गिनाए हैं[2]।

ऐसे ही जिस प्रकार लालचवश याचकरूपी समुद्र के तिरस्कार करने के कारण ही रत्नसेन की नौकाएँ डूबीं थीं और वे पद्मावती से अलग हो गए थे उसी प्रकार कुमार ने सातवें समुद्र पर पहुँच कर लोभवश वहाँ के नाविक को दान नहीं दिया और उन्हें भी सामुद्रिक दुर्घटना के कारण रंगीली से अलग होना

---

१. 'एक दिवस पद्मावती रानी, हीरामनि तइ कहा सयानी।
सुनि हीरामन कहौ बुझाई, दिन दिन मदन सतावै आई।
पिता हमार न चालै बाता, त्रासहि बोलि सकै नहि माता।
देस-देस के वर मोहि आंवहि, पिता हमार न आस लगावहि।
जोवन मोर भएउ जस गङ्गा, देह देह हम्ह लाग अनंगा।
'पद्मावत'

× × ×

लाज सकुच जीव उपजी चाहै पीव संग भोग।
नाह बिना किछु लाग न नीका, अंब्रोत भोजन सो सब फीका।
चित मह विरह प्रेम अधिकाना, चहि आपन कंत सुजाना।
भूषन चीर हार उर चोली, बरे आग लागि जनु होली।
'पुहुपावती'

२. भौसागर मह पहुँचे खार समुद्र समीप।
मुत्र जसमान जहाँ कर पानी, जेही मह चौदह रतन की खानी।
जोबन मद माए नर नारी, बीखै वासनक उठै जुआरी।
कामी काम धेनु कै जानै, होइ मरू जीआ बुड़ी मन आनै।

पड़ा[1] । संकट में पड़े हुए रत्नसेन को महादेव पार्वती ने सहायता दी थी तो पुहुपावती में भी "रंगीली" और कुमार को सामुद्रिक दुर्घटना के उपरान्त महादेव पार्वती ने आशीर्वाद दिया और उनकी कार्यसिद्धि के लिए मार्ग बता कर सहायता की ।

जिस प्रकार नागमती का संदेश लेकर एक पक्षी सिंहल द्वीप गया था और उससे नागमती की दशा को सुन कर रत्नसेन ने घर लौटने की तैयारी की उसी प्रकार रूपवती का सदेश लेकर "मैना" कुमार के पास पहुँची और उससे रूपवती का हाल सुन कर कुमार ने भी घर की ओर मुख किया ।

अस्तु उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस रचना के कथानक की घटनाओं के संविधान में हमें "पद्मावत" की स्पष्ट छाया मिलती है । यह अवश्य है कि पद्मावत की तरह यह काव्य दुखान्त न होकर सुखान्त है ।

कथानक के अतिरिक्त इसकी रचना भी मनसवी शैली में हुई है । कवि ने प्रारम्भ में निराकार एक की स्तुति के उपरान्त, शिव, काली और

होइ खुशी मन लखयो पाए, अबीत सम लागे तेहा भाए ।
दंपति आन जहाज चढ़ि, उतरि महो दधि पार !
जनु पावौ पर जातखं, उबरा प्रान पिआर ।
सुरा समुद पुनि राजा आवा, महुआ मद छाता दिखरावा ।
जो तेहि पियै सो भांवरि लेई, खीस फिरै पथ पैगु न देई ।
प्रेम सुरा जेहि के हिय माहाँ, किन बैठे महुआ के छाहां ।
'पद्मावत'

१. "दंपति रतन जतन से राखी । सेत दीप आए अभिलाखी ॥
सात कोटि जोजन विस्तारा । जहा कलि माह वउध औतारा ॥
सो मन नांधि कै देस गंभीरा । आए सतए समुदर तीरा ॥
जहाँ होइ एक वोहित छोटा । केवट ताकर गरभी खोटा ॥
तेहीं को तगि गए पुरुख औ नारी । रतन छिपाए भेख भिखारी ॥
कहेन्हि वेगि दै हम कह पार उतारि जौ देहु ॥
बड़ा पुन्य होइतुम्ह, कह आगत भाह जस लेहु ॥
केवट भेष भिखारिन चीन्हा, । वोहित निकट आइ कै कीन्हा ॥
कहेसि वेगि जावहु पारा । देहु दान कोछु अरु हमारा ॥
बिना दान नहि पार उतारौ । राजा रंक नही ए वीचारौ ॥
"पुहुपावती"

गणेश की वन्दना की है। फिर गुरु के प्रति श्रद्धांजलि देने के उपरान्त उसने तत्कालीन शाहेवक्त औरङ्गजेब की वन्दना की है और फिर अपना परिचय दिया है[1]।

जिस प्रकार सूफी कवि चार मित्रों ने नाम गिराया करते थे उसी प्रकार इस कवि ने भी अपने चार मित्रों के नाम लिए हैं।

'चार मीत जस चारिउ भाई। एक से एक भए अधिकाई।
चारिउ जुग जस चारिउ वेस। जल रज पवन अगिनि कर देस॥'

उपर्युक्त वन्दनाओं और परिचय के बाद कवि ने इस काव्य के दार्शनिक पक्ष पर अपने विचार प्रकट किए हैं। उसका कहना है कि प्रस्तुत रचना

---

१. प्रथमहिं सुमिरौं राम का नाऊं। अलख रूप व्यापक सब ठाऊं॥
घट घट मंह रहा मिलि सोई। अस वह जोति न देखै कोई॥
ससि सुरज दीपक गन तारा। इन्हकी जोति जगत उजियारा॥
जगत जोति देखो पहिचानी। वह सो जोती जग रहे छुपानी॥
दो०—निसदिन वन्दौं राम पद, तुम अनादि करतार।
माली आदि तुही भंवर, फुलवारी ससार॥

× × ×

'अब संकर को चरन मनावौ, जिनकी कृपा ग्यान दृढ़ पावौ।
तिन्ह सर और देव नहीं दूजा, ब्रह्मादिक मिल शिव कंह पूजा।

× × ×

'आदि सकति देवी कल्यानी, आदि कुमारि आदि भवानी।
अस्ती स्ती कंठ नेवासी, हिंगु लाग माया सुख रासी।

× × ×

'नाउ मलूकदास गुरु केरा। जिन्हकी सरन भए हम चेरा॥
जग कर लोग करै सब काई। देखत दरस पाप भ्रम जाई॥
उंचा जैसन मसा कै आवै। सो तुरन्त मनसा सो पावै॥
तीन्ह के श्रवन शब्द उन्ह दीआ। उपजा ज्ञान विमल भा हीआ॥
इह ससार असार कै जाना। राम नाम सुमिरन मन माना॥

× × ×

दिल्ली साह सराहौं काहा। औरंगजेब पैग्वी माहा।
नौखण्ड मह फिरी दोहाई। रविहुते तेज तपै अधिकाई

आत्मा को जागरूक रखने और लोगों को ज्ञान देने के लिए की गई है[1]। इसके अतिरिक्त उसका यह भी कहना है कि प्रस्तुत रचना प्रत्येक पाठक को उसकी भावना के अनुसार लगेगी। चाहे वह निर्गुण का पुजारी हो चाहे सगुण का। कबीर तथा अन्य निर्गुणियों कवियों की तरह दुखहरन निर्गुण और सगुण के खण्डन-मण्डन में नहीं पड़े हैं। वह केवल ईश्वर भक्ति में ही विश्वास रखते हैं। कवि की यह भावना प्रारम्भ की स्तुतियों से भी स्पष्ट है। जहाँ इस काव्य का प्रारम्भ निराकार राम की उपासना से होता है वहीं शिवशक्ति और गणेश की वन्दना भी मिलती है। इसी प्रकार कवि को न शाक्तों से वैर है न शैवों से और न पुराणों में विश्वास रखने वाले मनुष्यों से ही।

कहने का तात्पर्य यह है कि पुहुपावती सूफी भावधारा से प्रभावित और उनके साधना पक्ष से अनुप्राणित एक अन्योक्ति परक काव्य है।

प्रबन्ध-कल्पना और सम्बन्ध निर्वाह

'पुहुपावती' के कथानक से यह स्पष्ट है कि घटनाओं को आदर्श परिणाम पर पहुँचने का लक्ष्य कवि को अभिप्रेत है। कर्मों के लौकिक शुभाशुभ परिणाम दिखाना भी कवि का उद्देश्य जान पड़ता है यही कारण है कि उसने कथानक के अन्त में धर्मराज द्वारा कुमार की परीक्षा कराई है। दान न देने के कारण ही कुमार के साथ समुद्र की दुर्घटना हुई थी, 'रंगोली' 'राक्षस' से कहती है कि पूर्व जन्म के कुकर्मों के कारण तुम्हें राक्षस योनि मिली है अब भी तुम नहीं सम्हलते, पता नहीं अगले जन्म में तुम्हारा क्या हाल होगा।

प्रबन्ध काव्य में मानव-जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृङ्खला और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ साथ

---

१. 'संमत सत्रह सै छबीसा। हुत सन सहस दुइ चालीसा॥
कहेउ कथा तब जस मोहि ग्याना। कोइ सुनि रोवत कोइ हसाना॥
जेहि जस बूझी तैस तेइ बूझा। जेहि जस सूझी तैस तेही सूझा॥
बहुतन्ह के मन सरगुन आवा। बहुतन्ह निरगुन पटतर लावा॥
बहुतन्ह सुनि कै हीअ मह राखा। बहुतन्ह सुनी कै दोसन भाखा॥
मोही जस ग्यान रही हीआ माही। कहेउ सबै कीछु छाड़े नाहीं॥
जागहि खेलत जुआ जुआरी। जागहि रसिक पुरुष औ नारी॥
जागै कारन मैं चित जानी। हिअ उपजाइ प्रेम कहानी॥'
दो०—इह जग रैनि अँधीरी है, जागै कौन उपाइ।
तब इह रचनी मन रची, कहत सुनत नीसु जाइ॥'

हृदय को स्पर्श करने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। पुहुपावती मे ऐसे स्थल बहुत से हैं जैसे 'रंगीली और रूपवती का विरह, प्रेम मार्ग के कष्ट, पुहुपावती और कुमार का संयोग और वियोग-वर्णन, रूपवती का संदेश पाकर कुमार की स्वाभाविक प्रणय स्मृति आदि।

दु:खहरन का सम्बन्ध निर्वाह अच्छा है। एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग की शृङ्खला बराबर लगी हुई है। उदाहरण के लिए 'मैना' के द्वारा कवि ने 'रूपवती' और 'रंगीली' को कुमार से मिलाया है। ऐसे ही शेरनी के पीछे भागने के कारण ही कुमार और पुहुपावती का वियोग हुआ तथा दूनी के साथ लौटते समय 'रंगीली' से मिलने की घटना घटी। कहने का तात्पर्य यह है कि इस काव्य की सारी प्रासंगिक घटनाएँ आधिकारिक कथा से सम्बन्धित हैं साथ ही कवि ने इस बात का भी ध्यान रखा है कि किसी भी घटना का आवश्यकता से अधिक विस्तार न किया जाय। 'बेगमपुर' के राक्षस का ही वर्णन-वृत्तान्त लीजिए कवि ने उसके रहन-सहन आदि का वर्णन उसकी क्रूर प्रकृति को दिखाने के लिए किया है। लेकिन कुमार को रंगीली के लिए ले आने के उपरान्त उसका विवरण आगे नही मिलता वरन् कवि रङ्गीली और कुमार के प्रेम का वर्णन प्रारम्भ कर देता है, चतुर्भुजदेव की मूर्ति के आगे रङ्गीली द्वारा हंस के पकड़े जाने की घटना कुमार और रंगीली के पुनः मिलन का कारण बनती है।

प्रबन्ध निपुणता यही है कि जिस घटना का सन्निवेश हो वह ऐसी हो कि कार्य से दूर या निकट का सम्बन्ध रखती हो और नए-नए विशद भावों की व्यञ्जना का अवसर भी देती हो।

कार्यान्वय की दृष्टि से हम पुहुपावती की कथा को आरम्भ मध्य और अन्त तीन भागों में बाँट सकते हैं।

कुमार के जन्म से लेकर आखेट की घटना तक कथा का आरम्भ, आखेट से लेकर समुद्र विषयक घटना तक कथा का मध्य और समुद्र विषयक घटना के उपरान्त दूती के पुनः मिलन से लेकर धर्मराज की परीक्षा तक कथा का अन्त कहा जा सकता है।

आदि अन्त की सब घटनाएँ मध्य अर्थात् पुहुपावती के प्रेम की अनन्यता की ओर उन्मुख हैं और दूती के पुनः मिलन से कथा का प्रवाह 'कार्य' 'पुहुपावती और रंगीली के विवाह तथा रूपवती के मिलन' की ओर उन्मुख हो जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत रचना 'कार्यान्वय' की कसौटी पर भी खरी उतरती है।

सम्बन्ध निर्वाह के अन्तर्गत ही गति के विराम पर भी विचार कर लेना

चाहिए। पुहुपावती में कथा की गति के बीच-बीच, संयोग वियोग नखशिख वर्णनादि के जो वृत्तान्त आए हैं वह गति के विराम कहे जा सकते हैं इनके संयोजन से काव्य में मार्मिक परिस्थिति के चित्रण के साथ-साथ कवि सारे प्रबन्ध में रसात्मकता लाने में भी बड़ा सफल हुआ है।

अस्तु सम्बन्ध निर्वाह और मार्मिक परिस्थितियों की रसात्मक अभिव्यंजना में कवि बड़ा सफल हुआ है।

काव्य-सौन्दर्य

नखशिख-वर्णन

कुमार और पुहुपावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन पूरे एक खण्ड में मिलता है। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि कवि ने जहाँ एक ओर परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है वहीं दूसरी ओर जायसी की तरह उन्होंने रहस्यात्मक संकेत भी किए हैं।

मस्तक की आभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि पुहुपावती का ललाट दुइज के चन्द्रमा के समान था। दूसरे ही क्षण वह कह उठता है कि सूर्य चन्द्रमा भी उसकी आभा की बराबरी नहीं कर सकते, वरन् चन्द्रमा तो उसकी सुषमा को देखकर दिन-दिन क्षीण होता जाता है, उसने इसीलिये शंकर से स्नेह किया। फिर भी उसके ललाट की समता न कर सका।

बरनौ भाल रूप ससि रेखा। सरद समै जस दुइजी रेखा।
दुइजी जोति कहै कहँ बोती। सरवर करै न सुरज जोती॥
पुनि चंद सो देखि लिलाटा। दिन दिन ते आपन तन काटा।
महादेव सन् कीन्हेसि नेहा। मकु लिलाट सम पावो देहा॥
तबहु न जोति लिलाट पै आई। अपने तन की जोति गँवाई॥

मांग के वर्णन में कवि पर विदेशी प्रभाव पड़ा है। फारसी प्रभाव के कारण उसने माग की स्वाभाविक अरुणिमा पर उत्प्रेक्षा करते हुए उसे रुधिर से डूबी हुई खंग की धार से उपमा दी है। भारतीय दृष्टिकोण से ऐसी उपमा जुगुप्सा मूलक है। 'संगे दिल माशूक' की भावना के अनुसार फारसी में ऐसी उपमाएँ बड़ी प्रचलित हैं।

"बरनौ मांग खरग अस नागी। मनहु रुधिर भरी है सांगी॥"

किन्तु इसी अंश की अन्तिम पंक्ति बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। कवि कहता है कि यह मांग की अरुणिमा नहीं है, वरन् ऐसा प्रतीत होता है मानों काली नागिन के फन पर बीर बहूटियाँ एक पंक्ति में बैठी हैं।

'के जनु फन पर बीर बहूटी। एक भांति बैठी जनु जूटी॥'

इसी प्रकार कुचों के बीच वक्षस्थल पर पड़ी हुई हलकी श्याम रोमावलि को देखकर कवि की कल्पना जागरूक हो उठी है और वह कह उठता है कि मानों राजाओं ने आपस में झगड़ा किया है। इसलिए उनके बीच विधि ने बँटवारे की एक रेखा खींच दी है जिसके कारण दोनों अपने-अपने क्षेत्र में शान्तिपूर्वक राज्य कर रहे हैं।

'तेहि मधे रोमावलि कारी। खरगधार मसि लाइ संवारी ॥
के दोउ कुच नृप झगरा कीन्हा। तब विधि लीकि खांचि कै दीन्हा ॥
आधा आध पावो तिन्ह अंसा। तब दोउ राजही जस हंसा ॥

उंगलियों के वर्णन में उनकी कोमलता के साथ हमें उनके प्रति रहस्यात्मक उक्ति का भी परिचय प्राप्त होता है।

अंगुरी पतरी छीमी ऐसी। मेंहदी लाइ लाली ते सानी ॥
नख चमकहि जस मानिक मोती। मुख देखइ जम निर्मल जोती ॥
तेही माथे मह सभ के लिखा बनाइ।
जो अच्छर काहु से कैसेहु मेटि न जाइ ॥

पुहुपावती के अतिरिक्त अन्य दोनों नायिकाओं का सौन्दर्य वर्णन कवि ने नहीं किया है। इसके स्थान पर कुमार का नख शिख वर्णन दूती के द्वारा सविस्तर कराया गया है। किन्तु कुमार के सौन्दर्य वर्णन में 'रहस्यात्मक' उक्तियाँ पुहुपावती के नखशिख वर्णन से अधिक स्पष्ट और विस्तृत रूप में मिलती हैं। जैसे सारा संसार सूर्य और चन्द्रमा सब कुमार की ज्योति से ही ज्योतिर्मय हैं। वह सूर्य के समान है और संसार में जो कुछ भी है वह सब उसकी धूप के समान है। इस अंश में भारतीय दर्शन के बिम्बप्रतिबिम्बवाद की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। जैसे :—

प्रथमहि कच कोमार औ कारी। चोर सेस अली तेही पर वारी ॥
दान वे कोट मेघ की घटा। जस सिव के सीर सोह जटा ॥
× × ×
'बरनत भाल रूप मन लोभा। ससि रवि पावो जेहि ते सोभा ॥
और जहाँ लगि जग मह रचा। वह सुरज सम वोहि को धूपा ॥

इसी प्रकार नेत्रों की उपमा जहाँ वह खंजन, मीन और मृग से देता है, वहीं पुतलियों पर की गई उसकी उत्प्रेक्षा शंकर के 'शून्य' वाद की ओर संकेत करती है।

'सुन्य माह है पुतली-पुतली मह वह जोति ॥
जोती माह सो जोति है जेहि बिनु जोति न होति ॥'

शून्य में ही सीमित परम प्रकाश अथवा ऋग्वेद में आए हुए ईश्वर के अनेक नामों में 'हिरण्यगर्भः' का कुमार प्रतीक है। जिसके गर्भ में प्रकाश करने वाले उर्यादि लोक हैं, और जो प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक का अधिष्ठान है, इससे ईश्वर को 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं (सन्ध्योपासनम् पृष्ठ २३) नासिका का वर्णन परम्परा के अनुसार ही है। जैसे उसकी नाक तोते की चोंच के समान है।

नासिका उपमा देउ केहि जोरा। सुआ खरग इह दुओ कठोरा॥
ओ पुनि वह पंछी वह लोहा। यह तो अद्भुत जेहि जग मोहा॥

किन्तु अधरों के सौन्दर्य वर्णन में वही रहस्यात्मक संकेत प्राप्त होता है।

'अधर मधुर अति छीन सुरंगा। निरखत लज्जित होइ अनंगा॥
जहाँ लगि जगह माह अरुनाई। सबन्ह वहि रंग लालीपाई॥
पान खात मुख पीक जो चुई। तेहिते बीर बहूटी हुई॥
सोइ रदन बदन तुम्र लाभा। लौके बिजुली तेहि के आभा॥'

'सबन्ह वही रंग लाली पाई' में कबीर की 'लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल' वाली उक्ति की जहाँ छाया है वहीं 'लौ कै बिजुली तेहि के आभा' में जायसी का 'हँसत जो देखा हंस भा निर्मल नीर सरीर' की प्रतिच्छाया मिलती है। जायसी ने 'नागमती' के रक्त से बीरबहूटियाँ उत्पन्न की हैं तो इन्होंने कुमार की पान की पीक की लाली से। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जायसी की उक्ति इनसे सुन्दर है। कवि इसी प्रकार कुमार के कपोलों पर के श्रमकणों का गङ्गा-जल की उपमा से विभूषित करता है।

चाउर अछत दसन सोहाई। चंदन खोर कपोल बनाई॥
तेहि पर स्रमजल कैस सोहावा। जनु गंग जल से नहवावा॥'

यहीं नहीं कुमार की ग्रीवा पर पड़ी हुई तीन रेखाएँ उसे एक ओर 'ओम्' की याद दिलाती हैं तो दूसरी ओर कपोलों पर दाढ़ी की श्यामता और 'भीगती' मूछें उसे वेदों की ऋचाएँ जान पड़ती हैं।

'दुओ स्रवन लेइ सोहै दाढ़ी। रेख उठत भीजत मसि गाढ़ी॥
जस मयंक मंह स्याम कलंका। के विधि लिखा वेद के अंका॥'

× × ×

'तीन रेख जेहि कंठ निहारी। भुली हरी हरि ब्रह्म विचारी॥
परगट संख माह सो देखहु। तीनिहु रेख सोऊ करि लेखहु॥'
उपजा आदि सो अछर मूला। जेहि मह कंवल सोरह दल फूला॥

हृदय से लेकर नाभि तक हठयोगियों के अष्टकमल दलों का वर्णन मिलता है—

'मान सरोवर सोहै छाती। जोती हार हंस की पाती
ग्रीव कुच भौरी राजहि कैसन। चक्र भंवर छवि जल मह जैसन॥
हिए धुक धुकी मन कस देखी। जस रवि स्याम गगन मंह पेखी॥
तेहि के मध्य कंवल एक फूला। दल द्वादस मधुकर मन भूला॥
कै दल द्वादस बारह कला। अर्द्ध उर्द्ध गति धारै भला॥

× × ×

'तेहि परि तीन रेखा जो देखा। तीनिउ लोक वो दर मह देखा॥
मही श्रीतु लोक नीक पतारा। ऊपर सरग जहां उजियारा॥
नाभि सुन्य वोहि मधे तेहि मह कौल एक फूला॥
जेहि के जल मह ब्रह्म खोजत हारे मूल॥

उपर्युक्त पंक्तियों में मणिपूरक, अनाहत और विशुद्ध कमलों का वर्णन स्पष्ट हठयोगियों के अनुसार मिलता है। चरणों की उपमा कवि ने नारायण के चरणों से दी है।

'जवन चरन सनकादिक धोवा। जो जल जटा माह शिव गोवा॥
जो पग परसी अहल्या नारी। चढ़ि बेवानु बैकुण्ठ सिधारी॥
जो पग केवट अधम पखार। तरा सौ आपु सहित परवारा॥
बलि के पीठ धरत सो पाउ। गए पताल अमर होइ राउ॥'

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुमार का नखशिख-वर्णन करके 'वाह्य' सौन्दर्य की अभिव्यक्ति न कर उसके 'ब्रह्मत्व' की स्थापना करता है। दूती के द्वारा इस प्रकार कवि ने पुहुपावती को ज्ञान की दीक्षा दिलवाई है।

संयोग-शृङ्गार

तीन नायिकाओं के होने के कारण संयोग-शृंगार के विस्तार का बड़ा क्षेत्र था किन्तु सूफी भावना के 'वस्ल' का प्रतिपादन करने और नाना कष्टों को सहने के उपरान्त नायक और नायिका के प्रथम मिलन का ही चित्र कवि ने अङ्कित किया है। गार्हस्थ्य जीवन के बीच रहते हुए पति पत्नी का जो प्रेममय व्यवहार होता है उसके चित्र कथानक के अन्त में भी देखने को नहीं मिलते। यह संयोग-शृङ्गार केवल 'भोग' प्रधान ही है।

पुहुपावती के प्रथम समागम में तो हावों का थोड़ा बहुत संयोजन मिलता है, स्त्री की सहज स्वाभाविक लज्जा के चित्र भी मिलते हैं किन्तु अन्य दोनों नायिकाओं की रति का सीधा वर्णन प्राप्त होता है जो जायसी के वर्णन से कुछ आगे ही है तथा कहीं-कहीं मर्यादा का उल्लंघन कर गया है।

पुहुपावती की सखियाँ बरबस समझा-बुझाकर उसे चित्रसारी तक ले आईं किन्तु कुमारी का हृदय धड़कता था और प्रेम तथा डर के बीच झूला झूलती हुई वह कभी दो पग आगे बढ़ती तो कभी खड़ी हो जाती थी।

चलै परग दुइ पुनि होइ खड़ी। पीय डर होये धकधकी पड़ी॥
पूछै मुख नहि आवै बैना। भए सजल जल दुनौ नैना॥

इस अंश में भय और व्याकुलता का कितना सजीव चित्रण है। मारे लज्जा और भय के तथा एक अपरिचित को उतने निकट पाकर कोई भी भारतीय नारी सिवा सकुच कर एक ओर दुबक जाने के और कुछ कर ही नहीं सकती।

'पुहुपावती जीत्र चिता बाढ़ी। बैठि पिछौरे घूँघुट काढ़ी॥
हँसि कै कुँवर बात तब भाखा। अब कस कपट ओट कै राखा॥'

'बैठि पिछौरे घूँघुट काढी' में शुद्ध गार्हस्थ्य जीवन की झाँकी मिलती है। आज भी गाँवों में स्टेशनों पर नव विवाहित वधू के बठने की मुद्रा को देख कर कोई भी मनुष्य इस उक्ति की मार्मिकता का अनुभव कर सकता है।

कुमार के छेड़ने पर दोनों में वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। इस वार्तालाप में 'रहस्यात्मक' पहेलियों के बुझाने की पराम्परा का पालन कवि ने किया है। इन पहेलियों के ठीक-ठीक बूझ लेने पर पुहुपावती ने समर्पण किया।

'अब मैं हारी पीव तुम्ह जीता। भा सब अङ्ग तुम्हारे नोता॥
देखत नैन नैनि मिलो गैऊ। दुइ तन महं एक मन भैऊ॥'

इसके बाद कवि ने संयोग शृंगार का अनावृत वर्णन किया है जो सर्वथा मर्यादा का उल्लंघन करता। 'सुरतान्त' में शृंगार की अस्तव्यस्तता का चित्रण न कर कवि ने पति-पत्नी के सहज प्रेम की अनुभूति को और भी तीव्र रूप देने के लिए पुहुपावती से पुरुष की कठोरता पर हलका सा व्यंग्य कराया है जो रस की अनुभूति में सहायक ही नहीं वरन् हृदय कोमलतम तारों को स्पर्श करने वाला है।

'तब बोली पुहुपावती रानी। मुसुकिआइ अम्रिन मुख बानी॥
ये पिव तुम्ह निपट निरदई। अब काहे कीन्हा निठरई॥
ऐसन करा जो हाल हमारी। जानु हम बैरिन तुम्हारी॥
सासति कै सब साज नसावा। जनु हम कहु तोरि चोरावा॥

इस अंश में नव विवाहिता पत्नी की मीठी चुटकी के साथ प्रेम को उद्दीप्त करने की भावना भी सन्निहित दिखाई पड़ती है। उस व्यंग्य से कुमार उसे फिर अपने आक्रोड़ में बद्ध कर लेता है और उलहने का उत्तर उलहने से ही

देता है। दोनों के इस वार्तालाप में प्रेम के गाम्भीर्य के साथ ही साथ मनुहार की भी सुन्दर अभिव्यंजना दिखाई पड़ती है।

'फिरि कै कुँअर नारी उर लाई। एकर उत्तर दीन्ह मुसकाई ॥
जो नारही तौ बैरनी मोरी। काहे लीन्हें मन चित चोरी ॥
प्रेम फांस माला गरनाई। अब पुनि कटक जोरि तु आई ॥

दोनों के एकाकार हो जाने पर कवि की उत्प्रेक्षा सुन्दर होते हुए जहाँ उसमें एक ओर सूफियों की 'बफा' की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है वहाँ दूसरी ओर उसमें प्रकृति तथा पुरुष के प्रतीक शिव और पार्वती का सम्मिलन दिखा कर कवि ने इस रहस्यात्मकता को भारतीयता के गहरे रंग में रंग दिया है।

'आधा कंचन पारस आधा। कुँअर श्याम पुहुपावति राधा ॥
कै जनु सीव सोए कै लासा। गिरिजा कबहु न छोड़े पासा ॥

रंगीली के संयोग शृङ्गार में हावों का कोई संयोजन नहीं दिखाई पड़ता न किसी स्थान पर मार्मिक वार्तालाप ही कराया गया है। उसके समुद्र तट पर मिलने के उपरान्त ही कवि ने रति का वर्णन कर उसे कुमार के साथ उज्जैन पहुँचवा दिया है। कथा की गति में 'रंगीली' की रति केवल लौकिकता से ही पूर्ण है और कामातुरता का ही दिग्दर्शन कराती है, सात्विकता का नहीं।

रूपवती के मिलन में कवि ने लज्जा, संकुच, भय, मान के साथ-साथ किलकिंचित और कुट्टमित तथा विब्बोक हाव को संयोजन किया है।

'तब रूपवन्ती सीस नवाइ। घूँघट काढ़ि कै रही लजाइ ॥
प्रथम समागम कै डर डरी। अङ्ग-अङ्ग छुटो थर थरी ॥
राजकुमार धरी तब बांहा। भीभीक कहेसि मत छुवो नाहा ॥
तुम बालम निरदई निछोही। कै बिआह औ हेरे मोही ॥
जस फनींद कैचुरि तजि जाइ। तसु तुम कंत हमहि बिसराइ ॥
इह कहि पाव गहे जब चाही। बनिगा दाव कुँअर कर माही ॥
दूनो जांघ पर जांघ चढ़ाई। हाथ पकरि लीन्हा उर लाई ॥'

विप्रलंभ शृङ्गार

प्रेम की पीर से परिपूरित इस काव्य में वियोग की नाना अन्तर्दशाओं का वर्णन परम्परा के अनुसार चतुरमासा आदि में प्राप्त होता है। जायसी की तरह विरहावस्था के वर्णन में रहस्यात्मक उक्तियाँ भी प्रस्तुत ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर मिलती हैं।

पुहुपावती यौवनावस्था के प्राप्त करते ही किसी अज्ञात प्रियतम के विरह

में झुलसा करती थी। सुख-सम्पत्ति के सभी साधनों के होते हुए भी वह आकुल-व्याकुल रहा करती थी।

'नाह बिना किछु लागु न नीका। अम्ब्रीत भोजन सो सब फीका॥
चित्त मह विरह प्रेम अधिकाना। छाहै आपन कंत सुजाना॥
भूषन चीर हार उर चोली। बरै आगि लागि जनु होली॥
परम पीर पुहुपावती भेद न जानै कोइ॥
झाकै खोल झरोखा तब कीछु सुख होइ॥'

उपर्युक्त अंश में प्रेम की रहस्यात्मक अनुभूति उसकी पीड़ा तथा आत्मा के सांसारिक वातावरण में रहते हुए भी किसी अज्ञात प्रियतम की लालसा का सूफियों की परम्परा में वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार का वर्णन जायसी ने पद्मावती के सम्बन्ध में भी किया है। पद्मावती रत्नसेन का परिचय प्राप्त करने के पूर्व अपनी सखी से उपयुक्त वर ढूँढ़ने की प्रार्थना करती है।

वाटिका में घूमते हुए कुमार को देख कर पुहुपावती की यह आन्तरिक ज्वाला और भी भभक उठी और वह तुरन्त ही मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर आ रही। सखियों के पूछने पर उसने केवल डर जाने का बहाना किया किन्तु उसी दिन से उसे प्रियतम के बिना सेज सांपिनि के समान और सखियाँ डाइन के समान प्रतीत होने लगीं।

'विरह दगध से जरै अटारी। सेज भई जस सांपिनि कारी॥
काम तेज सुधि बुधि सभ गई। सखो सभै जनु डाइन भई॥
प्रान जाइ प्रीतम संग बसा। विरह भुअङ्ग अङ्ग-अङ्ग डसा॥'

शरीर का सारा सौंदर्य नष्ट हो गया। विरह में जलती हुई कुमारी अपने रूप की छाया मात्र रह गई।

'कुंद बदन अरुन तन गोरा। भवो पीत जनु हरदी चभोरा॥
सीस केस चाहै डस नागा। ससि मुख विरह राहु सम लागा॥
भृकुटि धनुष वरुनि सम सोभा। सोइ उलटि सुर तीन्हहि असोभा॥'

कुमार के खो जाने के बाद तो कुमारी की अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई। संसार की सारी वस्तुएँ उसे दुखदाई हो गईं। वह नित्य प्रति अपने प्रियतम के ध्यान में योगिनी की भाँति समाधिस्थ रहती थी और एक दिन तो उसकी मृत्यु भी हो गई।

'मिलि जन चारि लीन्ह कै खाटी। लेइ चले गति दैवै माटी॥
चलत खाट अलिग सिर भुइ मारहिं। चेरी रोइ बसन तन फारहिं॥'

वियोगावस्था में दशम् अवस्था का वर्णन कर कवि ने सूफियों की 'फना' का संकेत किया है।

इसके बाद कवि ने दूती के द्वारा उसे पुनः जीवित कराकर विरह की तीव्रानुभूति को कवि ने 'पातीखण्ड' में पूर्णरूप से प्रस्फुटित किया है। नागमती की तरह बन-बन में पुहुपावती को भटकाने का अवकाश कवि को नहीं था। इसीलिए दूती के द्वारा प्रेषित पत्र का सहारा लेकर पुहुपावती की मनोदशा का अंकन करना कवि को अधिक सुलभ जँचा। यह पत्र बड़ा सुन्दर और मर्मस्पर्शी है।

प्रिय के विछोह में उसकी स्मृतियों से परिपूरित भवन ज्वाला का एक पुंज मात्र प्रतीत होता है जिससे अवरुद्ध नायिका प्रतिक्षण प्रतिपल झुलसती रहती है।

कंत के गवन मोहि भवन लागो विरह दवन
आगी चहुँ दिस ते धाई है।
कोकिला कूक सुनि लूक हिए लागत है
कीन्ही कहा मुकता ते द्वारे बीसराई हैं।
नैनन्ह के नीर से सरीर चीर भींजि गइ
बिना दुखहरन जी पीर महा पाई है।
चात्रिक की बोली तन गोली सी लागत मोहि
चोली उर जरत मानो होली उर लाई है।

विरह प्रज्वलित काम से पीड़ित पुहुपावती के लिए प्रियतम का स्मरण ही इसके लिए हारिल की लकड़ी बन गया है। कोई केवल उनसे जाकर इतना संदेश कह देता कि विरहिणी ने अपने शरीर रूपी अंगीठी में काम की अग्नि जला रखी है जिस पर स्त्री अपने हाड़ और मांस को जला रही है और जाड़े में ठंढी सेज पर अपने को वह उसी विरहाग्नि के द्वारा उष्णता प्रदान कर रही है। वह नित्य उसी के ध्यान में ही मग्न रहती है।

अंग की अंगेठी मांही अगिनि अनंग बारि।
लागी तपै नारि हाड़ कोइला हिए रहत बुझाइ कै।
नेह की निहाली में बेहाली दुखहरन बिन।
कंपत करेज सेज जाड़न्ह जुड़ाइ कै।
भागन्ह जौ मिलि जाहु कहै प्रान पिआरे तै।
तुम्ह हरील की लकड़ी कै राखौ हिअ लाई कै।'

संयोगिनी नारियाँ चाँदनी रात में सुख का अनुभव करती हैं। दीवाली में

वह प्रिय के साथ जुआ खेलती हँसती-बोलती तथा आनन्द मनाती हैं किन्तु विरहिणी को न चादनी रात में ही सुख है और न किसी त्यौहार में ही।

'सर इंदु अकास उदास सो मो कह लागत हैं जनु अंग लुकारी।
नारी बिरहा नल ते जरई तरई करई दुख की चिनगारी।
सम दंपति आनन्द कन्द करै निसि कन्त के संग खेलत देवारी।
हम खेली दिवारी विदेसी सों प्रीति कै हारो है जोबन सुख जुआरी।'

अन्तिम पंक्ति में लोक-व्यवहार के द्वारा मनोदशा की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

प्रेयसि का शृङ्गार तो प्रियतम के सामने ही सुखदाई होता है। उसके वियोग में शृङ्गार के सारे उपकरण नीरस, सारहीन तथा भयावने प्रतीत होने लगते हैं इसीलिए बिलख कर पुहुपावती लिखती है।

'बन भावो भवन गवन जब कीन्हों पीव,
तन लागे तवन मदन लाइ तापनी।
भुत भवो भुखन वो चुरी चुरइल भइ,
हार भयो नाहर करेजे छुरी कांपनी।
दुखहरन पीव बीनु मरन की गति,
का सौ मैं बरनि कहौ बिथा कहौ आपनी।
फूल भवो सूल मूल कली भइ काटा ऐसी,
रात रकसिनी भई सेज भइ सापिनी।

उपर्युक्त पंक्तियों में भाव-व्यंजना के साथ ही साथ काव्य सौन्दर्य भी बड़ा अनूठा बन पड़ा।

नायिका ने बड़ी कठिनाई से अपने शरीर रूपी भाजन में प्रेम रूपी घृत एकत्रित किया था किन्तु औचक में ही वह ढुलक गया। प्रियतम ! यह छूछा भाजन तुम्हारे बिना निस्सार हो रहा है आकर इस रिक्त पात्र को फिर से परिपूरित कर देना।

'तन कराह जीव पै अवटावो। प्रीति के जोरन दही जमावो॥
मन मथ मन मथ बेजो लीन्हा। मथत कआ जीव माखन कीन्हा॥
बिरहा अगिनि से रखवा घीउ। औचक माह सो ढरिगा पीउ॥
भा भाजन अब तेही बिनु छूछा। पराए वाइ बात के पूछा।"

रूपवती के विरह में प्रकृति के उद्दीपन रूप का अधिक संयोजन किया गया है। पुहुपावती के विरह खंड की तरह इसमें अधिक विस्तार तो नहीं मिलता किन्तु मार्मिकता उससे कम नहीं है।

संयोगिनी स्त्रियों की आनन्द क्रीड़ा और पशु-पक्षियों के दाम्पत्य सुख को देखकर वियोगिनी का हृदय दुख से फटने लगता है।

नारि कंत संग करहि कलोला। देखि सो सुख हिय उठै मलोला॥
नर पशु पंछी कीट पतंगा। दंपति सुख मानहि इक संगा॥
सोधनि झंखै कंत बिनु निसुदिन पंथ निहारि।
बहुरि खोज नहि पीव लियो जेउ तरु पातइ डारि॥

पावस की रात काटे नहीं कटती और विरह का आरपार नहीं दिखाई पड़ता।

"बिजुली चमकै बादर गरजै। सेज अकेली अति ही जिय लरजै॥
चहु ओर बाढ़ो नदि नारा। विरह सूझै वार न पारा॥"

अथवा

"मन तरसै घन बरसै सभ कोई करै धमारि।
पीव पीव रटत रैन दिन भई पपीहा नारि॥"

बड़ी मनोकामनाओं से अपने घर को सजाया था किन्तु बिना प्रियतम के सारा साज फीका पड़ गया।

"नौ जोवन को ठाट कै छाजन छावो नेह।
एक साजन प्रीतम बिना भावै कुंज सम गेह।"

विरहिणी की विक्षिप्तावस्था का चित्र देखिए।

"खिन रोवै खिन सोवै खिन, झंखे पछताई।
जस सरहस कै जोरी उड़ै परै भुइ आइ॥"

जिस प्रकार सुनार बार बार सोने को तपा और बुझाकर कुन्दन बनता है उसी प्रकार वियोगिनी को विरह जलाता और प्रेम अमृत पिलाता है। यही कारण है कि वियोगिनी कभी दग्ध कभी शीतल होती रहती है किन्तु मरती नहीं।

"फिरि फिरि जारि बुझाइ जे जब कुदंन को हेम।
तैसे विरह जरावत अमी पिआवत प्रेम॥"

उपर्युक्त पंक्ति में जायसी की उक्ति "भूजेसि अस जस भूजै भारू" की प्रतिध्वनि है किन्तु विरह दशा की उस मार्मिकता की पूर्ति दूसरी पंक्ति में नहीं हो पाई।

रूपवती के रक्ताश्रुओं से टेसू लाल तथा कज्जल के मिश्रण से घुंमची काली और लाल हो गई है।

रोवत नैन रक्त के धारा। टेसु फूलि बन भा रतनारा॥
काजर सहि बुंद जनु छुटा। आजहुँ स्याम रंग नहि छुटा॥

गुल लाला घुघंची सुठि दुखि। डूबि रक्त माह मै करि मुखी॥
जौ सिगार कोइ बरबस करई। अनिल समान होइ सो जरई॥

इस उद्धरण में नागमती के रुदन के प्रति कही गई जायसी की उक्तियों की स्पष्ट छाया मिलती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि रूपवती के वियोग वर्णन में भाषा की सादगी है किन्तु उक्तियों की मार्मिकता पुहुपावती से अधिक है। उपमानों के संयोजन में जीवन की दैनिक अनुभूतियों का आधार लिया गया है जो भावों को और भी प्रभावशाली बना देता है। कवि ने रंगीली के संयोग-पक्ष का तो वर्णन किया है किन्तु वियोग-पक्ष का नहीं।

भाषा

पुहुपावती की भाषा अवधी है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भाषा के क्षेत्र में कवि ने जायसी का अनुकरण किया है। जायसी की ही भाँति इनकी भाषा में लालित्य और प्रसाद गुण मिलता है। भाषा का प्रवाह थोड़े से शब्दों में गम्भीर तथा भावव्यंजना जो ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है, कवि की असाधारण काव्यशक्ति का परिचय देती है।

छंद

पुहुपावती में कथानक का विस्तार दोहा तथा चौपाई छंद में किया गया है जिसमें आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहे या सोरठे का क्रम पाया जाता है किन्तु कथा के रससिक्त अंशों की मार्मिक अभिव्यंजना के लिए कवि ने कुण्डलियाँ, सोरठा, अरिल्ल तथा कवित्त छंद का भी प्रयोग किया है।

अलंकार

पुहुपावती में उपमा, उत्प्रेक्षा तथा व्यतिरेक अलंकार ही अधिकतर प्रयुक्त हुए हैं।

उपमा

'दसन जोति जस जगमग तारा। दारिम अस देखि रतनारा॥

व्यतिरेक

'बरनो कहा अधर रतनारा। फल बधूक जेहि पर वारा॥
इन्द्र बधू विद्रुम रंग नीका। अधर के आगे लागे रंग फीका॥

फलोत्प्रेक्षा

पुनि बरनो का नैन सुरंगा। मद पीए मत वार कुरंगा॥
धनु सरे देखि मृगा भैखाही। बैनी तीधनु निकट न जाही॥

आन्यापदेश

पुहुपावती सूफियों की साधना-पक्ष का एक आन्यापदेशिक काव्य है। जिसमें तसव्वुफ के सैद्धान्तिक तत्वों का प्रतिपादन किया गया है। अतएव पूर्ण काव्य रहस्यात्मकता का आगार है। प्रबन्ध के बीच प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में दार्शनिक तत्वों की विवेचना और स्पष्टीकरण मिलता है इसलिए पहले इसके रूपक को समझ लेने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

प्रस्तुत रचना में कवि ने जायसी के पद्मावत की 'भाँति' तन चितउर मन राजा कीना' जैसी उक्ति के द्वारा इसे रूपक में परिणित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया है, वरन् प्रारम्भ में ही दूती के द्वारा उसने 'पुहुपावती' को ब्रह्म का प्रतीक घोषित कर दिया है। निम्नांकित वर्णन में 'नूरमुहम्मदी' के साथ-साथ भारतीय प्रतिबिम्बवाद की छाया मिलती है।

ब्रह्म जोति सो लेइ जग साजै। उहै जोति सब ठाउ बिराजै॥
जहा लगि जगमह जोति बखानी। उहै जोति सब माहि समानी॥
वोहि के जोति समै भइ जोति। नहि तो जाति कह अस होती॥
जो सो जोति तुम्ह देखत नैना। बिसरत रस भोजन सुख चैना॥

अथवा

'वह पुहुपावती अदबुद आही। गुप्त प्रेम से देखी ताही॥
परगट भए न देखै पावै। राजा सुनतहि मार डलावै॥'

इस प्रकार पुहुपावती ब्रह्म का स्वरूप या सूफियों का महबूब है और कुमार साधक। जहाँ एक ओर कुमार साधक के रूप में अंकित है वहीं पुहुपावती के लिए वह ब्रह्म का प्रतीक बन जाता है। दूती के द्वारा कुमार के नखशिख वर्णन में यह बात बड़े स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई है जिसका अन्तिम अंश विशेष उल्लेखनीय है।

जवन चरन सनकादिक धोवा। जो जल जटा माह सिव गोवा॥
जो पग परसी अहेल्या नारी। चढ़ी बेवानु बैकुंठ सिधारी॥

राजा की फुलवारी में रहने वाली मालिन दूती गुरु है, अथवा वह सूफियों का पीर है, वह कुमार को प्रेम के पंथ पर चलने के लिए प्रेरित और अग्रसर करती है।

कुंअर सुनत दुती मुख बाता। भा चित चेन हेत के राता॥
आइ मिला गोरख गुर भारी। छुटि के भरथरी के तारी॥
गुर कहि चीन्हि पांव लेइ परा। रावै लागु बिरह दुख जरा॥

दूती के साथ ही कुमार पुहुपावती से मिलने चलता है। धर्मपुर में दूती के ही कारण वह उस नगर के चारों द्वारों को पारकर पुहुपावती के स्वयम्बर में पहुँचता है।

रंगोली और रूपवती पहले तो माया के रूप में अवतरित होती हैं जो कुमार को अपने वश में करके उसे 'पुहुपावती' के पंथ से विलग करना चाहती हैं। यद्यपि कवि ने उनके इन प्रयत्नों का वर्णन कहीं नहीं किया है किन्तु कथा का संविधान इस ओर इंगित करता है। आगे चल कर यह सिद्धियों का रूपान्तर बन जाती हैं और कथा के अन्तिम खण्ड में इड़ा और सुषुम्ना नाड़ी का कवि ने वर्णन करते हुए कहा है कि—

'तीन महल तेहि माह बनावा। स्याम स्वेत औ अरुन देखावा॥
सेत महल रूपवन्ती लीन्हा। स्याम महल रंगीली दीन्हा॥
अरुन महल पुहुपावती पावो। दुनौ महल के बीच बनावो॥
तिन्हके संग अनेक सहेली। सबै सरूप अनुपम बेली॥
राजकुमार सखन मह कैसा। तारन मह चन्द्रमा जैसा॥

हठयोगियों के अनुसार 'इड़ा' में अमृत और 'पिंगला' में विष का प्रवाह होता रहता है। अमृत का रंग श्वेत होता है और विष का काला अथवा श्याम। इसलिए रूपवती इड़ा और रंगीली पिंगला नाड़ी है। निर्गुनियों में कभी-कभी यह गंगा-जमुना सरस्वती के नाम से भी अभिहित की गई हैं इसलिए 'पुहुपावती' सुषुम्ना नाड़ी हुई क्योंकि कवि ने उसे अरुण महल की अधिष्ठात्री बताया है। यह रूपक 'तिन्ह के संग अनेक सहेली' से और भी स्पष्ट हो जाता है। इनसे सम्बद्ध नारियाँ शरीर की नाड़ियाँ कही जा सकती हैं। आखेट की शेरनी और बेगमपुर में मिलने वाला 'दानव' शैतान है उसी के कारण गुरु और शिष्य में विछोह हुआ और पुहुपावती के मिलने में कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं।

रूपवन्ती की मैना भी गुरु का ही प्रतिरूप है। पुहुपावती मैना की बातें सुनने के उपरान्त कहती है—

'नागमती कँह जस मासूआ। एही मैना कह सो गुन हुआ॥

अनूपगढ़ और 'चित्रसारी' सहस्राढ़ कमल, हृदय एवं स्वर्ग के प्रतीक हैं। अनूपगढ़ के लिए कवि कहता है।

पुनि गै देखेसि कोट अनूपा। धौलागिरि परवत के रूपा॥
दस दुवार बावन कंगूरा। निसुदिन गढ़ पै बाजै तूरा॥
संख औ घंट भेरी सहनाई। बाजत नौबत सुनत सोहाई॥

नदी बहत्तर गढ़ मह बहई। पांच पचीस पहरीआ रहई॥
सात खंड ऊपर सब रावा। सात खंड पुनि हेठ बनावा॥

ऐसे ही चित्रसारी का परिचय देता हुआ कवि कहता है।

'कुअरहि आइ सखि सब लेइ तेहि ठाउ।
सात धरौहर ऊपर चित्रसारी जेहि नाउ॥

इन स्थानों और पात्रों के अतिरिक्त पुहुपावती में सूफियों के चारों अवस्थाओं और स्थानों का भी बन्धन बाधा गया है।

सूफियों के लिए अल्लाह की आर्श कुर्सी हृदय में है बाहर या बिहिश्त में नहीं। उसे पाने के लिए किसी मेंदिए (मुरशिद) का होना परमावश्यक है। सूफी इस मत को शरीयत (कर्मकाड) से भिन्न मानते हैं। उपासक को जब शरीयत में संतोष नहीं मिलता तब वह किसी जानकार के पास पहुँचता है। मुर्शिद उसकी लगन देखकर उसे मुरीद बना लेता है और एक निश्चित मार्ग का उपदेश दे उसे पथ पर चलने की अनुमति दे देता है। शरीयत को पार कर वह तरीकत के क्षेत्र में पहुँचता है। तरीकत की अवस्था में उसे अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध करना पड़ता है। जब वह इस क्षेत्र में सफल हो जाता है तब उसमें 'म्वारिफ' का आविर्भाव होता है और परमात्मा के स्वरूप की चिंता आरम्भ हो जाती है। तब वह हकीकत के क्षेत्र में पहुँचता है। 'हकीकत' में पहुँचने से प्रियतम का संयाग मिलता है और वह धीरे धीरे वस्ल से 'फना' का दशा में पहुँच जाता है।

सालिक (साधक) को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कतिपय भूमियों को पार करना पड़ता है। सूफी उन्ही को मुकामात कहते हैं। चितवृत्तियों के निरोध से प्रज्ञा का उदय होता है और वह म्वारिफ के मुकाम पर पहुँचता है। म्वारिफ से वह 'हकीक' की भूमि पर पहुँचता है। यहाँ उसे हक का आभास होता है। इस प्रकार तसव्वुफ के मुकामात क्रमशः इश्क जहद, म्वारिफ, हकीक वस्ल एवं फना हैं। इन्हीं को तसव्वुफ की सप्तभूमयः कहते हैं।

विचार करने से पुहुपावती का कथानक भूमियों का संकेत करता है। दूती कुमार को सौन्दर्य वर्णन द्वारा ज्ञान देती है और कुमार योगी के रूप में फुलवारी में तीन दिन तक उसके स्मरण में तल्लीन रहता है। यह अंश शरीयत और तरीकत तथा म्वारिफ की अवस्थाएँ कही जा सकती हैं। कुमार और पुहुपावती का बाग़ में मिलना हकीकत की अवस्था है।

आदि खण्ड में कवि ने इस साधना पद्धति को बीज रूप में अङ्कित किया

है, अहेर खगड में यह बीज कथा की घटनाओं के बीच पुष्पित पल्लवित होता हुआ अन्त में इक की पूर्णता को प्राप्त करता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत रचना जायसी से बहुत अधिक प्रभावित है और इसकी कथावस्तु में सूफी भावधारा आदि से अन्त तक प्रवाहित दिखाई पड़ती है।

रहस्यवाद

शृंगार वर्णन रूपक और कथा के उपदेश में सूफियों की साधना पद्धति और रहस्यवादियों की उक्तियों का परिचय हमें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो चुका है। इस काव्य में ये उक्तियाँ इतनी भरी पड़ी हैं कि उनका संकलन करने में एवं उनके स्पष्टीकरण में एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी जा सकती है। कोई पृष्ठ ऐसा नहीं जो इससे सम्बन्धित न हो। समय और स्थानाभाव के कारण यहाँ संक्षेप में हम कतिपय बिखरी हुई रहस्यवादी उक्तियों को संकलित रूप में रखने का प्रयत्न करेंगे।

बिना गुरु के मनुष्य ज्ञान नहीं पा सकता वह चाहे जितना प्रयत्न क्यों न करे।

रे मन हेरत का तेहि पावो। जौ लगि गुरु न पंथ दिखावा ॥
तौ लगि मिलै न प्रान पीआरा। केतीको रौवै करै पुकारा ॥

संसार में लिप्त और सांसारिक रसों का भोग करता हुआ मनुष्य कभी भी ईश्वर की याद नहीं करता केवल दुख में ही उसे परमात्मा की याद आती है।

जौ लगि करहि केलि रस भोगू। तौ लगि सुमिरद करै न लोगू ॥
जबहि कोई किछु दुख पावै। तबही सो प्रभु कह गोहरावै ॥

इसीलिए दुखहरन जी मनुष्य से प्रार्थना करते हैं कि सारी माया ममता को छोड़कर केवल उसी परमात्मा का चिंतन करो, वही सबका रक्षक है, वही भक्ति और मुक्ति का देने वाला है। निम्नांकित अंश में उपर्युक्त भाव के अतिरिक्त भक्तिवाद भी प्राप्त होता है।

दुखहरन तजि धन्ध जग सुमिरु सोइ करतार।
दुख मह हरि सुख दायक जुगुति मुकुति देनीहार ॥

सांसारिक ऐश्वर्य और सुख में रहते हुए भी जागरूक आत्मा व्याकुल रहती है। उसे तभी सन्तोष मिलता है जब वह अपने अभ्यन्तर की ओर दृष्टिपात कर अपने ही मन की खिड़की खोल कर सुख के साधन की खोज अपने में ही करती है। इसी भाव को लेकर कवि कहता है कि पुहुपावती जिस समय खिड़की खोल कर झाकती थी उसी समय उसे कुछ संतोष प्राप्त होता था।

'परम पीर पुहुपावती भेद न जानै कोय।
झाकै खोल झरोखा तब किछु सुख होय॥'

पुहुपावती ने इस प्रकार से तो कुँवर के दर्शन कर लिए किन्तु कुमार की झुकी हुई दृष्टि ऊपर की ओर न उठी और वह उसके दर्शनों का लाभ न उठा सके।

ऊपर द्रिस्टि सो पहुँची नाहीं। जाकर ऐस फूल परिछाहीं॥
हेरत अरध समै कह सूझा। उरध क भेद न काहुव बूझा॥

उपर्युक्त अंश में भारतीय प्रतिबिम्बवाद के अतिरिक्त मनुष्य को संसार की मोह माया से मुड़ कर परमात्मा की ओर ध्यान लगाने का उपदेश दिया गया है। इसी भाव-धारा को कवि ने दूसरे स्थान पर भी प्रस्फुटित किया है। दूती से ज्ञान पाकर कुमार के ज्ञानचक्षु खुल गए और उसने दूती से प्रार्थना की कि वह उसे साधना का सच्चा रास्ता बताए।

'धरम चरित्र अन्ध के बूझा। उरध की जोति अनगामी सूझा॥
अब वह जाति मिले मोहि कैसे। देहु पंथ पावो तेहि जैसे॥

दूती कमार से कहती है कि वह जोति हृदय में ही निवास करती है लेकिन चर्म-चक्षुओं से देखी नहीं जा सकती।

वसै जोति सो हृदे माहीं। इन्ह नैनन फिर देखो नाहीं॥

हठयोगियों की साधनापद्धति का परिचय भी इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। कुमार के वियोग में पुहुपावती ध्यानस्थ योगी के समान रहती थी।

'चीर शरीर भई जनु कंथा। धरै ध्यान तीजो वै पंथा॥
सांस सुमरिनी सुमिरै नाउ। मन माला फेरहि अठाउ॥

निर्गुणियों के यहाँ विशेष कर कबीर पंथियों की परम्परा में गिनती के अंकों का भी रहस्यात्मक अर्थ होता है। उसका परिचय हमें रति 'वस्ल' के पूर्व पुहुपावती द्वारा पूछी गई पहेलियों में प्राप्त होता है।

प्रश्न—'पीव तुम्ह चौपरि खेल बतावा। गंजीफा कस नाहि सिखावा॥
सुरज चाँद उगहीं दिन राती। केहि कारन भ वद अजाती॥
तज दिए सिर राजा होई। पुनि कुमाच तन पहिरै सोई॥
दुल्हा होइ बरात सवारे। गहि तरुअरि सो का कह मारे॥
कौन चंग है कैसन डोरी। यह संसै पीव मेटहु मोरी॥
बास चंग हम रंग जो खेलहु। कह जानि के सख मेलहु॥
एक से चारिउ दस ले लावहु। दस से एक सो काहे ले आवहु॥

उत्तर—सुनहु गंजीफा तुम्हहि सुनावों । आसन हुकुम जो माँगा पावहुँ ॥
बास चंग खेले सम कोई । हम रंग खेल हम रंग होई ॥
दुवो नैन जस सुरज चंदा । भा अजाति मन प्रभु कर बंदा ॥
सिर ऊपर से ताज उतारी । तजी कुमाच भा भेख भिखारी ॥
मन तुह भा प्रेम बराती । काम की खरग हतो बिरहागी ॥
पौन की डोरि चंग है काया । तुअ भइ मम सखा भाया ॥
एकै चीत दसौ दिसि जाई । पुनि सो एक पर बैठा जाई ॥
अङ्ग कुमात बरात रवि, एक से इन्हें चढ़ाइ ।
ताज खरग औ दास ससि, दस से इन्हे लड़ाइ ॥

इस प्रकार पुहुपावती का रहस्यवाद जायसी से लेकर कबीर और मलूक-पंथियो के विविध दार्शनिक तत्वों एवं अन्य निर्गुणियों के विश्वासों के समन्वय से निर्मित हुआ है जो उस समय की धार्मिक पृष्ठभूमि को प्रतिबिम्बित करता है ।

नल-चरित्र

—कुँवर मुकुन्द सिंह कृत
रचनाकाल सं० १७६८
लिपिकाल सं० १७४०

कवि-परिचय

श्री रामचन्द्र शुक्ल 'रसाल' ने मुकुन्द सिंह हाड़ा का परिचय अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में देते हुए लिखा है कि यह कोटानरेश थे। और इनका जन्म सं० १६३५ में हुआ था। इनके अतिरिक्त उनके इतिहास में तथा अन्य किसी इतिहास में इनका परिचय नहीं प्राप्त होता। इनके नल-चरित्र के अन्त: साक्ष्य से हमें इनकी वंशावली का कुछ परिचय प्राप्त हुआ है जो इस प्रकार है—कुँवर मुकुन्द सिंह के पूर्वज बाघदेव थे। बाघदेव की वंशावली में रुद्रसिंह जी के आप सबसे छोटे पुत्र थे। इनके जीवन के विषय मे केवल इतना ही परिचय प्राप्त हो सका है।
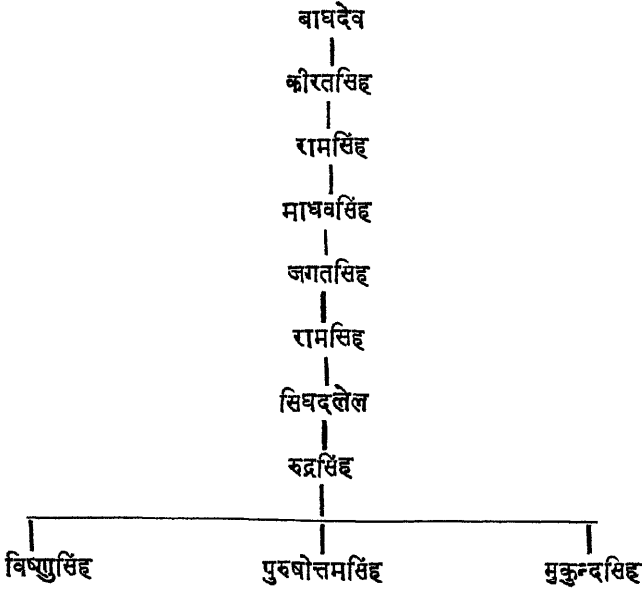
उपर्युक्त वंशावली की पुष्टि नल-चरित्र में दिए गए कवि के स्वपरिचय से होती है।

प्रथमहिं निज वंसावली कहिहौं मति अनुमान,
तहि वंसन्ह में आदिहीं बाघ देव जगजान।
ता सुत कीरत सिंह नृप कीरति ससि सम जासु,
राम सिंह तिनके तनय जसु जस जगत प्रगासु।
तासु तनय विख्यात महि माधौसिंह महीप।
जगत सिंह पुनि तासु सुत भए वंश कुलदीप,
ता सुत नै कुल भानु हिमत सिंह से नाम तसु।
रामसिंह पुनि जानु तसु सुत भए विख्यात माँह,
तासु सुत सिंघ दलेल नृप जसु जस भरी संसार।
ससि सम गंगाधार सम मुक्ता सम घन सार।
रुद्र सिंह ताके तनै भए राजर्षि समान,
ध्रुव सम कै प्रहलाद सम जनक सरिस कै जान।
तिनहि तनय भए तीन विष्णुसिंह नृप जेठ तंह।
सब गुन भए प्रवीन जसु बुधि तसु को कहि सकै।
पुरुषोत्तम सिंह मध्य तसु जसु जस जगत प्रकास,
छोटे मुकुन्दसिंह तिन तसु एह कथा प्रगास॥

कथावस्तु

प्रस्तुत कृति की कथावस्तु महाभारत के अनुसार है। कवि ने युधिष्ठिर के स्थान पर इस कथा को नारद के द्वारा श्री रामचन्द्र जी को अवरषण वन में सीता के बिछोह के समय सुनवाया है।

यह रचना सूफी ढंग का एक सुन्दर काव्य है जिसमें लौकिक और अलौकिक प्रेम के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कवि ने नल और दमयन्ती की प्रेम कथा को आन्यापदेशिक काव्य के रूप में उपस्थित किया है। काव्य के अन्त में कवि ने स्पष्ट लिखा है कि—

दमयन्ती नारी सती, नल नृप पुन्य स्लोक।
कर्कोटक रितुपर्न जो, पुरु अवध जस ओक॥
कलिके दोस नसावइं, पावै मंगल छेम।
पुन्य बढ़ै पातख कटै, जो सुमिरे करि नेम॥

सूफियों से प्रभावित होने के कारण इसमें प्रेम के लौकिक रूप की प्रधानता के अन्तर्गत पारलौकिक प्रेम के दर्शन होते हैं। अपने ध्येय को स्पष्ट करने के लिए

कवि ने कलि के फौज के द्वारा उच्चरित नारों में लौकिकता का स्पष्टीकरण किया है। इस पृष्ठभूमि में नल और दमयन्ती के रति वर्णन को सात्विक प्रेम का प्रतीक अंकित कर सूफियों के इश्क हकीकी और वस्ल को स्पष्टतर बनाने का प्रयत्न किया गया है। इसी प्रकार दमयन्ती के नखशिख वर्णन में जहा नारी का स्थूल और मांसल आकर्षण प्रधान है वहीं स्थल-स्थल पर अलौकिक रूप के दर्शन भी होते हैं। दमयन्ती का नखशिख वर्णन एक ही स्थान पर न मिलकर कई जगह मिलता है। स्वयंवर के समय सजी हुई दमयन्ती के रूपवर्णन में अलौकिकता प्रधान है और मांसल रूप गौण। ऐसे ही दमयन्ती के महल में अदृश्यनल ने जो अनुभव प्राप्त किए या स्त्रियों की जो चेष्टाएं देखीं उनमें कवि ने सांसारिक माया का ही चित्रण किया है। यह अंश नितान्त सुन्दर और आकर्षक है। इन मायावियों के प्रभाव से बचते और भागते हुए नल को दमयन्ती के दर्शन अन्त में हुए थे। जिसे देखकर नल मोहित हो गए। दोनों ने एक दूसरे की छाया का स्पर्श किया और आनन्द से गद्‌गद् हो उठे यह आत्मा और परमात्मा का प्रथम साक्षात्कार था जो स्थूल न होकर सूक्ष्म अति सूक्ष्म था। इस साक्षात्कार के उपरान्त नल को दमयन्ती की और दमयन्ती को नल की प्राप्ति हुई। कथा के इस संयोजन में कवि ने इस प्राचीन गाथा को नूतन बना दिया है।

मसनवी शैली में रचित होने के कारण, यद्यपि इसमें शाहे वख्त की वन्दना प्राप्त नहीं होती, कवि ने निज गुरु-ब्राह्मण आदि की वन्दना की है और अपना वंश-परिचय भी दिया है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन में कवि ने दो शैलियों को अपनाया है। एक में उसने उसका बाह्य सौन्दर्य परम्परागत उपमानों और उत्प्रेक्षाओं के द्वारा व्यंजित किया है और दूसरी में उसने दमयन्ती को अलौकिक नारी, ब्रह्म का स्वरूप, अथवा वेद और स्मृतियों के साकार रूप में अंकित किया है। पहले वर्णन में लौकिक पक्ष प्रधान है तो दूसरे में रहस्यवादी। इस स्थान पर दमयन्ती के लौकिक सौन्दर्य का ही परिचय दिया जाता है। रहस्यवाद के अन्तर्गत उसके दूसरे रूप की विवेचना की जाएगी।

तत्कालीन काव्य परिपाटी के अनुसार कवि ने दमयन्ती के नखशिख वर्णन में कवि-समय सिद्ध उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का उपयोग किया है। जैसे उसका

मुख कमल के समान नहीं कहा जा सकता वरन् उसकी शोभा उससे भी बढ़कर है। क्योंकि दमयन्ती के सौन्दर्य को देखकर कमल शर्म से पानी में जा डूबे हैं।

मुख समय कमल भए नहि जाते। दुरे लजाए मनहु जल ताते॥

अथवा उसकी भौंह कामदेव के समान सुन्दर है या झुलसे हुए कामदेव के दो टुकड़े कर शिव ने दमयन्ती की भौंहें बनाई हैं।

कामहि भसम किए सिव जबही। रहेउ स्याह मैनु तन तबही।
रिसतें दुई खंड तहि किएउ। तनु सो इनके भ्रकुटि दिएउ॥

उसके लम्बे सटकारे बाल ऐसे मालूम होते हैं मानो शशिमुख के उदित होने के उपरान्त रात्रि का अन्धकार पीछे जा छिपा हो।

पूरन राका ससि समान मुख निरखत। नल द्रिग माह भयउ सुख।
कच अति सघन स्याम लहकाने। मनहु कहूँ तिथि तम विस्तारे॥
मुख ससि सरिस उदय जब भयउ। कुच तम भागि पीठि दिस गयउ॥

उसके अरुण अधरों में मानों संध्या दुबक कर रह गई है, दन्तावली की शोभा शशि किरणों के समान आकर्षक है।

अधर सुघर दमयन्ती केरा। संध्या सरिस छवि हेरा॥
संध्या राग अधर अरुनाई। रद दुति जनि ससि किरनि निकाई।

ठोडी पर पड़ा हुआ छद ऐसा मालूम होता है मानो ब्रह्मा की उँगली का निशान है जो उसके सौन्दर्य को निरखने के लिए ठोडी को पकड़ कर मुँह उठाते समय पड़ गया था।

उसके वक्षस्थल पर का मांसल भाग ऐसा प्रतीत होता है मानो दमयन्ती के लावण्य सरोवर में 'बालस्वरूप मदन ने तैरना सीखने के लिए दो कुम्भ डाले हों अथवा वह चकवा चकवी हो या सुन्दर कंचन के लड्डू हों।

दमयन्ती लावन्य सरोवर। बाल रूप मनहूँ पञ्च सर॥
तैरन सीखत है सो हठ धरि। दमयन्ती कुच दुइ कलसि करि॥
पुनि चकवा चकई जुग जैसे। सोहत जुगल पयोधर ऐसे॥
कै जुग कंदुक मंजुल लोने। मढ़ेउ धौ काम सुर करि सोने॥
कैधौं है एह जुग लडु धौरे। मदन विवेदित अमृति बौने॥

मध्य उदर के नापने के लिए विधि ने मानो उसे मुट्ठी से पकड़ा था इसी कारण पड़ी हुई सिकुड़न ने त्रिवली के रूप में सुशोभित हो रही हैं।

मध्य उदर परमान वित, धरेउ मूठि विधिजान॥
तीनि रेख सोइ सोहइ तृवली ताहि बखान॥

कटि के नीचे के प्रदेश पर कवि ने बड़ी सुन्दर उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का व्यवहार किया है।

ललित नितम्ब वर्तुलाकारा। मनहुँ विधि निज पान सवारा॥
रवि रथ एक चक्र विधि मानो। सीखन हेतु बनाए जानों॥
लहि सिक्षा तब स्रोत बनाए। कांचो सहित महा छबि छाए॥
रंभा सम जंघा जुग सोहैं। जातरूप के मनहु रह्यो हैं॥
जलज जुगल रवि व्रत मन लाई। करै बहुत दिन तप सो राई॥
दमयन्ती पग समता नाहीं। भए लजित भौम मन मांही॥
डूब गै जल लज्जा मानी। अतिहि हलुक तिन्ह कह जल जानी॥
डुबै न दीन्ह दीन्ह उतराई। बहु विधि सांसति तिह पाई॥

इतनी सुन्दर दमयन्ती नीली साड़ी में और भी खिल उठी है।

सारी नीली जरकसी सोहै। तहि पर तन गुराई उमगो हैं॥
नील झीन बादर तर जैसे। आतप बाल प्रभाकर कैसे॥

नीले झीने बादलों के बीच से बाल रवि की फूटती हुई किरणें जिस प्रकार सुशोभित होती हैं उसी प्रकार दमयन्ती मालूम होती थी। कवि की कोमलानुभूति और अभिव्यञ्जना शक्ति का यह सबसे सुन्दर उदाहरण है। उपर्युक्त अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने नख-शिख वर्णन में कवि-परम्परा का तो अनुसरण किया है किन्तु उसकी उपमाएँ तथा उत्प्रेक्षाएँ अनूठी बन पड़ी हैं।

संयोग-शृंगार

दमयन्ती ने जिस दिन से नल के सौन्दर्य की बात सुनी थी और उसपर रीझी थी उसी दिन से वह संयोग सुख का मानसिक अनुभव करने लगी थी। नल के चित्र को अपने हृदय से लगा कर अपनी तपन शान्त करती थी और रात्रि को स्वप्न में उसी का रूप-पान किया करती थी।

निसि में उनके मिलन सुख पावहि सपना मांहि।
सोए घरी निज लेखही जागत कै अकुलाहि॥

यही कारण था कि वह किसी भी समय अपनी आँखें नहीं खोलती थी।

नल के बिछुरन के डर जानी। नाहि उघारत पलक सयानी॥
जागत हूँ में सोए रह ही। नल के मिलन आन कछु न चहही॥

यह मानसिक सुखानुभूति विवाहोपरान्त वास्तविकता के स्तर पर उतरी। सखियों के द्वारा नल के पास पहुँचाए जाने के बाद वह प्रथम समागम के भय से डरने लगी। इस स्थान पर कवि ने किलकिंचित हाव का संयोजन किया है।

सखी सकल गृह ते निकसानी। तब दमयन्ती अति डरपानी॥
चंचल कीन्हें नैन जुग ऐसे। बधिक देखि खंजन गति जैसे॥

राजा ने जब हँस कर उसे हृदय से लगा लिया तब यह क्षणिक घबड़ाहट उत्साह में परिणत हो गई और दोनों आनन्द में तल्लीन हो गए। इसके उपरान्त कुट्टमित हाव पाया जाता है।

नाहि नाहि करै डरै सो वाला। त्यों त्यों रभस भरहि महिपाला॥
िहसि नैन के कोर चिनाई। मनहुँ इसारा सो नृप पाई॥

विप्रलम्भ-शृङ्गार

हंस के चले जाने के उपरान्त दमयन्ती विरह से पीड़ित रहने लगी। विरह सौन्दर्य का काल होता है इसलिए वह सुन्दरी नल के वियोग में अपनी छाया मात्र रह गई थी।

जंघ जुगल कृसता अति लहई। मरुथल के कदली जनु अहई॥
जो कर तकि तव कमल लजाई। भागि रहे जल में सो जाई॥
सो कर को अब कमल हसाई। विरह ते अतिहि छीन द्युति लसाई॥

नल जब उसे सोती छोड़ कर चले गए तब तो उसके दुख का वारपार न रहा वह बन में भटकती-कलपती नल का नाम रटती हुई घूमती थी।

धर्म शास्त्र नीके तुम जाना। सतवादी को तोहि समाना॥
जीवन धन अरु प्रान हमारा। मम गति तुमहि एक भुआरा॥
निद्रा वस सो मोहिका त्यागी। गएउ मोहि जानि अभागी॥

उसे विश्वास नहीं होता कि उसका प्रियतम इतना निष्ठुर हो सकता है इसलिए वह कहती है।

प्रानेश्वर तुम छिप रहेहु, जान परेउ एह मोहि॥
कसहु प्रेम कस माँह मोहि। इहै हेतु मनु तोहि॥

चकित और चिंतित दमयन्ती सोचती है कि वह नल जो तनिक मुझे भी चिंतित देखकर स्वयं दुखी हो जाते थे आज इतने निष्ठुर क्यों बन गए हैं कि मेरे विलाप करने पर भी नहीं आते। वियोगावस्था में 'प्रियपात्र' के व्यवहारों का याद आना स्वाभाविक ही है।

रंचक मोर मलिन मन देखी। होत तुमहि अति सोच विसेखी॥
सो हम रोदन बन-बन करहीं। निर्जन बन तकिकै अति डरहीं॥
तोहि न दया नैकु हृदि होई। तोहि बिनु मोहि अवलंबन कोई॥

पति-परायणा दमयन्ती अपने लिए इतनी चिन्ताकुल नहीं है जितनी कि नल के अकेले रहने की चिन्ता से तड़पती है।

आप सोच मोहि रंच न होई। तुम अकेलहु साथ न कोई॥
सेवा कौन करिहि तुम राई। इहि सोच मम हृदि अति छाई॥
सांझ लगे जब पथ चलि जैहो। छुधा पियासहि अति दुख पैहो॥

उपर्युक्त अवतरण में सीधे सादे शब्दों में भारतीय नारी के हृदय का बड़ा सुन्दर चित्र मिलता है। वह अपने लिए नहीं वरन् अपने पति की चिन्ता में घुल रही है अपने जीवन को धिक्कारती है।

पापी प्रान न तजत तब मो सम अधमा कौन॥
तुअ बिछुरन अस सुनेउ मैं सालै हिये गुन तौन॥

और विक्षिप्तता में गिरि, मृग और खग से नल के विषय में पूछती फिरती है।

हे तउ हे गिरि खग जिते, मृग मैं कहौ निहोर।
गए भूप जेहि बाट में, देहु तकाए से ओर॥

इस प्रकार दमयन्ती के वियोग वर्णन में हमें परम्परागत उत्प्रेक्षाओं, उपमाओं की झड़ी मिलती है और न ऊहात्मक वर्णनों की भरमार। इस वर्णन में जो सादगी है, हृदय के भावों की सीधे-सादे शब्दों में जो अभिव्यक्ति है और एक सती नारी के अकलुष हृदय की जो गम्भीरता है वह इतनी मार्मिक, हृदय ग्राही एवं स्वाभाविक है कि उसके सामने परिपाटी पर चलने वाली कितने ही कवियों की विरहिणी नायिकाओं को संकुचित होना पड़ेगा।

छन्द

संपूर्ण रचना दोहे-चौपाई के क्रम में प्रणीत है जिसमें आठ या सोलह अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम रखा गया है।

अलंकार

अलंकारों में कवि ने सादृश्य-मूलक उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलंकारों का प्रयोग किया है।

भाषा

इसकी भाषा अवधी है। जिसका लालित्य कहीं-कहीं तुलसी की भाषा के समान है।

आन्यापदेश

कुँवर मुकुन्दसिंह का नलचरित्र सूरदास के नलदमन की भाँति एक आन्यापदेशिक काव्य है। जिसमें एक ओर तो सूफियों का प्रभाव परिलक्षित होता है और दूसरी ओर कृष्णकाव्य की माधुर्य भक्ति का। इसमें निर्गुण की भावना उतनी प्रधान नहीं है जितनी सगुण की। दमयन्ती जहाँ ब्रह्म का स्वरूप है वहीं

वेदों, पुराणों की साकार प्रतिमूर्ति और सात्विक प्रेम का प्रतीक एवं उसकी जननी है।

नल गुन सुत तन रुह उठि आवै। सात्विक भाव सकल प्रगटावै ॥
सात्विक भाव जो प्रगट भो, दमयन्ती तन माहि।
गुपुत करन बहु जतन किय, सकी छपाए न ताहि ॥

इसी प्रकार स्वयंवर में उसका नख-शिख वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि दमयन्ती वेदों और शास्त्रों का स्वरूप है।

त्रिबली तीन वेद जसु छाजै। जोतिष शास्त्र दिष्टि जसु राजै ॥
वेद अर्थ रोमावलि जासू। वेद षड्ग भुज सोइ अहहू ॥
सर्व सास्त्र रसना बुध कहई। ... ... ॥

अथवा

है विश्राम स्लोक मंह भुजा संधि सो आहि।
अलकार अद्धेख पद गूंव सुक्र जानहु ताहि ॥

शास्त्रों, मीमांसाओं एवं पुराणों की साकारता का भी दमयन्ती में अवलोकन कीजिए।

अधर सुघर सोई जनि अहई। पुनि जहि सास्त्र मीमांसा कहई ॥
जंघ जुगल सोइ छबि पावै। जुगल भेद तेहु तीय लखावैं ॥
न्याय सास्त्र में तर्क अहै जो। सरस्वती के जानहु रद सो ॥
खोड्स लच्छन है जहि मांही। ओषडसउ दैस जो आही ॥

दो०—मत्स्य और पदुम पुरान जो सोई कर जुग आहि।
धर्म सास्त्र मस्तक अहै प्रणव भौ ह ताहि ॥
प्रनव मांह प्रभु विदु जो रहई। भाल विदु तसु सोइ तनु अहई ॥

उपर्युक्त अंश से यह स्पष्ट है कि इन शास्त्रों की प्रतिमूर्ति दमयन्ती को समझाने के लिए एक गुरु की आवश्यकता है इसीलिए हंस गुरु के रूप में उपस्थित किया गया है। वह दमयन्ती से कहता है।

मोर अवग्यौं करहु जनि पन्छी लखि वरनारि।
हम पंडित सभ जानउ मोहि सिखए मुख चारि ॥

हंस से दमयन्ती नल के प्रेम का प्रत्युत्तर देती हुई कहती है कि मैं नल के हृदय में और नल मेरे हृदय में निवास करते हैं। तुम हम दोनों के बीच माध्यम मात्र हो। अगर तुम हमारा संदेश उन तक पहुँचा दोगे तब हम दोनों के कष्ट का निवारण होगा।

मैं इनके वे मोरि हिदि बसहिं सुनहु मन लाए।
कारन मात्र तु होहु दिज जिहते क्लेस नसाए॥

इसी प्रकार अदृश्य रूप में दमयन्ती के रंगमहल में उपस्थित नल को इन्द्र के दूत के रूप में देखकर जब दमयन्ती चिन्तित होती है तब हंस प्रकट होकर दोनों का परिचय करा देता है। इसी गुरु भावना को कवि ने स्वयंवर में सरस्वती को सखी के रूप में उपस्थित कर पुष्ट किया है। दमयन्ती दिव्य ज्ञान पाने के उपरान्त कहती है।

धन्य बुद्धि बानी के अहई। को इमि बच रचना करि कहई॥
बानी बच दोउ अर्थ बुझाई। मम मन जछ सो बूझि न जाई॥

नल साधक है और दमयन्ती के लिए साध्य भी। दोनों एक दूसरे के लिए आत्मा और परमात्मा के प्रतीक हैं। दमयन्ती के द्वारा भेजे हुए संदेश में निम्नांकित अंश इस बात की पुष्टि करता है।

हे नल नृप मैं सरन तुम, लीन्हों मन बच कर्म॥
जीवन के जीवन तुमही, छाड़े होए अधम॥

कलि सूफियों के अनुसार शैतान का स्वरूप है और भारतीयों के अनुसार पाप का प्रेरक और पोषक है जो सदैव आत्मा और परमात्मा को एक दूसरे से अलग करने में संलग्न रहता है। एक ओर तो इस प्रकार सूफियों के प्रेमाख्यानों का रूपकात्मक संगठन इस काव्य में मिलता है दूसरी ओर 'राम' के शब्दों में यह काव्य कलि के प्रभाव को नाश करने का माध्यम है जिसमें नायक और नायिका निम्नांकित प्रतीकों के रूप में अंकित किए गए है।

दमयन्ती नारी सती नल नृप पुन्य श्लोक।
कर्कोटक रितुपर्न जो उरु अबध जस ओक।
कलि के दोस नसावइ पावै मंगल छेम।
पुन्य बढ़ै पातख कटै जो सुमिरै करि नेम॥

रहस्यवाद

आन्यापदेश की विवेचना और शृङ्गार वर्णन में रहस्यवादी दृष्टि कोण का परिचय दिया जा चुका है किन्तु बीच में ऐसे भी स्थल मिलते हैं जहाँ उस समय की प्रचलित अन्य धार्मिक भावनाओं के प्रतिबिम्ब भी दृष्टि गोचर होते है।

नल चरित का रहस्यवाद सूफी मतावलम्बियों से प्रभावित तो है किन्तु इसमें हठयोगियों की साधना-पद्धति को नहीं अपनाया गया है। शंकर के मायावाद,

वैष्णवों की माधुर्यभक्ति और सूफियों के प्रेम की पीर से इस काव्य की रहस्यात्मक भावभूमि निर्मित हुई है।

कवि ने सूफियों के शरीयत, तरीकत, मारिफत और हकीकत को उतने स्पष्ट रूप में नहीं अंकित किया है जितना कि 'पुहुपावती' में दुखहरन ने किन्तु उनका आभास हमें मिलता अवश्य है।

नल-दमयन्ती के रूप का बखान सुन 'तरीकत' की अवस्था में पहुँच जाते हैं और बाग में प्रकृति के उद्दीपन रूप उनकी इस अवस्था को और भी अग्रसर करते हैं।

तकिए भूप भ्रमर समुदाए। काम बान सम सोभा पाए।
वानत के रव होत अपारा। तिहि विध जानहु भ्रमर गुजारा ।।
हुऊँ के हहै सिली मुख नामा। विरही तन कह दोउ दुख धामा ।।

यह शरीअत की अवस्था नल के दूतत्व तक बनी रहती है। दमयन्ती के मन्दिर में नाना स्त्रियों के कामोद्दीपक प्रभाव से बचने के उपरान्त नल म्वारिफ की अवस्था में पहुँचते हैं। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि म्वारिफ और हकीकत की संक्रान्तिक भूमि इस स्थल पर मिलती है। और स्वयंवर में हकीकत की अवस्था की पूर्णता के उपरान्त वस्ल का प्रस्फुटन हुआ है।

यहाँ कवि वास्तव में सूफियों के वस्ल तथा तान्त्रिकों के 'महासुख' की भावना से बहुत ही अधिक प्रभावित हुआ है। अन्य हिन्दू और मुसलमान कवियों ने रति के पूर्व पहेली अथवा प्रश्न आदि कराकर केवल इश्क हकीकी के वस्ल का संकेत किया है पर उनका वर्णन पूर्ण लौकिक है लेकिन कवि मुकुन्द ने रति-वर्णन में भी अलौकिकता का समावेश किया है। लौकिक के साथ अलौकिक का सामंजस्य रस की पूर्ण निष्पत्ति में सहायक है जो कवि की अद्भुत कल्पना-शक्ति का परिचायक है।

वस्ल का प्रथम आभास ही नहीं संदेश भी दमयन्ती को हंस के द्वारा मिलता है। दमयन्ती की क्षीण कटि और उसके अन्य पुष्ट अंगों को देखकर हंस कहता है—

नल और तुमहि प्रीति जो भएउ। तौलन ताहि काम मन दिएउ ।।
पलरा ससि कह मनहुँ बनाए। रस्मि जासु डोरा जनि लाए ।।
नल नख के जब रेखा लहिहौ। कुच ससि सेषर से छवि गहिहौ ।।

यह वस्ल आगे चलकर निगमागम के समन्वित रूप एवं पूजा-अर्चना की विधि में परिणत दिखाई पड़ता है।

हसि नृप तन ते कंचुकी सारी। करही कर ही लिए उतारी॥
स्वेद भाव सात्विक भावा। पद पछालन मनहु चढ़ावा॥
चुम्बन अधर आचमन सोई। मुख पंकज आमोहित होई॥
गन्ध पुहुप के सम सो भासे। रोम राजि लखि धूप धुआसे॥
नल पाती दुति दीप सरिस छबि। कुच जुग पदुक मनहु नेवज॥
इमि मनसिज कर पूजा नृप नल। करत भए धरि बहु आसन कल॥
जहि मदनय सुर संके कंपित। ठाढ़े सुरत अन्तरिक दंपति॥
तिथि तिर्जक अध उर्ध उताना। समुख विमुख गति सात सुजाना॥
अस मिली जाहि दोउ एक होही। तिय पुरुष लखि परे न कोई॥

सूफियों के इस वस्ल की तुलना बौद्धों की साधना शाखा में 'इकशल्य' वीर के 'कराडु महासेन' तन्त्र में वर्णित सिद्धि की प्राप्ति के साधन से की जा सकती है। उसके अनुसार छः सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए रति प्रधान साधन है इसके बिना वह प्राप्त हो ही नहीं सकती[१]। इस तान्त्रिक भावना का प्रस्फुटित रूप उपर्युक्त अवतरण में दृष्टि गत होता है।

दूसरे स्थान पर भी आत्मा परमात्मा का मिलन सायुज्य मुक्ति और सहस्रार्ध कमल में निहित शक्ति के साथ पुरुष के संयोग को चित्रांकित किया गया है।

---

1. The (ekshalya-vira) Cando-Mahasana. Tantra explains on the one hand the Piatiya-Smutpada according to philosophical doctiines of the Mahayana whilst on the other hand, the cult of Yogins, such as Mahavajri, Prishunvajri etc, and that of female dieties with sexual actions are recommonded . .It is shown how the sex perfections can be attained by means of soxual union. In one passage Bhagvati asks, "O Lord, can the dewlling of Cando Mahasana be attained without woman, or is that not possible? The Lord said that is not possible, O Goddess--" Enlightenment is attained by means of bliss, and there is no bliss without a woman .... I am the son of Maya and I have assumed the form of Cando Mahasana; you are the exalted Gopa who are one with Prajna-Paranita and all woman in the universe are regarded the incarnations of her, and all men are incarnations of myself,

--Winternitz--P, 398 Vol, I.

मेरु धजा सम जासु ऊँचाई। जासु दिविकंह परसाई।
दमयन्ती जुत तहं नल राई। ताहि पर चढ़े हरष अति पाई॥

प्रस्तुत रचना में शंकर के मायावाद का भी प्रभाव मिलता है। इस मायावाद का अंकन कवि ने दो स्थानों पर किया है। पहले कवि के सेना के वर्णन में दूसरे दमयन्ती के मन्दिर में रहने वाली नारियों के वर्णन में। किन्तु दोनों में ही स्त्री के लौकिक आकर्षण को ही प्रधानता दी गई है।

उत्तम वचन तीत अति लागै। परमारथ जिहि देखत भागै॥
मूर्ख सकल सेवक जसु अहही। माया मुगुध सब रहही॥
त्रिय पुत्र और कुटुम्ब जहां लौ। पंक सरिस ऐ अहहि तहां लौ॥

नारी के स्थूल आकर्षण और उसकी मायाविनी शक्ति का परिचय कई स्थानों पर दिया जा चुका है। इस प्रकार हमें इस काव्य के रहस्यवाद में एक ओर सूफी मतावलम्बियों और शकर के मायावाद में विश्वास करने वाले सम्प्रदाय का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर सगुण उपासना की भक्तिपद्धति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। जैसे—दमयन्ती नल के पास सन्देश भेजते हुए कहती है।

हे नल नृप मैं सरन उहि लीन्हों मन वच कर्म॥
जीवन के जीवन तुमहि छाड़े होए अधर्म॥

अथवा

करनामय तेहि कह सम कोई। किमि अधीन पर दया न होई॥
सबै छाड़ि मैं तेहि लव लाई। रज होय रहो चरन लपटाई॥

कथा का अन्त भी इसी भक्ति भावना और स्तुति में होता है। इस स्तुति में रामजी तथा अन्य उपस्थित साधु नारद के साथ भाग लेते हैं।

तब पुनि नारद मुनि भगतेसा। लागे स्तुति करन असेसा॥
तुमही सभ के कारन अहइ। तुमही नीति अनीतिहु गहइ॥
तुमही सर्व मई हहु स्वामी। तुमही हहु प्रभु अन्तर जामी॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तुत रचना का रहस्यवाद सूफियों के इश्क हकीकी, शंकर के मायावाद और तान्त्रिकों के महा सुखवाद तथा सगुण भक्तों के अवतार वाद एवं निर्गुणियों के अद्वैतवाद से निर्मित है जो सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है।

नलदमन

सूरदास कृत
रचनाकाल सं० १७१४
लिपिकाल—

प्रस्तुत रचना की प्रति बंबई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम के क्यूरेटर डा० मोती चन्द एम० ए०, पी० एच० डी० को प्राप्त हुई थी जो फारसी लिपि में है। उनके नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित परिचयात्मक लेख के अनुसार इसकी प्रतिलिपि किसी बाबुल्ला वल्द मुहम्मद जहीर ने की है। इस प्रति की नकल हिजरी सन् १११० यानी बादशाह औरंगजेब के राज्य काल से तैतीसवें वर्ष समाप्त हुई थी। यह प्रति मियाँ दिलेर खां के लिए तैयार की गई थी। प्रति का आरम्भ बिसमिल्लाह रहमानुर्रहीम से हुआ है। इसी प्रति की प्रतिलिपि हिन्दी में टाइप की हुई १६१ पृष्ठ फुलस्केप में नागरी प्रचारिणी कार्यालय में वहां के सहायक मंत्री के पास देखने को मिली थी।

नल दमन की रचना अवधी में हुई है कवि ने इस काव्य को 'पूरबी' अवधी में लिखने का कारण भी लिखा है।

कवि-परिचय

इनका नाम सूरदास था तथा इनके पिता का नाम गोवर्धनदास था। ये कंबु गोत्र के थे तथा इनके पुरखों का निवास स्थान गुरुदास पुर जिले के कलनौर स्थान में था। इनके पिता वहां से जाकर लखनऊ में बस गए थे और यहीं सूरदास जी का जन्म हुआ था।

'सूरदास निज नाउ बताऊँ, गोबरधन दास पिता कर नाऊँ।
कम्बू गोत माछिलै तासू, कलानूर पुरखन कर बासू।
तात हमारो तहाँ सो आवा, पूरब दिशा कऊ दिन छा—
नगर लखनऊ बड़ा सो थानू, रुचिर ठौर बैकुण्ठ ''
मेरे जनम यहैं ठा भयऊ, कलानूर कबही. नहि

दो० यद्यपि अब हूँ परदेसा । पै निज प्रति सुमिरौ सो देसा ॥
जैसे पंथी बसै सराई । मैंहुँ विदेस रहौं तिन्ह नाई ॥

आपके गुरु का नाम रङ्गबिहारी था। रङ्गबिहारी जी स्याम दयाल भटनागर के शिष्य थे। रङ्गबिहारी जी लाहौर के निवासी थे।

अब गुरू देव केर गुन गाऊँ, रंग बिहारी जिन कर नाऊँ ।
और बरनो सो कथा उज्यारी, जग जानी ज्यों रंक बिहारी ।
आदि नगर लाहौर जिन्ह नाऊँ, जनम भूमि उन्हकैं तिन्ह ठाऊँ ॥

इसके अतिरिक्त आपके विषय में कुछ पता नहीं चल सका है।

कथावस्तु

उज्जैन का राजा नल छत्रपतियों में सर्वश्रेष्ठ था। उसका पांडित्य न्याय तथा धर्म प्रियता संसार में विख्यात थी। इसके रूप की उपमा नहीं हो सकती थी 'ब्रह्म रूप जगदीस समाना, जिन्ह देखा सो देखि हिराना'। प्रेम पंथ का वह सच्चा अनुरागी था। रात दिन प्रेमियों की कथाएँ सुन सुन कर रोया करता था। विद्वानों से भी उसका बड़ा प्रेम था। सर्वदा राज सभा में विद्वान आया ही जाया करते थे। एक दिन सभा लगी थी। बात ही बात में प्रेम की चर्चा चल पड़ी और सौन्दर्य की बात छिड़ गई। विद्वानो ने कहा कि सोलह कलाओं से पूर्ण पद्मिनी नारी तो सिंहल द्वीप में ही मिल सकती है। इस पर एक भाटिन से न रहा गया। उसने हाथ जोड़कर कहा कि सिंहल द्वीप में पद्मिनी नारी तो होती है पर जम्बू द्वीप में एक ऐसो नारी है जिसका जोड़ा नहीं है। तदुपरांत भाटिन ने कुंदनपुर नगर तथा वहां की सुन्दरियों के रूप का वर्णन किया। उसने बताया कि राजा भीमसेन को कोई सन्तान न थी। इसलिए वह दुखी रहा करते थे। कुन्दनपुर में तपस्वी आया था राजा उनके दर्शनार्थ गए। ज्ञान चर्चा के उपरान्त राजा को उन्होंने तीन सदाफल दिए और एक जंभीरी नीबू दिया। रानी ने उन फलों को खाया जिसके फलस्वरूप उन्हें तीन पुत्र और एक सुंदर कन्या दमयन्ती उत्पन्न हुई। भाटिन ने पद्मिनी के अपार नख-शिख सौन्दर्य का वर्णन किया उसे सुनकर नल प्रेम और विरह से व्याकुल हो उठे। और राज कार्य से अलग रहने लगे। मन्त्रियों आदि ने उन्हें बहुत समझाया कि आपकी लोग हँसी उड़ाते है इसकी उन्होंने तनिक भी परवाह न की।

इधर नल के प्रेम की अनन्यता और सच्चाई ने दमयन्ती के हृदय में नल के लिए प्रेम जागृत कर दिया। इसमें सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि नल ने दमयन्ती के पास न तो कोई दूत ही भेजा था और न पत्र ही। किन्तु नल के प्रेम ने स्वतः दमयन्ती के हृदय पर प्रभाव डाला।

दमयन्ती भी नल के प्रेम को अपने हृदय में छिपाए विरह से व्याकुल रहती थी। दमयन्ती ने नल का चित्र अंकित किया और सबकी दृष्टि बचाकर वह रात भर उसे देखते-देखते, रात आँखों में ही काट देती थी। दमयन्ती की धाय ने कुमारी की उदासीनता और व्याकुलता का कारण पूंछा, कोई उत्तर न पाकर चुप रही। एक दिन एक सखी ने दमयन्ती को रात में चित्र देखते देख लिया। बात खुल गई और दमयन्ती तब से उस चित्र को रात दिन अपने पास रखने लगी। वह रो रोकर समय काटती थी और कृशांग होती जाती थी। इसे देखकर एक सखी ने सारा हाल पटरानी से कहा। पटरानी ने राजा से सारा हाल बताया। राजा ने स्वयंवर का आयोजन किया। नल भी आमंत्रित किया गया।

इधर भ्रमण करते हुए नारद को दमयन्ती के स्वयंवर का हाल ज्ञात हुआ। और वे इन्द्रपुरी पहुँचे। उस समय इन्द्र के पास यम, वरुण और अग्नि भी थे। सबने दमयन्ती का सौन्दर्य सुना और उसे पाने के लिए लालायित हो गए। इन्द्र अन्य देवताओं के साथ कुन्दनपुर पहुँचे। किन्तु नल के सौन्दर्य को देख कर उन्हें अपने लक्ष्य के पाने में शंका होने लगी अतएव नल के पास पहुँच कर उन्होंने अपना संदेश दमयन्ती के पास कहलवाया। इन्द्र से अदृश्य होने का मंत्र पाकर नल पौरियों की दृष्टि बचाकर दमयन्ती के महल में पहुँचा। दमयन्ती नल को देखकर उनके पैरों पर गिर पड़ी। थोड़ी देर नल एक टक उसके सौन्दर्य को देखते रहे फिर हृदय पर पत्थर रखकर उन्होंने इन्द्र का संदेश कहा। दमयन्ती ऐसी निष्ठुर संदेश लाने के लिए नल को उपालंभ देने और रोने लगी। फिर नल को इन्द्र के शाप से बचाने के लिए उसने कहा कि आप लौट जाइए मैं स्वयंवर में स्वयं आपका वरण करूँगी अस्तु नल से दमयन्ती का उत्तर पाकर चारों देवता नल का रूप धारण कर उसके पास बैठ गए। जयमाल लेकर आई हुई दमयन्ती कई नलों को देखकर आश्चर्य चकित हो गई। फिर ढाढ़स बाँध कर उसने ईश्वर का ध्यान किया और अपने इष्ट को पाने की प्रार्थना की। ईश्वर ने उसकी बिनती सुन ली और आकाश वाणी हुई जिसमें देवताओं के गुण बताए गए। इस दैवी संदेश को पाने के उपरान्त दमयन्ती ने यथार्थ नल का वरण किया। देवताओं ने दोनों को आशीर्वाद दिया और दोनों उज्जैनी आ गए। इन्द्र को स्वयंवर से लौटते हुए द्वापर और कलियुग मिले जो स्वयंवर में जा रहे थे। इन्द्र से दमयन्ती के वरण की कहानी सुनकर कलि को क्रोध आया और बदला लेने की दृष्टि से वह उज्जैनी पहुँचा। धर्म का वातावरण होने के कारण वह प्रवेश न कर पाया।

एक दिन नल सन्ध्या करके बिना पैर धोए सो गए। कलि को मौका मिला और वह पैरों द्वारा नल के शरीर में प्रवेश कर गया। द्वापर ने नल के भाई पुष्कर को जुआ खेलने के लिए प्रेरित किया। नल और पुष्कर में जुआ हुआ। नल हार कर जंगल में भटकते रहे। पक्षी पकड़ने में पक्षी द्वारा उनकी धोती को ले उड़ने की घटना घटी। दमयन्ती को छोड़कर राजा नल चले गए। दमयन्ती अकेले जंगल में भटकने लगी। एक दिन उसे एक अजगर निगलने लगा। एक व्याध ने उस अजगर को मार डाला पर वह दमयन्ती के रूप पर मोहित हो गया। दमयन्ती के सतीत्व के तेज से बलात्कार की चेष्टा में वह जल कर भस्म हो गया। कुछ ब्राह्मणों ने दमयन्ती को चन्देरी नगर पहुँचा दिया।

इधर नल को अग्नि की लपटों में घिरा हुआ एक सर्प मिला जिसने प्राण रक्षा की भिक्षा मांगी। नल ने उसे बचाया पर सर्प ने उन्हें डस लिया। नल सर्प के विष से काले पड़ गए। नल को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ। सर्प ने कहा कि तुम्हारे दुर्दिन जब मिट जाएँगे तब हम तुम्हारा विष खींच लेंगे। इस समय अयोध्या में रितुपर्ण के यहां जाकर नौकरी कर लो। नल ऋतुपर्ण के यहाँ सारथी की नौकरी कर ली।

दमयन्ती के पिता ने नल के दुर्दिनों की सूचना पाकर उनकी खोज में आदमी भेजे। एक ब्राह्मण ने दमयन्ती को चन्देरी में पहचाना। तदुपरान्त दमयन्ती अपने पिता के घर पहुँचीं। कथा का अंत आगे पौराणिक गाथा के अनुसार ही हुआ है। केवल एक अन्तर मिलता है वह यह कि इस कथा के अनुसार नल वृद्धावस्था में दमयन्ती के मर जाने के उपरान्त अपने लड़के को राज्य देकर जंगल में चले गए। और वहीं समाधिस्थ अवस्था में उन्होंने अपना शरीर त्याग किया।

प्रस्तुत रचना मसनवी शैली में दोहे चौपाई के क्रम से रची गई है। इसका प्रणयन शाहजहां के समय में हुआ था। शाहे वक्तकी वन्दना में कवि ने शाहजहां की न्याय प्रियता और उसके ऐश्वर्य का वर्णन किया है।

शाहजहां सुलतान चकता। भानु समान राज एक छता।
दिहली उवा सुरज उजियारी। चहो ओर जस किरन पसारी।

× × ×

न्याव नीत जो प्रानन गाए। सो प्रथम पत कै देखराए।
मऊ सिंह एक घाट पिआए। राव रंक सर कै दिखराए।
रहा न जग अमित कर चिह्ना। बाघ सों बैर अज्या सुत लीह्ना।

ईश वन्दना, स्वपरिचय तथा गुरु वन्दना के उपरान्त कवि ने इस काव्य के लिखने का कारण बताते हुए कहा है कि एक दिन महाभारत में नल-दमयन्ती का प्रेमाख्यान पढ़ते-पढ़ते वह प्रेम की पीर से इतना व्याकुल हो उठा कि उसे तन-मन की सुधि न रही। इस प्रेम की पीर को सारे संसार में फैलने की इच्छा से उसने इस ग्रन्थ की रचना की है।

प्रेम बैन मोरे मन आई। दबी अगिन यह दियो जगाई।
प्रेम उसास पौन सो बारूँ। बार बिरह बाती, घृत डारूं।
प्रकट करूँ जो अलाव जग जानै। जो पेमै सिक कै सुख मानै।
पेम बीज लै पौध लगाऊँ। अति पेमी जन तिन्हति रिझाऊं।
इन्ह बिच पेम खान हिय खोलूं। अबध अमोल बोल जग बोलूं।
बिरह बेद बानी सुख आनूं। सान पेम सौ पेम बखानूं।
और भाठी मद पेम च आऊँ। नल कै कथा सो नल कै लाऊँ।
ऐसो पेम मई मधु डारों। जासों दया पेम पग वारों।
जिन्ह कै बात चाव उपजावै। जो सुन कहै सो उन कहँ जावै।
पेमी पीउ निहार जे चाखत खिन छक जाँह।
एक पियाला प.वै, दोऊ भर अयदाँह॥

महाभारत के आधार पर होते हुए भी इसकी कथावस्तु में कवि ने अपने रहस्यवादी और सूफी दृष्टिकोण के कारण कथा के प्रारम्भ में परिवर्तन कर दिया है। प्रारम्भ में राजा को प्रेमी के रूप में अंकित कर उसने इश्क हकीकी का परिचय दिया है और डोमिन के द्वारा दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन कराकर उसमें प्रेम जाग्रत कराया है। यही नही 'हंस दूत' की प्रचलित कथा को उसने कहानी में कोई स्थान ही नहीं दिया है। उसके स्थान पर कवि ने नल के प्रेम की अनन्यता को ही दमयन्ती के प्रेम का कारण बताया है। दो अपरिचित हृदय भी अनजाने ही प्रेम के सूत्र में बँध सकते हैं यह बताना उसका उद्देश्य था। संम्भवतः उर्दू की इस भावना का कि—

तासीरे इश्क होती है दोनों तरफ जरूर।
मुमकिन नहीं कि दर्द इधर हो उधर न हो॥

कवि पर विशेष प्रभाव पडा है। इस परिवर्तन से कथानक का सौष्ठव तो नहीं बढ़ता लेकिन उसमें एक अलौकिकता और चमत्कारिता तो अवश्य आ गई है। कथानक का अन्त तो सर्वथा नवीन है। दमयन्ती की मृत्यु और राजा नल का सन्यासी होकर निकल जाना तथा समाधिस्थ अवस्था में उनका शरीरान्त वर्णन किसी भी अन्य काव्य में नहीं मिलता। आरम्भ और अन्त की नवीनता

इस काव्य में रहस्यवादी वातावरण को गंभीर बना देती है और लौकिक प्रेम में अलौकिक के आभास को स्पष्ट कर देती है साथ ही वह हिन्दू दृष्टिकोण की परिचायक भी है। दमयन्ती परमात्मा का प्रतीक नहीं है और न नल ही साधक के प्रतीक हैं। नल के हृदय में स्वाभाविक प्रेम लौकिक स्तर से होता हुआ पारलौकिक में सीमित होता है। गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए भी धर्म, काम और मोक्ष का समन्वय किस प्रकार हो सकता है यह काव्य उसी भावना का प्रतीक है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख-वर्णन

काले सटकारे बाल कवियों के लिए विशेष आकर्षक रहे हैं और इन पर उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगाना और दूर की कौड़ी लाना प्रत्येक कवि की परिपाटी रही है। नख-शिख वर्णन में प्राचीन परिपाटी का अनुसरण सूरदास ने भी लिया है।

प्रथम केस दीरघ घुवरारे, ठाढ़े पाँय परै अति कारे।
कोचंल कुटिल बरन सुठकारे, सकबकांह जनु नाग विसारे॥

लेकिन इस प्राचीन परिपाटी में भी कवि ने शब्दयोजना से एक अद्भुत लालित्य उत्पन्न कर दिया है। उपर्युक्त अंश में 'सकबकांह' शब्द के द्वारा लहराते हुए बालों और कुटिल गति से चलने वाले नागों की तुलना बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। इसी प्रकार काले-काले केशों के बीच सुन्दर श्वेत मांग की रेखा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उसकी यह मांग ऐसी सुशोभित हो रही है मानों जमुना के बीच कनक की रेखा हो अथवा मुख रूपी सूर्य के प्रकाश से काली अँधेरी रात का हृदय दुख से दरक गया हो। कवि की यह उक्ति बडी सुन्दर एवं अनूठी बन पड़ी है।

अब बरनौ तिन्ह मांग निकाई, जमुना चीर कनक जनु आई।
तिन्ह पर पैर जाय तन पारा, अहा सों मन डूबै मझधारा।
मुख रवि कर प्रकास जस भयऊ, तब निस हियो दरक अस गयऊ।

बड़े-बड़े अनियारे नेत्र चन्द्र बदनी के मुख पर ऐसे शोभा देते हैं मानों रूप के सरोवर में पड़े हुए दो सुन्दर जहाज सुशोभित हो रहे हों।

दीरघ अनियारे सुघर सुन्दर विमल सुलाज।
मुख छबि बारिध मनो नैन स्वरूप जहाज॥

कपोलों पर पड़ा हुआ तिल ऐसा प्रतीत होता है मानों रूप के दीप के लौ से भस्म होकर किसी का मन राख होकर रह गया है।

तिल कपोल पर कोटि छबि कहि न जाइ विस्तार।
बदन दीप छवि पतंग मन देखि जरा भै छार॥

सुराहीदार गर्दन तो मद से भरी मालूम होती है।

'जानो पेम मद भरी सुराही, गहन बाह रस लै सो चाही'।

भारतीय उपमानों के अतिरिक्त फारसी की उपमाओं की गहरी छाप भी हमें इनके काव्य में यत्र-तत्र देखने को मिलती है। फारसी कवि कबावे शोख के समान हृदय के झुलसाने वाले रूप की उपमा देते आये हैं। उनका संग-दिल माशूक़ अपने प्रेमियों के रक्त से होली खेलता आनन्द मनाता अंकित किया जाता है। इसी भाव की प्रतिच्छाया हमें दमयन्ती के रूप वर्णन में भी प्राप्त होती है जैसे—दमयन्ती की हथेली इसलिए लाल है कि वह अपने प्रेमियों के हृदय से खेलती रही है या सूर्य प्रातः काल इसलिए लाल दिखाई पड़ता है कि उसने विरहिणियों के हृदय का रक्त पान किया है।

'सूरज कांति भुज कंवल हथौरे। राखै सौ रहुर सो बोरे।
उबा नगर वन सुठ रहर चुचाते। वैरिन रहर पियत न अघाते॥
पुनि पहरे ससि नखत अंगूठी। जनु पायक राखसि गह मूंठी।
जो जिउ काढ़ हाथ पर लेई। सो तिन हाथन दिष्ट करेई॥

इस वर्णन में युद्ध-भूमि में वर्णित यत्त्नियों का रूप सामने आता है जो वीभत्स-रस का द्योतक है रस राज-शृङ्गार का नहीं।

रोमावली त्रिवली और कुचों के वर्णन में कवि ने भारतीय पद्धति का अनुसरण किया है—

हिय सरवर कुच बुंज करै। संपुट बंधे करेरे खरै।
निकसत किरन बदन ससि दई। निपट कठोर सकुच होइ गई।
ऊपर स्याम अधिक छबि छाई। ते अलि छौन पैठ जनु जाई।
धरे मैन होउ लूट खिलौना। ऊपर स्याम लहाइ ढिठौना।

शशिमुख से संकुचित कमल की उत्प्रेक्षा में कार्यकारण का सम्बन्ध बड़े सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया गया है। ऐसे ही किसी सुन्दर वस्तु को नजर से बचाने के लिए डिठौने का प्रयोग नितान्त भारतीय ही नहीं वरन् भारतीय विश्वास का एक प्रतीक भी है। दोनों उपमाएँ बड़ी सुन्दर और अनूठी हैं। रोमावली की श्यामता और कटि की कृशता पर कवि ने भारतीय उपमानों का ही प्रयोग किया है।

अलख पेम चौगान हियु बाव खेल मैदान।
कुच मनोज साजे तहाँ, मनु गति गेंद निसान॥

\+ + +

कालिन्दी रोमावली, त्रिवली औघट घाट।
नाभि भँवर तन परयो तंह, कह निकसै किन्ह बाट।

यह कवि नख-शिख वर्णन में जघाओं और त्रिवली आदि के वर्णन के अतिरिक्त और भी आगे बढ़ गया है। भारतीय दृष्टिकोण से गुप्तांग का वर्णन शृंगार-रस के अन्तर्गत निषिद्ध है। किन्तु इस शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन इस रचना में हमें प्राप्त होता है यह अवश्य है कि ऐसे स्थल की भाषा बडी परि-मार्जित एवं आलंकारिक है जिसके कारण अश्लीलता का आभास प्रत्यक्ष नहीं दृष्टिगोचर होता फिर भी ऐसे अंश रसाभास के अन्तर्गत ही आएगें[1]।

संयोग-शृङ्गार

कवि ने जिस प्रकार नख-शिख वर्णन में उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग कर लालित्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है उसी प्रकार संयोग शृङ्गार में बड़े-बड़े रूपकों का प्रयोग किया है जिनमें मदन की चढ़ाई और उसकी विजय के चारु चित्र अंकित किये गए हैं। यह अवश्य है कि संयोग के पूर्व-हावों का वर्णन लगभग नहीं के बराबर है। स्वयंवर के उपरान्त प्रथम मिलन के लिए सखियों द्वारा सजाई हुई दमयन्ती को उसने साकार काम के कोप को जीतने के लिए युद्ध भूमि में जाती हुई वीरांगना के रूप में अंकित किया है। यह रूपक बड़ा ही सुन्दर और हृदयग्राही है। इसमें स्त्री के शरीर पर उस समय पहनाए हुए अलंकारों के वर्णन के अतिरिक्त उसकी गति और भावभगिमा का चित्र भी बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

कोप काम जीतन मनु चली। चढ़ी गयंद गौन पर अली॥
आंगा अङ्ग-अङ्गी उजियारे। चीर खमक कुच पाखर डारे॥

---

1. नाभि सो निपट लाज के ठाऊ। हों अबला केहि भांति बताऊ॥
मिरग खोल उपमा कित दीजै। जिउ को हीन खेर तो कीजै॥
जोबन समुद सीप तिन्ह माहीं। स्वात बूंद रस पायस नाहीं॥
जिन्ह हत लिये स्वाति कर बूँदा। ठिकत न अजहूँ सम्पुट मूंदा॥
कवँल कली पर सूरज न देखा। मुख बांधे निकसी तिन्ह रेखा॥
दुहुं को सूरज भाग को बली। जाकी किरन खिली सो कली॥
वह को भँवर बीध रस मानै। जीवन जनम सुफल कै जानै॥

भौंह धनुक बरुनी ते बानी । खरक दसन दुति अधर मसाना ।।
ठाड़ तिलक जमधर अनियारै । मानिक सांग गह सीस उदारै ।।
सोही चमक आरसी रही । बाएं हांथ ढाल जनु गही ।।
नैन चपल हैं कोतल कांछै । कजल बाग लगै पुनि आछै ।।
पवन लागि अञ्चल फरहरा । सोई जान ध्वजा कै धरा ।।
कटक कटाच्छ न जांह गिनावा । छुद्र घंट मार जनु गावा ।।
रोमावली कमान अडोला । ढिगही कुच कंचन कै गोला ।।

दो० फेरि भंवर सुर राजहीं, नूपुर बजहिं निशान ।
ऐसी सजि कामिनि चली, सेज जुद्ध मैदान ।

सखियाँ बीच में आकर थोड़े समय तक इस युद्ध में व्यवधान उत्पन्न कर देती हैं । पद्मावतो में जायसी ने भी ऐसे स्थान पर रत्नसेन और पद्मावती के वार्तालाप में रसायन शास्त्र आदि का बखान कराया है । उसी का अनुकरण सूरदास ने एक स्थान पर किया है । ऐसे स्थान पर रहस्यवादी उक्तियां काव्य सौष्ठव की दृष्टि से अनुपयुक्त मालूम होती हैं किन्तु कवियों ने वस्तु को व्यक्त करने के लिए ऐसे स्थलों पर पहेलियों आदि का संयोजन किया है अस्तु सूरदास की ऐसी उक्तियों का परिचय निम्नांकित पंक्तियों में प्राप्त होता है ।

जाइ सेज मन्दिर पग धारा । दुल्हन चाँद सखी संग तारा ।।
अजहूँ प्रीतम दिस्टि न आवा । बीच सखी एक खेल उठावा ।।
पांच सखी चंचल अति तिन माहीं । निपट खिलारन खेल अघाहीं ।।
अंगय आह दमन होई गई । दूल्हन कर अन्तर पट भई ।।
देखन देह न कन्त पियारा । पर ही में अन्तर कर डारा ।।
सबही रचा खेल व्योहारू । लगी करन हांस कर चारू ।।
सुन दुल्हा दुल्हन हम पांहां । आवन देंह नतिन तुम पांहां ।।
जब लगि हमह न खेल हरावहु । तौ लगिताह न देखन पावहु ।।

दो०—सखी आपुनो खेल सो, खेलै लागी खेल ।
दूल्हन तिनकर बस परी, पिउ सो होई न मेल ।

इन पहेलियों के बाद कवि ने संभोग शृंगार का वर्णन किया है । कवि का यह वर्णन सांकेतिक न होकर संश्लिष्ट है साथ ही कवि ने हावों आदि का भी संयोजन नहीं किया है । यही कारण है कि ऐसे स्थान पर कामुकता और लौकिकता के ही दर्शन होते हैं । कवि ऐसे स्थल पर यहाँ तक बढ़ा है कि उसने प्रथम समागम में होने वाले रक्तश्राव तक का वर्णन कर डाला है ।

सम्पुट बंधी कली खिल गई। सिज्या पर वसंत रितु भई ॥
हना वियोग होरी कर जारा। किन्ह बखान जोन विधि मारा ॥

विप्रलंभ-शृङ्गार

आश्चर्य है कि प्रेम की पीर से परिव्याप्त इस काव्य में नल और दमयन्ती के वियोग की नाना मानसिक दशाओं की अभिव्यजना में वह लालित्य नहीं मिलता जो संयोग-शृङ्गार में मिलता है और न वह गहरी अनुभूति ही दिखाई पड़ती है जो जायसी के नागमती के वियोग वर्णन में दिखाई पड़ती है। दमयन्ती को जगल में भटकती हुई अकित करता हुआ कवि उसकी मानसिक अवस्था के विषय में कहता है—

तन बिनु जीउ पीउ महॅ जीऊ। तन महँ जीउ रहै सो पीऊ ॥
मम पिउ मँह तन के सुध नाही। भाती फिरे बीच बन माही।

इस वर्णन में दमयन्ती की उन्मत्तावस्था का पता तो चलता है किन्तु बीच मे रूखे दार्शनिक तत्व को लाकर कवि ने इसकी सरसता कम कर दी है। जैसे—

'खोज खोज भई, खोज मिलै कोउ नाँह।
कंत गवायो गाँव मँह, कत पावै बन माँह ॥

निरन्तर आँसुओं की बहती हुई धारा और अधरों पर प्रिय का नाम रटती हुई दमयन्ती का यह चित्र भी सुन्दर है। जैसे—

नैनन चली जाइ जल धारा। जनु समुद्र जल लीन्ह अफारा ॥
उनए मेघ बरखन मनु लागे। चातक पिक बलेह अनुरागे ॥

पत्ते के खड़कने पर भी उत्सुक होकर दमयन्ती चौंक कर नल के आने की आशा से उस ओर देखने लगती है। यह स्वाभाविक है जब हम किसी की प्रतीक्षा में होते हैं तो एक हलका सा शब्द भी उसके आने का सूचक बन जाता है। इस मनोवैज्ञानिक अनुभव को कवि ने दमयन्ती के वियोग वर्णन में बड़े सुन्दर ढंग से पिरोया है।

पौन झकोर पात जो डोला। चौक उठे जानहुँ नल बोला ॥
धावत मिरग रूझ जो आवै। होइ विसंभु पाछे उठि धावै ॥

ऐसे ही हवा से भी वह प्रार्थना करती है कि मेरा संदेश मेरे प्रियतम के पास पहुँचा देना और कहना कि दमयन्ती को इस प्रकार तुम्हें छोड़ते क्या पीड़ा नहीं हुई ?

अहो बयेर जंह जंह तुम डोलहु। तंह तंह यही बचन मुख बोलहु ॥
संग सुवाइ छाड़ी दुख डाढ़ी। चादर चीर कियो लै आधी ॥
बड़ो निठुर पति भई न पीरा। तन मन जीउ चीर ज्यों चीरा ॥

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं कि सूरदास ने नल दमन में संयोग-शृंगार पर अधिक ध्यान दिया है और वियोग पर कम। इसलिए इनकी इस रचना में विप्रलंभ-शृंगार सम्बन्धी उक्तियां मिलती तो हैं लेकिन बहुत कम। दमयन्ती के विरह-वर्णन से तो नल का विरह-वर्णन अधिक सुन्दर बन पड़ा है।

दमयन्ती को छोड़कर चले आने के थोड़ी ही देर उपरान्त नल वियोग से पीडित हो उठे। और इस पछतावे में कभी वह अपना सिर धुनते थे और कभी भ्रमते हुए इधर-उधर फिरते थे।

कबहुँ सीस धुनै पछिताही। मनहुँ नाग मनि बैठि गवाही॥
बूझंह लोका बांह गहवाता। उतर न देह पेम मद माता॥

उनके नेत्रों से अश्रुधार निरन्तर बहती रहती थी फिर भी हृदय को शान्ति नहीं प्राप्त होती थी। उनके दिन और रात कटे नहीं कटते थे। मन भ्रमित चकित तथा अशांत हो भागता फिरता था।

विरह व्याध भयो जिउ लेवा। तरफै ज्यों नौ बझा परेवा॥
जदपि नैन मेघ झर लावंह। आंसू नीर उन नदी बहावंह॥
तदपि चित चातक न सिराई। ऊ तिन्ह स्वाति बूंद लव लाई॥
दिव ज्यों त्यों दुख पीर सहारी। विरह रैन दूभर अति भारी॥
तपा सूर दिन मैं निस मांहीं। नीरज नैन खुलै न मुंदाहीं॥
मन भया भंवर भंवै चहुँओरा। वेग कमोदिनि ज्यों गह मोरा॥
चलंह झखरात तपत ऊस्वांसा। बढ़ी प्रेम मग पीपासा॥

उनकी विरह की वेदना इतनी बढ़ गई थी कि उनका विलाप एक क्षण, रुकता नहीं था। नल न स्वयं सोते थे और न किसी दूसरे को सोने देते थे।

अब अति झरै बकै औ रोवै। और न सोवन देह न सोवै॥

कहने का तात्पर्य यह है कि नलदमन में विप्रलंभ शृंगार हमें प्राप्त होता है उसमें मार्मिकता भी है किन्तु ऐसे स्थल कम हैं और हमारे विचार से कवि संयोग एवं वियोग-शृंगार का संतुलन नहीं कर सका है।

भाषा

जैसा कि हम पीछे कह आए हैं कि प्रस्तुत रचना की भाषा पूरवी अवधी है कवि ने स्वयं कहा भी है—

यारो पेह कछू में अखिया। इश्क फिराक पूरबी भखिया॥

किन्तु इसकी भाषा में ग्रामीणता नहीं मिलती वरन् वह शुद्ध, सरस और परिमार्जित है—

अब वरनौ तिन्ह मांग निकाई। जमुना चीर कनक जनु आई ॥
तिन्ह पर पैर जाय तन पारा। अहा सो मन डूबै मझधारा ॥

हम यह कह सकते हैं कि सूरदास के नलदमन की भाषा में हमें जायसी की भाषा की तरह सरसता और भावव्यञ्जना की शक्ति मिलती है।

पुस्तक के प्रारम्भिक अंश में जहाँ कवि ने इस रचना के उद्देश्य का वर्णन किया है वहाँ की भाषा कुछ पंजाबी मिश्रित है। सम्भव है कि इस स्थल पर अपनी मातृ भाषा के ज्ञान को दर्शाने के लिए कवि ने ऐसा प्रयोग किया हो क्योंकि कवि को अपनी भाषा पर भी अभिमान था।

'हौं अपनी भाषा भी जानूं। नुकता-नुकता सब पहचानूं ॥
उस भाषा विच शेर घनेरे। इश्क हकीकत आँखें मेरे ॥
अस अपनी भाषा विच वानी। बनै भली पै कोदह सतरानी ॥
होवै मरमैं कल जो कामी। जिस किस तां सो जाइ न बखानी ॥
बाज पारखी होरे ना जानै। रतन पारखी रतन सजानै ॥

भाषा का यह पंजाबीपन आगे कहीं नहीं मिलता।

छन्द

प्रस्तुत रचना प्रेमाख्यानों की परम्परा में दोहा-चौपाई छन्द में रची गई है और इसमें आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम साधारणतः प्राप्त होता है।

अलंकार

अन्य प्रेमाख्यानक कवियों की तरह इस कवि ने भी सादृश्य-मूलक उपमा अलंकार का बहुतायत से प्रयोग किया है। इसके साथ ही साथ हेतूत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं।

रहस्यवाद

प्रस्तुत रचना मसनवी शैली में लिखा हुआ एक प्रेम प्रबन्ध है जिस पर सूफियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। प्रेम की मधुर पीर और उससे जनित विरह की मीठी कसक का रसास्वाद कराते हुए प्रेम में अलौकिक-लौकिक की झांकी दिखाना ही इस कवि का उद्देश्य था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही उसने राजा नल को प्रेम का पुजारी अंकित किया है जो सदैव प्रेम की कथाएँ सुनकर रोया करता था। इस प्रेम परिपूरित हृदय को केवल एक ठेस ही लगनी शेष थी जिसे डोमिन ने दमयन्ती का रूप वर्णन कर पूरा किया। कथा का प्रारम्भ अलौकिक वातावरण में होता है। डोमिन के द्वारा कुन्दनपुर के सरोवरों, वृक्षों, पक्षियों आदि के वर्णन में कवि ने प्रकृति में रहस्यवाद का संयोजन

किया है। डोमिन कहती है कि वहाँ के पेड़ इस प्रकार खड़े हैं मानों वह परमात्मा के प्रेम और उसके ध्यान में मस्त होकर एक पैर से खड़े हैं।

प्रभु के प्रेम गड़े होई गाढ़े। तिनही ध्यान एक पग ठाढ़े ॥
ज्यों-ज्यों पेम अगिनि तन जारै। कै पतझरि टूठ कर डारै ॥

उनमें होने वाली पतझड़ नहीं है वरन् प्रेम की अग्नि में वे अपने बाह्य सौन्दर्य और आडम्बर को भस्मीभूत कर रहे हैं। उसी प्रकार विरह में जलते हुए वहाँ के पक्षियों की भी बुरी अवस्था है! कोकिल विरह से काली दिखाई पड़ती है, मोर उसी से विकल होकर कूकता है।

कोकिल विरह जरी भइ कारी। कुहू-कुहू सब दिवस पुकारी ॥
× × ×
महर जो प्रेम दाह दह रही। तिन दुख सदा पुकारे दही ॥
मोरो निपट प्रेम दुख दाई। निसु दिन मेंउ मेंउ चिल्लाई ॥

दरके हुए अनार और फाँक-फाँक हुई नारंगी अलौकिक विरह के कारण जान पड़ते हैं।

नारङ्ग बिन वन्ह पेमी सोई। फाँक-फाँक जाकर हिय होई ॥
कहै देखाई दरार अनारा। सो पेमी जो हियै दरारा ॥

महुआ, आँवले और खिरनी भी उसी विरह का अलख जगा रही हैं।

महुआ टपक देखावंह रोई। मात मोह मद यह गत होई ॥
खिरनी कहै देह यह खिरनी। चेतन बहुत खरी सो करनी ॥
अमलै कहै मोहि मधु अमले। जाग नींद मेटी सो मिले ॥

ऐसे ही पुष्प भी विरह में मदमाते दिखाई पड़ते हैं।

बुलबुल कहै जो पिउ विरह, घुल-घुल काली देह।
सोई मन पिउ मिलै, रलै रसीले नेह ॥

कुन्दनपुर के पक्के सरोवर मानो प्रेम की अग्नि में पकाई हुई मिट्टी में बने हैं। जिनमें उठती हुई तरंगे प्रेम की हिलोरे हैं जो डबडबाई हुई आँखों की तरह सुशोभित हो रहे हैं।

चहुँ दिसि पोक पार बनाई। पाक पेम जनु मिटि कचाई ॥
जद्यपि पेम हिलोर उठावे। उमंग आंस जल ढरन न पावै ॥
नीरज नैन पेम रंग राते। पुतरी चंवर मीत मद माते ॥

पनघटों पर पनिहारियों का रूप देखने योग्य है।

सारी सुरंग हरी रंग आंगी। अति छीनी जानो उर नांगी ॥
प्रघट कवंल कुच दीन्ह दिखाई। निरखत वन मधुकर होइ जाई॥

लेकिन यह पनिहारियाँ पनिहारियाँ नहीं हैं वरन् वे जगत की प्रपञ्च मयी माया का रूपान्तर हैं। इनके फेर में पडकर मनुष्य अपनी पूँजी को खोकर पछताता रह जाता है।

माया रूप धरे अति मीठी। मोहन मंत्र बसै तिन दीठी॥
जो चित देइ चतुर वह माहा। चित चितवत चरहिं तिन्ह पाहां॥
तिनसों उरझि धने वित खोवा। और देइ सीस हाथ बहु रोवा॥

किन्तु इन्हीं पनिहारियों में कुछ ज्ञानमयी भी हैं जो अपनी उन सखियों को समझाती हैं जो सदैव नीचे की ओर देखती हुई केवल अपने घर का ही ध्यान करती हैं। वे उनसे कहती हैं कि दृष्टि को सीधी कर देखो, राह रपटीली है, सर पर बोझ है, ऐसा न हो कि पैर फिसल जाय और तुम घडा फोडकर खाली हाथ घर लौटो।

ले जू पाट गहै गह हाथै। नैनन्ह पानी कलसा माथै॥
निपट लाज सो आवहि जाही। पायन दिस्टि सुरत घर माही॥
जो कोइ सखी नेक दृग फेरे। 'सूफी' दिस्टि बंक कर हेरै॥
मिल सब सखी ताह समुझावहँ। जन परदेसिन्ह पथ बतावहँ॥
बलि चेतहु घर मन देहूँ। बाकी दिृष्टि सूध कै लेहूँ॥
माथै बोझ बाट रपटीली। रपट परै दुख होइ छबीली॥
जो घट फोरि जाहु घर छूछे। का पुनि कहहु कत जब पूंछे॥

उपर्युक्त अंश में सूफी दृष्टिकोण को बड़ी सुन्दरता से सामने रखा गया है इस संसार की रपटीली राह में कर्मों का घड़ा सर पर रखकर चलने वाली पनि· हारी तनिक भी चूकने पर अपना अनिष्ट कर सकती है और उसे खाली हाथों प्रिय के पास आना पड़ेगा। पनिहारी का रूपक जहाँ आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को स्पष्ट करता हुआ अन्तःसाधना तथा यम·नियम आदि अंगों की ओर इङ्गित करता है वहीं भरे घडे के टूटने के फारसी प्रतीक द्वारा जन्मान्तरवाद का भी पोषण करता है।

रपट फोरि घट खोई जल, बिन पानी बिललाहिं॥
पुनि धौं कब आवा चढ़ै, कब कुम्हार कंह जांहि॥

माया की ठोकर से टूटा हुआ घट (शरीर) पता नहीं फिर कब पुनर्निर्मित होकर प्रेमामृत से पूर्ण होने के लिए मिल सके इसीलिए हमें अपने हाथ आए हुए अवसर को बड़ी संलग्नता से काम में लाना चाहिए।

कुन्दनपुर के उच्च सौध मन्दिर और राजा के गढ़ वर्णन में योग साधना की

भावना मिलती है जो मेरुदंड पर स्थित सहस्त्रार्ध कमल, अनहत नाद और ब्रह्म-रंध्र का प्रतीक है।

बढ़ी पंवर पर ऊंच दिवारा। तिन्ह ऊपर बाजे घर वारा॥
चेतन पुरुष बैठ घर वारी। घरी घरी जन साधु उतारी॥

वही आगे चलकर शरीर में स्थित आत्मा का भी प्रतीक है।

जनु गढ़ कहै कि समुझि नर, तू गढ़पति गढ़ माहि।
ज्यों मोञो गढ़पति सदा, जदपि मोहिये माहि॥

दमयन्ती के सौन्दर्य में भी अलौकिकता का चमत्कार और परा शक्ति के सौन्दर्य का आभास मिलता है। किसी-किसी स्थान पर तो 'पद्मिनी के सौन्दर्य की तरह प्रतिबिम्बवाद और परमात्मतत्व का आभास भी पाया जाता है। जैसे—दमयन्ती की दृष्टि से कौन ऐसा है जो न बँधा हो।

देखै बीधत कथन का, सुन बेधा संसार।
जो नै सुना सो बिध रहा, कइ न जांइ विस्तार॥

यही नहीं हमें जायसी की उक्ति 'हँसत जो देखा हंस भा निर्मल नीर सरीर' की प्रतिच्छाया दमयन्ती में प्राप्त होती है।

जाकी दिस्टि परी वह कौंधा। नैनन लागि रहे तिन्ह चौंधा॥
पाहन रतन होइं सो जोती। होइं न जाते जो मोती॥
मेरे जान विहंस जब बोली। वहै चमक चपला भइ डोली॥

सारा संसार उसके चरणों में लिपटा हुआ है किन्तु वह किसी से प्रेम करेगी या नहीं—

तिन्ह चरनन उरझा जगत, रहा न आस जिय लाय।
सो पुनि वह कापर धरै, रांझ न जानी जाय॥

नारद के वचनों में दमयन्ती का ईश्वरीय अंश साफ निखर उठा है।

बरनहु रूपहि रूप जिन, घट घट रहा समाइ।
जिन हेरा तिन हेरि छबि, आया दीन्ह हिराइ॥

जहाँ हमें प्रकृति-चित्रण में चेतना प्रकृति की रहस्यमयी अनुभूति का परिचय मिलता है, पनिहारियों में ज्ञानमयी और अज्ञानमयी माया का रूप देखने को मिलता है तथा दमयन्ती के सौन्दर्य में परम सौन्दर्य का आभाम प्राप्त होता है वहीं संयोग शृंगार में सूफियों के इश्क हकीकी और वस्ल का चित्रण, पंच इंद्रियों का समागम में व्यवधान उपस्थित करना आदि बड़े मार्मिक रूप में प्राप्त होता है। सखियों से घिरी हुई दमयन्ती उसी प्रकार शय्या पर पहुँची जिस प्रकार चाँद तारों से घिरा हुआ आकाश पर सुशोभित होता है। किन्तु

पाँच सखियों ने चंचलता में ऐसा खेल रचाया कि प्रिय की दृष्टि से प्रियतम ओझल हो गया।

अजहूँ प्रीतम दिस्टि न आवा। बीच सखी एक खेल उठावा ।।
पंच सखी चंचल अति तिन माहीं। निपट खिलारन खेल अघाहीं ।।
आगै आइ दमन होइ गई। दूलहन कर अन्तर पट भई ।।
देखन देह न कन्त पियारा। घर ही में अन्तर कर डारा ।।
सबही रचा खेल व्योहारू। लागी करन हास कर चारू ।।
सुन दूलह दूल्हन इम पांहा। आवत देंह न तिन तुम पांहा ।।
जब लगि हमेंह न खेल हरावहुँ। तौ लगि ताह न देखन पावहुँ ।।
दो०—सखी आपुनै खेल सो, खेलै लागी खेल।
दूल्हन तिनकर बस परी, पिउ सों होइ न मेल ।।

जायसी ने पद्मावती और रतनसेन से रति के पूर्व वादविवाद कराया है जिसमें 'पद्मिनी' ने रतनसेन को इश्क हकीकी की सीख दी उसका स्पष्ट प्रभाव इस स्थल पर दिखलाई पडता है किन्तु सूरदास का वर्णन अधिक नाटकीय है जिससे रस-परिपाक में व्यवधान नहीं पड़ता।

विवाह के बाद विदा होती हुई नव वधू का, आत्मा का परमात्मा के पास जाने वाला रूपक जो सूफियों के 'फना' का परिचायक है हमें दमयन्ती के बिदाई के वर्णन में दिखाई पड़ता है।

कोरा गहि जब कन्त बुलावै। सबही समद विवान चढ़ावै ।।
रोवंह भाई बाप महतारी। रोवंह सखी जिनहीं अति प्यारी।।
सब रोवंह झंखह मन मांहा। बस न चलै चली धन तांहा ।।
कीन्ह पयान विवान उठावा। बोल करारन्ह राम चलावा ।।
लाख लोग जे हितू कहाए। तिनहू छन में भए पराए ।।
गौन संग चला न कोई। सब मिल ततखन कीन्ह विछोई ।।

आत्मा के प्रयाण का यह रूपक दमयन्ती के पुनः स्वयम्वर की सूचना पाकर जाते हुए रितुपर्ण के वर्णन में बड़ा स्पष्ट है।

काया रथ मन सारथी, तन में राजा प्रान।
छिन में सौ जोजन चलै, स्वास चपल है जान ।।

जिस प्रकार पद्मावती और रत्नसेन सूफी दृष्टि के अनुसार साध्य और साधक के रूप में अवतरित किए गए हैं उसी प्रकार दमयन्ती और नल भी आत्मा और परमात्मा के रूपान्तर होकर साध्य और साधक के रूप में दिखाई पड़ते हैं। 'भारतीय माधुर्य भक्ति' के अनुसार प्रेम का पवित्र बन्धन और प्रियतम के हृदय

में स्थान उस समय तक नहीं प्राप्त हो सकता जब तक उनका 'अनुग्रह' न हो। साधक केवल आत्मसमर्पण कर सकता है। अपनाना या न अपनाना उसी के हाथ है। नल दमन में हमें इन दोनों दृष्टिकोणों का समन्वय परिलक्षित होता है। दमयन्ती नल के लिए विलाप करती हुई कहती है—

पिउ मो मैं यह बल नाहीं, जौ आप मिलौ तुम आइ।
जब लग तुमहीं कृपा कै, लेहु मोहि मिलाइ।
हौं अनाथ कछु होय न मोसों। जो कछु होय नाथ सब तोसों॥
वोसों यहै पेम दुख मरना। नाउ तिहारो सुमिरन करना॥
यह बल नाहि कि तुम पँह आऊं। मिलि कै तनकै तपन बुझाऊं॥
तुमही प्रकट होहु जो आई। आपा आन देहु आन दिखराई॥

इस अंश में जहाँ भारतीय नारी की पति-निर्भरता मिलती है वहीं एक भक्त की भगवान से विनती के साथ ही साथ आत्मसमर्पण और भगवान के सगुण रूप में देखने की याचना परिलक्षित होती है जो शुद्ध भारतीय दृष्टिकोण की परिचायक है। अनुग्रह की महिमा और उनकी याचना भी बड़े सुन्दर ढंग से कवि ने एक स्थान पर व्यञ्जित की है।

जदपि पीउ को चाह बिन, पीउ को चहै न कोइ।
पिउ पियार पुनि तिन्ह चहै, जाइ चाह जिउ होइ।

इसी 'अनुग्रह' की महिमा को पुष्ट करने के लिए ही कवि ने दमयन्ती के हृदय में स्वयंभू प्रेम उत्पन्न किया है। दूत या हंस का माध्यम ही हटा दिया है।

जहाँ उपर्युक्त अवतरणों में दमयन्ती आत्मा के रूप में नल से विनती करती हुई दिखाई पड़ती है जो उसके लिए परमात्मा है वहाँ दमयन्ती के वियोग और उसकी स्मृति में खोए नल का वर्णन एक हठयोगी साधक की अनन्य भक्ति और समाविस्थ अवस्था का चित्र अंकित करता है—

'जनु अवधूत रोक तनु सासा। मन लै गयौ प्रान के पासा॥
काया समुझ आप सो न्यारी। रहा लगाय तिन्हैं मन तारी॥
अब तन सो कुछ रहा न नाता। मन तन त्याग मीत रंग राता॥

इस हठयोगी साधना की आवश्यकता दमयन्ती के पिता भीमसेन को उनके नगर में आया हुआ सिद्ध बड़े स्पष्ट शब्दों में बताता हुआ कहता है कि जब मनुष्य अपने मनरूपी दर्पण को भली प्रकार स्वच्छ कर लेता है तब उसे परम ज्योति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ने लगता है और उस समय अनहृत नाद को सुनता हुआ वह 'सहज' का अनुष्ठान करता है। इस 'सहज-प्रियतम' के संभोग

द्वारा साधक को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है और आत्मा-परमात्मा के बीच द्वैत का भाव नष्ट हो जाता है। इस अद्वैतावस्था में साधक परम ज्ञान का लाभ कर मोक्ष प्राप्त करता है।

प्रथम मांज मन दरपन काई। तब निरमल छबि देह दिखाई ॥
सौं हों स्वास सबद मत कला। सह जंइ जाद्र रैन दिन चला ॥
आसो लज सोई मन मांजै। मांज ज्ञान अंजन दृग आंजै।
अबरह नैन ज्ञान हिय होई। रहे न द्वैत रहस होइ सोई ॥
मुकत होइ अलख जब सूझै। सहजै सकल मरम तब बूझै।

कहना न होगा कि सम्पूर्ण रचना में जहाँ हमें स्थान स्थान पर सूफियों के प्रेम की पीर उनके साधन की चार अवस्थाओं शरीयत, तरीकत, मारिफत, हकीकत एवं स्थानों जैसे बस्ल, बका, और फना के दर्शन होते हैं वहीं सिद्धों के हठयोग, शंकर के मायावाद, बल्लभ की माधुर्य भक्ति एव वैदिक अद्वैत वाद और पौराणिक बिम्बप्रतिबिम्बवाद के भी दर्शन होते हैं। पूरी रचना रहस्यवाद के गम्भीर वातावरण से परिव्याप्त होते हुए भी उसकी गरिमा के भार से दबी हुई न होकर हलकी सुन्दर और हृदयग्राही है। भाषा और भाव का लालित्य ओज और प्रासाद गुण एवं कल्पना की ऊँची उड़ान तथा अनुभूति की गहराई ने इसे उत्कृष्ट रचना बना दिया है।

इस दृष्टिकोण को सामने रखते हुए प्रश्न उठता है कि क्या यह काव्य एक आन्यापदेशिक काव्य है? जायसी ने पद्मावत को आन्यापदेशिक काव्य कहा है किन्तु वह पूर्वार्द्ध में ही घटित होता है। सूर ने कहीं भी इसे इस नाम से नहीं पुकारा है इन्होंने अपना उद्देश्य तो पहले ही बता दिया है कि वह प्रेमाग्नि से ससार को दग्ध करना चाहते हैं इसलिए उन्होंने उसकी रचना की—

ऐसो पेम मई मधु ढारौ। जासो दया पेम पग वारौ ॥
जिन्ह कै बात चाव उपजावै। जो सुन कहै सो उन कह जावै ॥

वह यह जानते थे कि इस प्रेम के पीर की एक बार अनुभूति हो जाने पर परम सत्य की अनुभूति में प्राणियों को देर न लगेगी। जिस प्रकार काठ से अग्नि प्रकट होकर काठ को जला देती है उसी प्रकार इस पचभूत शरीर में प्रकट हुई सच्चे विरह की अग्नि पचभूतों और माया के बन्धनों से आत्मा को स्वतन्त्र कर परमात्मा तक पहुँचाने में सहायक होगी।

अगिन प्रकट जब काठ तै, काठै देइ जराइ।
तबहि काठ तासों मिलै, नातर मिलै न जाइ।

इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने इस लौकिक प्रेमकथा को अलौकिकता से अनुरंजित कर उपस्थित किया है कहीं-कहीं लौकिक पक्ष में अलौकिकता का अंश दब न जाय इसलिए स्थान-स्थान पर उसे बड़े कलात्मक ढंग से वह अभिव्यंजित करते गए हैं, जिसके कारण 'नल-दमन' आत्मा-परमात्मा के प्रतीक मालूम होने लगते है किन्तु कथा का अन्त लौकिकता को स्पष्ट कर देता है अगर इस काव्य को आन्यापदेशिक काव्य बनाना ही कवि को अभीष्ट होता तो वह नल और दमयन्ती के वृद्धावस्था का वर्णन न करता। इसलिए कि भारतीय विचार के अनुसार आत्मा और परमात्मा अनादि और अनन्त हैं। लेकिन यहाँ कवि स्पष्ट रूप से कहता है—

चलत चलत जौवन चल भयऊ। रहा न रूप रंग उड़ि गयऊ॥
सूखा सरवर रहा न पानी। दाऊ कवल बेलि मुरझानी॥
तिन्ह सब अङ्ग रङ्ग पलटाए। भँवर केस बक रूप दिखाए॥
दो०—तन फुलवारि निपट गयो, जस आन हेमन्त।
ताहि पन भई बसंत पुनि, हहि फिर पति न बसन्त।

यही नहीं उन्होंने दमयन्ती की मृत्यु के उपरान्त नल को अपने पुत्र को राज्य भार सौंप कर जङ्गल में तपस्या करने तथा वहाँ परम हंस को प्राप्त करने की घटना का वर्णन किया है।

'मन तिन्ह दंइ तन सुख गंवाई। प्रान तिनहि में रहा समाई॥
उपज ज्ञान अज्ञान हेराना। चल वियोग संजोग समाना॥
सुमिरन भजन बिसर सब गयऊ। जाकर भजै सोऊ अब भयऊ॥

अगर कवि का उद्देश्य रचना को पूर्ण रूपेण आन्यापदेशिक काव्य ही बनाने का होता तो वह दमयन्ती की मृत्यु, नल के वानप्रस्थ लेने और योग साधना में तल्लीन होकर परमात्मा से तदाकार हो जाने की बात का उल्लेख न करता। अस्तु यह काव्य बीच-बीच में अन्योक्ति पूर्ण होते हुए भी आरम्भ से अन्त तक 'आन्यापदेशिक' नहीं कहा जा सकता।

नल दमयन्ती चरित्र

(नल पुराण)

—रचयिता—सेवाराम कृत

—रचनाकाल—सं० १८५३ के पूर्व

—लिपिकाल—१८५३

कवि-परिचय

प्रस्तुत रचना कवि ने किसी रामपाल के लिए की थी। यह रामपाल कौन थे पता नहीं। न कवि के विषय में ही कुछ ज्ञात है।

कथावस्तु

कवि ने पौराणिक गाथा के प्रारम्भ और मध्य में कई परिवर्तन कर दिए हैं। अस्तु इसका संक्षिप्त कथानक निम्नलिखित है:—

मानसरोवर में एक हंस रहता था जो स्वर्ण के समान पीत वर्ण था। तथ वेदों और स्मृतियों का पण्डित था। भूमि के दर्शन करने के लिए वह एक बार पृथ्वी पर आया। दक्षिण देश में एक विचित्रनगर था वहाँ का राजा सिंहघोष था। उसके दमयन्ती नाम की एक अनुपम सुन्दरी कन्या थी। वह दस सहस्र सखियों के बीच में रहती थी और आनन्द क्रीड़ा किया करती थी। एक दिन एक सखी ने उसे 'कोक' पढ़कर सुनाया जिससे उसकी सुधि-बुधि में विकास हुआ।

'एक जुतीय 'कोकिन' जु पढ़ी दिन प्रति दिन सुधि बुधि अति बढ़ी।'

एक दिन चित्रसारी पर दमयन्ती अपनी सखी चित्रा के साथ चढ़ी उसी समय वह हंस भी थक कर वहीं आ बैठा। दमयन्ती के रूप को देखकर वह अपने को भूल गया और उड़कर दमयन्ती के हाथों पर बैठ गया।

हंस को हाथ पर बैठा देखकर दमयन्ती ने उससे पूंछा कि तुम तो मान-सरोवर के वासी हो पृथ्वी पर कैसे आए? हंस ने उत्तर दिया मैं ब्रह्मा की बनाई

सृष्टि को देखने निकला था। इस पुर में आकर बड़ा सुख पाया। वास्तव में तुम्हारे हाथों और कमलों में कोई अन्तर नहीं है। तुम्हारा सौन्दर्य अद्वितीय है। ऐ राजकुमारी मेरे हृदय में तुम्हारे लिए दया उत्पन्न हो गई हैं। मैं तुम्हारे ही समान तुम्हारा वर खोजूंगा। वह योगी होगा, वीर होगा और सोलह वर्ष कामकामी भी होगा। जब तक मैं तुम्हारे लिए ऐसा वर न खोज लूँ तब तक मैं विधि का वाहन होने योग्य न कहाऊं। दमयन्ती इसे सुनकर प्रसन्न हुई और उसने कहा कि तुम अपने वचन को मत भूलना।

इसके बाद इधर-उधर वर की खोज में घूमता हुआ हंस नरवर पहुँचा और राजा नल के सौन्दर्य पर मोहित हो गया और सोचने लगा कि दमयन्ती के लिए यही उचित वर है यह सोचकर उसने नल के हाथों का स्पर्श किया। नल ने इतने सुन्दर हस को देखकर उसे पकड़ने की इच्छा से हाथ बढ़ाया हंस बोला कि मुझे क्यों पकड़ते हो। मैं ही देश-देश का भ्रमण करने निकला हूँ। नल ने कहा भाई तुम तो मानसरोवर के वासी हो नीर-क्षीर विवेकी हो मोती चुगने वाले हो फिर तुम मेरे हाथों पर क्यों आ बैठे।

हस ने कहा कि मैने भ्रमण करते हुए सिंघघोष की पुत्री दमयन्ती को देखा है उसके समान सुन्दरी संसार में नहीं है मैं अब उसके लिए वर ढूँढ रहा हूँ तुम ही मुझे उसके लायक लगे हो मेरी बात मान लो नल ने इसे स्वीकार कर लिया। हंस ने लौटकर दमयन्ती को सारा हाल बताया। और फिर मानसरोवर लौट गया। दमयन्ती तब से नल के लिए पीड़ित रहने लगी। उसकी सखी चित्रा ने नल का एक चित्र निर्मित किया। दमयन्ती सदा उसे हृदय से लगाए रहती थी।

दमयन्ती के पिता ने उसके स्वयंवर की घोषणा की। नल भी स्वयंवर में जाने के लिए चला। नारद से इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम ने भी दमयन्ती के सौन्दर्य और स्वयंवर की चर्चा सुनी थी इसी उद्देश्य से वह भी जा रहे थे। इन्द्र ने नल को देखकर उन्हें अपना दूत बनाया और दमयन्ती के पास अपने विवाह का संदेश लेकर भेजा। दमयन्ती ने उसे अस्वीकार कर दिया। इसके अनन्तर कथानक महाभारत के अनुसार ही मिलता है।

दमयन्ती को विवाह कर नल सौ योजन पहुँचे तब इन्द्र ने उनके मार्ग का अवरोध किया। और कहा मुझे दमयन्ती दे दो या युद्ध करो। नल और इन्द्र में युद्ध होने लगा। युद्ध की भयंकरता देखकर नारद ने दोनों का बीच-बचाव किया। देवता और मनुष्य के बीच युद्ध को उन्होंने अव्यावहारिक बताया। इन्द्र ने युद्ध तो बन्द कर दिया किन्तु नल को बारह वर्ष तक पत्नी के विछोह का

शाप दिया। शाप का समय आया और नल ने अपने भाई पुष्कर से जुआ खेलने की इच्छा प्रकट की। पुष्कर ने उन्हें बहुत मना किया किन्तु जब वह नहीं माने तब जुआ हुआ और नल हारे।

लेखक ने नल और दमयन्ती पर जगल में पड़ने वाली आपदाओं को तनिक और विस्तृत कर दिया है तथा इन घटनाओं में चमत्कार लाने का भी प्रयत्न किया है। जैसे—नल ने भूख से पीड़ित होकर एक मछली पकड़ी किन्तु जिस समय दमयन्ती ने उसे भूनने के लिए छुआ उसी समय उसकी उँगलियों के अमृत से जीवित होकर मछली पानी में कूद गई। नल ने फलों को तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाए और पेड़ ऊँचे हो गए। क्षुधा से पीड़ित होकर उन्होंने एक तीतर को उसकी पत्नी और बच्चों के साथ पकड़ा। किन्तु जैसे ही उसे भूनने चले अग्नि ठंडी हो गई और एक-एक कर तीतर उड़ने लगे। तीतर के बच्चों को पकड़ने के लिए नल ने अपनी धोती फेंकी लेकिन वे धोती सहित उड़ गए। एक रात दमयन्ती को सोता छोड़ नल चल दिए। आगे की घटनाएँ महाभारत के अनुकूल हुई हैं।

प्रस्तुत कथानक के प्रारम्भिक परिवर्तनों में सूफियों की रूढ़ि का प्रभाव विदित होता है। नल और इन्द्र से युद्ध कराकर कवि ने नायक को वीरोदात्त नायक अंकित करने का प्रयत्न किया है। साथ ही सूफी कथानकों की कथा का संयोजन और लोकवार्ताओं की परम्परा का अनुसरण परिलक्षित होता है।

इन्द्र का शाप और उर्वशी के द्वारा ऐच्छिक फल की प्राप्ति का वरदान एवं गणेश की पूजा और स्थापना के वर्णन द्वारा इस कथा में दैवी शक्तियों का योग भी सूफी शैली के अनुसार ही है। इन परिवर्तनो से आश्चर्य तत्त्व इस कहानी में महाभारत से अधिक मिलता है।

कवि ने नल पुराण की रचना की है। जिसका उद्देश्य गणेश महिमा का वर्णन करना है। कथा का प्रारम्भ गणेशायनमः से होता है। कृष्ण जी युधिष्ठिर से गणपति की पूजा करने को कहते हैं और उसी सम्बन्ध में नल चरित्र उन्हें सुनाते हैं।

> हे नृप गणपति पूजन कीजै। अरि को जीत परम सुख लीजै।
> सुनौ एक अतिहास भुवपाला। है वन में तुम कौ सुख शाला।
> सुत समान छित पाल कीनौं। मन वांछित दीनन को दीनौं।

सम्पूर्ण कथानक में स्थान-स्थान पर कवि ने गणेश की महिमा का वर्णन किया है। दमयन्ती से उसकी सखी चित्रा नल को ढूँढ़ने के लिए ब्राह्मणों को भेजने के पूर्व गणेश की स्थापना और पूजन और व्रत के लिए कहती है।

या व्रत का देवांगना करै।
जानि उरवशी चित्र में धरै।
सुर मुनि जन ताकौ धावै।
सो निज मन वांछित फल पावै।

इसी प्रकार उर्वशी दमयन्ती से वन में गणेशकी स्थापना करा कर पूजा कराती है और वांछित अभिलाषा पूर्ण होने का वरदान देती। तदनन्तर गणेश महिमा के वर्णन में ही काव्य का पर्यवसान होता है। दमयन्ती और नल ने राज पाने के उपरान्त गणेश की वन्दना की।

दमयन्ती महलन में गई। संग विचित्रा आनंद भई।
नल ने पंडित राज बुलाए। गणपति के निज मंत्र जपाए।
ऐसे गणपति दीन दयाला। नल राज दियो भू पाला।
जो जन गुण गणेश कै गावें। भवसागर के दुख नसावैं।

श्री कृष्ण के द्वारा गणेश की इस प्रकार वन्दना कराकर कवि ने गणेश पर्व के महत्व को बढ़ाया है।

संपूर्ण काव्य में नीति विषयक सूक्तियाँ सती स्त्री के तेज का वर्णन तथा पति-परायणता के उदाहरण बिखरे मिलते हैं। प्रेम-काव्य होते हुए भी उसमें शृंगार की प्रधानता न होकर शांत और करुण रस की प्रधानता पाई जाती है। नीति विषयक कुछ सूक्तियाँ निम्नांकित हैं। जो मनुष्य अपने वचन का पालन नहीं करता उसे नर्क में जाना पड़ता है।

'अपने मुख के वचन को जो न करे प्रतिपाल।
कोटि जनम लै नरक में, सदा रहे बेहाल॥'

मनुष्य को प्रीति और बैर लायक से करना चाहिए। अपने से निम्न स्तर के मनुष्यो से ऐसा व्यवहार करना निषिद्ध है।

'प्रीति बैर लायक सों कीजै। पुनि संबंध पाइ रस लीजै॥'

अपने समान वीर से युद्ध करने वाले को स्वर्ग को प्राप्ति होती है।

'अपने सम सो जुद्ध जु कीजै। तजै प्रान सुरपुर पग दीजै॥'

संसार में केवल भाग्य प्रधान है कर्मगति टाले नहीं टल सकती।

'करम रेख मेटे नहि कोई, कबहूँ और ते और न होई।'

× × ×

विधना लिख्यौ जगत में होई। सो नहि पलटि सकै मुनि कोई॥
कर्म रेख लिखि दानी तैसे। परै भोगनी जन को तैसे॥

अपने धर्म का पालन करना ही मनुष्य का परम धर्म है। सांसारिक मोह माया में पड़ना भूल है इसलिए कि यह जीवन क्षण भंगुर है।

हरि कौ कियौ उलंघन कीजै। किते दिवस अपनी पै कीजै॥
यह छिन भंग सरीर कहावै। फिरि काहू के काम न आवै॥

ऐसे ही जीवन में हार-जीत, लाभ हानि तो लगी ही रहती है कोई चीज संसार में स्थिर नहीं है।

द्रव्य न काहू की रही सदा रहै नहि प्रीति,
कबहुक रन में हारि कबहूँ पाइये जीति।

× × ×

परै दुःख जो तन मैं भारे। रंचक गनिए प्रीतम प्यारे॥
दुःख में सोच न कीजिए राई। नहीं हरख कीजै सुख पाई॥

मनुष्य को मोक्ष की कामना करनी चाहिए वही उसके जीवन का ध्येय है। गृहस्थाश्रम में केवल वंश चलाने के लिए रहना चाहिए एक पुत्र के उपरान्त वानप्रस्थ ले लेना चाहिए—

एक पुत्र जब होत सुजाना। वन में जाइ रहे जु निदाना॥
बन में जाइ समाधि लगावै। योनि जु देह मनुष्य की पावै॥

पतिव्रता स्त्री का धर्म और भारतीय ललना का आदर्श दमयन्ती के चरित्र में निरख उठा है। दमयन्ती कहती है—

युवती को पति एक है पति को युवति अनेक।
हम सी नल को बहुत हैं नल से हमको एक॥

नल के अतिरिक्त किसी पर पुरुष का विचार मात्र रौरव नर्क का भागी बना देगा—

जौ उर में हम और विचारें। जन्म-जन्म नर्क पगुधारें॥
वेद अवग्या करी न जाई। समुझ लेउ ऐसे सुख पाई॥

पत्नी का धर्म है कि पति को भोजन कराने के बाद उसका उच्छिष्ट भोजन पाए। इस अंश में भारतीय नारी के वैवाहिक जीवन के आदर्श के साथ-साथ तत्कालीन स्त्री की सामाजिक स्थिति का परिचय प्राप्त होता है।

भोजन प्रथम पीय को दीजै। उच्छिष्ट आप लै लीजै।
ऐसे धरम वांम को रहै। सुति सुम्रित बानी यों कहै॥

इस प्रकार प्रस्तुत रचना में नीति-रीति और सामाजिक जीवन की तत्कालीन अवस्था का चित्रण अन्य काव्यों से अधिक प्राप्त होता है।

विप्रलम्भ-शृंगार

दमयन्ती के विलाप और विरहवर्णन में करुण रस बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। दमयन्ती विलाप करती हुई पति के दर्शन की अभिलाषा के हेतु कहती है कि हे प्रियतम जिसे तुम सर्वसुन्दर कहते थे वही आज तुम्हारे वियोग में सूखी जा रही है।

अहो कंत बन तजी अकेली। सूकति है कंचन की बेली॥
अमृतमय दरसन दरसाओ। हमको बन में क्यों तरसाओ॥

फिर वह विक्षिप्त अवस्था में पेड़ों और पल्लवों से नल के बारे में पूँछती फिरती है—

अहो कदंब अम्ब गम्भीरा। देखे कितहूँ रणधीरा॥
पीर हरन सुख करन पलासा। पुजवौ वीर हमारी आसा॥

× × . ×

पीपर पूजन निसिदिन कीनौ। तुम्ह कंथ बताइ न दीनौ॥
जो असोक तुम नाम धराओ। करौ आज मेरौ मन भायौ॥

'पीपर की पूजा' वाली उक्ति में गार्हस्थ्य जीवन की एक सुन्दर झाँकी और भारतीय विश्वास का परिचय मिलता है। आज भी हमारे यहाँ की स्त्रियाँ विशेष पर्वों पर बरगद और पीपल आदि पूजती हैं।

धर्म और नीति प्रधान होने के कारण प्रस्तुत रचना में संयोग-शृंगार नहीं प्राप्त होता।

छंद

प्रस्तुत रचना दोहा-चौपाई छन्द में प्रणीत है। किन्तु कहीं-कहीं चौपाई और कुण्डलियों का भी प्रयोग किया गया है।

भाषा

इसकी भाषा अवधी है।

यह काव्य अपनी कोटि का एक विशेष काव्य है जिसमें प्रेम-काव्य के द्वारा जाति-धर्म आदि का प्रतिपादन किया गया है।

———

लैला-मजनूँ

—राम जी सहायकृत

—लिपिकाल···

—रचनाकाल ···

कवि-परिचय

कवि का जीवन-वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

यह कृति सूफियों से प्रभावित एक छोटी-सी रचना है। इसकी लिखावट बड़ी दोषपूर्ण और अस्पष्ट है। अन्त की सात आठ पंक्तियाँ तो पढ़ी ही नहीं जातीं। किसी प्रतिलिपि-कार ने एक छोटी सी 'बही' के पृष्ठ पर ज्योतिष-शास्त्र से सम्बन्धित लेखों, कुण्डलियों एवं अन्य रचनाओं के साथ इसकी भी प्रतिलिपि कर ली थी, किन्तु प्रतिलिपिकार कोई कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति जान पड़ता है, इसलिए कि इसमें पाइयों आदि की बड़ी अशुद्धियाँ मिलती हैं इसी प्रति के आधार पर रचना का परिचय दिया जाता है।

लैला को ढूँढ़ता हुआ मजनूँ फकीरी वेष में मुलतान से दिल्ली पहुँचा। रास्ते में एक मनुष्य ने उसका परिचय पूँछा। उसने बताया कि वह मजनूँ है उसका निवासस्थान मुल्तान में है, जाति का पठान है, लैला को ढूँढ़ता हुआ वह दिल्ली आया है। किन्तु लैला के निवासस्थान का उसे पता नहीं मिलता है। इस मनुष्य को मजनूँ को इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने कहा कि लैला का मिलना बड़ा कठिन है, उस तक तो वायु और पक्षी भी नहीं पहुँच पाते। अन्त में मजनूँ के आने की खबर लैला को मिली और उसने मजनूँ को बुलवा भेजा। लैला के द्वार पर मजनूँ आकर रुक गया और कहला भेजा कि 'तुम्हारे महल के द्वार पर तो हजारों की भीड़ लगी है, फिर मैं फकीरी वेष में हूँ कैसे तुम तक पहुँच सकूँगा।' मजनूँ के इस संदेश को पाकर लैला सुसजित होकर छज्जे पर आ बैठी। और वहीं से मजनूँ से पूछा कि वह उसके महल तक मुल्तान से आ कैसे सका है? रास्ते में मिलने वाले भूत-पिशाच तथा अन्य भयंकर जीवों ने उसे

जीवित कैसे रहने दिया ? मजनूँ ने अपने प्रेम की दुहाई देते हुए कहा कि वह लैला की 'सुरति' की डोर पकड कर यहाँ तक आ सका है। लैला ने कहा कि अगर मजनूँ को अपनी जान प्रिय है तो वह लौट जाए अन्यथा उसे राजा पकड़ कर मरवा डालेगा। मजनूँ ने उत्तर दिया कि 'आशिक' को मात का डर नहीं हुआ करता। इस पर लैला ने कहा कि तुम गन्दे हो तुम्हारे शरीर पर फटे कपड़े हैं रास्ते की धूल से लथपथ हो, मै स्वच्छ हूँ तुम्हारा मिलन असभव है। मजनूँ न माना, इस पर लैला ने कहा कि अगर तुम्हारा प्रेम सच्चा है तो मेरे कहने से आग में कूद पडो। मजनूँ सहर्ष कूदने के लिये तैयार हो गया। अग्नि प्रज्वलित की गई और मजनूँ उसमें कूद पड़ा, किन्तु जिस प्रकार भगवान ने प्रकट होकर प्रह्लाद को बचा लिया था उसी प्रकार लैला ने भी प्रकट होकर मजनूँ को अग्नि से बचा लिया। इस प्रकार दोनों का संयाग हुआ।

इस रचना का कथानक लैला मजनूँ की शामी कथा पर अवलम्बित होते हुए भी भिन्न है। शामी कथा के अनुसार लैला और मजनूँ ईरान में पास हो पास रहते थे और बाल्यावस्था में एक ही चटसार में पढ़ते थे, उस समय दोनों में प्रेम का प्रादुर्भाव हुआ था। लैला कोई परम सुन्दरी न थी लेकिन लड़कपन का स्नेह युवावस्था के प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गया था। दोनों के कुलों के पारस्परिक कलह के कारण उनका विवाह न हो सका। लैला का विवाह अन्य 'अमीर' के साथ हो जाने के उपरान्त मजनूँ उसके प्रेम में, पागल होकर जंगलों और सड़कों तथा रेगिस्तान में भटकता रहता था। इधर लैला भी उसके लिये व्याकुल रहा करती थी तथा लुक-छिप कर उससे मिलने भी जाया करती थी। विरह और दुख के कारण मजनूँ दुर्बल होता गया और एक दिन उसकी मृत्यु हो गई। लैला ने मजनूँ के प्राण त्याग का संदेश पाकर आत्महत्या कर ली। इस प्रकार मूल शामी घटना दुखान्त है[1]।

प्रस्तुत रचना सुखान्त है इसके अतिरिक्त कवि ने लैला को 'दिल्ली' की रहने वाली अंकित किया है। मुल्तान में लैला के रूप सौन्दर्य को सुनकर अपना राज-पाट छोड़ मजनूँ दिल्ली उसके दर्शन के लिए आया और वहीं उसने कवि के अनुसार लैला को प्रथम बार देखा भी। लैला ने उसके प्रेम की परीक्षा ली और उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के बाद दोनों का संयोग हुआ। अस्तु प्रारम्भ से लेकर अन्त तक की सारी घटनाएँ इस रचना में शामी कथानक से भिन्न है।

१—लैला मजनूँ का किस्सा विविध रूपों में मिलता है उपर्युक्त कथानक इस किस्सा की मूल घटनाओं पर अवलम्बित है।

इस कथानक के परिवर्तन के दो प्रधान कारण प्रतीत होते हैं पहला यह कि कवि हिन्दू था इसलिए उसने दुखान्त के स्थान पर हिन्दू-काव्यों की परम्परा के अनुसार सुखान्त रचना ही की है। दूसरे यह कि प्रत्येक सूफी-काव्य में नायक अपने प्रियतम के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन सुनकर माया-मोह को त्याग उसकी खोज में निकल पडता है। कथा के प्रारम्भ में नायक के मार्ग में पड़ने वाली कठिनाइयों की प्रधानता रहती है और प्रारम्भ में प्रेम भी विषम रहता है। धीरे-धीरे नायिका के हृदय में भी प्रेम का सञ्चार दिखाया जाता है, इस प्रकार इन काव्यों में वर्णित प्रेम विषम से सम की ओर उन्मुख हो जाता है। मेरे विचार से कथानक को सूफी ढंग से प्रस्तुत करने के लिए ही कवि ने सम्भवतः इतने परिवर्तन किए हैं।

इस रचना के अन्त में वर्णित मजनूँ की अग्नि-परीक्षा की लोकोत्तर घटना, सास्कृतिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। कारण कि कवि ने इस घटना का साम्य प्रह्लादकी पौराणिक गाथा से स्थापित किया है जो इस बात का प्रमाण उपस्थित करती है कि हिन्दू सूफीमत की ओर आकृष्ट हो चले थे वे मुसलमानों की प्रसिद्ध कहानियों को उसी प्रकार अपनाने लगे थे जिस प्रकार मुसलमान हिन्दुओं की कहानियों को। यही नहीं तात्विक दृष्टि से वे पौराणिक गाथाओं और शामी कथाओं में निहित 'दार्शनिक' सिद्धान्तो में कोई विशेष अन्तर नहीं मानते थे। सत्य की खोज ने हिन्दू-मुसलमानों का भाव क्षीण कर दिया था। अस्तु हम यह कह सकते हैं कि तत्कालीन युग में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो सांस्कृतिक साम्य और सहृदयता उत्पन्न हो चुकी थी उसकी स्पष्ट छाया इस काव्य में दिखाई पड़ती है।

जहाँ तक काव्य-सौष्ठव और प्रबन्धात्मकता का सम्बन्ध है, यह काव्य उच्च-कोटि का नहीं कहा जा सकता, कारण कि इसमें 'इतिवृत्तात्मक' वर्णनों और लोकोत्तर घटनाओं की ही अधिकता मिलती है, संयोग की नाना दशाओं तथा नख-शिख वर्णनों आदि में रसात्मक-स्थलों पर कवि का चित्त नहीं रमा है।

रहस्यवाद

जैसा कि हम पहले कह आए हैं कि यह रचना सूफियों से प्रभावित है। इसकी कथावस्तु का विकास भी उन्हीं कथाओं के अनुसार ही हुआ है। उदाहरणार्थ मजनूँ लैला के सौन्दर्य की बड़ाई सुनकर मुलतान से चल पड़ा था।

हुआ यह हवाल सुरति उसकी लागी।
छोड़े गज राज बाज माया त्यागी॥

उपर्युक्त उद्धरण में 'सुरति' शब्द विशेष उल्लेखनीय है। सन्तों ने अपनी बानियों में 'सुरति' शब्द का प्रयोग निरन्तर किया है इसका तात्पर्य दार्शनिक शब्दों में ब्रह्मज्योति से सम्बन्धित उस क्रांतिदर्शी किरण से है जिसके द्वारा जीव इसी जीवन में ब्रह्म-साक्षात्कार करके मुक्त हो सकता है। वास्तव में मन की बहिर्मुखी वृत्ति का कारण इस संसार की प्रत्यभिज्ञा, (स्मृति ज्ञान) है, वहां (परमात्मा) की सुरति (स्मृति) उसे अन्तर्मुखी बनाती है। मन के प्रसरण शील स्वभाव को पीछे की ओर मोड़ना ही, सुलटी सुरति को उलटी करना ही साधना मार्ग है, प्रभु के सम्मुख रहना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मजनूँ के हृदय में प्रेम, सुरति के कारण जागृत हुआ और वह राजपाट आदि छोड़कर लैला की खोज में चल पड़ा, और भटकता हुआ दिल्ली पहुँचा। दिल्ली में सितब के द्वारा वर्णित लैला के निवास स्थान के परिचय में उसकी अलौकिकता और परमात्मतत्व का सङ्केत मिलता है—

लैले नव खंड जाइ किसि विधि पावै।
पंछी जीव जंत्र कोउ पहुँचत नाही।
जैहो किस भाँति राज सुनि है सारी।

इसी प्रकार लैला के पास मजनूं के भेजे हुए सन्देश में भी 'रहस्य' की छाया मिलती है वह कहता है कि तुम्हारे द्वार पर तो राजाओं, रायों की भीड़ लगी रहती है, तुम्हारे दर्शन मुझ भिखारी को किस प्रकार हो सकेंगे—

'मैं राये कैसे चलो लागी साह की भीर।
दरस कौन विधि होइगो दूजे भेख फकीर॥'

उपर्युक्त अंश में साधकों की उस भीड़ का चित्रण मिलता है जो उस तक पहुँचने के मार्गों पर लगी रहती है जिसे देखकर एकाकी आत्मा घबड़ा उठती है और वह परमात्मा से अनुग्रह की मांग करती है।

लैला का मजनूं को बुलवाना भी रहस्यमयी प्रेम व्यंजना का संकेत करता है। यह प्रेम उसी प्रकार का है जैसा कि परमात्मा को अपने भक्त के प्रति होता है। बिना किसी के बताये हुए भी लैला मजनूँ के लिए चिंतित हो उठी और उसने उसे बुलवा भेजा। ऐसे ही लैला के पूछने पर कि तुम यहाँ तक पहुँचे कैसे मार्ग में मिलने वाले सरोवरों और जङ्गलों के जीवों ने तुम्हें जीवित कैसे रहने दिया, मजनूँ का उत्तर एक साधक की मनोवृत्ति और परमात्मा तक पहुँचने के माध्यम प्रेम पर बड़ी सुन्दर उक्ति है—

'लगी लगनि सरीर में जागि उठी सब देह।
आए कोस हजार ते अटकी सुरति सनेह' ॥

अथवा

लागी डाक मुल्तान ते, सआइ सिकन्दर पास।
अया उसकी भूल गहि सु तेरी लागी आस।
पकरी जब भूल अधिक अकलैं दौरी।
आई चित फूलि सुर्रात तुझमें दौड़ी ॥

तुम्हारी 'सुरति' की भूल को पकड़ कर मुलतान से दिल्ली तक दम मारते मैं आ पहुँचा हूँ। इस भूल के पकड़े रहने पर मार्ग के रहने वाले जीव-जन्तु मेरा क्या कर सकते थे। इस उक्ति में मुलतान ससार और दिल्ली परमात्मा का निवास स्थान तथा मार्ग के 'भील' और 'गैल' में बसने वाले जीव-जन्तु 'माया' के रूपान्तर बन जाते हैं।

कहानी के अन्त में मजनूँ का लैला के आदेश पर अग्नि प्रवेश फिर उसका लैला द्वारा जलने से बचाया जाना, भगवान् की भक्त का अपनाने के पूर्व कठिन परीक्षा लेने की प्रवृत्ति का द्योतक है जिसके पूर्ण होते ही भक्त और भगवान प्रेम के आक्रोड़ में एकाकार हो जाते हैं।

अस्तु प्रस्तुत रचना में रूपक काव्य की छटा भी मिलती है।

भाषा

यह रचना भाषा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है संभवतः इसकी रचना उस समय हुई थी जब रेखता (उर्दू) का विकास हो रहा था और लोग इस साधारण बोल चाल की भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं के बीच-बीच में करने लगे थे। अस्तु इस रचना में ब्रजभाषा के बीच 'रेखता' का प्रयोग किया गया है। जैसे—

जा दिन ते बिछुरन भयो फिरि न देखे नैन।
जैसे घाइल नीर बिनु तलफत हौं दिन रैन ॥

रेखता-ढूँड़ी मुलतान सहर दिली आरो।
ढूँड़ी लाहौर और नगर सहारो।
साहिब के हाल चित्त ह्वैले।
खबर कर सिताब जहाँ बसी लैले ॥

अथवा

लागी जब सुरति पास तेरे आया।
फूला जब चित्त मित्र अपना माया।
देखा महबूब खूब साहिब अपना।

जहाँ तक अलंकार आदि का सम्बन्ध है उनकी छटा इस काव्य में देखने को नहीं मिलती इसलिए कि कवि की दृष्टि रसात्मक स्थलों पर नहीं जमी है।

छन्द

सम्पूर्ण रचना दोहा और चौपाई छन्द में प्रणीत है।

लैला मजनूं इस प्रकार सांस्कृतिक पक्ष और भाषा दोनों ही दृष्टि से महत्व-पूर्ण खण्डकाव्य है।

रूपमंजरी

नददास कृत

रचनाकाल सं० १६२५ के लगभग

कवि-परिचय

अष्टछाप के कवि नन्ददास के विषय में हिन्दी संसार काफी भिज्ञ है इसलिए इस कवि के जीवनवृत्त को लिखकर लेख के आकार को बढ़ाने से कोई लाभ नहीं दिखाई पडता। अस्तु हमने इस स्थान पर उनके जीवन के विषय में कुछ कहना अनुपयुक्त समझा है। डा० दीनदयालगुप्त अपनी पुस्तक में अष्टछाप के कवियों पर काफी गम्भीर अध्ययन कर चुके हैं।

कथा-वस्तु

निर्भयपुर के राजा धर्मवीर के अत्यन्त सुन्दरी रूपमंजरी नाम की एक कन्या थी। जब विवाह योग्य हुई तब उसके पिता ने उसके अनुरूप किसी योग्य वर के साथ उसका विवाह करने का विचार किया। वर की खोज का कार्य उन्होंने एक ब्राह्मण को सौंप दिया। ब्राह्मण ने लोभवश कन्या का विवाह एक क्रूर और अयोग्य व्यक्ति के साथ करा दिया। इस अनमेल विवाह से रूपमंजरी के माता-पिता को अपार दुख हुआ। इधर रूपमंजरी भी अपने पति से असंतुष्ट रहने लगी। उसकी एक इन्दुमती नाम की एक सखी थी जो उसे बहुत अधिक प्यार करती थी और उसके रूप-गुण के ऊपर मुग्ध थी। वह सदैव इस विचार में रहने लगी कि रूपमंजरी का रूप गुणसंपन्न नायक के उपभोग के योग्य है। लोक में इसके अनुरूप कोई नायक नहीं दिखाई देता। लोक से अतीत कृष्ण भगवान जो अनन्त रूप और अनन्त शक्तिधारी हैं इसके उपयुक्त नायक हैं।

इंदुमती ने मन में सोचा 'यह विवाहिता है। इसलिए इसके हृदय में उपपति का बीज अंकुरित करना चाहिए। उसने कृष्ण के रूप और गुणों का वर्णन रूपमंजरी से किया। एक दिन वह उसे गोवर्धन पर्वत पर ले गई और वहाँ कृष्ण के रूप के दर्शन कराये। इंदुमती भगवान कृष्ण से नित्य प्रार्थना करती थी कि भगवान मेरी इस सखी को अपनाएँ।

राजकुमारी को एक दिन स्वप्न में कृष्ण के दर्शन हुए। दूसरे दिन रूपमंजरी ने अपने स्वप्न की अनुमति अपनी सखी इन्दुमती को सुनाई। रूपमंजरी काल्पनिक नायक कृष्ण के ऊपर ऐसी मुग्ध हो गई कि दिन-रात उसी के ध्यान में रहने लगी। रूपमंजरी के प्रगाढ़ प्रेम ने उसके हृदय को ऐसा प्रभावित किया कि स्वप्न में उसे श्रीकृष्ण का संयोग सुख अनुभव हुआ और तब से वह आनन्द-मग्न रहने लगी। कृष्ण-प्रेम में मतवाली रूपमंजरी एक दिन अपने घर और अपनी सखी इन्दुमती से छिपकर वृन्दावन चली गई। इन्दुमती भी उसकी खोज में वृन्दावन पहुँची वहाँ पहुँच कर इंदुमती ने अपनी सखी को कृष्ण के रास में निमग्न देखा और इतनी प्रसन्न हुई कि उसका वार-पार न रहा। इस प्रकार इंदुमती और रूपमजरी एक दूसरे की संगति से इस जीवन से निस्तार पा गई।

नन्ददास कृत रूपमंजरी विद्वानों के अनुसार उनकी व्यक्तिगत जीवनी पर आधारित है। २५२ वैष्णवों की वार्ता में रूपमंजरी का नाम आया है और वह अकबर की रानियों में से एक थी। जो अकबर को अपने पास न आने देती थी। वार्ता यह भी लिखती है कि रूपमंजरी नन्ददास से मिलने के लिए आकाश से नित्य आया करती थी। प्रस्तुत रचना में इंदुमती के रूप में नन्ददास ही अवतरित हुए हैं ऐसी लोगों की धारणा है। यद्यपि नन्ददास ने स्वयं इस आख्यान को कल्पित कहा है फिर भी इसमें कवि के वास्तविक जीवन का इतिहास और कल्पना का कुछ ऐसा मिश्रित रूप हो गया है कि कल्पना और इतिहास को ठीक-ठीक अलग नहीं किया जा सकता।

हिन्दी साहित्य प्रस्तुत रचना को नन्ददास की कृष्णभक्ति सम्बन्धी और वल्लभ सम्प्रदाय की भक्ति के अनुकूल एक छोटा सा आख्यान काव्य मानता आया है। किन्तु हमारे विचार से प्रस्तुत रचना हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की परम्परा में रची गयी है।

प्रश्न यह उठता है कि रूपमंजरी हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों की परम्परा का काव्य कहाँ तक कहा जा सकता है।

हम पिछले पृष्ठों में कह आए हैं कि हिन्दू कवियों ने शुद्ध प्रेमाख्यान एवं आन्यापदेशिक प्रेमाख्यानों की रचना की है। अलौकिक प्रेम को व्यंजित करने वाले प्रेमाख्यानों पर सूफियों का प्रभाव पड़ा है। किन्तु इन कवियों ने सूफी धार्मिक परम्परा और विश्वासों को प्रश्रय देते हुए सनातन धर्म के विश्वासों तथा अन्य धर्मों के विचारों और भावनाओं को भी अपनाया है। इसलिये ऐसे काव्यों में सगुण और निर्गुण दोनों में ब्रह्म की उपासना प्राप्त होती है।

रूपमंजरी सगुण ब्रह्म को रूपभार्ग से प्राप्त करने की साधना का प्रतिपादन करने वाला अन्यापदेशिक काव्य है। इस काव्य की आरम्भिक वन्दना से ही स्पष्ट है कि कवि ने प्रेम की साधना-पद्धति को इस तरह आधार बनाया है जिसे पढ़ने अथवा सुनने से मनुष्य को ज्ञान प्राप्त हो सकता है। आरम्भ में ही इस विषय का संकेत करने के उपरान्त कवि ने निर्भयपुर के राजा धर्मधीर की पुत्री रूपमंजरी का परिचय दिया है। ध्यान देने की बात है कि अलौकिक प्रेम से सम्बन्धित प्रेमाख्यानों में राजाओं और उनके निवासस्थानों तथा पात्रों के सारगर्भित और सोद्देश्य नाम देने की परम्परा प्राप्त होती है। जैसे सर्व-मंगला, रंगीली, धर्मपुर, आदि जिसका अनुसरण हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रेमाख्यानक कवियों ने किया है और यही बात हमें नन्ददास में भी दिखाई पड़ती है।

उपर्युक्त प्रेमाख्यानों की कथा की भूमिका के रूप में कवि नायक नायिका के निवास स्थान, नगर और महल का वर्णन मूल कथा प्रारम्भ करने के पूर्व करते आए हैं जिसमें उच्च धौरहर का वर्णन अवश्य किया गया है। रूपमंजरी में कवि ने इस परिपाटी का भी अनुसरण किया है।

प्रेमाख्यानों की सामान्य विशेषताओं के सम्बन्ध में हम कह आए हैं कि इन प्रेमाख्यानों का शीर्षक नायिका के नाम पर ही दिया जाता था जैसे पद्मावती इन्द्रावती, पुहुपावती आदि जो रूपमंजरी में भी पाया जाता है।

अब घटना के संविधान पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। प्रेमाख्यानों में नायिका के हृदय में प्रेम जाग्रत करने के लिए कवियों ने दूती, स्वप्नदर्शन, गुणश्रवण, चित्रदर्शन आदि का सहारा लिया है। रूपमंजरी में इन्दुमती दूती का कार्य करती है और इस दूती के द्वारा कवि ने रूपमजरी के हृदय में कृष्ण के प्रति अनुराग जाग्रत किया है। जिसके फलस्वरूप उसे नायक का दर्शन स्वप्न में होता है। पूर्व राग के अन्तर्गत वियोगावस्था की नाना अवस्थाओं का वर्णन

---

१. अब हौं बरनि सुनाऊँ ताही। जो कुछ मो उर अन्तर आही॥
धर पर इक निर्भरपुर रहै। ताकी छवि कवि का कहि कहै॥
नए धौरहर सुखद सुपासा। जनु धर पर दूसर कैलासा॥
ऊँचे झटा घटा बतराहीं। तिन परि केकी केलि कराहीं॥
नाचत सुभग सिखंड डुलत यों। गिरधर पिय की मुकुट लटक ज्यों॥
'नंददास ग्रंथावली'
'ब्रजरत्नदास' पृ० ११६।

षड्ऋतु आदि का संयोजन प्रेमाख्यानों की एक रूढ़ि थी जिसका अनुसरण नंददास ने किया है।

रूप-सौन्दर्य वर्णन, संयोगावस्था में हावों आदि का शास्त्रीय संकेत तथा रति आदि के कामोत्तेजक वर्णन ऐसे आख्यानों की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं जो रूपमंजरी में प्राप्त होती है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त प्रस्तुत रचना प्रेमाख्यानों की परम्परा में दोहा-चौपाई छन्द में रची गयी है। अस्तु कथा प्रारम्भ करने की शैली में नायक और नायिका के हृदय में प्रेम जाग्रत करने के तरीकों में, संयोग-वियोग आदि के वर्णन में, कथा के शीर्षक के चुनने में तथा छन्द योजना में हमें रूप मंजरी हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानो की परिपाटी का अनुसरण करते दिखाई देती है। पृथ्वीराज की वेलि और नंददास की रूपमंजरी में कोई विशेष अन्तर नहीं लक्षित होता, हाँ! रूपमंजरी के अन्त में रहस्यात्मकता की छाया कुछ अधिक गंभीर और लोकोत्तर जान पड़ती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि रूपमंजरी हिन्दू कवियों के प्रेमाख्यानों में लिखा हुआ एक आन्यापदेशिक काव्य है।

प्रबन्ध-कल्पना

प्रस्तुत रचना घटना प्रधान है। इसमें चरित्र की अनेकरूपता या घटना के स्थान पर केवल प्रेम-व्यापार का ही प्राधान्य है। कहानी-कला की दृष्टि से यह एक सफल रचना नहीं कही जा सकती।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण

प्रस्तुत रचना में नन्ददास ने अपनी भक्ति-पद्धति के दो रूपों का वर्णन किया है। एक ससीम लोक सौंदर्योपासना द्वारा निस्सीम दिव्य सौन्दर्य को पाना और दूसरा प्रेम के उपपति भाव द्वारा भगवान् के नैकट्य को प्राप्त करना। कवि ने रूपमंजरी के रूप में इन्दुमती की आसक्ति द्वारा रूपोपासना के मार्ग का वर्णन किया है। और कृष्ण में जार भाव से रूपमंजरी की आसक्ति द्वारा भक्ति के माधुर्य भाव को दिखाया है[1]।

काव्य-सौंदर्य

रूपमंजरी के स्वभाव-वर्णन के लिए कवि ने सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग किया है जो कवि समय सिद्ध परम्परानुकूल हैं। किन्तु अनूठी उत्प्रेक्षाओं और मनोहर उक्तियों द्वारा कवि ने वर्णन की रोचकता को हृदयग्राही बना दिया है। मुग्धा के रूप सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि उस के

---

१. देखिए अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय (डा० दीनदयाल गुप्त) भाग २।

अंग-अंग शुभ लक्षण से युक्त हैं। दृष्टि के पदार्थों का सौन्दर्य सीमित होकर जैसे उसमें बस गया हो। उसकी मुख की शोभा इतनी उज्वल और कान्तिपूर्ण है कि उसके पिता का घर बिना दीपक के ही प्रकाशमान रहता है।

संयोग-शृङ्गार

संयोग-शृंगार का वर्णन कवि ने बड़े संक्षेप में किया है जो रूपमंजरी के स्वप्न के समय अङ्कित किया गया है। इस सयोग में रति के कुछ चित्र मर्यादा का उलघन कर गए हैं। स्वप्न संयोग के बाद कवि ने रूपमञ्जरी को सभोग दुषिता नायिका के रूप में अङ्कित किया है और इसी स्थान पर कवि ने नायिकाओं के २८ अलंकारों में से स्वभाव सिद्ध कुछ अलंकारों के नाम गिनाए हैं। जिसमें विलास, संभ्रम, कुट्टमित आदि का उल्लेख किया गया है[1]।

विप्रलंभ-शृंगार

रूपमंजरी की विरह दशा का वर्णन षड्ऋतुओं के अन्तर्गत किया गया है। पावस ऋतु में काले बादल वियोगिनी रूपमञ्जरी को भयङ्कर दिखाई देते हैं उसे अनुमान होता है मानों मन्मथ अपनी सेना लेकर उसके ऊपर आक्रमण कर रहा है। जब रूपमंजरी बहुत विकल होने लगती है तब उसकी सहचरी इंदुमती वीणा बजाकर उसका मनबहलाव करती है। कवि कहता है यदि मर्मस्थान में कोई सीधा शत्रु घुस जाता है तो वह महान दुखदायी होता है परन्तु जहाँ ललित त्रिभङ्गी रूप की टेढ़ी गांसी हृदय में घुस जाय तो उसकी पीड़ा का तो कहना क्या[2]। कहने का तात्पर्य यह है कि नंददास का विरह-वर्णन बड़ा सुन्दर स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी बन पड़ा है।

भाषा

नन्ददास के लिए प्रसिद्ध है कि 'और सब गढ़िया नंददास जड़िया' भाषा के सौष्ठव, शब्दविन्यास और अनूठी उपमा तथा उत्प्रेक्षा के लिए ब्रजभाषा काव्य में नन्ददास को अन्य कवि कम पा सके। इसकी भाषा का सौष्ठव हिन्दी साहित्य को इनकी बहुमूल्य देन है।

छंद

प्रस्तुत रचना दोहा,—चौपाई छन्द में प्रणीत है।

—:०:—

१. 'उमगे बादर कारे कारे। बहरे बहुरि भयानक भारे।
घुमड़न मिलन देख डर आवे। मन्मथ मानों हाथी हरावे॥

२. 'सूधो जो कछु उर गढ़े, सो काढ़े दुख होय।
ललित त्रिभंगी जेह गढ़े, सो दुख जानै सोय॥

नीतिप्रधान प्रेम-काव्य

मधुमालती

चतुर्भुजदास कायस्थ कृत

रचनाकाल सं० १८३७ के आस पास

लिपिकाल—

कवि-परिचय

कवि का जीवनवृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

लीलावती नगरी में राजा चन्द्रसेन राज्य करता था। इसके मन्त्री का पुत्र मधुकर बड़ा सुन्दर था। बारह वर्ष की अवस्था में ही इस पर नारियाँ मुग्ध होने लगीं। राम सरोवर के तट पर इसे देखकर स्त्रियाँ जल लेना भूल जाती थीं। मालती ने भी मधुकर के रूप के बारे में सुना था और उसे देखने को लालायित थीं। किन्तु अपने मन की बात वह किसी से कह न पाती थी। मन्त्री ने मधुकर को गुरु के पास शिक्षा के लिए भेज दिया। वह बड़ा मेधावी था इसलिए ३० वर्ष की अवस्था में ही उसने चौदहों विद्या पढ़ ली।

एक दिन राजा चन्द्रसेन ने मालती को देखा और उसके विवाह की चिंता करने लगा। उसने सोचा कि जब तक मालती के लिए वर खोजा जाएगा तब तक मालती पढ़ लेगी। रानी के स्वीकार करने पर उसने पंडित को बुलवा भेजा और मालती से कहा कि पडित को श्वेत कुष्ठ है, उसका मुँह देखने योग्य नहीं है दूसरे मंत्री का एक पुत्र भी उसके पास दिन रात पढ़ता रहता है, अगर तुम पर्दे के पीछे पढ़ना चाहो तो पण्डित को बुलवाया जाय। मालती ने अपने मन की अभिलाषा पूर्ण होने की सम्भावना देखकर इसे स्वीकार कर लिया। मालती ने इस प्रकार पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन पंडित कहीं बाहर काम से चले गए थे। मालती ने थोड़ा सा पर्दा फाड़ कर मधुकर पर एक गुलाब का फूल फेंका। फूल के लगते ही चौक कर मधुकर ने मालती की ओर देखा और उसके सौन्दर्य को देखते ही मुग्ध हो गया। दोनों एक दूसरे की ओर एक टक प्रेम भरी दृष्टि से थोड़ी देर तक देखते

रहे। तदुपरान्त अपने को सम्हाल कर मधुकर ने कहा कि हमारे तुम्हारे प्रेम की गति उसी प्रकार होगी जिस प्रकार मृग और सिहनी के प्रेम का फल हुआ था। इस पर मालती ने सिंहनी और मृग की कथा पूंछी। मधुकर ने बताया कि एक मृग बडा सुन्दर था लेकिन उसमें काम वासना बहुत थी, वह नौ दस मृगियों के साथ घूमता रहता था। एक दिन एक सिहनी उसे देखकर काम पीड़ा से पीड़ित हो उठी और उसके पास पहुँची। सिहनी को देखकर मृग भागने लगा किन्तु सिहनी ने उसे रोक कर अपना प्रेम प्रदर्शित किया और कहने लगी कि मेरे साथ रतिसुख का लाभ करो तुम्हें मृगिया भूल जाएँगी। मृग को विश्वास न आया, उसने कहा कि तुम्हारे साथ रहने से तो मेरी दशा घूहर और काग की तरह हो जाएगी। सिहनी ने घूहर और काग की कहानी जानने की अभिलाषा प्रकट की मृग ने बताया कि जंगल के सारे पक्षियों ने घूहर को राज देने की सोची। इतने में ही एक कौवा वहाँ पहुँचा और उसने पक्षियों को मना किया और कहा कि गरुड़ के स्थान पर तुम घूहर को राज्य देकर अपना बड़ा अनिष्ट करोगे। तुम लोग गरुड़ की शक्ति से क्या परिचित नहीं हो, जिसके पंख के पवन से शेष भी कम्पित होता है, पहाड़ भी चूर-चूर हो जाते हैं। सागर भी डरता है जो टिटिहरी के अडों की बात से स्पष्ट है। इस पर पक्षियों ने टिटिहरी के अंडों की बात पूंछी। कौवे ने बताया कि सागर के तट पर एक टिटिहरी का जोड़ा रहता था। टिटिहरी जब गर्भवती हुई तो उसने अपने पति से अडा देने का स्थान पूछा और कहा कि सागर के तट पर अडे देने से समुद्र द्वारा उनके बहा ले जाने की आशंका है टिड्डु ने कहा कि तुम्हारी अक्ल मारी गई है, अगर समुद्र तुम्हारे अंडे बहा ले गया तो उसे उसी प्रकार लौटाना पड़ेगा जिस प्रकार अगस्त मुनि को लौटाना पड़ा था।

टिटिहरी ने अंडे समुद्र तट पर दिए किन्तु समुद्र उन्हें बहा ले गया। टिटिहरी विलाप करने लगी। टिड्डा गरुड़ के पास गया और उनसे अपने अण्डों को समुद्र से दिलवाने को कहा। गरुड़ समुद्र की ओर क्रुद्ध होकर चले। समुद्र गरुड़ को आते देखकर डर गया और रत्नों सहित उसने अण्डे लौटा दिए। इसे सुन· कर पक्षियों ने गरुड़ को राजा बना दिया।

घूहर का नाम 'अरिमर्दन' राय था। उसने अपनी जाति बुलवा कर मेघवरन· (कौओं) को मरवा डालने की मन्त्रणा की। रात्रि में घूहरों ने सैकड़ों कौवे मार डाले। तब मेघवरन घूहरराज के पास पहुँचा और उनसे क्षमा याचना कर सन्धि कर ली। तदुपरान्त वह घूहरराज को फुसला कर एक गुफा में ले गया और गुफा में आग लगा कर घूहरराज को मार डाला। इसीलिए मैं कहता

हूँ कि जिनमें दुश्मनी होती है उनमें दोस्ती कभी नहीं हो सकती। मृग ने कहा इसीलिए मुझे तुम्हारे प्रेम पर विश्वास नहीं होता।

सिंहनी ने उत्तर दिया कि तुमने तो हमें काक के समान जान लिया है, किन्तु मैं अगर अपने वचन का पालन न करूँ तो कुलांगना नहीं हूँ। साधु का वचन कभी नहीं टलता चाहे ध्रुव और मेरु अपने स्थान से टल जाएँ। इन वचनों को सुनकर मृग को सन्तोष हुआ और वह सिंहनी के पास आया। सिंहनी ने कहा कि तुम मेरे साथ काम क्रीड़ा करो और देखो मृगनियों को भूल जाते हो या नहीं। जब तक सिंह नहीं आया तब तक दोनों बड़े आनन्द से रहे।

बहुत दिनों के उपरान्त सिंह पहाड़ियों से उतरा। सिंहनी ने आगे बढ़ कर सिंह का सत्कार किया और बड़ी दूर से उसका आहार ले आई। उसने सोचा कि इतनी देर में मृग भाग जाएगा। किन्तु इतने दिन सिंहनी के साथ रहने से मृग अपनी चपलाई भूल गया था और मारे डर के वह नदी तट पर ही बैठा रहा। सिंह ने मृग को देखा और मार डाला।

मालती ने उत्तर दिया मधु तुम मुझसे प्रपञ्च करते हो, वास्तव में सिंह ने मृग को इस प्रकार नहीं मारा वरन् घटना जिस प्रकार घटी मैं बताती हूँ। सिंह को आया जान कर सिंहनी ने मृग को छिपा दिया और सिंह के साथ केलि करती रही। सिंह थोड़ी देर बाद नदी पर पानी पीने गया और मृग को देखा किन्तु मृग भागा नहीं। इसे देख कर सिंहनी पछताने लगी। उसने सोचा कि मेरे जीवन को धिक्कार है जो मृग मुझसे पहले मारा जाये। इसलिये ज्योंही सिंह मृग को मारने के लिये उछला त्योंही सिंहनी उछल कर मृग के सींगों पर जा पड़ी और पेट फट जाने के कारण मर गई, तब मृग मारा गया। मधु तुमने कथा भूल से गलत बताई है वास्तव में इस प्रकार सिंहनी ने मृग से प्रेम निभाया। इस पर मधु ने कहा कि यह तो और भी बुरा हुआ, दोनों के प्राण गए।

मालती ने झुँझला कर कहा कि मधु मैं तो तुम्हारे प्रेम में वैसे ही व्याकुल हूँ, विरह से जल रही हूँ और तुम जले पर नमक छिड़कते हो। मधु ने उत्तर दिया कि प्रेम 'दूर से एक दूसरे को देखते रहने में जितना अधिक तीव्र होता है उतना परस्पर पास रहने और स्पर्श से नहीं होता।'

मधु की इस उक्ति पर मालती ने कनौज के कुँवर कर्ण की कथा कही और बताया कि कुँवर कर्ण का विश्वास था कि जो अबला प्रथम उसका हाथ पकड़ कर अपनी शय्या पर ले जायेगी उसके साथ ही वह रमण करेगा। अस्तु उसने कितनी ही स्त्रियों से विवाह किये। सुहागरात को दोनों एक ही कमरे

में बैठे रहते किन्तु नव विवाहिता नारी संकोचवश एक कोने में दुबकी बैठी रहती थी और कुमार दूसरी ओर चुपचाप अपनी स्त्री के द्वारा प्रथम काम चेष्टा की अभिलाषा करते बैठा रहता था। प्रातःकाल होने के उपरान्त वह स्त्री को अंधकूप में डाल देता था। शूरसेन की पुत्री पद्मावती के कानों में भी कर्ण के इस असाधारण व्यवहार की बात पड़ी और उसने उसी से विवाह करने की ठानी। पद्मिनी के साथ कुंवर कर्ण का विवाह हुआ। कुँवर ने पद्मिनी के साथ भी उसी प्रकार रात बितानी प्रारम्भ की। दो पहर रात्रि के व्यतीत होते देखकर पद्मिनी ने गुलाब की पिचकारी भर कर कुँवर की पीठ पर मारी और फिर उसे अपने हृदय से लगा लिया। फिर दोनों में परस्पर प्रेम हुआ। मालती ने कहा कि मधु मेरे साथ कब ऐसा व्यवहार करेगा। मधु ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार कुमारी ने समझ बूझकर अपने पति को चुना था उसी प्रकार समझ बूझकर तुम्हें भी अपना पति चुनना चाहिए। तुम राजा की पुत्री अनजान सी बातें कर रही हो' तुम मेरे राजा की पुत्री हो और हमारे तुम्हारे गुरु भी एक हैं, इसलिए हमारा तुम्हारा सम्बन्ध नहीं हो सकता। यह कह मधु चला गया। उस दिन से उसने पढ़ने आना बन्द कर दिया।

स्त्रियों से मधु के रामसरोवर के तट पर रहने की बात को सुनकर मालती वहाँ गईं। उसके रूप को देखकर चन्द्रमा के धोखे में कमल सम्पुटित हो गए और भ्रमर उसमें बन्द हो गए। मधुकरी ने आकर मालती से अपने पति को बन्धन से मुक्त करने की स्तुति की, किन्तु मालती ने उत्तर दिया कि मधुकर के लिए क्या कहती हो वह तो कठोर काठ को भी काट डालता है। भ्रमरी ने उत्तर दिया कि प्रेम के कारण वह कमल से ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता। चकवी ने अपने विछोह की याचना की और प्रेम की मार्मिकता को बताया। मालती चकवी को एक सुन्दर पिजड़े में बन्द कर अपने महल में ले आई। चकवी के कहने पर ही मालती ने अपनी सखी से सारी वेदना स्पष्ट कह सुनाई और मधु को पाने की अभिलाषा प्रकट की।

उसकी सखी जैतमालती मधु को वशीभूत करने के लिए राम सरोवर के तट पर गई। मधु और जैतमालती में वार्तालाप हुआ और मधु ने बताया कि वह कामदेव का अवतार है। शिव के द्वारा भस्म होने के पूर्व बन में 'मालती' पुष्प के रूप में रहती थी और भ्रमर के रूप में वह। शिव के द्वारा भस्म हो जाने के उपरान्त इस मालती ने पुनः दूसरे भ्रमर से प्रेम करना प्रारम्भ कर दिया था, इसलिए वह मालती के प्रेम में दुबारा बद्ध नहीं हो सकता। जैतमालती के पास सम्मोहन मन्त्र था वह धीरे-धीरे इसका प्रयोग बातें करते-करते मधु पर कर रही थी

और मधु धीरे-धीरे वशीभूत हो रहा था। इस सखी ने इस बीच मालती को बुलवा लिया। मालती के रूप को उस समय देखकर मधु अपनी सुध-बुध खो बैठा। इसी बीच जैतमालती ने उसे पूर्ण रूप से अपने वश में कर लिया और मधु से उषा अनिरुद्ध के समान विवाह करने को कहा। मालती और मधु का गांधर्व विवाह हुआ। दोनों सरोवर के तट पर के कुंज में रतिसुख लेने लगे।

एक माली ने इनको इस अवस्था में देखा और राजा से खबर कर दी। राजा ने दोनों को पकड़ लाने के लिये सेना भेजी। इस खबर को एक सखी ने मालती से बताया। मालती ने मधुकर से किसी दूर देश में भाग चलने को कहा। मधुकर न माना और उसने 'मलंद सुत की कथा मालती को सुनाई जो इस प्रकार थी।

चम्पावती और कुँवर मलन्द के चन्दा नाम का पुत्र था। बीस वर्ष की अवस्था में वह उस देश का सबसे सुन्दर युवक गिना जाता था। उस राजा के मन्त्री के एक चौदह वर्षीय कन्या 'अनवरी' नाम की थी। वह नित्य राजवाटिका में पुष्प चुनने आती थी। एक दिन कुँवर ने उसे देखा और मोहित हो गया। मालिन से उसने अपने मन की व्यथा बताई। मालिन ने दोनों को मिलाने का वचन दिया। जब दूसरे दिन कुमारी फूल चुनने आई तब उसे मालिन ने बात में उलझा लिया और कुँवर को बुलवा भेजा। कुँवर को देख कर कुमारी भी मोहित होकर मूर्छित हो गई। उसकी मूर्छा को मिटाने के लिए मालिन औषधि ढूँढने गई। इसी बीच में कुमारी को होश आ गया, एकान्त पाकर दोनों ने रतिसुख का लाभ किया। तब से नित्य कुमारी रात में कुँवर के पास उसी कुंज में आया जाया करती थी। एक दिन जब कि दोनों रति में संलग्न थे एक शेर आ पहुँचा। उसे देख कर दोनों भागे नहीं, जब शेर मुँह फाड़ कर उनकी ओर बढ़ा तब कुमार ने उसी अवस्था में पड़े-पड़े ऐसा तीर मारा कि शेर के दोनों तालू बिंध गए। कुमार रति क्रीड़ा में उसी प्रकार फिर सलग्न हो गए। जो प्रेम में ऐसी हिम्मत करता है उसे यम से भी डर नहीं होता। इसलिये तुम घबड़ाओ नहीं मुझे किसी का भी डर नहीं है इतने में सैनिक निकट आ गए। मधु ने उन्हें गुलेल से मार गिराया और फिर मालती की सुगन्ध चारों ओर विकीर्ण कर दी जिससे लाखों भौंरे इकट्ठे हो गए। राजा ने सैनिकों के मारे जाने की बात सुन कर विशाल वाहिनी भेजी किन्तु उन्हें भौंरों ने काट-काट कर खदेड़ दिया। राजा को इस पर विश्वास नहीं आया और उसने दूत को भेज कर वास्तविक बात का पता लगवाया। दूत ने मधुकर से बातें कीं मधुकर ने राजा को चुनौती

दी और कहला भेजा कि अगर उनमें शक्ति हो तो आकर मुझसे मालती को छुडा ले जाएँ।

राजा ने इसे सुनकर दलबल के साथ चढ़ाई कर दी। राजा को इस प्रकार आते देख मालती ने विष्णु को स्तुति की और अपने सुहाग की अखडता माँगी। विष्णु ने उसकी विनती सुन ली और गरुड़, चक्र एवं शिव की शक्ति सिंह को उनकी रक्षा के लिए भेजा। राजा की फौज को एक ओर से गरुड़ ने दूसरी ओर से सिंह ने तीसरी ओर से चक्र ने और चौथी ओर से भँवरों ने संहार करना प्रारम्भ कर दिया। राजा इस दशा को देखकर भागा किन्तु सिंह उसका पीछा करता गया। तब राजा ने 'तारन' मंत्री को बुलवाया। 'तारन' मन्त्री ने अपने स्वामी को बचाने के लिये मंत्र बल से सिंह का मुख फेर दिया और राजा को मधुमालती के विवाह की मत्रणा दी। इस प्रकार राजा ने दोनों का विवाह कर दिया और वे आनन्द से रहने लगे।

चतुर्भुजदास की मधुमालती प्रेमाख्यान होते हुए भी अन्य प्रेमाख्यानों से भिन्न है। इसकी पहली विशेषता रचना शैली में ही मिलती है, कारण कि कवि ने एक कहानी के बीच छोटी-छोटी पाँच कहानियाँ दी हैं जिनमें पशु-पक्षी की कहानी 'तोता मैना' और पंचतन्त्र की कहानियों की शैली में मिलती है। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति और धर्म तथा नीति की सूक्तियाँ इतनी सुन्दरता से गुफित की गई हैं कि यह एक नीति काव्य भी कहा जा सकता है। कवि ने काव्य के अन्त में कहा भी है कि यह प्रेम प्रबन्ध अवश्य है किन्तु इसका विषय यहीं तक सीमित नहीं है, वरन् राजाओं के लिये यह राजनीति का ग्रन्थ है और मन्त्रियों के लिये उनकी बुद्धि को उद्दीप्त करने वाली रचना है।

'काम प्रबन्ध प्रकाश पुनि मधुमालती प्रकाश।
प्रद्युम्न की लीला यहै, कहै चतुर्भुज दास॥'

× × ×

राजनीत किये मैं साखी। पंच उपाख्यान बुद्ध यों भाषी॥
वरनायक चातुरी बनाई। थोरी थोरी सब कुछ पाई॥
'राजा पढ़े तो राजनीत मंत्री पढ़े सुबुद्ध।
कामी काम विलास ज्ञानी ज्ञान सुबुद्ध॥'

यही कारण है कि हितोपदेश और जातक की शैली में पशु-पक्षियों की छोटी-छोटी कहानियाँ पात्रों से कहला कर कवि ने कथा को ही कुशलता से आगे नहीं बढ़ाया है वरन् नीति सम्बन्धी सूक्तियों को भी एक सुन्दर लड़ी में पिरो दिया है। कथोपकथन के बीच अवान्तर कथाएँ इतनी सुन्दरता से यथास्थान

लाई गई हैं कि पाठक बिना रुके बड़े चाव से उन्हें पढ़ता हुआ आगे बढ़ता चलता है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि इन कथाओं के कारण आधिकारिक कथा का सूत्र कहीं भी छिन्न नहीं होता वरन् कथा के पात्रों की चारित्रिक विशेषता भी प्रस्फुटित होती जाती है। इसलिये कवि की यह उक्ति कि 'कथा माँझ मधुमालती ज्यों षड्ऋतु मों बसन्त' अत्युक्ति नहीं है।

नीति-पक्ष

इस कथा के नीतिपक्ष का अवलोकन कीजिए—एक बार हृदय में मैल पड़ जाने के उपरान्त फिर कभी भी दो हृदय निश्छल होकर मिल नहीं सकते। इसलिए अपने पूर्व बैरी पर कभी भी विश्वास न करना चाहिए। चाहे वह कितना भी मिष्टभाषी क्यों न बन जाय, अपने बैर को भूल कर फिर स्नेहभाजन बनने का प्रयत्न क्यों न करें। 'न विश्वासः पूर्व विरोधस्य शत्रोर्मित्रस्य न विश्वसेत्'। जिस प्रकार कुएँ में ढेकुल जितनी ही नीचे की ओर झुकती है उतनी ही वह कुएँ का जल सोखती है, उसी प्रकार बैरी जितना ही विनम्र होता जाता है, उतना ही उससे हानि की सम्भावना बढ़ती जाती है।

'ज्योइ जन प्रण अति करे तो न पतीजौ गंभीर।
ज्यों-ज्यों नीमै ढिगुली त्यों-त्यों सोखे नीर॥'

मनुष्य को अपने बचन का पालन करना नितान्त आवश्यक है। देवता भी इससे प्रसन्न होते हैं—

'वाचा बंध सार जो ग्रहई। उनको देव देव कर कहई॥
झूठे बचन अकारथ लहिए। सो अपने सुकृत को दहिए॥'

मनुष्य को बिना किसी प्रयोजन के दूसरे के घर न जाना चाहिए। जो मनुष्य बिना प्रयोजन दूसरे के घर जाते हैं उन्हें जीवन में दुःख और लघुता ही का अनुभव करना पड़ता है।

'रवि गृह गयो चन्द भयो मन्दा। हारे बामन बल के करि छन्दा॥
शंकर जटा सुरसरी आई। ऐसे वर कर लघुता पाई॥'

धन की अधिकता और काम की तीव्रता में मनुष्य इस प्रकार अन्धा हो जाता है कि उसमें और जन्मांध में कोई अन्तर नहीं रह जाता—

'जो गति अंधो जन्म की, सोगत काम को अन्ध।
लछवान धन अन्धरो अन्तर पूरन अन्ध॥'

क्षुधा तथा काम से पीड़ित मनुष्य को लज्जा तथा भय नहीं रह जाता।

'क्षुधा अर्थ मेरी अनुरागी। चिंता काम काम कर जागी॥
लज्जा डरते मेरी भागी। सुन सखी जैत भान यों त्यागी॥'

भले मनुष्य सदैव परोपकार में संलग्न रहकर स्वयं दुख सहते हैं, उनकी गति पेड़ के समान होती है जो पत्थर मारने पर फल देते हैं और शीत और घाम को अपने सर पर बर्दाश्त कर दूसरों को छाया देते हैं—

'देखी धरनी अंबु की सर्वे विस्व के हेत।
पुनि तरवर की गति कहा परहित काज करेय ॥
धूप सहे शिर आपने औरे छाम करेय।'

जो मनुष्य उद्यम, साहस, युद्ध और पराक्रम से कार्य करते हैं उनसे यम भी डरता है—

'उद्यम जस साहस प्रबल, अधिक धीर नर चित्त।
ताके बल की मत कहो यम की कटक संकित्त ॥'

कवि ने जहां एक ओर नीति और धर्म विषयक उक्तियों से अपना काव्य अलंकृत किया है वहां काम की अवहेलना उसने नहीं की। उसका मधु प्रद्युम्न का अवतार है और देव का अंश है। जैत मालती कहती है कि मधु का विनाश करने वाला कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ। प्रेम और काम तो सृष्टि के साथ ही संसार में उत्पन्न हुए हैं वह संसार के अणु-अणु में प्रतिबिम्बित है और कोई भी मनुष्य इससे शून्य नहीं हो सकता।

'जा दिन से पुहुमी रची जिय जंत जगनाम।
भवन मध्य दीपक रहे त्यों घट भीतर काम ॥'
शरीर मध्य जागृत सदा जग की उत्पति वाम।
ज्यों ढूँढ़ी त्यों पाइए प्रान संग नित काम ॥
गोरस में नवनीत ज्यों काष्ठ मध्य ज्यों आग।
देह मध्य त्यों पाइये प्रान काम इक लाग ॥
बिजुरी ज्यों घन मो रहे मंत्र तंत्र महि राम।
देह मध्य ज्यों काम है फूल मध्य पराग ॥
दर्पन मो प्रतिबिम्ब ज्यों छाया काया संग।
कामदेव त्यों रहत हैं ज्यौं जल बसतु तरंग ॥

---

१. मधुकर को ऐसो को भारी। देव अंश पूरन अवतारी ॥
उनकी अकथ कथा कछु न्यारी। तीन लोक सिगरे जिन जीते।
ऐसे ख्याल बहुत इन कीते। सुर मुनि असुर नाग नर सोई।
ब्यापो सकल रह्यो नहिं कोई। जोगी होइ कै जिन मारे।
औरन को सहि दुख विदारे। शशि सराप या को गुरु पायो।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

मालती के नखशिख वर्णन में कवि की शृंगारी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। उसकी उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ परम्परागत होते हुए भी अनूठी मालूम होती हैं। काली-काली चिकुर राशि के बीच निकली हुई माँग की रेखा पर काशी करवत की उत्प्रेक्षा बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। इसी प्रकार ललाट पर दिए हुए मृग-मद को रस की रसना से साम्य देकर बड़ा सुन्दर बना दिया है—

'बेनी मध्य मांग दुश पाटी। मनहुँ शेश फनी करवत काटी॥
तापर शीश फूल मन धारी। मृग मद तिलक रसना है कारी॥'

चन्द्रमुख पर बरोनियों की श्याम रेखा के सौन्दर्य पर सदेहालकार की कवि ने झड़ी सी लगा दी है। जैसे कवि कहता है, मानों चन्द्रमुखी के मुख पर सर्पों ने सुधा पान के लिए अपना डेरा जमा रक्खा है अथवा मधुकरों की पंक्ति खिले हुए कमल पर मंडरा रही है। अथवा नायिका ने मदन से युद्ध करने के लिए अपनी भौं रूपी कमान खींच रखी है। 'बेंदे' की मुक्ता के पास तीन चार लट-कती हुई और उस पर पड़ी हुई लटें ऐसी सुशोभित होती हैं मानों अंडों को सेती हुई नागिन सुशोभित हो रही हो—

मुक्ता चार अलक ढिग सोहै। अण्डन पर मनो नागिन सोहै।

बिम्बाधरों के पास दमकती हुई दन्तावली ऐसी सुशोभित हो रही है मानों रक्तघन में बिजली सुशोभित हो रही है—

'अधर पर वारे निरखन हारे। पुनि बिम्बाफल पाके न्यारे॥
तामे दुशन अति मुसकति सोहै। बिजुरी मनो रक्तघन को है॥'

रक्तघन में बिजली का संयोजन कवि की अपनी उद्भावना है जो कवि परि-पाटी से सर्वथा नवीन है। नाभि के वर्णन में भी हमें एक अनूठापन मिलता है उसे कवि ने काम न चढ़ने की 'पेड़ी' अथवा सीढ़ी माना है।

नाभ कूप हाटक जैसी। पुनि त्रिलोक सोभा मह ऐसी॥
पेड़ी काम चढ़न की कीन्हीं। कै विधि आह अंगुरिया दीन्हीं॥'

कटि की क्षीणता की मृगमरीचिका से उपमा देकर कवि ने बड़ी सुन्दर उद्भावना की है। इस उक्ति में स्थूल और सूक्ष्म का साम्य बड़ा सुन्दर और अनूठा बन पड़ा है। जिस प्रकार मृगमरीचिका दिखाई पड़ते हुए भी सूक्ष्म होती है, इन्द्रियों के द्वारा अनुभव नहीं की जा सकती, उसी प्रकार नायिका की कटि दिखाई तो पड़ती है किन्तु वह इतनी सूक्ष्म है कि उसकी स्थूलता का अनुभव नहीं किया जा सकता—

'केहरि कटि किंधौं मृग छाहीं। मानो टूट परे जिन अबहीं॥'

'टूट परे जिन अबहीं' में 'जिन' का प्रयोग एक अद्भुत लालित्य उत्पन्न कर देता है। ऐसा मालूम होता है वह अभी टूटी, अभी टूटी, यह शब्द कटि की स्वाभाविक लोच को भी बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त करता है।

संयोग-पक्ष

काम की विशालता तथा उनके प्रभाव को इस कवि ने स्वीकार किया है, इसलिये नीति विषय की प्रधानता होते हुए इस काव्य में नारी का स्थूल सौंदर्य प्रेमाख्यानों की परम्परा के अनुकूल स्फुरित हुआ है। यह अवश्य है कि इसकी शृंगारी भावना मर्यादा का उलंघन नहीं करती। यह कारण है कि इस काव्य में रति या सुरतान्त का न तो वासनामय चित्रण मिलता है और न हावों का संयोजन ही। ऐसे स्थलों का उसने कहानी के संघटन में ही संकेत कर दिया है। केवल एक स्थान पर ही कंचुकी के तड़पने की ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ती है। मधु को देखकर काम से पीड़ित पनिहारियों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

'प्रगट्यो मैन कंचुकी तरके। जल के कुंभ शीश ते ढरके।'

बाकी अंशों में वह केवल संकेत मात्र करता है। उसके अनुसार स्त्री का यौवन पति के बिना उसी प्रकार सूना है जिस प्रकार रात्रि तारों के बिना या सरोवर कमलों के बिना।

'ज्यों निशि उड़गन चंद बिहूनी। जैसे बाड़ी चंपा पिक बिन सूनी॥
रित बसंत पिक बिन नहिं नीकी। बरखा घन दामिनि बिन फीकी॥
मनि धर लाल हेम बिन सूनी। तृय बिन जोबन कंत बिहूनी॥'

इतना होते हुए भी कवि की रुचि बड़ी परिमार्जित प्रतीत होती है। उसने रति और संभोग के अश्लील वर्णनों से अपने को भरसक बचाया है। यही कारण है कि इस कवि का संयोग शृंगार कहीं भी अमर्यादित नहीं होने पाया है।

भाषा

इस रचना की भाषा अवधी है, किन्तु नीति सम्बन्धी स्थलों पर इस कवि ने संस्कृत के श्लोकों का प्रयोग किया है और उनके भावार्थ को कहीं-कहीं उन्हीं के नीचे अपनी भाषा में अनूदित कर के दे दिया है।

'विस्वासः पूर्व विरोधस्य शत्रोर्मित्रस्य न विस्वसेत।
दग्धं उलूकः किंद्रामध्ये काक हुतासने॥'
'ज्योह जन प्रण अति करे तो न पतीजौ गंभीर।
ज्यों ज्यों नींमै ढिगुली त्यों त्यों सोखे नीर॥'

छन्द

सम्पूर्ण रचना दोहे और चौपाई में वर्णित है जिसमें अभी तक आठ अर्धालियों के बाद एक दोहे का क्रम प्राप्त होता है, लेकिन स्थान-स्थान पर कवि ने सोरठा कुण्डलियां, कवित्त आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।

इस प्रकार कथा के संयोजन, भाव, भाषा और अलंकार की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट रचना ठहरती है।

माधवानल कामकंदला चउपई

•••कुशललाभ कृत

रचनाकाल सं० १६१३

लिपिकाल सं० १६७६

कवि-परिचय

कवि का जीवन वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

एक समय इन्द्रपुरी में राजा इन्द्र ने प्रसन्न होकर अप्सराओं को नाटक खेलने का आदेश दिया। इन्द्रपुरी की अप्सराओं में सबसे सुन्दर अप्सरा जयन्ती को अपने रूप और कला पर बडा घमंड हो गया था इसलिए उसने यह सोचकर कि उसके बिना नाटक हो ही नहीं सकता, भाग ही नहीं लिया। इन्द्र ने जयन्ती को क्रुद्ध होकर शाप दे दिया और वह शाप के फलानुसार मृत्युलोक में शिला के रूप में अवतरित हुई। इन्द्र ने शाप देने के उपरान्त जयन्ती के विनती करने पर यह वरदान भी दे दिया था कि जब माधव ब्राह्मण उसका वरण करेगा तब वह शाप मुक्त हो जाएगी।

जयन्ती शिला रूप में पुष्पावती नगरी में अवतरित हुई। कैलाश पर्वत पर योगिराज शंकर बारह वर्ष की समाधि में अविचल बैठे थे। एक दिन समाधिस्थ अवस्था में ही उनका मन उमारमण के लिए चंचल हो उठा और उसी अवस्था में वह इस विचार से स्खलित हो गए। शंकर के वीर्य के पृथ्वी पर गिरने की आशंका तथा उसके द्वारा होने वाले संभाव्य उत्पात के विचार से प्रेरित होकर विष्णु ने प्रकट होकर उस बिंदु को अपनी अंजुली में ले लिया और उसे एक कमलिनी की नाल में रख दिया।

गङ्गा तट पर पुष्पावती नगरी में राजा गोविंद चन्द राज करता था इस राजा के पुरोहित शंकरदास को कोई पुत्र नहीं था इसलिए वह बहुत दुखी रहता था। एक रात उसे शिव ने स्वप्न में बताया कि गंगातट पर जाओ वहाँ तुम्हें

एक पुत्र मिलेगा। दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मण अपनी पत्नी के साथ गङ्गा-तट पर गया और एक बड़े ही सुन्दर बालक को पाया। इस ब्राह्मण ने पुत्र का नाम माधवानल रखा जो बड़ा बुद्धिमान एवं तेजस्वी था। एक दिन बारह वर्षीय बालक माधवानल अपने समवयस्कों के साथ नदी तट पर पहुँचा वहाँ शिला रूपिणी नारी को देख कर बालकों ने खेल ही खेल में माधवानल को दूल्हा बना कर इस नारी से विवाह कराया। माधवानल के पाणिग्रहण संस्कार के उपरान्त यह शिला अप्सरा बन कर आकाश में उड़ गई और सारे बालक अवाक होकर उसे देखते रह गए।

इन्द्रलोक में पहुँच कर जयन्ती बड़ी दुखी रहने लगी। उसे बार-बार माधव का ध्यान आता था, वह सोचती थी कि माधव ने उसका बड़ा उपकार किया है साथ ही साथ वह माधव की विवाहिता पत्नी भी है इसलिए एक रात्रि को माधव के पास वह फिर आई और आकर उसने अपनी सारी कहानी एवं हृदय की व्यथा माधव पर प्रकट की। तदुपरान्त प्रति रात वह माधव के पास आती और दोनों दाम्पत्य सुख लाभ करते। एक दिन जयन्ती के सो जाने के कारण इन्द्रलोक पहुँचने में देर हुई जिसके कारण अन्य अप्सराओं ने उसका भेद पा लिया और उन्होंने इन्द्र से जाकर शिकायत की। इन्द्र के डर से जयन्ती ने थोड़े दिन आना बन्द कर दिया। उसके न आने से माधव बड़ा दुखी रहने लगा कुछ दिन उपरान्त जयन्ती माधव के पास आई और उसने सारी बात माधव को बताई, यह भी बताया कि किस विवशता के कारण विवाहिता स्त्री होते हुए भी वह माधव के पास नहीं आ सकती है। उस दिन से माधव स्वयं इन्द्रपुरी जाने लगा। एक रात इन्द्र ने फिर अपने यहाँ नाटक का आयोजन किया। जयन्ती बड़े संशय में पड़ गई अन्त में उसने माधव को भ्रमर का रूप देकर अपनी कंचुकी में अवस्थित कर लिया। सभा में नृत्य करते समय वह अपने अङ्गों को विशेष रूप से इसलिए नहीं मोड़ती थी कि कहीं कंचुकी के बीच में अवस्थित भ्रमर रूपी माधव दब न जाय। इन्द्र ने जयन्ती की इस दशा को देखा और माधव रूपी भ्रमर को कंचुकी में अवस्थित देखकर बड़ा क्रुद्ध हुआ और जयन्ती को वेश्या के रूप में मृत्युलोक में जन्म लेने का शाप दिया। इस शाप के कारण कामावती नगरी में कन्दला वेश्या के रूप में जयन्ती ने जन्म लिया।

इधर माधव अप्सरा के प्रेम में व्याकुल रहने लगा। अनजान में माधव का रूप उसके लिए घातक था। नगर की सारी स्त्रियाँ उसके रूप पर मोहित थीं तथा अपने घर का काम छोड़कर उसकी याद में समय व्यतीत किया करती

थीं और अपने पति की ओर ध्यान नहीं देती थीं। एक दिन कुछ आदमियों को लेकर एक महाजन ने राजदरबार में माधव के ऊपर स्त्रियों को दुश्चरित्रा बनाने का अभियोग लगाया और उसके निष्कासन की प्रार्थना की। राजा ने माधव के रूप का प्रभाव देखने के लिए उसे अपने यहाँ निमंत्रित किया जहाँ उसकी रानियाँ एवं अन्य स्त्रियाँ भी थीं। माधव के रूप को देखकर स्त्रियाँ विह्वल हो गईं और कुछ अपने को सँभाल न सकीं। स्त्रियों की इस दशा को देखकर राजा ने माधव को निष्कासन की आज्ञा दे दी। माधव पुष्पावती को छोड़ कर घूमता हुआ कामावती पहुँचा।

इन्द्र-महोत्सव के दिन राजा कामसेन के यहाँ नाटक खेला जा रहा था। मृदंग आदि बाजे बज रहे थे। माधव भी राजद्वार पर पहुँचा किन्तु अन्दर होते हुए तंत्रीनाद एवं मृदङ्ग की धुन सुनकर अपना सर धुनने लगा। द्वारपाल के पूछने पर उसने बताया कि पूर्व की ओर मुँह किए हुए जो पखावज बजा रहा है उसके अँगूठा नहीं है इसलिये स्वर भंग हो रहा है। द्वारपाल के द्वारा इस बात के मालूम होने पर राजा ने माधव का बड़ा सत्कार किया और उसे अन्दर बुला लिया। माधव को कामकन्दला ने देखा और माधव ने कन्दला को। दोनों एक दूसरे को परिचित से जान पड़ने लगे। माधव सोचने लगा कि सम्भवतः यह वही अप्सरा तो नहीं है जिसने मुझे अपने कुच के बीच में रख लिया था और कन्दला यह सोचने लगी कि सम्भवत: मैंने इसे अपने कुच के बीच कभी स्थान दिया था कब दिया था स्मरण नहीं आता। तने में कन्दला का नृत्य प्रारम्भ हुआ और एक भँवरा कन्दला के कुच के अग्र भाग पर आ बैठा। उस भ्रमर के बैठते ही कन्दला की स्मरण शक्ति जाग्रत हो गई और उसने माधव को पहचान लिया। इस स्मरण शक्ति के जाग्रत होने के साथ ही भौंरों ने कुच पर दंशन किया और काम कन्दला ने उसे पवन स्रोत से उड़ा दिया। नर्तकी की इस कला की ओर माधव को छोडकर किसी ने ध्यान नहीं दिया अतएव माधव ने नर्तकी को पास बुलाकर राजा प्रदत्त सारे आभूषण आदि को कामकन्दला पर निछावर कर दिया। माधव के इस व्यवहार को राजा ने अपना अपमान समझा और उसे देश निकाले का दण्ड दे दिया। कामकन्दला ने माधव से मिलकर उसे अपने पूर्व जन्म का सारा हाल बताया और घर ले गई। माधव कुछ समय तक कामकन्दला के साथ रह कर राजाज्ञा के अनुसार कामावती छोड़कर चल दिया। कन्दला के वियोग में भटकता हुआ माधव राजा विक्रमादित्य के राज्य में पहुँचा और उसने पर दुःख भंजन विक्रमादित्य द्वारा अपने वियोग दुःख से छुटकारा पाने की अभिलाषा हेतु शिव मन्दिर में गाथा लिखी जिसे पढ़कर विक्रमादित्य

बड़ा दुःखी हुआ । विक्रमादित्य की आज्ञा से सारे नगर निवासी इस विरही को ढूँढ़ने निकले । गोपविलासिनी नाम की वेश्या ने शिव मन्दिर में माधव को ढूँढ़ निकाला । तदुपरान्त विक्रमादित्य ने वेश्या के प्रेम को त्यागने के लिए बड़ी विनती की एवं प्रलोभन दिए लेकिन माधव के न मानने पर विक्रमादित्य ने कामावती पर चढ़ाई कर दी । कामावती में विक्रमादित्य ने कन्दला की परीक्षा लेते समय माधव को मृत्यु का झूठा सन्देश कहा जिसके कारण कन्दला की मृत्यु हो गई । कन्दला की मृत्यु का हाल जानकर माधव भी मर गया । बैताल की सहायता से अमृत प्राप्त कर विक्रमादित्य ने दोनों को पुनः जीवित किया और उसके उपरान्त विक्रमादित्य के कहने पर कामसेन ने कन्दला माधव को सौंप दी इस प्रकार कन्दला को पाकर माधव अपने पिता के यहाँ पुन: लौट आए ।

कुशललाभ का माधवानल कामकन्दला प्रेम काव्य होते हुए भी नीति और उपदेश प्रधान काव्य कहा जा सकता है । इसलिए कि कवि ने चउपाई में तो कथा का वर्णन किया है किन्तु दोहों, सोरठों और गाहा एवं संस्कृत के श्लोकों तथा मालनी छन्दों में उपदेश और नीति का प्रतिपादन किया है । यह नीति सम्बन्धी उक्तियाँ कथा की घटनाओं के साथ ऐसी गुम्फित कर दी गई हैं कि पाठक का न तो जी ऊबता है और न कथा के रस-परिपाक में कोई बाधा उत्पन्न होती है जैसे—पुहुपावती को छोड़कर माधव कामावती नगरी पहुँचा । वहाँ के सुन्दर नर-नारियों एवं नगर की शोभा को देखकर हर्षित हुआ किन्तु कोई उससे बात न पूछता था । इस पर कवि कहता है कि मनुष्य को उस नगरी में न जाना चाहिए जहाँ अपना कोई न हो ।

माधव पुहुतउ नगरी मझारी, रूपवंत दीसइ नर नारी ।
मन हरखिउ नगरी मांहि भ्रमइ, कोइ बात न पूछै किमइ ।
तिणि देसड़इ न जाइंइ, जिहाँ अप्पणु न कोई ।
सेरी सेरी हीडंता, बात न पूछइ कोई ॥

अथवा माधव को राजा ने कुपित होकर कामावती से निर्वासित कर दिया इस पर कवि कहता है यदि माँ पुत्र को विष दे, पिता पुत्र का विक्रय करे और राजा प्रजा का सर्वस्व हर ले तो इसमें वेदना अथवा दुख की कोई बात नहीं—

माता यदि विषं दद्यात्, पिता विक्रयते सुतम् ।
राजा हरति सर्वस्वं, यत्र का परिवेदना ॥

यहां एक बात और कह देना आवश्यक प्रतीत होता है वह यह कि इन उक्तियों में तत्कालीन सामाजिक अवस्था का भी पता चलता है। उपर्युक्त अंश से यह स्पष्ट है कि उस समय राजा का एकाधिकार माना जाता था, प्रजा को राजाज्ञा का उल्लंघन करने अथवा उसका निरादर करने का कोई अधिकार न था, 'पुत्र' पर माता पिता का अधिकार उसी प्रकार था जिस प्रकार राजा का प्रजा पर। इस उद्धरण में राजा की आज्ञा-भंग करना अथवा महत पुरुष का मानमर्दन करना एवं नारी के लिए पृथक शय्या रखना उनका शस्त्र के द्वारा वध करने के समान कहा गया है।

आज्ञा भंड़ा नरेन्द्राणां महंतां मान मर्दनम्।
पृथक शय्या च नारीणाम शस्त्र वध उच्यते॥

इस अंश में राजा और महापुरुषों के तत्कालीन सम्मान की सूचना के अतिरिक्त स्त्री का पुरुष पर ही अवलंबित रहने की प्रथा का पता चलता है। उपर्युक्त अंश इसी रूप में या कुछ परिवर्तनों के साथ दामोदर, गणपति एवं अज्ञात कवि नामा माधवानल कामकंदला में भी मिलते हैं। जिनकी रचनाएं सं० १६०० से १७०० के बीच में हुई हैं। अस्तु हम कह सकते हैं कि इन रचनाओं में आए हुए ऐसे अंश तत्कालीन सामाजिक अवस्था के दर्पण हैं।

अब कुछ नीति और उपदेश विषयक सूक्तियों के भी उदाहरण लीजिए। मनुष्य को अपने सद्गुण एवं हृदय को चुप्पी के ताले में बन्द रखना चाहिए जब कोई गुणवान पुरुष मिले तभी इस ताले को वचन रूपी कुंजी से खोलना चाहिये अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति से अपने मन की बात कहना मूर्खता है।

मन मंजूषा गुण रतन चुपकर दीधी ताल।
को सगुण मिलइ तो खोलइ, कुञ्जी बचन रसाल।

संसार में कुछ ही ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जो दूसरों के गुणों का आदर करते हैं, कुछ ही निर्धनों से प्रेम कर सकते हैं और कुछ ही ऐसे व्यक्ति हैं जो दूसरे के कार्यों के लिए चिन्तित और दुखित होते हैं।

विरला जांणसि गुणा, विरला पालंति निद्धणा नेह।
विरला पर कज्जकरा, हर दुक्खे दुक्खिय विरला॥

अथवा दुर्जनों का स्वभाव ही दूसरों के कार्यों का विनाश करना है उन्हें इसी में तृप्ति मिलती है जैसे चूहा वस्त्रों को काट डालता है लेकिन उससे उसका कोई लाभ नहीं होता।

दुर्जनस्य स्वभावोयं। परकार्यं विनाशकः।
न तस्य जायते तृप्तिः मूषको वस्त्र भक्षणात्॥

कहने का तात्पर्य है कि इस रचना में नीति और उपदेशात्मक कथनों की बहुलता मिलती है।

काव्य-प्रणयन की शैली की तरह कथावस्तु में भी कवि ने अपनी कहानी-कला की कुशलता का परिचय दिया है। अप्सरा जयन्ती के अभिशप्त होने की कहानी आलम की बड़ी प्रति में भी मिलती है किन्तु इस कवि ने उसे दो बार इन्द्र से अभिशप्त कराया है। पहले शाप से वह प्रस्तर की मूर्ति के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुई और दूसरे शाप से कंदला वेश्या के रूप में। इन दोनों घटनाओं के द्वारा कवि ने जयन्ती के तीन जन्मों की कहानी का संयोजन कर जहाँ एक ओर कथानक में लोकोत्तर घटनाओं और कुतूहल का संयोजन किया है वहीं माधव और कंदला के प्रेम में स्वाभाविकता उत्पन्न कर दी है। इसी प्रकार माधव को शिव का अंश अंकित कर कवि ने माधव और कंदला के सम्बन्ध को आदर्श प्रेम का प्रतीक बना दिया है।

कथानक के सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से आलोच्य कथानक दो भागों में बाटा जा सकता है। आधिकारिक और प्रासंगिक।

आधिकारिक कथा के अन्तर्गत माधव और कंदला की प्रेम-कहानी आती है, जो उनके पूर्व जन्म से सम्बंधित है। जयन्ती के शाप की घटनाएँ, माधव का पुष्पावती और कामावती से निष्कासन, कामावती में माधव और कंदला का मिलन तथा माधव का कंदला को पाने का प्रयत्न मूलकथा के अन्तर्गत आते हैं।

भ्रमर के दंशन की घटना, मृदंगियों आदि का त्रुटि पूर्ण वादन, विक्रमादित्य की प्रतिज्ञा एव बैताल द्वारा अमृत लाभ प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत आते हैं।

जहाँ तक आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं का सम्बन्ध है दोनों का गुम्फन कवि ने बड़ी कुशलता से किया है जैसे अमृतलाभ के लिए ही कवि ने बैताल का उल्लेख किया है, इसके अतिरिक्त नहीं। ऐसे ही भ्रमर के दर्शन की घटना को कवि ने इन्द्र सभा में भ्रमर रूपी माधव से सम्बन्धित कर जहाँ इस प्रासंगिक घटना में लोकोत्तर वातावरण का अकन किया है वहीं भारतीय तत्व का भी समावेश कर दिया है।

अस्तु हम कह सकते हैं कि कथा-प्रबन्ध की दृष्टि से यह रचना बड़ी सफल और सुन्दर बन पड़ी है।

कार्यान्वय की आरम्भ मध्य और अन्त की अवस्थाएँ स्फुट हैं। इन्द्र के शाप से लेकर कामावती में माधव-कंदला के मिलन का प्रसंग आरम्भ, कामावती

से निष्कासन से लेकर विक्रमादित्य की प्रतिज्ञा तक मध्य और अमृत लाभ से माधव और कंदला के पुनर्मिलन तक कथा का अन्त कहा जा सकता है। आदि अंश की सब घटनाएँ मध्य अर्थात कंदला के प्रेम की अनन्यता की ओर उन्मुख हैं। इसके बीच आए हुए नखशिख वर्णन संयोग-वियोग के चित्रण आदि मध्य के विराम के अन्तर्गत आते हैं। अमृत लाभ के उपरान्त घटना-प्रवाह फिर कार्य की ओर मुड़ जाता है। इस प्रकार 'कार्यान्वय' के सभी अवयव इस काव्य में मिलते हैं।

जहाँ तक गति के विराम का सम्बन्ध है हम यह कह सकते हैं कि मार्मिक परिस्थितियों के विवरण और चित्रण जो इस स्थल पर मिलते हैं वह सारे प्रबन्ध में रसात्मकता लाने में बड़े सहायक हुए हैं।

अस्तु कथा के संगठन, कार्यान्वय के सामञ्जस्य और मार्मिक परिस्थितियों की अभिव्यञ्जना की दृष्टि से यह रचना पूर्ण उतरती है।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

कदला के रूप-वर्णन में कवि ने परम्परागत उपमानों का ही वर्णन किया है जैसे वह चम्पक वर्णा है। अधर 'प्रवाल' के समान लाल और चाल हंस के समान मन्थर है, नाक दीप शिखा के समान है, नेत्र भयभीत मृगी की आखों की तरह चञ्चल हैं।

> चंपक वर्ण सकोमल अङ्ग। मस्तकि वेणि जाणि भुयंग॥
> अधर रंग परवाली वेलि। गयवर हंस हरावइ गेलि॥
> नाक जिसी दिवानी सिखी। वाहि रतन जड़ित वहिर सी॥
> मुख जाणि पूनिमनु चंद। अधर वचन अमृत मय बिंद॥
> पीन पयोधर कठिन उतंग। लोचन जाणि त्रस्त कुरंग॥

संयोग-शृङ्गार में कवि ने भोग विलास का वर्णन नहीं किया है केवल उसका सकेत मात्र मिलता है।

> काम कंदला विषय रस, माधव विलसइ जेह।
> ते सुख जाणइ ईसवरह, किइ बलि लाणइ तेह॥

पहेली बुझाने, गाहा गाथा और गूढ़ा कहने और सुनने की प्रथा का अनुसरण इस काव्य में संयोग-शृंगार में प्राप्त होता है।

> प्रिय पर दीपइ नीवजइ, दता मांहि समाइ।
> जिणि दीठइ पीउ रंजीइ, सो मुझ मूके माइ॥
> —'काजल' (उत्तर)

डूंगर कएडइ घर करइ, सरली मुंकि धाइ।
सो नर नयणे नीपजइ, तसु मुझ सदां सुहाइ ॥
—'मोर' (उत्तर)

विप्रलंभ-शृंगार

इस काव्य का विप्रलम्भ शृंगार भी उतना ही हृदयग्राही है जितना कथा भाग। वियोगिनी की मानसिक अवस्था का संवेदनात्मक वर्णन करने में कवि बड़ा सफल हुआ है। वैसे विरह के दिन और रातें काटे नहीं कटतीं कन्दला के लिए 'निमिष' दिन के समान और रात्रि छः मास की तरह लम्बी प्रतीत होती है।

निमिष इक मुझ दिन हुआ, रयणि हुई छः मास।
वालंभ ! विरहइ तुझ तणइ, जीव जलइ नींसास ॥

प्रियतम के वियोग में भी हृदय के टुकड़े-टुकड़े न हो गए इस पर झुंझला कर नायिका कहती है कि ऐ हृदय तू वज्र का बना है या पत्थर का जो प्रियतम का विछोह तुझसे सहन हो सका।

रे हिया ! बज्जर घड़ीयउ, कि पाषाण कुरंड।
वालंभ नर निच्छोहीयउ, हुउ न खंडउ खंड ॥

माधव को भेजे हुए सन्देश में कन्दला कहलाती है कि प्रियतम तुम मुझसे इतनी दूर हो तो यह न समझना कि तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कम हो गया है।

दूरंतर के वास, मत जाणउ तुम्ह प्रीति गई।
जीव तुम्हारइ पास, नयन बिछोहे पर गये ॥

तुम्हारे वियोग में मैं इतनी कृश हो गई हूँ कि उँगली की अँगूठी हाथ का कंगन बन गई है।

बिरह जे मुझ नइ करिउ, ते मंह कहण न जाइ।
अंगुल केरी मुद्रड़ी, ते वांहड़ी समाइ।

मेरे हृदय में अग्नि जल रही है और उसका धुँआ अन्दर ही अन्दर घुट कर रह जाता है मैं दिन-दिन पीली पड़ती जाती हूँ।

हियड़ा भीतरि दव बलइ, धूंआ प्रगट न होइ।
बेलि बिछोहया पानएडा, दिन दिन पीला होइ ॥

मेरे नेत्रों की ज्योति रोते-रोते चली गई है और हाथों में वस्त्र निचोड़ते-निचोड़ते छाले पड़ गए हैं।

कन्ता मंह तू वाहरी, नयण गमांया रोइ।
हत्थली छाला पड्या, चीर निचोइ निचोइ ॥

लोक काव्य होने के कारण जन साधारण में प्रचलित बहुत सी उक्तियाँ भी इसमें मिलती हैं जिनकी भाषा भी परिवर्तित है। जैसे—

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लालन देखन मैं चली मैं भी हुई गुलाल॥
इह तन जारूं, मसि करूं धूयां जाइ सरग्गि।
जब भी बादल होइ करि, बरस बुझावइ अग्गि॥

या

लोचन तुम हो लालची, अति लालच दुख होइ।
जूठा सा कछूतर मोहै, सांच कहैगो लोइ॥

अलंकार

कवि ने अलंकारों में सादृश्य-मूलक उपमा अलंकार का ही प्रयोग किया है जो स्वतः आए जान पड़ते हैं। काव्य-कौशल और अलंकारों की छटा दिखाने में कवि नहीं उलझा है इसलिए इसमें दूर की कौड़ी लाने का प्रयास नहीं मिलता।

भाषा

इसकी भाषा चलती हुई राजस्थानी है। जिसमें कहीं-कहीं अपभ्रंश के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

छन्द

आधिकारिक कथा की रचना कवि ने चउपई छन्द में की है लेकिन नीति आदि का प्रतिपादन करने के लिए उसने सोरठा, गाहा, दूहा एवं संस्कृत के मालती छन्द का भी प्रयोग किया है।

— — —

सत्यवती की कथा

—ईश्वरदास कृत

—रचनाकाल—स० १५५८

कवि-परिचय

कवि का जीवनवृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

एक दिन जन्मेजय ने व्यास से पांडवों के वनवास की कथा पूँछी। उन्होंने बताया कि आठ वर्ष तक पांडव नाना वनों में घूमते हुए नव वर्ष झारखण्ड वन पहुँचे। जहाँ-उन्हें मारकण्डेय मुनि मिले। मुनि ने युधिष्ठिर को सत्यवती की कथा सुनाई जो इस प्रकार थी—

मथुरा में चन्द्रोदय राजा राज्य किया करता था जो बड़ा पराक्रमी एवं धार्मिक था। सन्तानहीन होने के कारण वह बहुत दुखी रहता था। एक दिन अपने इस कलुष को मिटाने के लिए वह राज-पाट छोड़कर बन में चला गया और वहाँ शिव की आराधना और कठिन तपस्या करने लगा। शिव उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रकट होकर राजा से वरदान माँगने को कहा। राजा ने कहा—

> सुनु स्वामी सिव संकर जोगी। पुत्र लागि मैं भयउ वियोगी।
> पुत्र लागि मैं तजा भंडारा। देस नगर छाड़ा परिवारा।।

शिव ने उत्तर दिया कि पूर्व जन्म में ब्राह्मणों और स्त्रियों को निरपराध दुःख दिया है। इसलिए तुम्हें पुत्रलाभ ब्रह्मा ने नहीं लिखा है। मैं कर्म की रेखा को नहीं बदल सकता; किन्तु जाओ तुम्हारे यहाँ एक कन्या का जन्म होगा उसका नाम सत्यवती रखना—अस्तु शिव के वरदान स्वरूप राजा के यहाँ कन्या का जन्म हुआ।

बड़ी होने पर यह कन्या बड़ी धर्मपरायणा निकली वह नित्य शिव का पूजन किया करती थी।

इन्द्र का पुत्र रितुपर्ण बड़ी दुष्ट प्रकृति का था एक दिन वह अहेर खेलने गया किन्तु रास्ता भूल जाने से उसके साथी बिछुड़ गए। वह भटकता-भटकता एक कल्पवृक्ष के पास पहुँचा जिसकी शाखाएँ तीस कोस तक फैली हुई थीं। उस पर चढ़कर उसने पूर्व की ओर देखा—कुछ दूर पर उसे एक सुन्दर सरोवर दिखाई पड़ा जिसमें कुछ सुन्दर बालाएँ नहा रही थीं। उसमें से एक के रूप को देखकर वह मोहित हो गया और एकटक देखता रहा। इस बाला की दृष्टि भी उस पर पड़ी उसका मन भी तनिक विचलित हुआ किन्तु दूसरे ही क्षण अपने को अर्द्धनग्नावस्था में देखकर वह संकुचित हुई और उसने रितुपर्ण को शाप दे दिया कि तुम तुरन्त ही कुष्ठि हो जाओ। शाप के फलस्वरूप कुष्ठि होकर रितुपर्ण पृथ्वी पर गिर पड़ा। पीड़ा से वह रात-दिन तड़पा करता था और उसके शरीर से निकली दुर्गन्ध से सारा जङ्गल व्याप्त हो रहा था।

एक दिन बनदेवयाँ उधर से निकलीं और रोगी की इस शोचनीय अवस्था को देखकर उन्होंने वरदान दिया कि चन्द्रोदय की पुत्री से विवाह करने के उपरान्त तुम्हारा शरीर ठीक हो जायगा।

चन्द्रोदय राजा कुछ दिनों के उपरान्त उसी जङ्गल में आखेट खेलने आया। रोगी की दुर्गन्ध से वह इतना विचलित हुआ कि नगर में लौटकर उसने दान आदि देकर प्रायश्चित किया। फिर भोजन करने बैठा। बिना अपनी पुत्री सत्यवती को साथ में बैठाए वह भोजन नहीं करता था। सत्यवती उस समय तक महल में पूजा के बाद लौट कर नहीं आई थी। राजा ने दूत को भेजकर उसे बुलवाया किन्तु सत्यवती ने कहला भेजा कि राजा से कह दो वह भोजन कर ले मैंने अभी पूजन समाप्त नहीं किया है। आज्ञाभंग से राजा बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने सत्यवती को जंगल में पड़े कुष्ठी को सौंप दिया।

सत्यवती तब से चौदह वर्ष तक उसी पेड़ के नीचे अपने पति की सेवा करती रही। एक दिन सत्यवती ने अपने पति से 'प्रभावती' तीर्थ नहाने के लिए कहा और बताया कि उस पुण्य तीर्थ में देव कन्याएँ आदि भी नहाने आती हैं। किन्तु चलने में असमर्थ होने के कारण उसके पति ने जाने से मना कर दिया इस पर सत्यवती उसे अपने कन्धे पर लाद कर तीर्थ की ओर चली। दिन भर चलने के कारण वह बहुत थक गई। सन्ध्या के झुट-पुटे में वह पर्वत पर चढ़ती चली जा रही थी, एक स्थल पर एक ऋषि तप कर रहे थे। रितुपर्ण का पैर ऋषि के लग गया इस पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने शाप

दिया कि जिस मनुष्य ने उन्हें ठोकर मारी है उसका शरीरान्त प्रातःकाल तक हो जाए।

इस शाप को सुनकर सत्यवती काँप उठी और उसने तुरन्त ही कहा कि अगर मैं वास्तव में सती हूँ तो कल से सूर्य निकलना ही बन्द हो जाएगा।

सत्यवती के प्रताप से रात्रि बढ़ गई। सारे संसार में अँधेरा छा गया। इस अनहोनी बात को देखकर देवतादि बड़े चकित हुए। अन्त में ब्रह्मा सत्यवती के पास पहुँचे। सत्यवती ने उन्हें शाप की बात बताई और अपने पति को कंचन वर्ण बना देने का वरदान माँगा। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसकी बात मान ली। प्रातःकाल हुआ रितुपर्ण ने प्रभावती तीर्थ में स्नान किया। उनका रोग दूर हो गया।

पार्वती ने सत्यवती और रितुपर्ण का विवाह कराया और देवता बराती बने। तदुपरान्त दोनों चन्द्रोदय के पास आए। चन्द्रोदय पुत्री और जामाता को पाकर बड़े प्रसन्न हुए।

प्रस्तुत काव्य की रचना सिकन्दर शाह के समय में हुई थी। डा० राम-कुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास के प्रथम संस्करण में प्रेम काव्यों की सूची में इसे भी स्थान दिया था। सम्भवतः मसनवी शैली में रचित होने के कारण डा० साहब ने इसे प्रेम-काव्य समझा किन्तु जहाँ तक रचना के वर्ण्य विषय का सम्बन्ध है यह शुद्ध प्रेमाख्यान नहीं कहा जा सकता है। इस भूल का निराकरण उन्होंने दूसरे संस्करण में कर दिया है।

किसी भी प्रेमाख्यान में नायक-नायिका की प्रेम-कहानी का होना आवश्यक है। चाहे इस प्रेम का प्रारम्भ नायक की ओर से हो या नायिका की ओर से या दोनों के हृदय में प्रेम एक ही समय समान रूप से जाग्रत हो। दूसरे यह कि प्रत्येक प्रेमाख्यान में पात्रों की ओर से प्रिय पात्र को पाने का प्रयत्न, उसकी राह में पड़ने वाली कठिनाइयों के साथ-साथ संयोग वियोगादि की अवस्थाओं का चित्रण भी रहता है।

इस काव्य में प्रेम का यह स्वरूप नहीं मिलता। यह कहा जा सकता है कि भारतीय दाम्पत्य प्रेम का शुद्ध रूप इसी काव्य में मिलता है। एक सती नारी की कर्तव्य-परायणता और पति सेवा से प्राप्त दैवी गुणों और शक्ति की कहानी में क्या प्रेम की महत्ता के दर्शन नहीं होते? किन्तु हमारे विचार से यह एक प्रेम काव्य उस समय कहा जा सकता था जब कि सत्यवती ने रितुपर्ण का वरण या तो स्वयं किया होता या उसे पाने के लिए वह उत्सुक अंकित की

गई होती। इसके बिलकुल विपरीत सत्यवती रितुपर्ण के माता-पिता की आज्ञा से राजदण्ड भोगने के लिए भेजी गई थी और उसने पति परायणता को अपना धर्म समझ कर शिरोधार्य किया था।

इस रचना की घटनाओं के संयोजन में जैनियों के चरित काव्य की स्पष्ट छाया मिलती है। इनके काव्य किसी तीर्थ की महत्ता और पर्व की श्रेष्ठता को दर्शाने के लिए रचे जाते थे उसी प्रकार सती माहात्म्य और 'प्रभावती' तीर्थ की महत्ता को स्थापित करने के लिए इस काव्य की रचना की गई जान पड़ती है।

पूरी रचना में सती स्त्री की कर्तव्य-परायणता और पति से प्राप्त दैवी गुण और शक्ति पर जोर डाला गया है।

जहाँ तक कथा के संगठन का सम्बन्ध है वह भी कुछ आकर्षक नहीं बन पड़ी है। किसी-किसी स्थान पर तो कवि अपने आदर्श के चक्कर में स्वाभाविकता को भूल गया है जैसे कठिन तपस्या के उपरान्त पाई हुई अकेली सन्तान को तनिक से अपराध पर एक कुष्ठी को सौंप देने की बात बड़ी खटकती है। चन्द्रोदय ने फिर उसकी खबर भी नहीं ली। कहाँ सन्तान लाभ के लिए इतनी तपस्या और कहाँ उसी सन्तान के प्रति इतनी कठोरता और हृदय हीनता।

हाँ, स्त्री जाति के प्रति तत्कालीन सामाजिक दृष्टिकोण के विचार से यह कथा महत्व की है। एक पिता अपनी प्रिय पुत्री को मन्दिर से उसकी आज्ञा पर न आने पर कुष्ठी को सौंप सकता था और पुत्री के लिए कैसे ही पात्र को पिता की आज्ञा से पति मानकर उसकी सेवा करना अपना धर्म समझा जाता था। इसके अतिरिक्त तत्कालीन राजदण्ड और राजाओं के निरंकुश शासन के प्रति प्रजा अथवा उसके कुटुम्बियों की मनोदशा का भी एक सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है।

इस प्रकार भावों की हीनता और कथा के संयोजन की दृष्टि से यह काव्य एक सुन्दर कृति नहीं कही जा सकती।

हमारे विचार से इस रचना का साहित्यिक महत्त्व न होकर ऐतिहासिक महत्त्व है। इसकी भाषा तुलसीदास से चौहत्तर वर्ष पूर्व की अवधी है। इस कारण तुलसी के पूर्व के अवधी काव्यों की भाषा का यह सुन्दर नमूना है।

काव्य-सौन्दर्य

प्रस्तुत रचना में जैसा कि हम पहले कह आए हैं काव्य-सौन्दर्य लगभग नहीं के बराबर ही मिलता है। यह एक वर्णनात्मक-काव्य है जिसमें इतिवृत्ता-

त्मक अंशों की अधिकता है। बीच-बीच में नीति और धर्म के उपदेशों के साथ-साथ भाग्य और प्रारब्ध के प्रति कवि के विचार मिलते हैं।

जैसे भाग्य की प्रधानता दिखाता हुआ कवि कहता है—

आपन कर्म सब भजु, जो विध लिखा लिलार।

अथवा

जोग जतन तप कछु न होई, आप कर्म भजै सब कोई॥

इसी प्रकार पर-स्त्री को धोखे से भी नग्नावस्था में देखने से उतना ही पाप होता है जितना गाय को मारने से—

जस पातक होई मदिर जारै।
जस पातक होइ गाइ के मारै॥
ऐसन पातक तो कं होय है।
कपट रूप परतिरिया देखै॥

पतिव्रता स्त्री के कर्तव्य और उसके लक्षणों को बताता हुआ कवि कहता है—

कै लासन बरवाल मुरारी। तो तै सती सत्य वरनारी।
जाकर पुरुष नयन कर अन्धा। कुष्टी कुवुज बाउर बंधा।
बाट न सूझ चरन कर पंगा। मुअवर हीन रोग जेहि अंगा।
ऐसन कन्त जाहि कर होई। सेवा करै सतो जग सोई।
नीक सुन्दर के नहि सेवै। अपना के जो सती कहावै॥

रस

कुष्ठी के विलाप में करुण रस का चित्रण अधिक हृदयग्राही बन पड़ा है और कवि का हृदय-पक्ष भी देखने को मिलता है। जैसे—

रोवै व्याधी बहुत पुकारी। छोहन्ह बिछुरो वै सब भारी।
बाघ सिंह रोवत बन मांही। रोवत पंखी बहुत अनाही।
जन्तु अनेक सब रोवै आई। रोवत बानर हृदय ढढाई।
रोवहीं मृगी वन बालक छोड़ी। सुर कन्या तंह देखन दौड़ी॥

रितुपर्न की दशा वर्णन में वीभत्स रस आवश्यकता से अधिक मिलता है जो जुगुप्सामूलक बन जाता है। जैसे—

अह निसि कुष्ट दुअंह अंगा। मस माछी तन खाई पतंगा।
बाघ भालू तंह देत चिकारा। चहुँ दिसि फेकरइ बहुत सियारा॥

कहने का तात्पर्य यह है कि कथा के सयोग की दृष्टि से यह एक कर्म और धर्म प्रधान करुण और वीभत्स रस से परिव्याप्त शान्त रस में पर्यवसित होने

वाला काव्य है जो भाषा, अलङ्कार और अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक निम्न कोटि का काव्य ठहरता है ।

हो सकता है कि यह कवि की प्रथम रचना हो जो उसके प्रारम्भिक जीवन में लिखी गई हो जैसा कि कवि ने कहा भी है—'अलप बयस भई मति कर भौरा' और उसकी अन्य रचनाएँ अधिक प्रौढ़ हों किन्तु जब तक अन्य रचनाओं का पता नहीं चलता तब तक हमें इस कवि को निम्न कोटि का मानना ही पड़ेगा ।

परिशिष्ट

माधवानलाख्यानम्

आनन्दधर कृत ...

रचनाकाल

लिपिकाल ...

कवि-परिचय

कवि का जीवन-वृत्त अज्ञात है।

कथावस्तु

प्रस्तुत रचना की कथावस्तु में माधव के पूर्व जन्म की कथा नहीं प्राप्त होती। अन्य माधवानलाख्यानों की तरह इसकी कथावस्तु का घटनाक्रम प्रायः पाया जाता है। इसमें कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता।

आनन्दधर विरचित माधवानल कामकन्दला गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू काव्य है। कथानक की घटनाओं का वर्णन संस्कृत के गद्य में प्राप्त होता है और नीति आदि विषयक सूक्तियाँ पद्य में लिखी गयी हैं। कवि ने पद्मिनी, चित्रणी आदि स्त्रियों के लक्षण भी गिनाए हैं।

संस्कृत के श्लोकों के अतिरिक्त बीच-बीच में अपभ्रंश के दूहे भी मिलते हैं। इन दूहों की संख्या लगभग ३०-४० होगी। अधिकतर ये दोहे नीति सम्बन्धी हैं जैसे—

'भ्रमरा जाणइ रस विरसु, जो चुम्बइ वणराइ।
पुण्या क्या जाणइ बापुड़ा, जे सुवक लकड़ खाइ ॥'

भाषा के ये दोहे स्वयं कवि के द्वारा लिखे गए हैं अथवा किसी दूसरे ने इनको सग्रहीत कर इस रचना में रख दिया है निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। याज्ञिक जी के पास संस्कृत के माधवानल कामकन्दला में भी संस्कृत श्लोकों के बीच-बीच व्रज भाषा के दोहे मिलते हैं। उस रचना का आरम्भ आनन्दधर की रचना से भिन्न है किन्तु 'आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां' अथवा 'अति-रूपाद्धृता सीता नष्टो' आदि श्लोक उसमें भी पाये जाते हैं।

लोक काव्य के कारण हो सकता है कि आनन्दधर की संस्कृत रचना में अन्य लोगों ने प्रचलित दोहों आदि को अपनी ओर से जोड़ दिया हो।

इस रचना में माधवानल के भोग-विलास आदि का वर्णन न मिलता। साधारणतः यह काव्य एक नीति-मिश्रित प्रेम-काव्य कहा जा सकता है जो अपनी भाषा की सरलता के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर सका।

---

१. माधवानल कामकन्दला गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज़।

माधवानल कामकन्दला

—आलमकृत

रचनाकाल सं० १६४०

(सन् ६६१ हिज्री)।

कथावस्तु

एक समय पुष्पावती पुहपावती) नगरी में राजा गोपीचन्द्र राज्य करता था। उसके राज्य में एक माधव नामक ब्राह्मण रहता था, जो सुन्दर और सर्व शास्त्रों का ज्ञाता तथा ललित कला के सभी अङ्गों उपाङ्गों में पारङ्गत था। वह तपस्वी एवं कर्मकाण्डी था तथा नित्य राजा को पूजा कराने उसके महल में जाया करता था। उसकी मोहनी सूरत पर नगर की सारी स्त्रियाँ न्यौछावर थीं और उसको देखते ही अपनी सुधबुध खो बैठती थीं। एक दिन नदी तट से स्नान के बाद वह गीत गाता हुआ घर लौट रहा था। नगर में प्रवेश करते ही उसके गीत की धुन एक स्त्री के कानों में पड़ी जो अपने पति को भाजन परोस रही थी, उसके गीत ने इस स्त्री को इतना सम्मोहित कर लिया कि उसके हाथ से सारी भोजन सामग्री छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। स्त्री के इस व्यवहार से उसका पति बड़ा क्रुद्ध हुआ और उससे ऐसे व्यवहार का कारण पूछने लगा, तथा मार डालने की धमकी भी दी। इस पर उस स्त्री ने अपने पति से क्षमा माँगते हुए बताया कि माधव के राग से मै इतनी विस्मित हो गई थी कि मुझे तन बदन की सुध न रही, इसी कारण ऐसी भूल हो गई।

'माधौनल कियो रागु। सुनि धुनि हौं विस्मै भइ॥
तहां जाइ मनु लागु। ताते गिरयौ अहारु भुइ॥'

गृहणी के इस उत्तर ने उसके पति को क्रोधान्ध कर दिया और वह उसी समय घर से निकल अन्य व्यक्तियों को एकत्रित करके राजदरबार में पहुँचा और राजा से विनती की कि माधव को निष्कासन दिया जाय अन्यथा सारे नगर-निवासी राज्य छोड़कर कहीं अन्य स्थान को चले जायेंगे, क्योंकि माधव के रहते नगर की कोई भी स्त्री ऐसी नहीं है जो अपनी गृहस्थी का कार्य सुचारु रूप से

कर सके। इस ब्राह्मण में जाने कैसी सम्मोहनी शक्ति है जिससे वह सारी नारियों का हृदय अपने वश में किए हुए है।

प्रजा के इस आरोप को सुनकर राजा ने माधवानल को बुला भेजा और स्वयं उसकी सम्मोहनी शक्ति की परीक्षा लेनी चाही।

अपनी वीणा को लिए हुए जब माधवानल दरबार में पहुँचा तब राजा ने अपनी बीस चेरियों को कुसुम्भी साड़ी पहनाकर कमल पत्र पर बैठने को कहा। इसके उपरान्त राजा ने माधवानल को अपनी वाद्यकला प्रदर्शित करने की आज्ञा दी। वीणा की झंकार और उससे निःसृत मधुर ध्वनि ने कामिनियों के कलित-कलेवर में एक उन्माद उत्पन्न कर दिया और मदन की पीडा से वे अपनी सुध बुध भूल गईं। शरीर को सम्हाल न सकीं तथा स्खलित हो गईं। स्वयं राजा भी बहुत प्रभावित हुए तथा स्त्रियों की दशा देखकर उन्होंने उन सब को भीतर जाने की आज्ञा दी, लेकिन जाते समय प्रत्येक स्त्री अपने पृष्ठ भाग पर कमल पत्र लपटाए हुई थी।

'माधौ विप्र नाद अस कहा। भीजै चीरू मदन तब बहा॥
तब राजा आइसु दयौ, चेरी दइ उठाइ।
सब ही के पीछे रहे, कमल पत्र लपटाइ॥'

राजा को इस परीक्षा के उपरान्त प्रजा की बात पर विश्वास हो गया और उन्होंने माधवानल को निष्कासन की आज्ञा दे दी।

माधव 'पुष्पावती' को छोड़ घूमता-फिरता दस दिन बाद कामावती नगरी पहुँचा जहाँ कामसेन राज्य करता था। राजा कामसेन संगीत प्रेमी था और उसके दरबार में नृत्य और संगीत सभाएँ हुआ करती थीं। इसी नगरी में कामकन्दला नाम की अपूर्व सुन्दरी नर्तकी थी। जिस दिन माधवानल इस नगरी में पहुँचा उसी दिन दरबार में संगीत और नृत्य समारोह था। नगर की सारी जनता दरबार में समारोह देखने जा रही थी। माधवानल भी इसी भीड़ के साथ अन्दर जाने लगा किन्तु द्वारपाल ने उसे अन्दर जाने से रोक दिया। अस्तु वह बाहर ही रह कर संगीत सुनने लगा किन्तु थोड़ी ही देर बाद उसने दुःख से अपना सिर धुनना प्रारम्भ कर दिया और सारी सभा को 'मूर्ख' कहना प्रारम्भ कर दिया। माधव के इस व्यवहार से द्वारपाल को बडा आश्चर्य हुआ और उसने राजा से जाकर कहा कि एक अपरिचित ब्राह्मण बाहर बैठा हुआ अपना सिर धुनता है और सारी सभा को मूर्ख कहता है। राजा ने द्वारपाल से इसका पूरा कारण पूछने को कहा तब माधवानल ने द्वारपाल से कहला भेजा कि मन्दिर के अन्दर जो बीस मृदंग का अखाड़ा चल रहा है उसमें

ग्यारहवें आदमी के केवल चार उँगली हैं, अतः स्वर भंग हो रहा है, किन्तु मूर्ख सभा इसे जान नहीं पाती है। राजा ने इसकी पुष्टि की और बात सच निकली। इस पर प्रसन्न होकर कामसेन ने माधव को भीतर बुलवा भेजा और उनकी बड़ी आवभगत की तथा उसे मुकुट, मणिमाला तथा दो कोटि टका उपहार स्वरूप दिए और अपने पास सिंहासन पर बिठाया।

कामकन्दला इस गुणज्ञ को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई और मन में सोचने लगी कि अब तक उसके नृत्य का कई पारखी न होने के कारण उसका कला-प्रदर्शन व्यर्थ ही जाता था, किन्तु आज उसकी कला सफल होगी, इसलिए माधवानल के दरबार में आने के उपरान्त उसने अपना नृत्य बड़ी तन्मयता से प्रारम्भ किया।

सर पर पानी का कटोरा रख कर हाथों से चक्र बनाती हुई जिस समय वह पग संचालन कर रही थी, उसी समय कंचुकी की सुगन्धि से आकर्षित होकर एक भँवरा उसके कुच के अग्र भाग पर आ बैठा। भ्रमर के दंशन से उसे पीड़ा होने लगी किन्तु नृत्य की मुद्रा के खण्डित होने के भय से तथा माधव के सामने मूर्ख बनने की चिन्ता से उसने अपनी मुद्रा में किंचित अन्तर न आने दिया[1] वरन् साँस को खींच लिया जिसमें अधरों की सुगन्ध न आने पाए और फिर कुच के स्रोत से तेज वायु का संचालन किया जिसके कारण भँवरा उड़

---

१. 'धुनि गुन कन्दला करइ। जल भरि सीस कटोरा धरई॥
भृकुटी चाँप चलत मुख मोड़हि। कर अगुरी सों चक्र फिरावहि॥
दीप जोति इक भंवर उड़ाई। कुच के अग्र सों बैठो जाई॥

× × ×

छिन छिन कटहि मधुकरा, अस्त न बेद न होइ।
माधौनल सब बूझई, और न बूझै कोई॥

× × ×

जो कर छुवै चक्र गिरि पड़ई। काम कन्दला औगुन धरई॥
खैंच पवन मुख वासु न आवहि। अस्त न श्रोत समीर चलावहि॥
पवन तेज मधुकर उड़ि चला। माधौनल बूझी यह कला॥
तब राजा के नैन निहारै। मूरख राता न कला बिचारै॥
रीझ्यौ माधव कला बिचारी। मुद्रिक टोडर दए उतारी॥

× × ×

गया[१]। कामकन्दला की इस कला को केवल माधवानल ही देख और समझ पाया सभा के अन्य लोग मूर्ख की नाईं बैठे रहे। जब राजा ने भी कामकन्दला की प्रशंसा न की तो माधवानल ने अपना मुकुट आदि उतार फेंका और मुद्राएँ भी राजा को लौटा दीं।

माधवानल के इस व्यवहार से कामसेन चौंक पड़ा और पूछने पर माधवानल ने उत्तर दिया कि तुम और तुम्हारी सभा दोनों ही मूर्ख हैं। कामकन्दला की कला के तुम पारखी नहीं हो सकते, इसलिये मैं मूर्खों के द्वारा प्रदत्त वस्तु नहीं लेना चाहता। राजा को माधव के इस अशिष्ट व्यवहार पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे निष्कासन की आज्ञा दी[२]। राजा ने राज्य भर में यह भी ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई भी माधवानल को आश्रय देगा उसकी खाल में भूसा भरवा दिया जायगा।

अस्तु जिस समय माधवानल 'कामावती' को छोड़कर जाने लगा उसी समय मार्ग में आकर कामकन्दला ने अपना प्रेम प्रकट किया और अपने घर में जाने के लिये अनुरोध करने लगी[३]। पहले तो वेश्या के घर जाने से विप्र ने इनकार किया किन्तु कामकन्दला ने अपने सतीत्व का आश्वासन देकर स्वीकृति ले ली और प्रसन्नतापूर्वक विप्र को लेकर अपने घर पहुँची।

---

१. 'नाचत त्रिय कुच अग्र पर, मधुकर बैठ्यौ आइ।
अस्तन खोत समीर सों, दीनौं भंवर उड़ाइ॥'

× × ×

२. 'तू राजा अविवेकी आई। गुन औगुन बूझौ नहि ताही॥
मैं विद्या परवीन सुजाना। रीझि कला नहिं राखौं प्राना॥
क्रोधवंत राजा डरि कहै। ढीठ विप्र चुप क्यों नहिं रहै॥
मारौं खड्ग टूक दुइ करौं। विप्र दोष अपजस तैं डरौं॥'

× × ×

३. 'चलहु विप्र घर बैठहुँ मोरे। चरन धोइ सेवहुँ कर जोरे॥
प्रेम कथा कहु मोहि सुनावहु। काम अग्नि की तपनि बुझावहु॥
मैं रोगी तुम बैद गुनानी। मोहि संजीवनि देहु सो आनी॥
काहे गोरिख रहि अकेला। अब संग लेइ करहु मोहि चेला॥
मैं भई धुधल तू सूरज मेरा। तू चंदा हौं भई चकोरा॥'
तू मधुकर हौं कमलती, बैस बास रस लेहि।
मेरे बूँद तै संवाति जल, आसै बूँद भरि भरि देहु॥

—माधवानल कामकन्दला-आलम।

कामकन्दला के हृदय में माधवानल के लिए प्रेम जाग्रत हो ही चुका था इसलिए घर पहुँच कर उसने विप्र की बड़ी सेवा की। ऐश्वर्य और विलास की सारी सामग्री एकत्रित की और सखियों से विप्र को वशीभूत करने की रीति पूछने लगी। सखियों ने कामकन्दला को रति की सारी रीति बताकर सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित कर कुसुम शय्या पर माधवानल के साथ भेज दिया। इस प्रकार माधव ने दो रातें सहवास सुख और काम क्रीड़ा में कामकन्दला के साथ व्यतीत कीं[1] और तीसरे दिन राजाज्ञा से वह नगर छोडकर चलने को तत्पर हुआ। कामकन्दला उसे जाने नहीं देती थी हाथ पकडकर बहुत विनती करने लगी कि मुझे छोडकर मत जाओ[2]। दोनों में बडी देर तक वादविवाद होता रहा और अंत में एक सखी ने आकर माधव की बाँह छुड़ा दी। माधव विदेश चल पड़ा और कामकंदला बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर एक दिन विरह से व्याकुल होकर माधव ने जंगलों में भटकते हुए प्राण त्यागने का विचार किया। उसी समय उसे पर-दुख-भंजन राजा विक्रमादित्य का विचार आया और अपने दुख के निवारण के लिए वह उज्जैन नगरी की ओर चला। उज्जैन में पहुँच कर उसने

---

१. 'कहै कन्दला सुनौ हो सहेली। मोहि सिखवहु प्रेम पहेली॥
अबलौं मुग्धा हती अलबेली। सिखवहु रस की रीत महेली॥
रचि सेज न जानहु प्रथम समागम जिय पहिचानहुँ।
वहु सुजान माधवानल अही। सब झग कोक बखानहुँ ताही॥
चउदह विद्या कोक बखानै। अंग बास मनमथ का जानै॥
× × ×
कोक रीति कन्दला सिखाई। माधोनल पै सखी पठाई॥
माधो निरखि रीति कै राहा। तिहि छन आइ मदन तन दाहा॥
× × ×
मदन धनुष सर पच लै, माधो सनमुख आइ।
काम कंदला निरखि कै, सरन-सरन प्रहराइ॥
२. 'गहि रही काम कन्दला बाहीं। हौं ताहि जान दैउ जु नाहीं॥
कहति काम ये मीत बताऊँ। कै जु चले मन मोर लुभाऊँ॥
अहा मीत सज्जन परदेसी। विद्याधर मन मोहन भेसी॥
मारि कटारिन मेटौ दाहू। ता पाछै तुम पर भुमि जाहू॥
× × ×
—माधवानल कामकन्दला—आलम ८

देखा कि राजा हर समय राजों, महाराजों तथा अन्य लोगों से घिरा रहता है। इसलिए उस तक पहुँचना कठिन है, यह देख वह दुखी होकर इधर-उधर भटकता रहा। अन्त में वह महादेव जी के मण्डप में गया जहाँ नित्य प्रातःकाल राजा विक्रमादित्य पूजा के हेतु आया करता था। और उसने रात में एक गाथ मण्डप की दीवाल पर लिख दी।

कहाँ करौं कित जाउँ हौं, राजा रामु न आहि ॥
सिय वियोग संताप बस, राघौ जानत ताहि ॥'

प्रातःकाल विक्रमादित्य ने पूजा के बाद इसे पढ़ा और मन में सोचता हुआ चला गया। दूसरे दिन माधव ने दूसरी गाथा दीवाल पर लिखी—

'रामचन्द्र नहि जगमँह आहि। सिया वियोग कियौ दुख जाहि ॥
राजा नल पृथ्वी सों गयउ। जिहिं बिछोह दमयन्ती भयउ ॥

दूसरे दिन राजा ने फिर पढ़ा और बहुत दुःखी हुआ तथा दरबार में आकर घोषणा की कि मेरे राज्य में एक विरही बड़ा दुखी है, इसलिये मैं उस समय तक अन्न-जल न ग्रहण करूँगा जब तक उसे मेरे सामने न उपस्थित किया जायगा।

अतएव सारी प्रजा में खलबली मच गई और सब इस अज्ञात विरही को ढूँढ़ने निकल पड़े।

राजा के यहाँ ज्ञानवती नाम की एक दासी थी वह बड़ी चतुर थी। उसने उस वियोगी को ढूँढ़ने का बीडा उठाया और रात में शिव के मण्डप में गई। माधवानल वहीं दुर्बल मलीन पड़ा हुआ था और कामकन्दला का नाम रट रहा था। दासी ने उसकी दशा को देखा और उसे विश्वास हो गया कि यही विरही है। उसने राजा को आकर इसकी सूचना दी।

इस सूचना को पाकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। माधवानल विक्रमादित्य के सामने लाया गया। राजा ने उसकी सारी कहानी सुनी और फिर उसे वेश्या का प्रेम त्यागने के लिये कहा। कितनी ही सुन्दरियों के प्रलोभन दिए किन्तु माधवा-नल ने कामकन्दला को छोड़कर अन्य किसी की ओर देखने तक की इच्छा प्रकट नहीं की। 'मांगौं यही बात सुन लीजै, मौं कहँ कामकन्दला दीजै।' अन्त में विक्रमादित्य ने ससैन्य कामावती नगरी की ओर कूच किया। कामावती से थोड़ी दूर पर शिविर डालकर विक्रमादित्य छिपकर कामावती नगरी में पहुँचा और काम-कन्दला की प्रेम परीक्षा लेने के लिए उसके यहाँ गया।

कामकंदला विक्षिप्तावस्था में पड़ी माधव का नाम जप रही थी। राजा ने पास जाकर उससे प्रेम प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया, किन्तु कामकंदला के नीरस व्यवहार और अन्यमनस्क दशा से 'क्रुद्ध होकर उसने कामकंदला के वक्षस्थल पर लात मारी। लात खाकर कामकंदला ने उसके पैर पकड़ लिए। राजा ने उसके इस व्यवहार का कारण पूछा तो कामकंदला ने कहा कि मेरे हृदय में विप्र माधवानल का निवास है जिनसे आपका चरण छू गया है, अतः वह मेरे लिए पूज्य है। कामकंदला के इस उत्तर ने राजा को द्रवित तो किया किन्तु उसने दूसरा आघात किया और बताया कि माधवानल नाम का एक विप्र विरह में तड़प-तड़प कर कुछ दिन हुए उसकी नगरी में मर गया है।

माधवानल के देहान्त की बात सुनते ही कामकदला अचेत होकर गिर पड़ी और उसका प्राणान्त हो गया। कामकंदला की मृत्यु से राजा बड़ा दुखी हुआ और अपनें शिविर में लौट कर राजा ने माधवानल को कामकदला की मृत्यु का समाचार सुनाया जिसे सुनते ही माधवानल का भी देहान्त हो गया।

इन दोनों की मृत्यु से विक्रमादित्य बड़ा दुखी हुआ और अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिये उसने चिता बनाई और जलकर मर जाने लिये तत्पर हुआ। चिता में अग्नि लगाकर वह बैठने ही वाला था कि इतने में 'बैताल' ने आकर उसे रोका और राजा से ऐसा करने का कारण पूछा। राजा ने सारा वृत्तांत बैताल को सुनाया। बैताल सब सुनने के बाद पाताल पुरी से अमृत ले आया जिससे दोनों को फिर जीवित किया गया।

इसके उपरान्त विक्रमादित्य ने 'वसिठ' (दूत) को कामसेन के यहाँ भेजकर कामकन्दला को माँगा किन्तु कामसेन ने कामकन्दला को भेजने से इनकार किया। इस पर दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में कामसेन के सारे सैनिक काम आए। अन्त में कामसेन ने विक्रमादित्य से क्षमा माँगी और कामकन्दला को सौंप दिया। इस प्रकार माधवानल कामकन्दला का संयोग हुआ और दोनों आनन्द से विक्रमादित्य के राज्य में रहने लगे।

पर खोज (१६२३-९) में जो बड़ी पोथी उपलब्ध हुई उसमें मूलकथा के आगे पीछे और भी कुछ अवांतर या प्रासंगिक कथाओं का सविधान किया गया है। मंगलाचरण के अनन्तर इन्द्र की सभा का वर्णन है, जिसमें जयन्ती नाम की अप्सरा उर्वशी की भाँति अभिशप्त होती है, वह शिला होकर वन में पड़ी रहती

---

१. 'कामकंदला विरह बस, बस्तर गात मलीन।
मुख माधौ माधौ रहै, होइ सो छिन छिन छीन॥'

-'माधवानल कामकंदला'-आलम।

है। माधव अपने गुरु के लिए सामग्री लेने जाता है और शिला को देखता है। उसके द्वारा शिला का उद्धार होता है। माधव उसके साथ इन्द्र की सभा देखने की इच्छा करता है। जयती उसके गुण पर रीझती है, वह पृथ्वी पर कामकन्दला के रूप मे अवतरित होती है। पुष्पावती नगरी के नरेश गोविन्दचन्द के यहाँ से माधव निर्वासित किया जाता है और कामावती नगरी में आता है, वहाँ राजा की दी हुई भेंट वह कामकन्दला के नृत्य पर रीझ कर दे देता है। राजा उसकी धृष्टता पर खीझ कर देश निकाले की घोषणा करता है। विक्रम से सहायता पाकर वह कामावती पर उसे चढ़ा देता है। कामकन्दला और माधवानल की मृत्यु होती है और बैताल अमृत लाकर उन्हें जिलाता है। युद्ध होने पर कामसेन पराजित होता और कामकन्दला को दे देता है, जिसे पाकर माधव घर लौटता है।

श्री बालकृष्ण दास की हस्तलिखित प्रति प्रारम्भ में खण्डित है, पर अन्त में बहुत सा अंश 'सभा वाली' छोटी प्रति से उसमें अधिक अंश अवश्य सन्निविष्ट हैं जिसमें माधव के पिता शंकरदास का वर्णन आदि आता है। विक्रम माधव के अनुरोध करने पर उसके साथ पुष्पावती गया। राजा ने विक्रम का आगमन सुना तो अपने पुरोहित शंकरदास को दूत बनाकर उसके पास भेजा। वह विक्रम के पास पहुँचकर उसे भेंट आदि देकर आने का कारण पूछने लगा। विक्रम ने भी शंकरदास की उदासी का निमित्त जानने की जिज्ञासा की। वह रो पडा और कहने लगा कि मेरा पुत्र पुष्पावती से निर्वासित हो कामावती चला गया है तब से उसका पता नहीं चलता। विक्रम ने माधव को उसके सामने किया। पिता परम प्रसन्न हुआ। माधव ने निर्वासित होने के पश्चात् की सारी गाथा पिता के समक्ष निवेदित की। विक्रम ने कहा कि मैं तो केवल माधव को सौंपने के लिये आया था। मेरा कोई अन्य प्रयोजन नहीं। पुरोहित ने लौटकर गोविन्दचन्द्र से पूरी कथा कही। राजा ने आकर सत्कारपूर्वक माधव को नगर में बुला लिया।

काव्य-सौंदर्य

नख-शिख वर्णन

आलम ने नारी सौन्दर्य का वर्णन उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के सहारे बड़ा लालित्यपूर्ण और मनोमुग्धकारी किया है। नख-शिख के वर्णन में उन्होंने परम्परागत उपमाओं का ही सहारा लिया है।

काले बालों के बीच की मांग में घिस कर भरा हुआ चन्दन और स्थान

स्थान पर गुँथी हुई पुष्पमाला अम्बर में जटित नक्षत्रावली और सर्प के मुँह पड़ती हुई दुग्ध धार के समान सुशोभित होती है[१]।

मांग के आगे माणिक का बेंदा ऐसा प्रतीत होता है मानों सर्प ने मणि उगल दी हो[२]। नासिका के अग्र भाग में लटकता हुआ मोती ऐसा प्रतीत होता है मानों दीपक पुष्प गिराना चाहता है[३]। जलते हुए दीपक की बत्ती का अग्र भाग गिरने के पूर्व तिरछा होकर लटक जाता है और उसकी चमक का साम्य मोती से कितना सुंदर बन पड़ा है।

इस प्रकार अधर पल्लव पर बिछलती हुई मुस्कान से विकीर्ण दंत ज्योति वैसे ही मालूम होती है जैसे कमल पत्र पर बिजली की रेखा हो, कितनी अनूठी और कोमल कल्पना है।

वक्षस्थल पर पड़ी हुई मोतियों की माला साँस से आंदोलित होकर दोनों कुचों पर लहराती हुई ऐसी प्रतीत होती है मानों दो शिव पिंड ने एक साथ ही सुरसरि की धारा बहा दी हो[४]। अथवा तन्वगी के शरीर पर उरोज इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं मानों कनक बेलि में दो श्रीफल लगे हों[५]।

नाभि निकट से चलने वाली रोमावली ऐसी प्रतीत होती है मानों स्वर्ण के खंभ पर किसी ने कस्तूरी की क्षीण रेखा खींच दी हो अथवा सर्पिणी अपनी बांबी से निकली हो या दो कमल-रूपी कुचों की सुन्दर मृणाल दिखाई पड़ती हो। किन्तु कवि की अन्तिम उत्प्रेक्षा बड़ी सुन्दर एवं नवीन है। उसके अनुसार

---

१. मध्य भाग चन्दनु घटि भरै। दूध धार विषधर मुख परै॥
कहुँ कहुँ पुष्प कँहु कँहु मोती। जनु घन में तारागन जोती॥'
—माधवानल कामकन्दला—आलम।

२. "मांग अग्र माणिक दिए औ मुक्तागन संग।
छिन छिन जोति धरै मनौं उछली जु भुजंग॥"
× × ×

३. "नासा अग्र मोती इमि रहई। दीपक पुष्प करन को हहई॥"
× × ×

४. "मुकताहल दोउ कुच बिच रहई। दुहु मेरुमध्य जनु सुरसरि बहई॥
कुच कंचन भरि सांस वारे। सुरसरि धारि जनु ईस उधारे॥"
× × ×

५. "कनक बेलि श्रीफल जुग लागे। किधौं पुष्प गुथि अति अनुरागे।"
—माधवानल कामकंदला—आलम।

ऐसा जान पडता है मानों यमुना ने अपनी गति बदल दी है और वह उलट कर कैलास पर्वत पर गगा से मिलना चाहती है। कुचों के ऊपर लहराती हुई मोतियों की माला से गगा का स्वच्छ जल एव रोमावली की श्यामता से यमुना की श्यामता का बड़ा अनूठा साम्य कवि ने स्थापित किया है[1]।

कवि ने जहाँ नवीन उद्भावना के साथ पुरानी परम्परा की उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में सौन्दर्य ला दिया है वहीं उसने परम्परा के अनुसार केले के खम्भे से जाँघों की उपमा तथा दाड़िम और बिम्बाफल से अधरों और दशनों की उपमा भी दी है।

संयोग-श्रृंगार

श्रृंगारकाव्य में नारी का सौन्दर्य उपभोग की वस्तु भी है इसलिये इस कवि ने रति की क्रीड़ाओं का भी वर्णन किया है और उससे उत्पन्न शारीरिक विकारों की ओर भी संकेत किया है किन्तु उसमें शालीनता और मर्यादा का विशेष उल्लंघन नहीं हुआ है।

कामकंदला ने अपनी सहेलियों से कोक रीति को पूछा इसलिए कि वह केवल अब तक मुग्धा थी[2] और इस कला को सीख लेने के उपरान्त वह माधव के पास रसकेलि के लिए पहुँची, कवि ने इस स्तर को केवल कुछ ही शब्दों में व्यंजित कर दिया है। रति के उपरान्त की अवस्था नारी की शिथिलता और उसकी उनींदी तथा अलसाई आँखों के सौंदर्य एव अस्त-व्यस्त आभूषणों आदि

---

१ 'उदर छीन रोमावलि देखा। कनक खंभ मृग मद की रेखा ॥
नाभि निकर स्यों नागिन चली। जनु कुच कमल नलिन विय भली ॥
नाभि पानि सो उड़ी सुहाई। कवल हुतै अलि अवलि आई ॥
कै उलटी कालिंदी द्रवहीं। गिरि गंगा परसन कौ चहईं ॥

× × ×

२. 'कहै कंदला सुनौ सहेली। मोहि सिखावहु प्रेम पहेली ॥
अबलौं मुग्धा हती अलबेली। सिखवहु रस की रीत सहेली ॥'

× × ×

कोक कला हमही कहौं, सब विधि अर्थ बखानि।
और सिखावहुँ मोहिं कछु, पूछहुँ गुन जन मान ॥

—कामकन्दला

× × ×

का वर्णन अवश्य हमें विशद् किन्तु शालीन मिलता है[१] ।

विप्रलंभ शृंगार

प्रियतम के बिछोह से बड़ा दुःख नारी के लिये नहीं है । उसका जाना मृत्यु से कहीं पीड़ा जनक है । वियोगिनी के लिए ऐसी अवस्था में मूर्छा के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं रहा, अतः माधव के बिछोह में कंदला का मूर्छित हो जाना स्वाभाविक ही था[२] । मूर्च्छा के उपरान्त विरह की पीड़ा असह्य हो उठती है और इस वेदना की तीव्रता में मनुष्य अपने को ही सारे कर्मों का दोषी समझने लगता है, यह शरीर ही न रहे तो फिर दुःख ही क्यों रह जाए ! इतनी पीड़ा ही का अनुभव क्यों हो किन्तु यह हृदय और शरीर उसे हाड़ मांस का न मालूम होकर वज्र का गढ़ा मालूम होता है[३] ।

पानी के बिछोह से तालाब जैसे निर्जीव पदार्थ का वक्ष तक फट जाता है किन्तु मेरा हृदय क्यों नहीं फट जाता । वास्तव में ये प्राण बड़े निर्लज्ज हैं वरन् प्रिय का बिछोह मैं कानों से सुनती ही क्यों[४] ? प्रियतम के साथ जीवन

---

१ 'उरझे बाल हारन निवारहिं । सब अंग भूषन सखी सुधारहिं ॥
मुख पखारि पुनि पान खवावहिं । नखछत मांहि कुम कुमा लगावहिं ॥'

× × ×

शिथिल गात कंचुकी तरक बिखरी माँग लट छूट ।
अधर दंत_उरनख तरक कांचावली कर फूट ॥

'सखी सकल मिलि रही सुजानी । व्याकुल देखि मुख छिरकहिं पानी ॥
काम कंदला परिहरि सेजा । भई बिहाल तन रह्यो न तेजा ॥
झलकैं पलक उनींदे नैना । अति जमुहाइ आवहि नहिं बैना ॥
कवल प्रवेस भवँर जो किया । कोस झकोर सकल रस लिया ॥'

× × ×

२. 'काम मूर्छित धरनि महँ परी । सखी आइ करि अंक भरी ॥'

३. 'यह हिय वज्र वज्र ते गढ़ा । पाल्यो वज्र वज्र में बढ़ा ॥
जा दिन मीत बिछोह भयऊ । तब किनि खंड खंड ह्वै गयऊ ॥

—माधवानल काम कन्दला -आलम ।

× × ×

४. 'बिछुरन जल ताल तरकै । पापी हियै नैकु नहि दुरकै ॥
ऐसे निलज रहत नहि प्राना । मीत बिछोह सुनत किनि काना ॥
गए न प्रान मीत के संगा । ऐसे निलज रहत गहि अंगा ॥'

× × ×

की संपत्ति और सुख चला गया केवल नेत्र प्राण और तन विरह का दुख सहने के लिये रह गए हैं[१] । हृदय को कहीं भी शान्ति नहीं मिलती । एक जगह बैठा भी नहीं जाता । बेचैनी में कभी घर और कभी बाहर भागने का मन होता है । प्रियतम का नाम जपने और सिर धुन कर रोने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह जाता[२] ।

प्रेमी की उद्विग्नता का वार-पार नहीं, समय काटे नहीं कटता । दिन में व्याकुलता बढ़ती है, तो रात की याद आती है । सम्भवतः रात को सोकर ही कुछ शान्ति मिल जाए, किन्तु हाय रे मनुष्य के असफल मनोरथ कहीं भी किसी भी समय तो चैन नहीं मिलता[३] ।

विरह की पीड़ा सब कुछ तो छीन लेती है । शरीर केवल एक शून्य अस्थि पंजर मात्र रह जाता है । मतिभ्रम हो जाता है और प्रेमी पागल की तरह हो जाता है[४] । खाने-पीने और नहाने की इच्छा नहीं होती, केवल आँखें प्रियतम के आने की राह देखती रहती हैं[५] ।

मन की चंचलता तथा अङ्ग का शृंगार सब भूल जाता है और फिर चेतना भी धीरे-धीरे साथ छोड़ने लगती है । शरीर इतना कृश काय हो गया है कि वह स्वाँस की तेजी को भी सहन नहीं कर पाता और मन सारे देशों से प्रियतम के

---

१. 'आलम मीत विदेसिया लै गयो संपति सुख ।
नैन प्रान विरह बस रहे सहन को दुख ॥'

× × ×

२. 'खिन माधौं माधो गुहिरावै । खिन भीतर खिन बाहर आवै ॥
बिरह ताप निसि सेज न सोवै । कर मीड सीड धुनि धुनि रोवै ॥'

× × ×

३. 'जो दिन होइ तौ निसि रहै, जो निसि होइ तौ प्रांत ।
ना दिन सांति न रैन सुख, विरह सतावत गात ॥'

—माधवानल कामकन्दला—आलम ।

× × ×

४. 'नृत्य गीत गुन चतुराई । गति मति आनि बिरह बौराई ॥

× × ×

५. 'अंजन मज्जन भोग बिसारे । सजल नैन है जल के नारे ॥
वस्त्र मलीन सीस नहिं बेखै । लंक टेक माधो मग जोवै ॥'

× × ×

लिये दौड़ता फिरता है[१]।

संयोग में जो वस्तुएँ सुखदाई होती हैं वही वियोग में दुखदायी बन जाती हैं। वसंत और पावस ऋतु, मलय समीर तथा सूर्य और चन्द्रमा प्रकृति की ऐसे सुखकारी वस्तु दुख की तीव्रता को ही बढ़ाने वाली होती है। इसीलिए तो 'कन्दला को कुछ नहीं सुहाता'[२]।

विरह की पीड़ा केवल नारी ही के हृदय में ही नहीं होती, पुरुष भी इससे उतना ही व्याकुल होता है। कन्दला के बिछोह में माधव भी आहें भरता पागलों की तरह घूमता-फिरता था और केवल कन्दला के ध्यान में ही मस्त था[३]।

उसकी कराह से वन के पशु-पक्षी भी विचलित होकर अपनी नींद खो देते थे और हिंस्र पशु अपनी पाशविकता भूल जाते थे। कृषकाय माधव सूखे पत्ते की तरह अपने ही हृदय में अपनी पीड़ा छिपाए हुए भटकता फिरता था[४]।

वास्तव में यह विरह समुद्र अगाध अलेख है, इसमें पड़ कर कोई भी पार नहीं पाता। वह जीवित नहीं रह सकता और अगर वह जीवित रहता भी है तो

---

१. माधो बिरह कन्दला व्यापी। विरह की ताप सकल तन व्यापी॥
डारे तन मारे मन रहई। हिये पीर काहू नहिं कहही॥
छिन चेतै छिन चेत नहिं आवै। जीव विकल हर देस में धावै॥
स्वाँस लेत पिंजर सन डोलै। छिन मैं मरै सखी सभालैं॥

× × ×

२. रितु बसन्त कोकिल दहई। मलय समीर आग जिमि दहई॥
पावस रितु बरसै जब मेहा। झकति मरत है सुमिरि सनेहा॥
सूर चन्द्र सीतल सब कहई। मिलि समीर आगि जिमि लहई॥
जे जे सीतल सुखद सहायक। तेहि सब मोहि भए दुख दायक॥
माधवानल कामकन्दला

३. बिछुरत काम कन्दला नारी। माधव नल भयो दुख भारी॥
विरह स्वास हियरे जो बढै। छिन-छिन आहि-आहि कर काढै॥
बन-बन फिरै बीन बजावै। सूखे काठ अगन जनु लावै॥
मन चिंता करतय वियोगी। गोरख ध्यान रहै जिमि जोगी॥

× × ×

४. जैसे सूख पात जु डोले। सूल सहै माधो नहि बोले॥
छिन-छिन टेर टेर कै रोवै। बन पंछी नींद न सोवहिं॥
बाघ सिंह कोउ निकट न आवै। चहुँ दिसि विरह अगिनि उठि धावै॥

× × ×

संसार के लिए बेकार होकर पागल हो जाता है। इसलिए कि विरह की चिनगारी नित्यप्रति बढ़ती हुई सारे शरीर को भस्मीभूत कर देती है[1]।

अन्य रस

माधवानल में आलम ने जहाँ एक ओर संयोग, वियोग और सम्भोग शृंगार का बड़ा सुन्दर, सरस और मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है वहाँ उसकी लेखनी वीर और भयानक रस में भी उतनी ही पटुता से चली है।

सैन्य के चलने और उसके बजते हुए बाजों के प्रभाव का शाब्दिक चित्र कितना सरस बन पडा है[2]। दो सेनाओं के घमासान युद्ध, हाथी से हाथी और योद्धा से योद्धा की भिड़ंत तथा रुंड-मुंडों का पृथ्वी पर गिरना बड़ा सजीव बन गया है[3]। कटे हुए रुड़-मुंड की युद्ध की हुँकार करते हुए दिखाई पड़ते हैं[4]। इस युद्ध से उत्पन्न वीभत्सता और भयानकता का स्वरूप कितना रोमांचकारी बन पडा है[5]।

---

१. बिरह समुद्र अगम अगाध अपि अही। बूड़ि मरै नहि पावै थाही ॥
बुधि बल छल कोउ पार न पावै। जो नर सप्त गगन चढ़ धावै ॥
बिरह डसत नर जियै न कोई। जो जीवहि सो बौरो होई ॥
बिरह चिनग चिह तन पर जरई। छिन-छिन अधिक अगिन बिस्तरई ॥
सोई अगिन माधौतन लागि। बन-बन फिरहि बिरह बैरागी ॥
—माधवानल कामकंदला—आलम

× × ×

२. मेघ सब्द जिमि बजै निसाना। उठै अन्कुर अम्बर घहराना ॥
भरे झाँझ धुनि सुनै अडारू। सूर समूह अडबाजहि मारु ॥
मारू सबूद सनहि जिमि बीरा। पुलकत रौम गैम अडधीरा ॥

× × ×

३. 'रावत पर रावत चढ़ि धाए। धनुख पर धनुख चढ़ि आए ॥
पाइक सो पाइक भए जोरा। लहत बार अरु मुख नहिं मोरा ॥
गज सों गज कीने चौदन्ता। चिकरै कुञ्जर मैं मत मन्ता ॥
बाजे लोह उठै टन्कारा। तापर फिरै षङ्ग की धारा ॥
फूटै फूट मुख फटि जाही। बाजै सार सार छुन जाहा ॥

४. हौं कै खड्ग उतरि गए मुण्डा। फिरै राति धरती पर मुण्डा ॥
सूर जूझि धरती लै परहीं। मूडौ मार, मार उच्चरहीं ॥

५. बोलै घाव साउ उच्चरही। जंह तंह रकत के नीर ढरहीं ॥
जोगिनि फिरै भूत निसाना। बैठि करैं लोह न्हाना ॥
माधवानल कामकन्दला।

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी के ग्रन्थ

क्रम	लेखक		ग्रन्थ
१.	पण्डित रामचन्द्र शुक्ल	—	हिन्दी साहित्य का इतिहास
२.	डा० रामकुमार वर्मा	—	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
३.	मिश्र बन्धु	—	मिश्र बन्धु विनोद
४.	रामशंकर शुक्ल 'रसाल'	—	हिन्दी साहित्य का इतिहास
५.	शिवसिंह	—	शिवसिंह सरोज
६.	डा० नगेन्द्र	—	रीतिकाल की भूमिका
७.		—	मतिराम ग्रन्थावली
८.	रामचन्द्र शुक्ल	—	पद्मावत की भूमिका
९.	परशुराम चतुर्वेदी	—	मध्ययुग की प्रेम-साधना
१०.	चन्द्रबली पाण्डेय	—	तसव्वुफ और सूफीमत
११.	जायसी	—	पद्मावत
१२.	नूरमुहम्मद	—	अनुराग बाँसुरी : श्रीचन्द्रबली जी द्वारा सम्पादित
१३.	बलदेव प्रसाद मिश्र	—	वैदिक कहानियाँ
१४.	डा० दीनदयालु गुप्त	—	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय
१५.	रामचन्द्र शुक्ल	—	रस-मीमांसा
१६.	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	—	वाङ्मय-विमर्श
१७.	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	—	बिहारी
१८.		—	रसगंगाधर
१९.	डा० केशरी नारायण शुक्ल	—	रूसी साहित्य
२०.	नामवर सिंह	—	हिन्दी साहित्य में अपभ्रंश का योग।

हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची

क्रम	लेखक		ग्रन्थ
२१.	मंझन	—	मधुमालती
२२.	नूरमुहम्मद	—	इन्द्रावती
२३.	आलम	—	माधवानल कामकन्दला

२४. रामगुलाम — प्रेम-रसाल
२५. जान कवि — रतन-मंजरी
२६. ,, — छीता
२७. ,, — पुहुप वारिखा
२८. ,, — कवलांवती
२९. ,, — रूप मंजरी
३०. ,, — कामलता
३१. ,, — रत्नावली
३२. ,, — कथा नल-दमयन्ती की
३३. ,, — छबि-सागर
३४. ,, — मोहनी की कथा
३५. ,, — चन्द्रसेन राजा सील निधि की कथा
३६. ,, — काम रानी व प्रीतम दास की कथा
३७. ,, — बलूकिया बिहारी की कथा
३८. ,, — खिजिर खाँ देवलदे की कथा
३९. ,, — कालिदास ग्रन्थावली

पत्र-पत्रिकाएँ आदि

४०. श्री जैन सिद्धान्त भास्कर — भाग १ जुलाई-सितम्बर १९१२
४१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका —
४२. विश्वभारती खंड ५ अंक, अप्रैल-जून।
४३. अनुशीलन — प्रयाग विश्वविद्यालय
४४. ज्ञान शिखा — लखनऊ विश्वविद्यालय
४५. हिन्दुस्तानी — हिन्दुस्तानी ऐकेडमी
४६. राजस्थानी शोध पत्रिका —
४७. राजस्थान भारती —
४८. शोध पत्रिका —
49. Jain Antiquary ... Vol. III.
50. Journal of the Bihar & Orissa Research Society ... Vol. XXIX.
51. Report of the VII th Oriental Conference Baroda— ... Dec. 1933
52. Indian Antiquary ... Vol. XLIX 1920

53. Rev. Cannon Sell D. D.... Sufism.

54. Browne .. A Year amongst the Persians.

55. Reynold Nicholson ... Mystics of Islams.

56. Murry & T. Titus ... The Religious Quest of Indian Islam.

57. Dr. Kaumudi ... Studies in Moghul Paintings.

58 Grousset . Civilizations of the East Vol. II.

59. Winternitz ... A History of Indian Literature Vol. I & II

60. Ambika Prasad Bajpai .. Persian Influence on Hindi.

61. Madan Mohan Malviya . Mysticism in Upnishadas

62. Bhagwan Das ... Hindu Ethics.

63. F. H. Baimer Mysticism.

64. Nicolson ... Mysticism in Persian Poetry.

65. P. C. Wahar .. Notes on the Jain Classical Literature.

66. Lewis ... The allegory of love.

67. Moncrieff ... Romance & Legend of Chivalry.

68. Heighet ... The Classical Traditions.

69. Crompton ... Cambridge History of English Literature Vol. II.

70. Bhoja ... Sringar Prakash Vol. I.

71. B. S. Upadhyay . Woman in Rigveda.

———